कविता-कौमुदी

सातवाँ भाग—बँगला

लेखक

प्रो० कृपानाथ मिश्र, एम० ए०

(पटना कालेज)

सम्पादक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

[प]हला संस्करण } १९३३ { मूल्य ३)

प्रकाशक
हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग.

पहला संस्करण—१०००, १९३३

मुद्रक
रामनरेश त्रिपाठी
हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद.

समर्पण

राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर, बी० ए०,

बनैली-राज्याधीश

के

करकमलों में सादर समर्पित

कृपानाथ मिश्र

राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर, बी० ए०

(बनैली-राज्याधीश)

राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर, बी० ए०,

का

संक्षिप्त परिचय

बिहार प्रान्त के पुर्निया जिले में बनैली नाम का एक सुरम्य स्थान है। यही राजाबहादुर कीर्त्यानन्दसिंहजी का निवास-स्थान है। आप उच्चकुल जात मैथिल ब्राह्मण हैं।

राजाबहादुर को अपनी मातृ-भाषा मैथिली से बहुत प्रेम है। इस प्रेम का सबसे बड़ा और सबसे सुन्दर उदाहरण है, कलकत्ता विश्वविद्यालय का "बनैली चेयर इन मैथिली।" कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली की शिक्षा इन्हीं के दान का फल है। हम मैथिलों के लिये आप सर्वश्रेष्ठ आदर्श हैं, इसलिए कि मातृ-भाषा के प्रेमी होते हुए भी आप हिन्दी के हिमायती हैं। हिन्दी-साहित्य के प्रति आपका अनुराग गहरा है। आप हिन्दी पढ़ते हैं, हिन्दी की चर्चा करते और सुनते हैं, यहाँ तक कि पटना यूनिवर्सिटी के सिनेट में भी (जिसके आप सदस्य हैं) हिन्दी की सहायता करते रहते हैं।

राजाबहादुर सुशिक्षित हैं और सुलेखक भी। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि उस समय प्राप्त की थी जिस समय यह उपाधि प्राप्त करना, सो भी प्रयाग से, कठिन, बहुत कठिन था। आपके सुपाठ्य लेख मासिकपत्रों में निकलते रहते हैं। आशा है, शीघ्र ही हिन्दी-संसार को आपके

द्वारा लिखी हुई शिकार सम्बन्धी एक अनुपम पुस्तक प्राप्त होगी।

राजाबहादुर शिकार के शौकीन हैं। शिकार करते समय कई बार आपने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया है। शिकार के समय आपके अस्त्र जो भी हों, घर में आपका अस्त्र है, नम्रता। इसी से सभों को आप तुरन्त मुग्ध कर लेते हैं। छोटे हों या बड़े, छात्र हों या प्रोफेसर, राजाबहादुर सबके साथ ऐसी नम्रता से पेश आयँगे कि प्रत्येक व्यक्ति आपकी सहृदयता की प्रशंसा करते-करते घर जायगा।

राजाबहादुर का सबसे विशिष्ट गुण है, अपने को छिपाये रखने की कला। इसमें आप पारङ्गत हैं। आत्म-विज्ञापन तो आप जानते ही नहीं। कुछ दिन पहले भागलपुर के 'तेजनारायण जुबिली कॉलेज' की आर्थिक अवस्था इतनी खराब होगई थी कि लोगों को भय हुआ कि वह शीघ्र ही टूट जायगा। लोगों के भय को तुरन्त राजाबहादुर ने दूर कर दिया। लाखों का दान देकर आपने कॉलेज की नींव मज़बूत कर डाली। लोगों ने कॉलेज का नाम 'तेजनारायण कॉलेज' से बदलकर 'कीर्त्यानन्द कॉलेज' रखना चाहा। राजाबहादुर ने मना किया, इतने ज़ोरों से कि अब भी भागलपुर कॉलेज 'तेजनारायण कॉलेज' ही कहलाता है। यद्यपि उसकी स्थिति के लिये दायी हैं राजाबहादुर।

ईश्वर करे, भारत के सभी राजे ऐसे ही हों।

कृपानाथ

सूची

कवि-नामावली

कौमुदी-कुञ्ज

भूमिका

संसार के सभ्य देशों में आज काव्यानुशीलन की बड़ी आवश्यकता है। युगों से हम उन्नति करते आ रहे हैं; पर इस उन्नति का मूल्य महँगा पड़ा—हम विद्वान् बने, बलवान बने, शक्तिशाली बने; लेकिन हमारा हृदय सूख गया। हमारे भीतर के कोमल तंतु सो रहे हैं। यही कारण है कि भोर के अख़बार में आग लग जाने के कारण कहीं सौ बच्चों के मर जाने की ख़बर पढ़कर भी बिना आँसू बहाये, पान चबाते, हम आफ़िस जाते, काम करते, गप लड़ाते और हँसते हैं। यही कारण है कि हमारे सामने एक सजीव नर-कङ्काल भूख के कारण चल नहीं सकता, न चल सकने के कारण सड़क पर गिर जाता है, गिर जाने के कारण मोटर से दब कर मर जाता है, और हम उस ओर कौतूहलभरी दृष्टि डालकर दोस्तों से मज़ाक करते आगे बढ़ जाते हैं। हम सभ्य तो बने; लेकिन सभ्य बने, हृदय की कोमलता का उत्सर्ग करके। इतनी बड़ी क़ीमत दे देने पर हमारा रहा ही क्या? आत्मिक दृष्टि से आज हम सभी दीन हैं। इसी दैन्य के कारण आज पाश्चात्य जगत में आत्मिक हाहाकार मचा हुआ है। काव्यानुशीलन इसी दैन्य को दूर करता है। इसलिये कि कवि हमें नई आखें देकर, नये कान देकर वह दिखाता—वह सुनाता है जो हम प्रतिदिन देखकर भी नहीं देखते, और प्रतिदिन सुनकर भी नहीं सुनते हैं। कवि अन्तर्द्रष्टा है। कुछ दूर तक हम अन्तर्द्रष्टा हो सकते हैं। यदि हम कविताओं के भीतर तक प्रवेश कर सकें। ऐसा प्रवेश कविताओं के पाठ से संभव होता है और ऐसा पाठ संभव होता है ऐसे ग्रन्थ से, जो अभी आपके हाथ में है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझे बड़ा परिश्रम करना पड़ा है। मैं स्वभाव का आलसी हूँ, और हूँ लापरवाह। कभी-कभी इस लापरवाही

के कारण हिन्दी-मन्दिर को दिक्कतें उठानी पड़ीं। मुझे यह ज्ञात हुआ कि मुझ में सम्पादन की योग्यता नहीं है, और चाहे जो कुछ भी हो। फिर भी इस ग्रंथ के सम्पादन में मैं ने वैसा परिश्रम किया, जैसा कभी किसी काम में नहीं किया। यद्यपि ऐसा परिश्रम कुछ दूर तक बाध्य होकर ही करना पड़ा।

कवियों का चुनाव मैं ने बड़ी सावधानी से किया है। कुछ प्राचीन कवियों की कवितायें काव्य की दृष्टि से कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं। उनकी कवितायें सिर्फ़ भाषा के विकास के ख़याल से ही दी गई हैं। मध्यकालीन तथा अर्वाचीन कवियों की वे ही कवितायें दी गयीं हैं, जिन्हें मैं सुन्दर समझता हूँ। कई कवियों ने तो अपनी रचनाओं का चुनाव आप ही किया है। इस चुनाव को कहीं-कहीं मैं ने ज्यों का त्यों रक्खा, और कहीं-कहीं बदल दिया है।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं का चुनाव और वर्गीकरण कैसा हुआ है, सो तो विज्ञ पाठक जानें! लेकिन मेरा विचार यह रहा है कि आरम्भ ही में पाठकों को रवीन्द्रनाथ की कविताओं के गूढ़ तत्त्वों से डरा नहीं देना चाहिये। इसी विचार से प्रेरित होकर मैं ने सर्वप्रथम सुन्दर, चुटीली और वर्णनात्मक कवितायें रक्खी हैं, फिर आवेशपूर्ण कवितायें हैं; फिर विचारात्मक कवितायें रक्खी हैं, और अन्त में रक्खी हैं, गूढ़ अध्यात्म से भरी कवितायें। आशा है, इस वर्गीकरण से साधारण पाठक लाभ उठायेंगे।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं के सम्बन्ध में मैं ने कुछ खरी बातें (परिचय में) इसलिये कही हैं कि हिन्दीवाले इस महा सूर्य की कीर्त्ति से इस तरह झुलस न जायँ कि उनका अस्तित्व ही न रहे। कहना निरर्थक है कि मेरे विचार निजी हैं और उनके लिये सम्पूर्ण रूप से मैं ही दायी हूँ। उन्हें मानना न मानना पाठकों के ऊपर है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में जिन सज्जनों ने मेरी सहायता की है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। कुछ सज्जनों के नाम ये हैं—श्री हरनन्दन प्रसाद, श्री पारसनाथ, श्री हरेश्वरप्रसाद दत्त, बी० ए०, श्री सतीश-चन्द्र मिश्र, एम० ए०, श्री केशरीकिशोरशरण, बी० ए०, श्री जगदीश-चन्द्रदास, बी० ए० तथा श्री हरेन्द्रदेव नारायण। हिन्दी-मन्दिर के सञ्चालक पंडित रामनरेश त्रिपाठी के निकट मैं कृतज्ञ हूँ; क्योंकि बड़े भाई की तरह मेरी भूलों की परवाह न कर उन्होंने बड़े धैर्य्य से सिखाते-पढ़ाते मुझ से काम करा डाला।

आधुनिक बंगाली कवियों ने तो मुझे चिरकृतज्ञता के पाश में आबद्ध कर डाला। कई कवियों ने अपनी जीवनी स्वयं लिख भेजी, अपने फोटो भेजे, परामर्श दिये, उत्साहित किया। मैं इन सभों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इति शुभम्

चम्पानगर
(भागलपुर)
बिहार
२१। १२। ३२

कृपानाथ मिश्र

बँगला-उच्चारण-विधान

कुछ साधारण नियम—

दो-एक को छोड़कर प्रायः सभी बँगला व्यञ्जनों का उच्चारण हिन्दी व्यञ्जनों के समान होता है।

"न" और "ण" के उच्चारण में उतना फ़र्क नहीं होता, जितना कि हिन्दी में।

'व' का उच्चारण 'ब' होता है।

बँगला में 'व' नहीं होता। इसका काम दो अक्षर करते हैं, 'ओ' और 'य'।

बँगला "य" का उच्चारण "अ" के समान होता है। यह प्रायः अर्ध्द स्वर हो जाता है। यह 'आ' में मिल जाता है। यथा—जावा (जाना) को बंगाली जाओया लिखते हैं। इसका उच्चारण करते हैं, जाओआ। "ओ" का उच्चारण पूरा नहीं होता। फलतः इस शब्द का उच्चारण "जावा" होता है।

जहाँ गाओया लिखा हो, वहाँ उच्चारण में "गावा" कहना चाहिये। जहाँ गावा लिखा हो वहाँ उच्चारण में गाबा कहना चाहिये।

मूल शब्दों के प्रारम्भ में "य" का उच्चारण "ज" होता है। यथा—यथा = जथा, यतन = जतन, यजमान = जजमान। उपसर्गवाले शब्दों में 'य' प्रारम्भिक समझा जाता है, अतएव उसका उच्चारण 'ज' होता है। यथा—अयाचित = अजाचित।

मूल शब्दों के अन्त या मध्यवाले 'य' का उच्चारण 'य' होता है। यथा—राय = राय, विजय = विजय, मयङ्क = मयङ्क।

'क्ष' का उच्चारण 'क्ख' होता है। यथा—रक्षा = रक्खा।

'द्म' का उच्चारण 'द्दो' होता है। यथा—पद्म = पद्दो।

'द्य' का उच्चारण 'द्' होता है। यथा—पद्य = पद्।

'अ' को छोड़कर सभी बँगला स्वरों का उच्चारण हिन्दी के स्वरों के समान होता है (उच्चारण में बँगला के दीर्घ स्वर लघु होते चले जा रहे हैं, यह बात दूसरी है।)।

'अ' का उच्चारण बहुत कठिन है। इसको भलीभाँति समझने पर बँगला उच्चारण आसान हो जाता है।

'अ' एक तालव्य स्वर है।

तालव्य स्वर उसे कहते हैं, जिसके उच्चारण में जीभ तालु से लगे या लगने पर हो। तालव्य स्वर दो प्रकार के होते हैं—(१) अग्र तालव्य, (२) उत्तर तालव्य। यदि स्वर के उच्चारण में जीभ तालु के अग्रभाग से लगे या लगने पर हो तो उसे अग्र तालव्य कहते हैं। यदि जीभ तालु के उत्तर भाग से लगे या लगने पर हो तो उसे उत्तर तालव्य कहते हैं।

हिन्दी, गुजराती, मराठी में 'अ' अग्र तालव्य स्वर है। बँगला 'अ' उत्तर तालव्य स्वर है। अर्थात् बँगला 'अ' के उच्चारण के समय जीभ का अग्रांश तालु के उत्तर (पिछले) अंश से लगेगा, तब जो स्वर निकलेगा, वह बँगला का 'अ' स्वर होगा।

बँगला में कमल का उच्चारण कॅमॅल के तुल्य भले ही हो, कोमोल कभी नहीं होता। कोमोल में 'अ' का उच्चारण ओष्ठजात होता है और बँगला में 'अ' तालव्य है। कुछ दूर तक बँगला में 'अ' का उच्चारण hot, pot में देखा जाता है।

प्रत्येक व्यञ्जन में 'अ' का उच्चारण होता है।

अन्तिम व्यञ्जन में 'अ' का उच्चारण नहीं होता। अर्थात् कॅमॅल, लेकिन कॅमॅलॅ नहीं।

यदि अन्तिम व्यञ्जन 'त' हो तो उसके 'अ' का उच्चारण होता है, यथा—बिगत = बिँगॅतॅ।

बँगला भाषा और साहित्य का परिचय

भाषा क्या है ?

मनुष्य को मस्तिष्क है। वह संसार की वस्तुएँ देखता, अनुभव करता और उनपर विचार करने की चेष्टा करता है। मनुष्य अपनी भावनायें दूसरों पर व्यक्त करना चाहता है। विचार करने की ऐसी चेष्टा और उन विचारों को व्यक्त करने का प्रयास भाषा-निर्म्माण के कारण हैं। यों तो लोग बिना शब्द के भी कभी-कभी मानस-पट पर अङ्कित प्रतिमाओं के सहारे सोच लेते हैं। पर जब विचार क्लिष्ट और सूक्ष्म होने लगते हैं तब बिना शब्दों के उनका प्रकाश सर्वथा असम्भव हो उठता है। विचार को अस्पष्ट और लुप्त होने से बचाने के लिये तथा उन्हें चिरन्तन और अमर बनाने के लिये हमें किसी-न-किसी प्रकार के सङ्केत का सहारा लेना पड़ता है। ग्राम की अशिक्षित स्त्रियाँ रुपये-पैसे का हिसाब दीवार पर चिन्ह बना कर किया करती हैं। भाषा की उत्पत्ति भी इन सङ्केतों से ही हुई। अपने विचार को स्पष्ट और सूक्ष्म बनाने और शीघ्रतापूर्व्वक स्मृति-पट पर लाने के लिये सङ्केत चाहिये ही। ये सङ्केत कितने ही प्रकार के हो सकते हैं। जैसे स्काउट लोगों के झण्डे, रेलवे स्टेशन के सिगनल, जङ्गल में घूमते हुए पथिक के मार्ग से न भटक जाने के उद्देश्य से स्थान-स्थान पर फेंके हुए काग़ज़। पर ये सङ्केत केवल छोटे-छोटे भावों के द्योतक हो सकते हैं। साहित्य और विज्ञान में ये सङ्केत सफलता-पूर्व्वक कदापि काम में नहीं लाये जा सकते। अतएव आवश्य-

कता हुई एक नए साधन की। यह साधन हुआ शब्द। मनुष्यों ने शब्द-निर्म्माण किया। भिन्न-भिन्न ध्वनियों के लिए एक-एक सङ्केत बनाकर, उनको मिलाजुलाकर। शब्द-निर्म्माण ने भावप्रकाश में एक बड़ी सफलता ला दी। हमें एक ऐसा अक्षय और व्यापक भण्डार मिला कि अब सङ्केतों की कमी हम अनुभव ही नहीं कर पाते।

यह तो हुआ विचार करने के साधन की दृष्टि से शब्द और भाषा का विश्लेषण। पर हम विचारों को अपने पास ही रखना नहीं चाहते, उनको व्यक्त करना भी चाहते हैं। हमारा विचार-भण्डार केवल क्षुद्र न बना रहे, वरन् औरों के विचार से पूरित और परिवर्द्धित हो, औरों के अनुभव को हम अपना बनाकर संसार को विजय करने के लिये अधिक उपयुक्त बनें, ऐसी ही इच्छा हमारी होती है और इसलिये हमें आवश्यकता होता है औरों के मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित करने के किसी माध्यम की। यह सम्बन्ध निकट और वर्त्तमान मस्तिष्क के साथ अथवा दूर अतीत या भविष्य मस्तिष्क के साथ हो सकता है। इस प्रकार माध्यम में भी भिन्नता होगी। निकट वाले मस्तिष्क से हम अपने छोटे-छोटे भावों को शारीरिक सङ्केतों से कुछ अंश में व्यक्त कर सकते हैं; जैसे—मुँह के सामने अञ्जलि लगाकर प्यास सूचित करना, अथवा सिर हिलाकर अस्वीकृति प्रकाश करना। पर यहाँ भी किसी गहन और सूक्ष्म विषय पर अपने विचार को प्रगट करने के लिये हमें शब्दों का सहारा लेना ही पड़ेगा। अबतक कथित भाषा से हमारा काम चल जाता था।

पर जब हमें किसी दूर, अतीत या भविष्य मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित करना हो तो हमें शारीरिक सङ्केत तो किसी प्रकार सहारा दे ही नहीं सकते। कथित भाषा से कुछ अंश में हमें सहायता मिलती है, पर पूर्ण नहीं। यथा, प्राचीन काल की बहुत-सी अलिखित कथायें किंवदन्तियाँ, वेद के मन्त्र आदि केवल मौखिक भाषा के सहारे युग-युग

तक जीवित रह सके। इसी प्रकार वर्त्तमान काल की बातें कुछ दूर भविष्य में बिना लिखे केवल मौखिक भाषा के सहारे भी जीवित रह सकती हैं। पर इस प्रकार मौखिक भाषा से विचार को ठीक-ठीक सुरक्षित रखना पूर्ण रूप से सम्भव नहीं। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक जाने में कोई बात अपनी पूर्णता की रक्षा नहीं कर सकती। मनुष्य अपने मनोभावों के कारण कुछ तो भूल जाता, कुछ बढ़ा देता और कुछ विचित्र रूप से विकृत कर देता है। इस प्रकार जो कुछ बच रहता है, वह पूर्व्व विषय का बहुत स्वल्प अंश और विकारों से भरा हुआ होता है। यही कारण है कि हमने अपने शब्दों को लिख डालने की प्रथा निकाली। प्रत्येक ध्वनि के लिये एक-एक सङ्केत बनाया जैसे क, ख, ग आदि और उनके संयोग से हमें शब्द को अमर बनाने में बड़ी सुगमता मिली। यह लिख डालने की प्रथा ने संसार को उन्नत बनाया।

बीसवीं सदी में बैठे हम धुँधले अतीत की कहानी अशोक के सिला-लेखों में पढ़ लेते हैं; विस्मृत अतीत में लुप्त कालिदास, वाल्मीकि और व्यास के साथ हम बातें कर लेते हैं। इस प्रकार विचारों को लिख रखने की प्रथा ने हमें एक और लाभ पहुँचाया। हमें अतीत के ज्ञान को अनायास अपनाने और वर्त्तमान ज्ञान को भावी सन्तानों को सञ्चित रूप में दे डालने में सहायता मिली। संसार कहाँ होता? यदि रमन महोदय को वहीं विज्ञान आरम्भ करना पड़ता, जहाँ न्यूटन और गैलिलियो को करना पड़ा था।

पर यह मानना ठीक न होगा कि एक बार भाषा बनी और वह चिरकाल के लिये उसी रूप में रह जायगी। भाषा कभी बन नहीं चुकती, सदा बनती रहती है। उसमें सदा नवीनता आती रहती है—वही उसका जीवन है। प्रत्येक युग को अपना-अपना अनुभव होता है; प्रत्येक युग अपने लिये उन्हीं शाश्वत तत्त्वों को विविध प्रकार से मिला-जुलाकर

नयी-नयी वस्तुएँ बनाता रहता है; प्रत्येक युग अपनी-अपनी सुगमता के लिये भाषा के उच्चारण आदि में परिवर्त्तन करता है। कभी राजतन्त्र, कभी राष्ट्रतन्त्र, कभी प्रजातन्त्र शासन, कभी जंगल के नगण्य झोंपड़े और कभी शिल्प के चमत्कार, नगर बनते और बिगड़ते रहते हैं। भाषा पर इन परिवर्त्तनों का महान् प्रभाव पड़ता है। नये-नये अनुभव, नये-नये मनोभाव, नये शासन-विधान, नये पदार्थ सभी के लिये नूतन शब्दों का गठन होता है। भाषा का भण्डार भरता है, उसके उच्चारण और लेखन-विधि में परिवर्त्तन होता है। इस प्रकार कुछ काल के उपरान्त भाषा को प्राचीन भाषा से हम बिल्कुल पृथक् पाते हैं। इसी प्रकार नये लोगों के, नयी भाषाओं के संघर्ष से भी भाषा में परिवर्त्तन आया। सिन्धु नदी के किनारे बोली जाने वाली प्राचीन वेदों की भाषा और आधुनिक पञ्जाबी में कितना अन्तर है!

बङ्गला इन्डो-जर्मनिक भाषाओं की एक शाखा है। भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अँग्रेज़ी, संस्कृत, हिन्दी आदि भाषायें एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न विकसित रूप हैं। जब कैस्पियन सागर के चारों ओर आर्य्य लोग एकत्र रहा करते थे, उनकी भाषा एक ही थी। फिर जब किसी कारण आर्य्य लोगों की भिन्न-भिन्न टोलियाँ पश्चिम, दक्षिण और पूरब की ओर फैलकर ग्रीक, जर्मन, अँग्रेज़ आदि यूरोपीय, फ़ारसी, तुर्की आदि पश्चिमी तथा भारतवर्ष में निवास करने वाले पंजाबी, विहारी, बंगाली आदि जातियों के प्रवर्त्तक बने, तब भिन्न-भिन्न वातावरण के कारण, भिन्न-भिन्न सभ्यता, जलवायु, भूभाग आदि से प्रभावित हो एक ही मूल भाषा भिन्न-भिन्न भाषाओं के रूप में विकसित हुई। इस तथ्य का हाल ही में अनुसन्धान हुआ है। आगे लिखे शब्दों ने भिन्न-भिन्न भाषा में कैसा रूप पाया, इससे इस अनुसन्धान की सत्यता प्रत्यक्ष होगी—

संस्कृत	मीडो	यूनानी	लैटिन	अँग्रेज़ी	फ़ारसी	हिन्दी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फ़ादर	पिदर	पिता
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर	माता
नाम	नाम	नोमा	नामेन	नेम	नाम	नाम

भिन्न-भिन्न भाषाओं के इन शब्दों का मूल एक ही था। समय तथा अवस्था के फेर से इनमें परिवर्त्तन होते गए।

पूरब जाने वाली आर्य्य-जाति दो भागों में विभक्त होगई। एक भाग ईरान और फ़ारस की ओर गया और दूसरा काबुल होते हुये भारतवर्ष में आया। पहले दल ने मीडी भाषा के सहारे फ़ारसी भाषा की सृष्टि की और दूसरे ने संस्कृत की। संस्कृत के पहले बोली जाने वाली भाषा प्राचीन प्राकृत थी, जिसमें ऋग्वेद के कुछ मन्त्र बने हैं। इसी भाषा को सुधार कर संस्कृत भाषा का निर्माण हुआ। भाषा पाणिनि आदि सुयोग्य वैयाकरणों के नियमों से सुसंस्कृत होकर जब निम्न श्रेणी के लोगों के लिये सुगम नहीं रही, तब संस्कृत से ही फिर एक प्रकार की प्राकृत भाषा की सृष्टि हुई। इसी दूसरी प्राकृत से हिन्दी, बँगला आदि भाषाओं की उत्पत्ति हुई। पाली भाषा भी संस्कृत ही से निकली है, पर इसमें संस्कृत शब्द बहुत कुछ ज्यों के त्यों हैं। प्राकृत भाषा संस्कृत के विकृत शब्दों से लदी हुई है। यह भाषा शायद कालिदास के समय में अपढ़ लोगों में प्रचलित रही होगी; क्योंकि शकुन्तला नाटक में स्त्री-पात्र प्राकृत ही बोलते हैं।

विकास के साथ-साथ प्राकृत से तीन शाखायें फूट निकलीं—मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। ये नामकरण स्थान-भेद से हुये। इस प्रकार विक्रमाब्द ८, ९ सौ वर्ष तक मामूली भेद के साथ प्राकृत बोली जाती रही। फिर उसमें कुछ-कुछ अपभ्रंश होने के कारण सारी भाषा का नाम ही अपभ्रंश पड़ गया। बारहवीं शताब्दी के वैयाकरण हेमचन्द्र सूरि ने अपभ्रंश भाषा का उल्लेख किया है। पर हेमचन्द्र की मृत्यु के कुछ

हो काल बाद विशाल भारत साम्राज्य के टूट-फूट जाने से सङ्कीर्ण प्रान्तीयता के प्रचार के साथ साथ भाषा की एकरूपता भी नष्ट होगई और अपभ्रंश ही से हिन्दी, बँगला आदि प्रान्तीय भाषाओं की सृष्टि हुई।

बँगला भाषा पर बौद्ध और जैन धर्म्म का प्रभाव

ऐत्तरेय आरण्यक में बङ्ग देश का उल्लेख मिलता है और रामायण तथा महाभारत में तो यह नाम कितने ही बार आता है। मनु ने बङ्गाल को आर्यावर्त्त का एक भाग माना है। द्वापर-युग में ब्राह्मण-धर्म्म के प्रधान पृष्ठ-पोषक श्रीकृष्ण के विरुद्ध द्वारका पर जो दो वीरों ने चढ़ाइयाँ की थीं, उनमें पोण्ड्रक वासुदेव भी था, जो पाण्डुओं का राजा था। दूसरा वीर जरासन्ध था।

बहुत प्राचीन काल में सारा बङ्गाल बौद्ध और जैन-धर्म्म ग्रहण कर-चुका था और ब्राह्मण-धर्म्म का प्रभाव धीमा पड़ गया था। बड़े बड़े बौद्ध विद्वान् और सुधारक बङ्गाल ही में हुए। जैसे अन्तीश दीपङ्कर, शीलभद्र आदि। बङ्गालियों ने बौद्ध-धर्म्म का प्रचार जापान, कोरिया आदि देशों में किया; जिसके प्रमाण-स्वरूप जापान के धर्म्म-ग्रन्थ आज भी ११वीं सदी की बँगला-लिपि में लिखे मिलते हैं। इस प्रकार बौद्ध-धर्म्म का अनुयायी होने के कारण यह देश कट्टर हिन्दू-वाद का सर्वदा विद्रोही रहा है और मनु ने "अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु"—आदि श्लोक से हिन्दुओं को उससे सम्पर्क रखना ही निषिद्ध बतलाया है। इसी प्रकार ऐत्तरेय आरण्यक के भाष्यकार आनन्दतीर्थ ने बङ्ग-वासियों को राक्षस और पिशाच नाम दिया है।

बँगला का प्राचीन नाम है गौड़ प्राकृत। दसवीं सदी के अन्त से ही बौद्ध-लेखकों ने इस भाषा में ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया। वैयाकरण कृष्ण पंडित ने इसे पैशाची प्राकृत कहकर निन्दा की है।

म० म० हरप्रसाद शास्त्री के प्रयत्न से नेपाल में कुछ ग्रन्थ मिले हैं जो दसवीं-ग्यारहवीं सदी के बने हैं। वे ये हैं (१) चर्य्याचर्य्यविनिश्चय (२) बोधिचर्य्यावतार, (३) डाकार्णव।

परन्तु बौद्धों का बङ्ग-भाषा को समृद्ध बनाने का प्रयत्न सहसा हिन्दू जाग्रति से रुक गया। बौद्ध लोग बुरी तरह पीड़ित किये गये और उन्होंने जो अपने धर्म्म को सुगमता से प्रचार करने के लिये बँगला की सहायता ली थी, उसका यकायक पोषक छिन जाने के कारण उस भाषा का भविष्य अन्धकाराच्छन्न हो गया। हिन्दू-जाग्रति-काल के संस्कृत विद्वानों ने बौद्धों की अपनाई हुई असंयत अर्द्ध-मागधी प्राकृत को घृणा से देखा और जो संस्कृत-ग्रन्थों को भाषा में प्रचार करते थे, उन की बड़ी निन्दा होने लगी।

"अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितानिच भाषायां मानवः श्रुत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्"—आदि संस्कृत-श्लोक तथा, "कृत्तिवेसे, काशीदेसे, आर बामुन घेंषे, एई तिन सर्व्व नेशे" आदि बँगला-पद्य इस मनोवृत्ति के प्रमाण हैं। स्वयं बँगला के लेखक भी भाषा को आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे। विजय गुप्त ने कहा है—"सहजे पांचाली गीत नाना दोषमय" और कवीन्द्र परमेश्वर ने "पाँचालीतेनहे योग्यवाद" कहकर पाञ्चाली अर्थात् बँगला की उपेक्षा की है।

बँगला और मुसलमान

फिर बेचारी पैशाची भाषा को ब्राह्मणों के विरोध होते हुए भी राज-सभा में स्थान क्यों कर मिला? अगाध संस्कृत-विद्या के पंडितों से भरी राजसभा में बेचारे बँगला के लेखक कैसे सम्मानित हुए? नव-द्वीप के कृष्णचन्द्र की सभा संस्कृत का केन्द्र होते हुए भी अठारहवीं सदी के भारतचन्द्र और रामप्रसाद को कैसे सम्मानित कर सकी?

बँगला-भाषा की यह स्वीकृति और साहित्यिक स्थान कितने ही कारणों से मिले; जिनमें सर्व्व-प्रधान है मुस्लिम-विजय।

पठानों ने बङ्गाल को तेरहवीं सदी के आरम्भ में जीता और क्योंकि उन्हें बङ्गाल ही में रहना था, बँगला सीखना उन्हें आवश्यक हुआ। उन लोगों ने हिन्दुओं के विख्यात महाकाव्यों के विषय में सुन रखा था और हिन्दुओं के पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर उनके प्रभाव से वे परिचित थे; अतएव उन लोगों को महाकाव्यों के विषय में जानने का कौतूहल हुआ। वे ब्राह्मणों के से धर्म्म के जोश में संस्कृत पढ़ना कष्टकर समझ उन ग्रन्थों को अनुवाद करने के लिये लोगों को अपनी राजसभा में आश्रय और सम्मान देने लगे। महाभारत का पहला अनुवाद नासिराशाह की आज्ञा से हुआ था, जो १३२५ ई० तक ४० वर्ष गौड़ का अधिपति रहा। इसका उल्लेख चटगाँव के गवर्नर परागलखाँ की आज्ञा से अनूदित कवीन्द्र परमेश्वर के बँगला महाभारत में मिलता है। नासिराशाह भाषा का बड़ा प्रेमी था। विद्यापति ने उसकी और सुल्तान ग़यासुद्दीन की प्रशंसा में कहा है—

"सो नासिराशाह जाने
याक हनिल मदन बाने
चिरञ्जीव रहु पञ्चगौड़ेश्वर
कवि विद्यापति भाने।"

और "प्रभु ग़यासुद्दीन सुल्तान" आदि।

हुसेनशाह बँगला का बड़ा प्रेमी था। उसने मालाधर वसु को भागवत के अनुवाद के लिये नियुक्त किया था। हुसेनशाह की हिन्दू भी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। पद्मपुराण में विजय गुप्त ने कहा है—

"सनातन हुसेनशाह नृपति-तिलक"। इसी प्रकार औरों ने भी। बहुत से मुसलमान स्वयं भी बँगला के माधुर्य्य से खिंचकर उसमें कविता करने लगे। कितने ही वैष्णव-गान उनकी कृतियाँ हैं। कवि

आलाउल, जो मुसलमान था, सत्रहवीं सदी के मध्य में हिन्दी-काव्य पद्मावत को बँगला में अनूदित किया। इसकी भाषा बिलकुल संस्कृत से भरी हुई है। मुसलमानों का बँगला साहित्य बड़ा ऋणी है।

मुसलमानों के बँगला प्रेम का प्रभाव हिन्दू-राजाओं पर भी पड़ा और वे भी उनका अनुकरण करते हुए बँगला के कवियों को अपनी सभा में आश्रय देने लगे। ब्राह्मणों का विरोध अब नहीं रहा और वे स्वयं भी बँगला लिखने लग गये। इस प्रकार विद्यापति का नाम शिवसिंह तथा अन्यान्य मैथिल राजाओं से अभिन्न है, चण्डी के लेखक मुकुन्दराम को सहायता देनेवाले थे बाँकुड़ा राय। शिवयान के लेखक रामेश्वर पर प्रसन्नता थी कर्णगढ़-नरेश यशवन्तसिंह की, और महाकवि भारतचन्द्र के अभिन्न मित्र थे नदिया के राजा कृष्णचन्द्र।

हिन्दुओं और मुसलमानों का बहुत दिनों तक एक साथ रहना दोनों की संस्कृति और रहन-सहन पर अपना प्रभाव छोड़ गया। हिन्दू मुसलमान पैग़म्बरों और क़ुरान की प्रतिष्ठा करते और मुसलमान भी काली और शीतला जैसे देवताओं की पूजा करने लगे। राजशाही के मुसलमानों ने तो मनसादेवी-सम्बन्धी मानस-गान के ऊपर बिलकुल एकाधिपत्य प्राप्त कर लिया। सम्मिश्रण का प्रभाव यहाँतक पड़ा कि एक देवता की सृष्टि हुई, जिनका नाम अरबी और संस्कृत के शब्द मिलाकर सत्यपीर हुआ। धीरे-धीरे कितने ही मुसलमान कवि आकर सत्यपीर और अन्यान्य हिन्दू-देवताओं के विषय में कवितायें लिखने लगे। यहाँ कुछ की तालिका दी जाती है—

(क) सत्य पीरेर पाँचाली—जिसके लेखक हैं नायक मायानी गाज़ी।

(ख) करीमुल्ला-कृत यामिनी बहाल। इसमें नायिका एक मुस्लिम महिला है जो शिव की पूजा करती है।

(ग) किसी मुसलमान की लिखी हुई 'इमाम यात्रार पुथी'। इसमें कवि ने देवी सरस्वती के स्तव में एक गान लिखा है जिसकी प्रथम पङ्क्तियाँ ये हैं—

"आय मा सरस्वति, तुमि आमार मा।
मा अनाथ बालक डाकि सुने सुनेना॥"

(घ) चटगाँव के एक प्रधान कवि करमअली ने अपने पदों में राधाकृष्ण का सुन्दर गान किया है। उदाहरण है—

कान्या-कान्या बलितेछे श्रीमती राइ।
आन्यादे-आन्यादे मोर नागर कानाइ॥
शुन आय वृन्दा दूती बलि तोमारे।
मथुराय गेल हरि आन्यादे मोरे॥"
प्रेमानले दहे मोर हृदय अन्तरे।
वृन्दावने बसिले, देखि कोकिल कुहरे।
के हरिल प्राण दूति, व्रजेर शशी।
वृन्दावने राधाबले डाकेना वांशी।
सेइ से मनो दुःख कहिते नारि कार ठाँइ,
अभागी राधारे दिये बुझि श्यामेर काज नाइ।
कहे श्री करम आली शुन गो प्यारी।
ध्याने भज नागर कानाई केंदों न श्रीमती राइ।
निकटे आछेन तोमार प्राणेर हरि॥

मुसलमान कवियों ने सङ्गीत शास्त्र पर भी कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। यहाँ कुछ के नाम हैं:—

(क) रागमाला—जिसमें भारतीय सङ्गीत के भिन्न-भिन्न भेद आलीमियाँ, अलवाल और ताहिर मुहम्मद के गीतों के उदाहरण देकर दिखलाये गये हैं।

(ख) तालनामा जिसमें सैयद ऐनुद्दीन सैयद मुरतज़ा, नासीरुद्दीन, आदि कवियों के गान संग्रहीत हैं।

(ग) सृष्टि पट्टन:—यह भी एक सङ्गीत का ही ग्रन्थ है; जिसे दानेश काज़ी, नासीर महम्मद, और बक्शअली ने सम्पादित किया है।

(घ) ध्यानमाला—जिसका लेखक है अलीराज। वह एक अच्छा कवि था। उसने छः राग और छत्तीस रागिनियों का वर्णन किया है।

मुसलमानों ने बहुत-सी कहानी की किताबें भी लिखी हैं, जिनमें कुछ के नाम नीचे दिये जाते हैं—

(क) दौलत काज़ी-कृत लोर चन्द्राणी।
(ख) आलवाल-कृत सप्त पयका, जिसमें सात कहानियाँ हैं।
(ग) कबीर मुहम्मद-कृत रङ्गमाला।
(घ) शमशेर अली-कृत रेजवां साहा।
(ङ) शम्सुद्दीन शिद्दीक-कृत भाव लाभ।
(च) 'यूसुफ़ जुलेख़ा'—फ़ारसी से अब्दुल हाकिम के द्वारा अनूदित।
(छ) 'लैला मजनूँ'—दौलत उज़ीर बहराम-द्वारा बँगला-पद्य में लिखित। इसी प्रकार और भी कितने ही हैं।

आज भी बँगला साहित्य की सेवा करनेवाले यशस्वी मुसलमान लेखक विद्यमान हैं। बँगला के पाठक काज़ी नज़रुलइसलाम, हुमायूँ कबीर और जसीमुद्दीन आदि देश-प्रेमी कवियों की कृतियों से परिचित होंगे।

बँगला के शब्द-भाण्डार

बँगला भाषा का आधुनिक नाम बहुत पुराना नहीं है। असंयत पैशाची प्राकृत को किस प्रकार स्वीकृति मिली, यह बताया जा चुका है।

यदि हम प्राचीन बँगला की ओर ध्यान दें तो देखेंगे कि उसमें पहले देशज शब्द ही अधिकांश व्यवहृत होते थे। संस्कृत निष्पन्न तत्सम और तद्भव शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त नहीं होते थे। पर धीरे-धीरे बँगला साहित्य संस्कृत शब्दों से भरा जाने लगा और यह क्रम ईश्वरचन्द्रगुप्त के समय तक अबाध जारी रहा। इनके पहले भी भारतचन्द्र कवि के अन्नदा-मङ्गल काव्य के किसी छन्द को डाक की सीधी-सादी उक्तियों से तुलना करें तो हम देखेंगे कि संस्कृत शब्दों को धीरे धीरे कितनी प्रधानता मिलती गई।

डाक की भाषा देखियेः—

धर्म्म करिते यवे जानि पाखरि दिया राखिन पानी
गाछ रुइले बड़ धर्म्म।
ये देइ भातशाला, पानिशाला
से ना पाय यमेर पुरी।

वह सरोवर नहीं, पाखरि अथवा पोखर कहता है; जल नहीं; पानी कहता है; आरोपित करना नहीं, रोपना कहता है और भात-शाला और पानि-शाला जैसे समास को प्रयुक्त करता है। साथही अन्नदा-मङ्गल के एक छन्द को देखियेः—

जय शिवेश शङ्कर, वृषध्वजेश्वर, मृगाङ्क-शेखर, दिगम्बर।
जय श्मशाननाटक, विषाणवादक, हुताश-भालक महत्तर॥
जय सुरारिनाशन, वृषेश-वाहन, भुजङ्ग-भूषण, जटाधर।
जय त्रिलोककारक, त्रिलोकपालक, त्रिलोकनाशक, महेश्वर॥

इसे देवनागरी अक्षरों में लिखने से संसार के सभी संस्कृत के पण्डित संस्कृत का ही एक श्लोक समझेंगे। हाँ इतिहास स्वयं परिवर्त्तित होता है; इस नीति से हम आज भी देखते हैं कि नूतन पथिक इस संस्कृत के झङ्कार से भाषा को मुक्त कर रहे हैं; पर देखना चाहिये, बँगला साहित्य ऐसा संस्कृत-मय क्यों हो उठा?

बौद्ध-धर्म्म के पतन के उपरान्त जब हिन्दू-जाग्रति हुई, उस समय पौराणिक धर्म्म को प्रचार करने के लिये सुधारकों ने बहुत-सी नयी-नयी युक्तियाँ निकालीं। ग्रामीणों में पौराणिक धर्म्म के प्रचार के लिए यात्रा, कथा, पाठ और वैष्णवों के कीर्त्तन आदि जारी किये गये। और क्योंकि ये सभी संस्कृत ग्रन्थों से लिये गये, इस कारण संस्कृत के बहुत से शब्द प्रचलित होगये और इसी प्रकार नये-नये शब्द प्रतिदिन भाषा में भरते गये।

ये शब्द ग्रामीणों को दुर्बोध्य हुए,ऐसा नहीं। यात्रा के समय सीधे-सादे देहाती बिना कठिनाई के "नीरद-वरण, नवघनश्याम, निकुञ्जकानन, मरालगामिनी, गजपति-गति, अकलङ्क-विधु" आदि जैसे शब्द समझते जाते और कृत्तिवास के रामायण और काशीदास के महाभारत,जो सारे-के सारे देहाती पढ़ा करते, "निष्कलङ्क, विधुमुखी पीनघनस्तनी" आदि पाण्डित्यपूर्ण शब्दों से उन्हें चकित नहीं कर देते।

बँगला क्रिया बड़ी आसानी से प्राकृत से निष्पन्न हो जाती है। प्राकृत "होइ, पड़इ, किनइ, करइ, बोलइ, बुज्झ, चिन, जान, लग आदि से सुगमता-पूर्वक थोड़े परिवर्तन से हय, पड़े, केना, करे, बले, बुझा, चेना, जाना, लागा आदि बँगला-क्रियायें बनाई जा सकती हैं। प्राकृत 'अच्छि' आछि और आछे में परिवर्त्तित होकर दूसरी क्रियायों से मिलकर वर्त्तमान कालिक क्रियायें बनती हैं। कारियाछे, करेछे, कच्छे इसीतरह बनते हैं। संस्कृत-आसीत्' बङ्गला में आछिल' होकर अतीतकाल की क्रियायें बनाती हैं—यथा करिया + आछिल = करियाछिल इत्यादि। बङ्गाल के पिछड़े हुए देहातों में तो अभी भी वे भिन्नही बोली जाती हैं यथा—करिते आछे।

बङ्गाल में मुसलमानों के बस जाने से बहुत से फ़ारसी और अरबी के शब्द बङ्गाल की बोल-चाल की भाषा में मिल गये। दरबार की भाषा में हिन्दुओं के राष्ट्रीय पतन के साथ-साथ अरबी, फ़ारसी शब्दों का

बाहुल्य होगया। अमीरी के सारे पदार्थों के अरबी, फारसी के नाम पड़ गये।

इस प्रकार हिन्दुओं के "धर्म्माधिकारी" 'निशानाथ" 'पात्र' और 'सेना' आदि के बदले आगये 'काजि' 'कोटाल' 'उजिर' 'पाइक' इत्यादि। 'नगर' के स्थान में 'शहर' 'भूम' और 'भूमा' के बदले 'जमि' और 'जमिदार' आगये। इसी प्रकार अट्टालिका के स्थान पर 'एमारत' शब्द का प्रचार होगया।

पर बोलचाल की भाषा में इन विदेशी शब्दों का बाहुल्य होने पर भी साहित्यिक अपनी सभ्यता के गौरव से साहित्य-क्षेत्र में इन शब्दों के उपयोग करने को तैयार नहीं हुए। और क्योंकि उस काल के सारे ग्रन्थ प्रायः धार्मिक ही थे, लिखित भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता अक्षुण्ण रही।

संस्कृत शब्दों के प्रचार के साथ-साथ शब्दों के विवरण को भी संस्कृत व्याकरण के अनुकूल बनाये जाने की चेष्टा होने लगी। अभी तक 'काज', 'सोना', 'कान', 'सादा' आदि शब्द जो संस्कृत के कार्य्य, स्वर्ण, कर्ण, श्वेत' आदि से निकले हैं, प्रकृत रूप में बोले जाते हैं, पर कितने ही शब्द, जो कभी प्रचलित थे अब लुप्त हो गये हैं।

हिन्दी और बँगला

वैष्णव-साहित्य ने बँगला में बहुत से हिन्दी-शब्दों का समावेश कर दिया। वास्तव में कितनेही वैष्णव-गान ब्रजभाषा और मैथिली में बने थे। मैथिली भाषा का जो हिन्दी का एक रूप है, बँगला पर अमिट प्रभाव है। विद्यापति बँगला के कवियों में भी गिने जाते हैं।

वृन्दावन में बोली जानेवाली ब्रज-भाषा को कृष्ण-भक्त वैष्णवों ने धार्मिक उत्साह के कारण अपने गान और कीर्त्तन में बहुत प्रयोग करना आरम्भ किया। पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी में हिन्दी का ही प्रभाव था कि इसमें बङ्गला भाषा में 'बहिन', 'झुतिल', 'मैल', बहुँतर (बहुत), आये

आदि शब्द प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। "परदेश को लागिया" 'जल को लागिया' आदि शब्द भी उसी प्रकार हिन्दी भाषा के हैं। कभी-कभी तो यात्रा आदि में कोई-कोई पात्र लगभग हिन्दी ही में बातचीत करता है। यहाँ एक उद्धरण है—

जमादार—तोमरा कोन लोक हे ? महाराज का नगर में एत्ता रात में झूमझाम किया ?

यात्रावाला—हे, आमरा यात्रावाला गायन हे। आरे भाइ, तोम लोक कोन् हे।

जमादार—आरे हाम् महाराज का जमादार हे।

यात्रावाला—आरे रात में कहाँ चलते हे ?

जमादार—आरे हाम् कालुआ हाड़ी बोलाने को आने चलता है।

(कलुआ हाड़ो का गान)

मेरा कोन् बोला हे चिन्ते नारि, सारा रोज़ हुजूर मे दिये हाजिरि।
झाड़ू भो दिया, साफ् भि किया, फेर कित्तरे बोलाते हे बुझते नारि।

वैष्णव-धर्म्म के बड़े-बड़े आचार्य्य वृन्दावन में निवास करते थे। इस प्रकार बङ्गाल और वृन्दावन के बीच बराबर सम्पर्क हुआ करता था। इसो कारण हिन्दो के बहुत से शब्द बँगला में मिल गये। विद्यापति के गान की पद-कर्त्ता लोग बड़ो प्रशंसा करते और उन्होंने भी मैथिल कवि की नक़ल करना प्रारम्भ किया। फल यह हुआ कि व्रजभाषा के बहुत से शब्द बँगला पदों में स्थान पाने लगे। और भी, वैष्णव अपने धर्म्म को प्रचार करने के लिये जब भारत के भिन्न भागों की ओर चले तो उन्हें कितनी ही भाषाओं का सामना करना पड़ा। हिन्दी सारे भारतवर्ष में समझो जाती थी। इस कारण वैष्णवों ने धर्म्म-प्रचार के लिये इस सुगम माध्यम को पाकर लोगों को आसानी से समझाने के लिये अपनो भाषा में बहुत से हिन्दी के शब्द भर लिये। इस प्रकार बँगला लिखनेवाले

वैष्णवों ने भी 'कबहुँ, तबहुँ, हइलु', कँहां, ताहाँ, बिझुरिल आदि हिन्दी-शब्द प्रयुक्त किये । ब्रजभाषा का कहना ही क्या ?

वैष्णव और बँगला

वैष्णवों का प्रभाव बँगला भाषा पर बहुत अधिक पड़ा है । वैष्णव-साहित्य का क्षेत्र बहुत प्रशस्त और व्यापक है और उसमें कविता कुछ ऐसी उत्तम कोटि की है कि बँगला भाषा उससे गौरवान्वित हो सकती है । इस साहित्य ने केवल धार्मिकता ही का प्रचार नहीं किया, भाषा को भी अपरूप सौन्दर्य्य से भूषित कर उसे परिवर्द्धित किया । वैष्णवों के पहले जो कवि और लेखक हो गये थे, वे अधिक सम्बन्ध रखते थे पौराणिक चरित्रों और कथाओं से । पर वैष्णव-साहित्य जाति का साहित्य है । अनुर्वर तर्क और न्याय से भरे दर्शन-शास्त्र से तङ्ग होकर लोगों ने एक प्रेममय ईश्वर की सृष्टि की और उसकी भक्ति ही सबसे बड़ा धर्म्म समझा गई । पौराणिक जाग्रति ने बहुत बड़ा काम किया था; पर क्रमशः जाति-बन्धन को दृढ़ होते देख तथा उच्च जीवन से वञ्चित हो निम्न श्रेणी के लोगों ने इन सारे कुसंस्कारों से मुक्त होना चाहा । चैतन्यदेव को लोगों ने अपना उद्धारक पाया । चैतन्य और उनके अनुयायियों ने जो क्रान्ति ला दी थी वह बङ्गाल के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करने लगी । जाड़े में प्रतिदिन सवेरे बङ्गाल का प्रत्येक गाँव वैरागी वैष्णवों के कीर्त्तन से गूँज उठता, जो राजा से लेकर रङ्क तक सभी को नव दिवस के प्रभात में जाग्रत होने की प्रेरणा करता । वैष्णवों के प्रभाव से न शाक्त बचे और न शैव । सभी पर उनका प्रभाव पड़ गया ।

पौराणिक जाग्रति के समय भी बँगला-भाषा उस अवस्था पर न पहुँची थी कि लोग बिना लघुता प्रदर्शन किये उसमें लिखते । संस्कृत ग्रन्थों को बङ्गला में अनुवाद करनेवालों के प्रयत्न भिन्न-भिन्न प्रणाली में काम कर रहे थे और साहित्यिक दृष्टि से बड़े उत्कृष्ट ग्रन्थ बन भी चुके

थे; जिनमें पांडित्य और धैर्य्य का अपरूप प्रदर्शन हुआ था। परन्तु लेखक देवी-देवताओं के आज्ञानुसार अपने ग्रन्थ की रचना करते थे। संक्षेप में, लेखक को सर्वदा आशङ्का बनी रहती थी कि न जाने लोग अनादृत बँगला-भाषा में उनके लेखों को किस दृष्टि से देखेंगे।

वैष्णव-साहित्य इन अमूलक आशङ्काओं से सर्वथा मुक्त होकर आया और उसने लोगों को बँगला-भाषा को अपनाने के लिये नैतिक बल दिया। बँगला-भाषा उनके लिये पैशाची भाषा न थी। जिस भाषा में चैतन्यदेव ने अपने को व्यक्त किया, जिस भाषा में स्वच्छन्द भाव से चण्डिदास ने गाया था, वह उनके लिये पवित्र थी। श्रीनिवास आचार्य्य के पदामृत समुद्र में और कृष्णदास कविराज के चैतन्य-चरितामृत में संस्कृत में टिप्पणियाँ दी हुई हैं; और नरहरि चक्रवर्ती ने प्राचीन बँगला-कवियों की उक्तियाँ प्रमाण-स्वरूप उद्धृत की हैं। इस प्रकार बँगला को वह पद मिल गया, जो बौद्धों के यहाँ पाली को था। कृष्णदास कविराज जैसे पण्डित ने वेदान्त-दर्शन जैसे गहन विषय को बँगला में व्यक्त करना कुछ हेय न माना।

वैष्णव-धर्म्म के कारण जनता में शिक्षा का अच्छा प्रचार हो गया। ब्राह्मण ही नहीं, निम्नवर्ण के लोग भो संस्कृत शिक्षा प्रचुर परिमाण में पाने लगे। इसका प्रमाण उस युग की सामाजिक दशा का चित्रण करने वाले मुकुन्दराम आदि कवियों की कृतियों में बहुलता से मिलता है। वैष्णवों के द्वारा स्थापित पाठशालाओं में जाति-पाँति की कोई परवा नहीं की जाती थी और सभी समान भाव से शिक्षा पा सकते थे।

१६वीं सदी में वैष्णव-सम्प्रदाय के बाहर बँगला-भाषा केवल नीच जाति के लोगों में पढ़ी जातो थी। वैष्णवों की बहुत-सी हस्तलिखित पुस्तकें नीच वर्णों ही के घर में पायी गई हैं। वे पढ़-लिख भी सकते थे। पर भद्र लोगों के यहाँ अभीतक संस्कृत ग्रन्थों ही का आदर था। किन्तु पढ़े-लिखे वैष्णवों के घरों में बँगला और संस्कृत की प्रतियाँ साथ-साथ

२

मिली हैं। उनके लिये वैष्णव-धर्म्म-सम्बन्धी बँगला-ग्रन्थ संस्कृत धर्म्म-ग्रन्थों से किसी प्रकार कम नहीं।

पर चैतन्यदेव के बाद कृत्रिमता आने लगी और भाषा सारहीन संस्कृत पदों से भर गई। चैतन्यदेव की मृत्यु के बाद से बङ्गाल में अँग्रेज़ों का आधिपत्य स्थापित होने तक भाषा के विषय में कुछ भी वर्णनीय विषय नहीं है। यूरोपियनों के आगमन से फिर भी कृत्रिमता की रात्रि हटने लगी और बँगला-भाषा अपनी सङ्कीर्ण कोठरी से निकल, संसार के साहित्य से परिचित होने लगी।

यूरोपीय (प्रधानतः अँग्रेज़) और बङ्गला

बङ्गाल का हृदय ग्रामों में था। लोग घर ही से सन्तुष्ट थे, बाहर की उन्हें कोई परवा न थी। वे कमाते, गाते, उपवास और व्रत करते और गृहस्थी के सुख में निमग्न थे। कोयल गाती, बसन्त का आगमन होता, लोग ख़ुशी-ख़ुशी गान गा लेते। पण्डित तर्क-शास्त्र की सूक्ष्मताएँ और दर्शन की गुत्थियाँ सुलझाकर मस्तिष्क को अपने ढंग से सूक्ष्म कर लेते।

पर इस ग्रामीण जीवन में सहसा अशान्ति उठी। लोगों ने उदासीनता से सुना, मुर्शिदाबाद के बादशाह को अँग्रेज़ों ने प्लासी के युद्ध में हराकर निकाल भगाया। फिर वे शान्तिपूर्व्वक उसे भूल गये। पर अब लोगों ने आश्चर्य्य से देखा कि ख्रीष्टीय पादरी धर्म-प्रेम के कारण अपने ऊपर लोगों की शिक्षा का भार उठाकर जीवन-उत्सर्ग करने को उनके बीच आये हैं; लोगों के हृदय प्रेम से द्रवित हो उठे और उन निःस्वार्थ पादरियों का लोगों ने दिल खोलकर स्वागत किया। पाश्चात्य का ज्ञान-भाण्डार भारतीयों के सम्मुख खोल दिया गया और उसका प्रभाव बँगला पर स्पष्ट रूप से पड़ा।

पादरियों में डाक्टर क्रेरे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने ही

अपने त्यागमय जीवन से विदेशियों को बँगला-भाषा को प्यार करना सिखलाया। इन खीष्टीय पादरियों का, विशेषकर डाक्टर केरे का, बङ्गालियों के लिये सच्चा प्रेम देख बङ्गाल को सन्तान खीष्ट-धर्म्म को ओर फिरने लगी। के० एम० बनर्जी, लालबिहारी दे, माइकेल मधुसूदनदत्त जैसे लोगों ने खीष्ट-धर्म्म स्वीकार कर लिया।

पाश्चात्य धर्म्म की प्रभा ने लोगों में यह विचार फैला दिया कि हिन्दू-धर्म्म में कुछ भी सार नहीं। बङ्गाल के शिक्षित नवयुवकों का ध्यान चैतन्य के दिव्य जीवन, चण्डिदास के मधुर सङ्गीत और वैष्णवों के स्वर्गीय गान की ओर से बिल्कुल हट गया। राधा और कृष्ण के गीत घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे और समूची हिन्दू-संस्कृति हेय हो उठी। इन परिवर्त्तनों का कारण था खीष्टीय पादरियों का त्यागमय जीवन। सच्ची लगन से वे हमारे देशवासियों को अपने आदर्श के अनुसार शिक्षा देना चाहते थे। सभी विषयों में बँगला भाषा में पुस्तकें लिखी जाने लगीं और बँगला-भाषा अदृष्ट-पूर्व्व वेग से परिवर्द्धित और उन्नत होने लगी।

डाक्टर केरे ने बाइबिल के कितने ही अनुवादों के सिवा और भी निम्न-लिखित ग्रन्थ लिखे—

(१) बँगला कोष, तीन खण्डों में।
(२) बँगला व्याकरण
(३) कथोपकथन
(४) इतिहास-माला।

डाक्टर केरे ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने बँगला-भाषा में पुनः स्वाभाविकता लाने का प्रचार किया। उनकी ही शैली का अनुकरण कर टेकचाँद ने अपनी उत्कृष्ट पुस्तक 'आलालेर घरेर दुलाल' बँगला में लिखी। केरे केवल लोगों को शिक्षा देना ही नहीं, बँगला-भाषा को परिवर्द्धित करना भी चाहते थे। उनके कथोपकथन की शैली देख बंगाली लेखक भी

प्रचलित बोलचाल को भाषा लिखने लगे। बङ्किमचन्द्र और दीनबन्धु मित्र ने भी सफलतापूर्व्वक उसकी शैली का अनुकरण किया। यहाँ केरे साहब की इतिहास-माला का एक अंश उद्धृत किया जाता है:—

एक चोर कोन गृहस्थेर कतकगुलि द्रव्य चुरि करिया ग्रामोपान्ते जाइते छिल। सेइ समये एक कृषक ताहाके देखिया कहिल—"तुइ ये लोकेर द्रव्यादि लइया याइतेछिब ताहाके फिरियादे, नतु बा राज-निकट दण्ड हइबे।' चोर उत्तर करिल, 'तुई आपनोर कर्म्म कर, अतिरिक्त कहिले राजार अग्रे तोर प्राणदण्ड हइबे।' कृषक इहा शुनिया क्रुद्ध हइया द्रव्येर सहित चोर के धरिया राजार समीपे समस्त गिया निवेदन करिल। अनन्तर नृपति चोर के आसिया जिज्ञासा करिलो, स उत्तर करिल, 'हे महाराज, आमि देखिलाम ये एइ लोके ऐ सकल द्रव्य लइया वन मध्ये बसिया रहियाछे। ताहाते आमि कहिलाम ये तुमि चोर हइबा। याहार द्रव्य आनियाछ ताहाके दिया आइस् नतु बा तोमाके महाराजेर निकट लइया जाइब। ताहाते इनि आमाके कटुवाक्ये कहिले, आमि इहाके एखाने धरिया आनिलाम। इहार विचार करिते आज्ञा हउक।

तदनन्तर राजा कहिलेन, "उहार केह साक्षी आछे?" ताहाते उत्तरे कहिला, 'साक्षी केह नाइ'। अनन्तर भूपति भृत्येरदिग के आज्ञा करिलेन ये एइ दुइ जनके लइया नदी तीरे दुइ शवेर सहित पृथक पृथक दाह कर इहाते विलम्ब नाहय। पश्चात निर्जने ऐ दासेर दिगके डाकिया कहिलेन "एइ दुइ जनके दुइ शवेर सहित पृथक-पृथक बन्धन करिया गुप्त वेशे निकटे थाकिया उभयेर कथोपकथन शुनिया आमाके कहिबा।"

इस उद्धरण से केरे का बँगला-भाषा पर अधिकार विदित होगा।

इस उद्धरण से प्रत्यक्ष हो जायगा कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के लिये लिखी गई पाठ्य पुस्तकों में डाक्टर केरे ने कैसी सरल और सुगम भाषा का व्यवहार कराया। उसने दूसरों को भी बँगला को पूरित करने के

लिये उत्साहित किया। ठाकुर का बँगला अँग्रेज़ी-कोष उसी के उत्साह से सम्पादित हुआ। उन्होंने राम राम वसु और राजीवलोचन को क्रमशः प्रतापादित्य-चरित और कृष्ण-चरित लिखने को नियुक्त किया।

यूरोपीय लेखकों के द्वारा लिखी हुई बँगला पुस्तकें बहुत हैं और उनका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। खीष्टीयधर्म्म-सम्बन्धी पुस्तकें और बाइबिल के अनुवाद तो कितने हुए ही; गणित, कोष, नीति भूगोल, व्याकरण, इतिहास, जीवनी, वैद्यक, प्रकृति-विज्ञान आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर दर्जनों अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिखी गईं।

'समाचार-दर्पण', 'दिग्दर्शन', 'सत्य-प्रदीप' आदि पत्रिकायें प्रकाशित होने लगीं।

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज ने तो बँगला को बड़ी ही सेवा की। यहाँ के पंडितों ने बँगला गद्य में बहुत-सी पुस्तकें लिखीं। पंडितों में मृत्युञ्जय की विद्वत्ता प्रकाण्ड थी। इसने पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लिखे। यथा—प्रबोध-चन्द्रिका, राजावली, बत्रिससिंहासन, हितोपदेश का बँगला अनुवाद आदि। यूरोप के साथ प्रथम संसर्ग का फल यह हुआ कि बंगालियों को एक मानसिक उत्साह मिला और के०एम० बनर्जी, राजेन्द्रलाल मित्र आदि प्रकाण्ड लेखकों से बँगला-साहित्य की उन्नति होने लगी।

१६ वीं सदी के बीच से यूरोपियन बँगला भाषा में कम दिलचस्पी लेने लगे; पर अब देशी लेखक बँगला को उत्कृष्ट बनाने का भार उठाने के योग्य हो गये थे।

हिन्दी-गद्य की नाईं बँगला गद्य की भी साहित्यिक प्रगति अंग्रेज़ी के संसर्ग का फल है। हाँ, घर में लोग कविता में बातचीत न कर गद्य ही बोलते होंगे; पर बँगला गद्य को साहित्य का एक प्रधान अङ्ग मानकर कर्षण करने की चेष्टा नहीं की गई थी।

बंगाली विजित जाति थे। शासन में उनका कोई अधिकार न था। लोग गाँवों में देहाती जीवन बिताते थे। ग्रामों के बाहर संसार से

उनका कोई सम्बन्ध न था। ऐसी दशा में लोग क्यों गद्य को विकसित करने की चेष्टा करें? जब उन्हें व्यापार के लिये नगरों में अथवा मुक़दमे आदि के लिये अदालतों में जाना पड़ता, उन्हें मिश्रित लोगों से व्यवहार करना पड़ता जो शुद्ध बँगला को माध्यम मानते ही न थे। पत्रों तथा दस्तावेज़ों में उन्हें एक मिश्रित भाषा का व्यवहार करना पड़ता था, जिसमें अरबी, फ़ारसो ही नहीं, पीछे चलकर पुर्तगीज़ शब्दों की भी भरमार रहती। क्योंकि तीन सौ वर्ष पूर्व पुर्तगीज़ विदेशियों के लिये Lingua Franca सी बन गई थी।

इस प्रकार जिस गद्य का बंगाली व्यापार आदि में व्यवहार करते थे, वह कितनी ही भिन्न-भिन्न भाषाओं की खिचड़ी था। स्वाभाविक ही था कि शुद्ध बँगला गद्य विकसित न हो सका। अदालतों और राजसभाओं में मुसलमान इसे मानते ही न थे, और न बंगालियों को व्यापार ही में बँगला को प्रधानता देने की शक्ति थी। जब तक मुसलमानों का एकाधिपत्य रहा, अरबी और फ़ारसो का आदर था और उनसे मिली हुई बँगला भाषा को लोग गौरव की दृष्टि से देखते थे।

वह गद्य किस प्रकार का था, यह अदालतों में प्रचलित दस्तावेजों की भाषा से विदित होगा। अभी भी अदालतों में फ़ारसी अरबी का प्राधान्य है। उदाहरण-स्वरूप इन वाक्यों को देखिये—"टालमाटाले आदाय ना कराय" और "उआदा कार्त्तिक मासे टाका आदाय करिब" इत्यादि।

तत्कालीन पत्रों में भी उसी प्रकार विदेशी शब्दों की भरमार रहती थी। यहाँ एक पत्र की प्रतिलिपि दी जाती है—

"अतएव ए समये तुमि कमर बाँधिया आमार उद्धार करिते पार, तबेइ ये हउक, नचते आमार नाम लोप हइल, इहा मकर्रर, मकर्रर, जानिबे, नागादि उराभाद्र तथाकार रोयदाद समेत मजुमदारेर लिखन सम्बलित मनुष्य कासदे एथा पौंछे ताहा करिबा, ए विषये एक पत्र लच्च हइले अधिक जानिबा"। यह महाराज नन्दकुमार की लिपि है।

आधुनिक काल में बँगला गद्य की उन्नति के प्रधान कारण ये हैं—

(१) पादरियों तथा सरकार का, मुख्यतः बृटिश शासन के प्रारम्भ-काल में, जनता में शिक्षा-प्रचार के लिये महान् प्रयत्न।

(२) यातायात की रेल, पोस्ट आदि बन जाने के कारण सुविधा, जिससे लोगों के संमिश्रण में सहायता मिली। इस प्रकार स्थानीय भाषाओं की विचित्रता लोप होती गई और भाषा में एकरूपता आती गई।

किन्तु यद्यपि परिस्थिति ने बृटिश के आगमन के पूर्व्व गद्य के विकास में रुकावटें डालीं, प्राचीन बँगला गद्य की बहुतेरी पुस्तकें प्राप्य हैं जिनसे पता लगता है कि यद्यपि साहित्यिक उत्कर्ष गद्य में न था, पर गद्य का बिल्कुल अभाव भी न था। कुछ पुस्तकें ये हैं—

(१) 'शून्यपुराण' जो दसवीं सदी में बना था। इसमें कुछ गद्य के अंश हैं जो छोटी-छोटी पहेलियों जैसे दुर्बोध्य हैं। यहाँ एक उदाहरण यह है—

"पच्चिम दुआरे के पण्डित। सेताइ ये चारि सअ गति आनि लेख्या॥ चन्द्र कोढाल ये बसुया घट दासी दूता वाहि डराइ तुम्माक देखिया। चित्रगुप्त पाँजि परिमाण कर ए दूत जमर विद्यमाने॥"

(२) 'देवदामर तन्त्र' के एक गद्य अंश का उद्धहरण यह है:—

"गोंसाइ चेला सहस्र कामिनी डोमा, चाँडाल पाइ मुइ आकाटन विष हाते ए गुआ पान खाइया'। इसका अर्थ कुछ समझा नहीं जाता।

(३) 'चैत्य-रूप-प्राप्ति' नाम की एक छोटी गद्य पुस्तिका जो चण्डि-दासकृत बतलाई जाती है। शायद उसमें तांत्रिकों के मन्त्रों की व्याख्या है। आरम्भ के वाक्य ये हैं:—

"चैतन्य रूपेर राच अधरूप लाड़ि। रा अक्षरे राग लाड़ि। च अक्षरे चेतन लाड़ि। र एते च मिशाल। इवे एक अङ्गा लाड़ि। राग रति। लाड़िर नाम सुधा॥ सेइ लाड़ि सात इस प्रकार।"

सहजीया मत के मानने वाले कितने ही लेखकों ने छोटी-छोटी गद्य

की पुस्तकें लिखी हैं। २५,२६ पुस्तकों के नाम मिलते हैं जो या तो सर्वथा गद्यमय हैं, या पद्य-गद्य-मय। इन पुस्तकों में से एक का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

"आदिशूर राजा बड़ प्रतापयुक्त राजा। आदिशूर राजा पञ्च गोत्रेर पञ्च ब्राह्मण आनयन करिलेन—यथा, नारायणस्तु शाण्डिल्यः सुषेणः कश्यपस्तथा, वात्स्यः धराधरो देवः भारद्वाजस्तु गौतमः। सावर्ण स्तु पराशरः—एइ पञ्च गोत्रे पंच ब्राह्मण आनयन करया गौड़मण्डल पवित्र करया आदिशूर राजार स्वर्गारोहण।"

'भाषा-परिच्छेद' तथा 'व्यवस्था-तत्त्व' नामक दो ग्रन्थों के बँगला अनुवाद मिले हैं। इससे पता लगता है कि कम से कम २०० वर्ष पूर्व्व बँगला गद्य दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन में प्रयुक्त होता था। भाषा परिच्छेद का एक उद्धरण है:—

"गौतम मुनि के शिष्य सकले जिज्ञासा करिलेन, आमादिगेर मुक्ति कि प्रकारे हय? ताहा कृपा करिया बलह। ताहाते गौतम उत्तर करितेछेन। तावत् पदार्थ जानिलेइ मुक्ति हय। ताहाते शिष्येर सकले जिज्ञासा करिले पदार्थ कतो? ताहाते गौतम कहितेछेन 'पदार्थ सप्त प्रकार। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव। ताहार मध्ये द्रव्य नय प्रकार।"

इन पुस्तकों की भाषा बड़ी सरल है। वाक्य छोटे और समास-हीन शब्दों से बने होते हैं। इस शैली का उदाहरणस्वरूप यह उद्धरण नीचे दिया जाता है। यह ४०० वर्ष पूर्व्व रूप गोस्वामी-कृत कारिका से लिया गया है:—

"श्री-श्री राधाविनोद राय। अथ वस्तुनिर्णय। प्रथम श्रीकृष्णेर गुण-निर्णय। शब्दगुण, गन्धगुण, रूपगुण, स्पर्शगुण, रसगुण, एइ पाँच गुण। एइ पञ्चगुण श्रीमती राधिकाते ओ बसे। शब्दगुण कर्णे, गन्धगुण नासाते, रूपगुण नेत्रे, रसगुण अधरे, ओ स्पर्शगुण अङ्गे। एइ पञ्च गुणे पूर्व्व रागेर उदय।"

१८ वीं शताब्दी के मध्य में लिखे हुए 'कामिनी कुमार' काव्य में एक अंश सरल गद्य में है। तत्कालीन पाण्डित्य और आडम्बर से भरी भाषा के विरुद्ध यह अंश कितना सरल और स्वाभाविक है:—

"सदागर अतिकातरे एइ रूप पुनः पुनः शपथ कराते सुन्दरी ईषत् हास्यपूर्व्वक सोना के सम्बोधन करिया कहिलेक। ओहे चोपदार एइ चोर एतादृश कटु दिव्य बारंबार करिछे ओ नितान्त शरणागत हइया आश्रय याञ्चा करितेछे, अतएव शरणागते निग्रह करा उचित नहे वरं निराश्रयेर आश्रय देओया वेदविधि सम्मत बटे। आर विशेषतः आमादेर अधिक भृत्य संगेते नाइ अतएव अन्य कर्म उहा हइते यत हउक, आर ना हउक, किन्तु एक आध छिलिम तामाक चाहिलेओत साजिया दिते पारिबेक। ताहार आरतो कोन सन्देह नाइ, तबु ये अनेक उपकार। सोना कहिले हाँ थाके थाक। कामिनी एइ रूप सोनार सहित परामर्श करिया सदागर के कहितेछेन। "शुन चोर, तुमि ये अकर्म करियाछ ताहार उपयुक्त फल तोमाके देओया उचित, किन्तु तोमार नितान्त न्यूनता ओ विनये काकुतिमिनति एवं कठिन शपथे ये यात्रा क्षमा करिलाम। एक्षणे आमार सर्व्वदा आज्ञाकारी हइया थाकिते हइबेक। आमि यखन याहा कहिब तत्क्षणात् सेइ कार्म्म करिबे ताहाते अन्यथा करिले तहण्डे राजार निकट प्रेरण करिबे, ताहार आर कथा नाइ। किन्तु यदि कर्म्मेर द्वारा यदि आमाके सन्तोष करिते पारह, तबे तोमार पक्षे शेष विवेचना करा याइबेक।" सदागर एइ कथा शुनिया मने मने विवेचना करिलेक, ए राम बाँचा गेल, आर भय नाइ। परे कृताञ्जलिपूर्व्वक कामिनीर सम्मुखे कहितेछे, महाशय, ये घोर दाय हइबे ए दासेर प्राणरक्षा करिलेन इहातेइ बोध हय आपनि जन्मान्तरे ए दीनेर केह छिलेन, ताहार कोन सन्देह नाइ, नतुवा एमत उपकार पर परेर ये तो कखन करे ना। से याहा हउक आजि हइते कर्त्ता तुमि आमार धरम बाप हइले, यखन ये आज्ञा करिबेन एइ भृत्य कृतसाध्य प्राणपणे

पालन करिब। कामिनी कहिलेक, ओहे चोर, तुमि आमार आर कि कर्म्मे करिबेक, केवल हुकार कर्म्मे सर्व्वदा नियुक्त थाकह। आर एक कथा तोमाके चोर चोर बलिया सर्व्वदा वा काहाँ तक डाकि, आजि हइते आमि तोमार नाम रामवल्लभ राखिलाम।......"

प्राचीन गद्य के वर्णन को शेष करने के पूर्व्व कुछ बातें और भी कहनी हैं। प्राचीन बँगला गद्य मुख्यतः दार्शनिक और धार्मिक विषयों में व्यवहृत होता था। संस्कृत तर्क-ग्रन्थ-भाषा-परिच्छेद का सरल बँगला गद्य में अनुवाद एक बड़ा प्रयत्न था। उसी प्रकार प्राचीन हिन्दू क़ानूनों का भाषानुवाद भी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि प्राचीन लेखक बँगला भाषा के गद्य की ओर विशेष ध्यान न देते थे; पर अपने विशाल कविता-साहित्य की उन्नति के कारण गहन विषयों के प्रतिपादन में भी बँगला गद्य आसानी से व्यवहृत हो सकता था। यही कारण है कि गत ६०, ७० वर्षों में बँगला गद्य इतना उन्नत हो गया। साहित्यिक भाषा पहले ही से पूरी तरह विकसित हो चुकी थी; अतएव गद्य को इस परि-पक्वावस्था में पहुँचाने के लिये किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं हुई।

किन्तु प्राचीन साहित्य के गौरव को प्रदर्शन करने के लिये जितने ही गद्य के उदाहरण हम खोद निकालें, पर यह मानना ही पड़ेगा कि वे भाषा और साहित्य के इतिहास में बिलकुल नगण्य हैं। बृटिश शासन में गद्य की जैसी उन्नति हुई है उसके विचार से प्राचीन गद्य तो उल्लेखनीय भी नहीं है।

आधुनिक बँगला गद्य के जन्मदाता डाक्टर केरे का नाम लिखा जा चुका है। उनके लेख का एक उदाहरण भी दे दिया गया है। डाक्टर केरे और उनके साथियों ने बँगला भाषा में भिन्न-भिन्न विषयों पर पुस्तकें लिख बँगला-गद्य को खूब परिवर्द्धित किया। इन ख्रीष्टीय पादरियों का बँगला गद्य बड़ा सरल होता था और इन्हीं ने शायद

सरलता और स्वाभाविकता का पहले-पहल बँगला में समावेश किया जो आज शरच्चन्द्र जैसे लेखकों के हाथ इस प्रकार शोभित हो रही है।

पर इन अँग्रेज़ पादरियों के प्रभाव में न आने वाले फ़ारसी तथा संस्कृत विद्वानों ने जो शैली गद्य के लिये बनाई, वह बड़ी ही आडम्बर-पूर्ण और लदी हुई-सी थी। यहाँ एक राजा से दूसरे राजा को लिखी गई एक चिट्ठी की प्रतिलिपि है:—

"राजाधिराज हिन्दुस्थानमाझ याहा दर्पमय क्षमा अतिशय सरलान्तःकरण रूप हेमवर्ण शक्तिवन्त धीर अति महावीर आत्मलोकपाल वैरीमर्द्दकाल श्रीमान् गुणधर महाराज राजेश्वर राजचक्रवर्तीर साहाय्य लिपिलेखा याइतेछे।"

परन्तु इस आडम्बर से यूरोपीय लेखकों ने भाषा को मुक्त कर दिया और पंडितों को भी घर की बोलचाल वाली भाषा में लिखने को उत्साहित किया। संस्कृत के प्रकांड विद्वान् मृत्युञ्जय जहाँ:—

"उच्छलच्छिकरात्यच्छे निर्झरान्तकणाच्छन्न हइया आसितेछे" लिख सकते थे वहाँ उनकी भाषा नीचे के उद्धरण जैसी बिल्कुल सीधी-सादी भी हो सकती थी:—

"स्त्री कहिल गुड़ हइलेइ कि राँधा हय? तैल नाइ, लून नाइ, चाउल नाइ, तरकारी पाति किछुइ नाइ। काठगुलि सकलि भिजा, वेसातिबा कि रूपे हबे। ......कुटना बा के कुटिबे? बाटनाला के बाटिबे? तत्पति कहिल, आज कि घरे किछुइ नाइ देख देखि खुद कुँड़ा यदि किछु थाके, तबे तार पिठा कर एइ गुड़ दिया खाइब। इहाते ताहार स्त्री कहिल बटे पिठा कर बुझि बड़ सहज? नाव ना पिठा आठा; येमन आठा लागिले शीघ्र छाड़ेना, तेमनि पिठार लेठा, बड़ लेठा शीघ्र छाड़ेना। कखनो तो राँधिया खाओ नाइ आर लोकदेर माउगेर तान माउग पाइया थाकिते, तबे जानिते।"

यूरोपीय लेखकों का बँगला मुहावरे में ग़लती करना कुछ असम्भव नहीं। परन्तु उनकी भाषा होती थी सरल, संयत और सीधी। देशी पंडितों को भी इसका अनुकरण करना पड़ा।

उस समय की भाषा में पांडित्य-पूर्ण दार्शनिक प्रश्नों का विचार अथवा रोटी बनाने के विषय में पति-पत्नी के वादविवाद का वर्णन होता था, इनके बीच में कुछ मध्यम विषय न था। पंडितों के बँगला-क्षेत्र में उतरने से एक फल तो यह हुआ कि बँगला भाषा की शैली व्याकरण के विचार से शुद्ध रूप पाने लगी। पंडित लोगों ने यूरोपीय लेखकों से उत्साहित हो बोलचाल की भाषा को अपनी प्रौढ़ और विज्ञ भाषा में व्यवहृत किया। पर उनकी भाषा पाण्डित्यपूर्ण संस्कृत तथा गँवारू बोली की खिचड़ी बन गई। इन पंडितों ने गद्य-शैली को उपयुक्त बनाने में बहुत बड़ी सफलता ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रबन्ध से पाई। विद्यासागर ने श्रुति-मधुर बड़े-बड़े समासों को गद्य में से घटा दिया और देहाती तथा गँवारू भाषा के मुहावरों को भी छाँट डाला। इस प्रकार भाषा सुसंस्कृत हुई। पर विद्यासागर की भाषा भी आजकल की भाषा से बहुत दूर थी। अभी भी संस्कृत शब्दों तथा समासों का बोलबाला न मिटा था। विद्यासागर के पूर्व भी बँगला गद्य का संशोधन होरहा था। इन संशोधकों में राजा राममोहनराय का नाम सर्व-प्रथम है। इनके पहले बँगला गद्य उतना प्रधान नहीं था। यूरोपियनों के उत्साह से बँगला गद्य में लेखन जारी होगया था। पर इस उत्साह का फल था बँगला में अनूदित ग्रन्थों की बाढ़ तथा स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों का निर्म्माण। साहित्यिक दृष्टि से भाषा की उनसे कोई बड़ी सेवा नहीं हुई। अनुवादों की उपयोगिता भी थी, पर आत्मा को जो मौलिक ग्रंथों से परितोष मिलता है वह उन में न था। मस्तिष्क के लिये उस समय की भाषा काफ़ी उपयुक्त थी, पर आत्मा को शान्ति देने के लिये नहीं। इसी समय राजा राममोहनराय का प्रादुर्भाव

हुआ और बँगला गद्य की गति पलट गई। अपनी अनुपम प्रतिभा के कारण राजा ने बँगला भाषा को महान् सत्य को व्यक्त करने के उपयुक्त बना दिया। उन्होंने वेदान्त आदि के विषय में बीसियों पुस्तकें लिखीं जो आज भी बँगला के गौरव हैं।

नीचे राममोहनराय के बँगला गद्य का उदाहरण दिया जाता है :—

"प्रथमतः एइ याहाके ब्रह्म जगत्कर्त्ता कहतिहो वाक्यमनेर अगोचर सुतरां ताहार उपासना असम्भव हयएइ निमित्त कोन रूपगुणविशिष्ट के जगतेर कर्त्ता जानिया उपासना ना करिले निर्वाह हइते पारे नाइ अतएव रूपगुणविशिष्टेर उपासना आवश्यक हय। इहार सामान्य उत्तर एइ। ये कोन व्यक्ति वाल्यकाले शत्रुग्रस्त एवं देशान्तर हइया आपनार पितार निरूपण किछु जाने नाई ए निमित्त से व्यक्ति युवा हइले परे ये कोन वस्तु सम्मुखे पाइबेक ताहाके पिता रूपे ग्रहण करिबेक एमन नहे वरंच सेइ व्यक्ति पितार उद्देश कोन क्रिया करिवार समये अथवा पितार मङ्गलकामना करिवार काले एइ कहे ये ये जन्मदाता ताहार श्रेयः हउक। सेइ मत एखाने जानिबे ये ब्रह्मेर स्वरूप ज्ञेय नहे किन्तु ताहार उपासना काले ताँहा के जगतेर स्रष्टा, पाता, संहर्त्ता इत्यादि विशेषणेर द्वारा लक्ष्य करिते हय ताहार कल्पना कोन नश्वर नामरूपे कि रूप करा जाइते पारे। सर्वदा ये सकल वस्तु ये मन चन्द्रसूर्य्यादि आमरा देखिओ ताहार द्वारा व्यवहार निष्पन्न करि ताहारो यथार्थ स्वरूप जानिते पारिना इहातेइ बुझिबे ये ईश्वर इंद्रियेर अगोचर ताहार स्वरूप कि रूपे जाना जाय किन्तु जगतेर नाना बिध रचनार एवं नियमेर दृष्टिते ताहार कर्तृत्व एवं नियन्तृत्व निश्चय हइल कृतकार्य्य हइयार सम्भव हय। सामान्य अवधाने निश्चय हय ये एइ दुर्गम्य नाना प्रकार रचना विशिष्ट जगतेर कर्त्ता इहा हइते व्यापक एवं अधिक शक्तिमान् अवश्य हइबेक इहार एक अंश किम्वा इहार व्याप्य कोन वस्तु इहार कर्त्ता कि युक्ति ते अङ्गीकार करा याय।"

—वेदान्तसार

राममोहनराय के उपरान्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर, अक्षयकुमार दत्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नीचे देवेन्द्रनाथ ठाकुर के आत्मचरित से एक उद्धरण दिया जाता है:—

"दिदिमा आमाके बड़ भालबासितेन। शैशवे ताँहा के व्यतीत आमिओ आर काहाके जानिताम ना। आमार शयन, उपवेशन, भोजन सकलई ताँहार निकट हइत। तिनि कालीघाटे याइतेन आमि ताँहार सहित याइताम। तिनि यखन आमा के फेले जगन्नाथ क्षेत्रे ओ वृन्दा-बने गियाछिलेन, तखन आमि बड़इ काँदिताम। धर्म्मे ताहार अत्यन्त निष्ठा छिल। तिनि प्रतिदिन अति प्रत्यूषे गङ्गास्नान करितेन। एवं प्रतिदिन शालग्रामेर जन्य स्वहस्ते पुष्पे माला गांथिया दितेन। कखनो, कखनो तिनि सङ्कल्प करिया उदयास्त साधन करितेन—सूर्य्योदय हइते सूर्य्यास्त पर्य्यन्त सूर्य्य के अर्घ्य दितेन। आमि ओ से समये छातेर ऊपरे रौद्रे ते ताँहार सङ्गे सङ्गे थाकिताम्, एवं सेइ सूर्य्य अर्घ्येर मन्त्र शुनिया शुनिया आमार अभ्यास हइया गेल, "जवाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिं। ध्वान्तारिं सर्व्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।' दिदिमा एक एक दिन हरिबासर करितेन, समस्त रात्रि कथा हइत एवं कीर्त्तन हइत ताहार शब्दे आमरा रात्रिते घुमाइते पारिताम न।"

इसी समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बँगला गद्य को संशोधित कर 'सीतारबनवास', 'शकुंतला' आदि पुस्तकें लिखीं। इनके गद्य का उदाहरण दिया जा चुका है।

इसी बीच टेकचन्द और अक्षयकुमारदत्त ने भी बँगला गद्य की सेवा करना आरम्भ किया। 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' में से उनके गद्य का एक उद्धरण नीचे दिया जाता है :—

"जलशून्य मरुभूमि ओ प्रीतिविहीन अन्तःकरण उभयइ तुल्य। उभयइ नीरस ओ निष्फल। किन्तु इहा आमादिगेर परम सौभाग्येर विषय एइ ये प्रीतिपूर्ण परमेश्वर मर्त्यलोके अपर्य्याप्त प्रेम वितरण करिया-

छेन। केह वा धनेर, केह वा मानेर, केह वा ज्ञानेर, केह वा यशेर एवं कोन-कोन भाग्यवान् व्यक्ति परमेश्वर प्रेमे मग्न हइया रहियाछेन। प्रीतिर पर आर पदार्थ नाइ। प्रीति ना थाकिले कोथाय वा सुगन्धमय पुष्पोद्यानेर मनोहर शोभा, कोथाय वा शुभ्रवर्णा सुधामयी पूर्णिमा निशिर सुशीतल निर्मल सुखकर ज्योति, कोथाय वा गुणवती पुण्यवती पतिप्रिया प्रियतमार पौर्णमासीतुल्य प्रेमोत्फुल्ल मनोहर आननसन्दर्शन ओ ताहार सहित सुधामय मधुर आलाप, कोथाय वा चित्रितपुत्तलिकातुल्य प्रफुल्ल कुसुम सदृश सहास्य शिशुगुलिर निष्कलङ्क मुखश्री, कोथाय वा परस्पर प्रीतियुक्त निष्पाप पुण्यशील परिवारेर आश्चर्य सुदृश्यता, कोथाय वा हृदयाधिक प्रणय पवित्र सुचरित्र मित्रेर स्वर्गोपम निरुपम सुखदायक सहवास, कोथाय वा रसार्द्रचित्त पदावलीर सरस लालित्य ओ अनुपम माधुर्य्य थाकित?"

गत पचास वर्षों में बँगला गद्य ने ऐसी उन्नति कर ली है कि आज उसके उपन्यासादि भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर पढ़े जारहे हैं। विश्वविद्यालय में बँगला को स्थान मिलने के कारण इसका साहित्य दिन दूनी और रात चौगुनी गति से बढ़ रहा है। यहाँ अत्याधुनिक लेखकों के गद्य के उदाहरण दिये जाते हैं। आधुनिक लेखकों में बङ्किमचन्द्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा शरच्चन्द्र चटर्जी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

रवीन्द्रनाथ का गद्य

"मानुष यदि केवलमात्र मानुषेर मध्येइ जन्मग्रहण करत, तबे लोकालयेइ मानुषेर एकमात्र मिलनेर क्षेत्र हत। किन्तु मानुषेर जन्म त केवल लोकालय नय, एइ विशाल विश्वे तार जन्म। विश्व ब्रह्माण्डेर संगे तार प्राणेर गम्भीर सम्बन्ध आछे। तार इन्द्रियबोधेर तारे-तारे प्रति मुहूर्त्ते विश्वेर स्पन्दन नाना रूपे रसे जेगे उठ्छे। विश्व प्रकृतिर काज आमादेर प्राणेर महले आपनिइ चल्छे। किन्तु मानुषेर प्रधान सृजनेर क्षेत्र तार चित्तमहले। एइ महले यदि द्वारखुले आमरा विश्व के आह्वान

करे ना निइ, तबे विश्वेर संगे आमादेर पूर्ण मिलन घटे ना। विश्व प्रकृतिर संगे आमादेर चित्तेर मिलनेर अभाव आमादेर मानव प्रकृतिर पक्षे एकटा प्रकाण्ड अभाव"।

(शारदोत्सव)

शरच्चन्द्र का गद्य

"स्वल्पतोया नदीर कतकटा अंश बोध करि ग्रामवासीरा परिष्कृत करियाछे। सम्मुखेर सेइ स्वच्छ, कालो अल्पपरिसर जलटुकुर उपर छीटर रेखाय चाँदेर आलो पड़ियाछे, संध्या-तारार आलो पड़िया झिक् झिक् करितेछे, येन कष्टि-पाथर घषिया स्याकरा सोनार दाम याचाइ करिते छे। काछे कोथाव बनेर मध्ये बोध करि अजस्र काठ-मल्लिका फुटियाछे; ताहारइ गन्धे समस्त बातास भारि हइया उठियाछे एवं ताहारइ निकटे कोन गाछे असंख्य बकेर वासा हइते शावकगणेर एकटाना झुम् झुम् शब्द विचित्र माधुर्य्यें अविराम काने आसिया पसशेते छे।"

श्रीकान्त (चतुर्थ भाग)

बँगला पद्य

दूसरी भाषाओं के समान बँगला भाषा भी कविता के साथ आरम्भ हुई है। प्रत्येक युग अपने अनुभवों को अमर बनाने के लिये भाषा की सहायता लेता है और जैसा पहले लिखा जा चुका है बँगला गद्य की उपेक्षा के कारण लोगों ने बँगला कविता में अपने युग की झलक सुरक्षित कर रखी। इस प्रकार बँगला के प्राचीन साहित्य का इतिहास बँगला कविता ही का इतिहास है।

बँगला साहित्य में एक बात बड़े मार्के की है। बङ्गला का प्राचीन साहित्य (यूरोपियनों के आगमन के पूर्व्व का साहित्य) वास्तव में अपने युग का प्रतिनिधि था। इस विचार से प्रत्येक युग की व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार बँगला कविता भी स्थूल रूप से नीचे लिखे भागों में विभक्त की जा सकती है।

(१) प्रारम्भ काल—बँगला-भाषा स्थूल रूप से नवीं सदी से आरम्भ होती है। प्रारम्भिक काल इस प्रकार ८०० से १२०० ईस्वी तक माना जा सकता है। इस समय के मुख्य कवि डाक, खना रमाइ पंडित आदि हैं।

(२) विकास काल—यह समय १२०० से १८०० तक माना जा सकता है। इस काल को तीन भागों में बाँट सकते हैं।

(क) पौराणिक पुनरुज्जीवन का प्रारम्भ—इस समय पुराणों के देवताओं, शिव, शक्ति, मनसादेवी आदि का प्रचार होरहा था और उस समय इन्हीं विषयों पर कवितायें लिखी गईं। इस काल के कवि हैं—केतकादास, विजयगुप्त, मुकुन्दराम, कविकंकण, मालाधरवसु आदि।

(ख) महाकाव्य के प्रचार का समय। इसके मुख्य कवि हैं कृत्तिवास, काशीरामदास, नित्यानन्द, द्विज मधुकण्ठ आदि।

(ग) वैष्णव-काल—यह काल दो भागों में बाँटा जा सकता है—चैतन्य के पूर्व्व का काल, चैतन्य के पश्चात् का काल। पूर्व्वकाल के प्रधान कवि हैं—चण्डिदास और विद्यापति तथा उत्तरकाल के वृन्दावनदास, ज्ञानदास आदि।

(३) आधुनिक काल—यह समय १८०० ई० के लगभग से आरम्भ होता है। इस काल को भी तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) वैष्णव-काल का पतन और आधुनिक काल का आरम्भ—यह समय परिवर्त्तन का समय था। इस समय के कवि हैं भारतचन्द्र, रामप्रसाद, नवीनचन्द्र सेन, हेमचन्द्र, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर आदि।

(ख) रवीन्द्रनाथ का काल।

(ग) अत्याधुनिक काल—जिसके प्रधान कवि हैं—द्विजेन्द्रलाल राय, चितरञ्जनदास, अक्षयकुमार वडाल, यतीन्द्रमोहन बागची, कामिनी राय, श्री कृष्णधन दे, मोहितलाल मजुमदार, दिलीपकुमार राय आदि।

बँगला कविता का आलोचनात्मक इतिहास

प्रारम्भ-काल

इस काल का बँगला साहित्य कदाचित् ही साधुभाषा की कोटि को पहुँचता है। बौद्ध-धर्म का पतन हो रहा था और इसकी आध्यात्मिकता के ह्रास के साथ-साथ समाज में तान्त्रिकों और सिद्धों का बोलबाला बढ़ रहा था। बौद्ध-काल में जो शिक्षा का प्रचार हुआ था। उसका थोड़ा बहुत प्रभाव सीधे-सादे ग्रामीणों और कृषकों पर पड़ा। इस पतन-काल में जो कवितायें रची गईं, वे देहातियों और कृषकों की कृतियाँ थीं। ग्रामीण ही इन्हें पढ़ते और गाते थे। यही कारण है कि उनमें भद्दे और गँवारू रसों का प्राधान्य है। देहाती लोग भद्दे कौशल और बच्चे की जैसी तुक-बन्दियों से कविता को भर देते थे। कविताओं का विषय होता हल और खेत, गृहस्थी और अनाज का बोना, अन्न के लिये वर्षा आदि। परियों की कथायें तथा ग्रामीण सिद्धोंके चमत्कार-पूर्ण कार्य्यों को गाते और सुनते थे। यही थी उस समय की कविता की दशा। इस प्रकार तत्कालीन कविता भाषा के विचार से पुराविदों के लिये कुछ प्रधानता रख सकती हो, पर साहित्यिक उत्कर्ष की दृष्टि से उसका कोई मूल्य नहीं।

तत्कालीन काव्य-साहित्य कृषि आदि के सुचारु रूप से संचालन के लिये छोटी-छोटी उक्तियों से तथा बौद्ध-धर्म्म के तान्त्रिकमत की कविताओं से भरे हैं। कवियों में डाक, खना, रामाइ पण्डित आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

बँगला के प्राचीन साहित्य पर बौद्ध-धर्म्म की छाप है और डाक डाकार्णव तो एक तान्त्रिक ग्रन्थ ही है, जिसमें गृहस्थी के संचालन के लिये बुद्धिमत्ता-पूर्ण उक्तियाँ, कृषि, ज्योतिष, वैद्यक आदि के लिये भरी

हुई हैं। नीचे के उदाहरण से डाकार्णव के विषय समझ में आजायँगे।

रहने के लिये घर बनाने के विषय में डाक कहता है—

पूर्वे हाँस। पश्चिमे बाँस।
उत्तरे बाग। दक्षिणे फाँक।

अर्थात् पूर्व की ओर हाँस (तालाब) हो, पश्चिम में बाँस (बाड़ा) हो, उत्तर में बाग और दक्षिण में खुली भूमि हो।

स्त्रियों के विषय में डाक के विचार बड़े मार्के के हैं। यथा—

घरे आखा बाइरे रान्धे। अल्पकेश फुलाइया बाँधे॥
घन घन चाहे उलटि घाड़। बले डाक ए गृहिणी ते घर उजाड़।
पानि फेलिया पानि के जाय। पथिक देखिया आड़ चक्षे चाय।
बाति बुले गान गाय। पर पुरुष के आड़ चक्षे चाय।
पर सम्भाषे बाटे रहि ए नारी घरे ना शुद्धि।

अर्थात् चूल्हा घर में हो और रन्धन बाहर करती है, थोड़े से केश को फुलाकर बाँधती है, फिर-फिरकर पीछे देखती है (किसी पुरुष को), ऐसी स्त्री से घर उजाड़ होता है। जल फेंककर फिर जल लाने जाती है। किसी पथिक को देख चुपचाप उसकी ओर ताक लेती है, दीपक जलाते समय गाना गाया करती है। ऐसी स्त्री को घर में मत रखो।

डाक ने भोजन कब और क्या करना चाहिये? इस पर भी अपना विचार प्रकट किया है।

यथा—

कार्त्तिके ओल, मार्गे बेल। पौषे काञ्जि, माघे तेल॥
फाल्गुने आदा, चैत्रे तीता। वैशाखे ते निमनालिता॥
ज्येष्ठे घोल, आषाढ़े दहि। श्रावणे खै भाद्रे ताल॥
आश्विने शशा। डाकबले एइ बार मासा॥

डाक की नाईं खना (एक स्त्री कवि) ने भी ऐसी ही गृहस्थी विषयक उक्तियाँ कही हैं। यथा वर्षा के विषय में—

यदि बरे आगने, राजा नामेन मागने।
यदि बरे पौषे, कड़ि हय तुषे।
यदि बरे माघेर शेष, धन्य राजा पुण्य देश।
यदि बरे फागुने चिना आने हय द्विगुणे।
खना डेके बले यान, रोदे धान छायाय पान॥ इत्यादि।

अर्थात् यदि अगहन में वर्षा हो तो राजा भिक्षुक बन जाय; यदि पौष में हो तो भूसे से भी पैसा मिले; यदि माघ में वृष्टि हो तो राजा का देश धन्य हो; यदि फागुन में वृष्टि हो तो चिना कौनी द्विगुण हो। खना कहती है कि धान धूप में और पान छाया में बढ़ता है।

इसी प्रकार कृषि-विषयक कितने ही नियम बने हैं जो बङ्गाल के किसानों के लिये अभी भी वेद-वाक्य हैं। इन छोटी-छोटी उक्तियों को स्त्रियाँ और बच्चे तक जानते हैं।

इस समय बौद्ध-धर्म्म विकृत होते-होते नास्तिकता और इन्द्रिय-परवशता में परिणत होगया था और हिन्दू-जाग्रति आरम्भ ही हुई थी। शिव, ब्रह्मा और विष्णु तो आगये थे; पर उन पर बौद्धों के शून्यवाद की छाप थी। वे अभी भी पौराणिक हिन्दू-देवताओं के रूप में नहीं दीखते थे। इस परिवर्तन-काल में सारे भारतवर्ष में हिन्दुओं और बौद्धों में तान्त्रिकवाद का बोल बाला था। उस समय की कविता में इसका प्रतिबिम्ब है रामाइ पण्डित के शून्यपुराण में, सहजीया लोगों के गान में तथा धर्म्म ठाकुर सम्बन्धी गीतों में। रामाइ पण्डित के शून्यपुराण का कुछ अंश नीचे दिया जाता है जो सृष्टि का विकास बतलाता है:—

नहि रेक, नहि रूप, नहि छिल बन्न चिन।
रवि शशि नहि छिल नहिं छिल राति दिन॥

नहिं छिल जल थल नहिं छिल आकाश।
मेरू मन्दार ना छिल ना कैलास ॥
नहिं छिष्टि छिल आर नहिं सुर नर।
बम्भा, विष्ट, न छिल न छिल आँबर॥
सरग मरत नहिं छिल सभी धुन्दकार।
दस दिकपाल नहिं मेघ तारा गण॥
जाउ मित्त, ना छिल जमर ताड़न।
सुनुत भरमन परभुर सुन्ने करि भर॥

अर्थ सरल है। सृष्टि के आरम्भ में कुछ नहीं था, था केवल शून्य। यह शून्यवाद बौद्ध-धर्म्म ही का प्रभाव है।

इस प्रकार उस युग की आत्मा इन कविताओं में प्रतिविम्बित है। इसी कारण इनकी प्रधानता भी है। अन्यथा, जैसे पूर्व्व में कहा जा चुका है, साहित्यिक दृष्टि से इनका कोई मूल्य नहीं है।

विकास-काल

आरम्भ

पौराणिक पुनरुज्जीवन के साथ बँगला-कविता के विकास का काल आरम्भ होता है। यह काल अठारहवीं सदी के अन्त तक रहा और इस काल में जो कवितायें बनीं वे साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। जातीय जीवन के अनुभव, सुख, दुःख, भक्ति, विचार सभी इसमें स्पष्ट प्रतिविम्बित हैं।

बौद्ध-धर्म्म परिणत हो गया था, जघन्य विचार-स्वातन्त्र्य, नास्तिकता और तान्त्रिकवाद में। इसी समय पौराणिक जागृति आई और धीरे-धीरे समाज समय और नियम के अधीन होता गया। बौद्धों ने जो प्राकृतमय बँगला को अपनाया था, उसके स्थान पर अब संस्कृत का

प्रभाव बढ़ने लगा और समाज ने बौद्ध-काल में जो नीति को प्रधानता दी थी उसके स्थान पर ईश्वर में भक्ति को अपनाया। ब्राह्मणों को देवता का पद मिलने लगा और समाज में एक महान् परिवर्तन हो गया। इस पौराणिक जागृति-काल में जिस साहित्य का निर्म्माण हुआ, उसमें ईश्वर की भक्ति, पौराणिक देवताओं का महत्त्व और ब्राह्मणों का सम्मान प्रतिपादित हुआ है।

इस समय हुसेनशाह आदि मुसलमान शासकों के उत्साह तथा पौराणिक जागृति के कारण बँगला में भागवत आदि ग्रन्थों का अनुवाद होने लगा। चण्डी, मनसा, शिव, शक्ति आदि देवताओं पर कवितायें लिखी जाने लगीं और बँगला-साहित्य इन कविताओं से भर गया।

इस काल के काव्य के सर्व-प्रधान विषय श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण-चरित के साथ गोप-जीवन के दृश्य, माता यशोदा का सुकुमार-प्रेम, चरवाहों की विविध क्रीड़ायें, कृष्ण का गोप-युवतियों से प्रेम आदि विषयों ने लोगों के ध्यान को आकृष्ट कर लिया और प्रत्येक विषय पर सैकड़ों कवितायें लिखी गईं।

इस भाग के लेखकों में सर्व्व-प्रथम नाम आता है मालाधर वसु का, जिन्होंने महाभारत का बँगला अनुवाद किया। यह एक उच्च कोटि के कवि थे और इनकी शैली बड़ी ही सरल और तरल होती थी। यहाँ इनका एक उद्धरण दिया जाता है।—

प्रभाते भोजन करि सिङ्गा बाजाइया।
पिछे-पिछे चले यत बाछुर चालाइया॥
एकत्र हइल सब यमुनार तीरे।
नाना मत क्रीड़ा करे देव दामोदरे॥
कथाते कोकिल पक्षीगण नाद करे।
तार सङ्गे नाद करे देव गदाधरे॥

कथाते मर्कट, शिशु, लाफ देहि रंगे ।
सेइ मते पाय कृष्ण बालकेर सङ्गे ॥
कथा ते मयूर पक्षी मधु नाद करे ।
सेइ मते नृत्य करे देव दामोदरे ॥
कथा-कथा पक्षी ए आकाशे उड़ि याइ ।
तार छाया सङ्गे नाचे राम कान्हाइ ॥
कथा वा सुगंधि पुष्प तुलिया मुरारि ।
कत हृदे मस्तके श्रवणे केशे परि ॥

अर्थ सरल है और शैली बिल्कुल सहज । परन्तु अनुवाद में कवि ने कुछ अपनी कल्पना की भी सहायता ली है । अनुवाद में 'राधा' का समावेश होता है और राधा के प्रेम-विषयक कितनी ही कवितायें हैं । इस नवीनता के समावेश ने आगे आने वाले वैष्णवों के लिये मार्ग सुगम कर दिया है ।

मालाधर बसु के बाद कितने ही लेखक हुए, जिनकी कवितायें होती थीं छोटे-छोटे विषयों पर, जिनमें अपनी कल्पना पर निर्भर न रह कर वे भागवत आदि पर निर्भर रहते थे ।

कृष्ण-चरित के अतिरिक्त कितने ही अन्यान्य पौराणिक कहानियों से साहित्य भरता गया । राम, भीष्म, शिवि, दधीचि, प्रह्लाद, ध्रुव, नल, सीता, सावित्री, दमयन्ती, चिन्ता आदि की कथायें अच्छी तरह प्रचलित हो गई थीं । इनके प्रचार में मंगल गायकों का सबसे बड़ा हाथ रहा है । इन मंगल गानों में गायक की व्यक्तिगत कल्पना को व्यवहार करने का पूरा स्थान था और उन्होंने युग पर युग इन कथाओं को जीवित रख आगे महाकाव्य के लेखकों के प्रकट होने का मौक़ा दिया । हिन्दू-जागृति-काल में भी यह सुगम माध्यम लोगों में पौराणिक कथाओं के प्रचार के लिये जारी रहा और थोड़ा काँट-छाँटकर मंगल गानों के सहारे ही उस युग के संभ्रान्त मस्तिष्क को प्रसन्न रखना कठिन न हुआ । इन

गायकों की आकर्षक ढंग से कथा कहने की चेष्टा ने लोगों को अपनी ओर खींचा और उनकी कथायें लोगों के मस्तिष्क पर चिरन्तन प्रभाव डालने लगीं।

शैव-साहित्य

शैव-साहित्य बँगला में बौद्धों के पतन-काल से ही आरम्भ होता है; पर धीरे-धीरे बंगाल के किसानों ने शिव पर अपनी छाया डाल उन्हें भङ्ग-भक्षी, भिक्षुक, धतूरा-प्रेमी आदि बना दिया। पौराणिक-काल की सुरुचि ने इन बातों को रखते हुये भी एक नई बात और मिला दी, शिव को एक परिवार का पोषक पति और पिता बना डाला। उमा का व्याह एक दरिद्र वृद्ध से होता है। इस विवाह का वर्णन करते समय शायद कवियों के हृदय में बंगाल के वास्तविक जीवन का चित्र जाग रहा था, जहाँ ऐसे ही बेजोड़ विवाह हुआ करते हैं। उमा का वर्णन बड़े विषाद-पूर्ण ढंग से किया गया है। पौराणिक कथाओं के वेष में बङ्ग-माता-पिता के वास्तविक जीवन का दुःख-सुख चित्रित किया गया है। ये कवितायेँ अत्यन्त Realistic हैं। उमा से मिलते समय उमा की माता का मनोभाव वास्तव में बङ्ग-माता के मनोभाव ही का प्रतिविम्ब है। उमा के पास मेना अपने पति को भेजती है।

याओ याओ गिरि आनिते गौरी
उमा बड़ दुःखे रयेछे।
आमि शुनेछि श्रवणे नारद वचने
माँ माँ करे उमा केंदे छे॥
भाङ्गते भाङ्गड़ पीरिति बड़
त्रिभुवनेर भाङ्ग करेछे जड़
भाङ्ग खेये भोला हय दिगम्बर
आमार उमारे कत कि बलेछे।

उमार बसन भूषण यत आभरण
ताओ बेचे भाङ्ग खेयेछे ॥

कार्त्तिक और गणेश के जन्म के उपरान्त रानी कहती है (पति से)—

तुमि ये कत दिन गिरिराज आमाय कयेछ कत कथा,
से कथा आछे शेल सम आमार हृदये गाँथा।
आमार लम्बोदर नाकि उदरेर ज्वालाय केँदे केँदे बेडात,
हय अति क्षुधार्त्तिक सोनार कार्त्तिक धूलाय पड़े लुटात।

इन गानों को सुन कितनी ही माताओं की आँखों में आँसू आ जाते, कितनी परतन्त्र शिशु-पत्नियाँ रो पड़तीं।

शाक्त-मत में मनसादेवी और चन्डीदेवी का बड़ा स्थान है और उनके विषय में लिखी गई कविताओं से एक विशाल साहित्य तैयार हो गया है। इस साहित्य के निर्म्माण में प्रधान कवि हैं नारायणदेव, विजयगुप्त, केतकादास, मुकुन्दराम, कवि कंकण आदि।

श्रावण के महीने में भाषाण-यात्रा हुआ करती थी। उत्तर बंगाल के लोग नावों में चढ़कर इस उत्सव को मनाते थे। रात-दिन महीनों गान हुआ करते थे जिनका विषय होता था बेहुला का पति-प्रेम। इस विषय पर गत हज़ार वर्षों में बहुत बड़ा काव्य-साहित्य तैयार हो गया है। किस प्रकार शिव-भक्त चाँद सौदागर मनसा देवी की पूजा करना नहीं चाहता, पर अन्त में परिस्थिति उसे बाध्य करती है और किस प्रकार बेहुला भी अपने सतीत्व-बल से बाललक्ष्मीन्द्र को बचा लेती है, यह बहुत लोक-प्रिय गान हो गया है।

विद्वानों के अनुसन्धान से ६० से अधिक पुस्तकें मनसादेवी पर मिली हैं। कुछ पुस्तकों में चाँद सौदागर की समुद्र-यात्रा जैसे वर्णन के वेश में बँगालियों को व्यापारिक उन्नति का ख़ासा चित्र है।

विजयगुप्त का मनसा-मंगला अपनी श्रेणी का सबसे लोक-प्रिय ग्रन्थ है। नारायणदेव की कविता भी उच्चकोटि की होती थी। उसके व्यथान्त

वर्णन के उदाहरण-स्वरूप यह उद्धरण नीचे दिया जाता है। पति-मृत्यु के कारण बेहुला विलाप कर रही है—

अमृत समान प्रभुरे तोमार मुखेर वाणी,
पुनरपि ना शुनिलाम मुइ अभागिनी।
हातेर शङ्ख भाङ्गिब कंकण करिब चूर।
मुछिया फेलिब आमि सींथिर सींदूर।
ए हेन सुन्दर रूप प्रभुरे प्रकाशित रजनी।
चन्द्र सूर्य्य जिनि या रूप हारेल नागिनी।
चाँपार कलिका सम प्रभुरे तोमार कोमल अँगुलि।
तुमि आमार प्रभुरे अभागी बेहुलारे डाक
चाह चक्षु मेलि॥

इसी प्रकार और भी वर्णन हैं, जहाँ कवि व्यथा का ख़ासा चित्र खड़ा कर देता है।

दूसरे मनसा-मङ्गल के लेखक हैं केतकादास। उनकी लोक-प्रियता का कारण है उनकी कविता का उत्कर्ष और संक्षिप्तता। उनकी कविता का नमूना नीचे दिया गया है।

बेहुला पति का शव लेकर जल में बहती जाती है। शव से दुर्गन्धि निकल रही है, पर बेहुला उसे फेंकती नहीं। किनारे पर सियार जमा होकर उससे शव माँगते हैं। कवि ने कितनी सरलता-पूर्वक सहज रीति से व्यथा का चित्रण किया है—

माछि घने गने प्रभुर बदने उड़िया बैसे गिया।
बेहुला नाचनी ताडेन आपनि नेतेर आँचल दिया।
मृत पति कोले माँस पचे गले प्राणे प्राणेनय स्थिर।
दिवस रजनी भासेन नाचनी पाइया स्रोतपथ नीर।

इसी समय कुछ सियार आकर अपनी भूख दिखलाकर बेहुला से सड़ा हुआ शव माँगते हैं। उत्तर में बेहुला कहती है—

ऐ प्राणधन देख येइ जन याहार पाय्या छ प्राण ।
कि आर कहिब यारे खाइते चाह, मड़ा नहे मोर प्राण ॥

अपनी गभीर व्यथा को वह कितने खुले शब्दों में व्यक्त कर सकती है !

विकास-काल के जिन कवियों के विषय में लिखा जा चुका है, सभी की कविता में वस्तु-प्रधान है; कोई भी विषय उनका अपना नहीं है। पर इन वस्तु-प्रधान कविताओं में कवियों ने अपनी आत्मा को इस प्रकार भर डाला है कि कविता के पात्र जिन बातों को अनुभव करते हैं सभी कवियों ही की अनुभूति हैं। ऊपर जो कवितायें दी गई हैं, उनसे विदित होगा कि वे कितनी Realistic हैं। यह Realism कितनी शताब्दियों के बाद फिर अक्षयकुमार बड़ाल आदि की कविताओं में देखने को मिलता है। एक बात और विशेष दर्शनीय है, वह है इन कविताओं में सहज, सरल शब्दों के द्वारा गभीर वासना का व्यक्त करना। कवियों ने किसी प्रकार व्यर्थ अलंकारादि से कविता को जगमग नहीं किया; उनके सीधे-सादे वाक्य जीवन की अनुभूति को बिल्कुल सहज प्रकार से व्यक्त करते हैं । बेहुला की उक्ति "मड़ा नहे मोर प्राण" तथा मेना की उक्ति, "आमि शुनेछि श्रवणे नारद बचने माँ माँ करे उमा केँदेछे" कितनी गभीर भावना को थोड़े में व्यक्त कर देती है। उसी प्रकार किसी दृश्य को वर्णन करने में वे प्राचीन अर्थहीन विशेषणों का उपयोग न कर कह सकते हैं—

माछि घने घने प्रभुर बदने उडिया बैसे गिया ।
बिहुला नाचनी ताडमे आपनि नेतरे आँचल दिया ॥

और इन दो पंक्तियों के सहारे वे जो चित्र खींचते हैं, वह अलंकारमय दर्जनों पंक्तियों से कहीं अधिक आकर्षक है ।

संक्षेप में ये कवितायें उच्च कोटि की हैं और हैं आत्मा के स्पष्ट और सीधे उद्गार ।

चण्डी

चण्डी की कथा भी बङ्गाल में बहुत प्रचलित है। इस विषय पर भी कितने ही कवियों ने अपनी कवितायें लिखी हैं; जिनमें सर्वश्रेष्ठ थे मुकुन्दराम कविकंकण। उनकी कविता सर्व-श्रेष्ठ है और उनका प्रचार भी सब से अधिक है।

मुकुन्दराम बंगाल के सबसे श्रेष्ठ कवियों में थे। वे आदर्शवादी न थे। उन्होंने अपनी आँखों जो देखा, उसी का चित्रण किया। उनकी कविता में १६ वीं सदी का बंगाली-जीवन प्रतिबिम्बित है। यह कविता है Realistic। इसी कारण डाक्टर ग्रियर्सन ने उनकी कविता के विषय में लिखा है—"यह हृदय से निकलती है, मस्तिष्क से नहीं। यह उद्धरणों से भरी हुई है जो सच्चे काव्य और वर्णन-शक्ति से भरे हैं।"

अन्यान्य महाकवियों की नाईं मुकुन्दराम ने भी अपने देश और काल को चित्रित किया है। देवता और पशु के वेष में हम बंगालियों को ही अपना सुख-दुःख सुनाते हुये पाते हैं। कालकेतु से भीत पशुओं के भाषण में बंगाल की उस समय की राजनैतिक दशा का चित्र मिलता है जब मुसलमान निष्ठुरतापूर्वक अपनी शक्ति प्रकट कर रहे थे।

यही Realistic वर्णन कविताओं को नवीनता देता है। प्राकृत दृश्यों के वर्णन में भी वह बंगाल के पारिवारिक जीवन को नहीं भूल सकते। इन पंक्तियों को देखिये—

एक फुले मकरन्द पान करि सदानन्द धाय अलि अपर कुसुमे।
एक घरे पेये मान, ग्रामयाजि द्विज यान अन्य घरे ओपन संभ्रमे।

कवि भ्रमर का फूल-फूल पर उड़ना उपमित करता है ग्रामयाजी ब्राह्मणों से—बंगाली जिससे सर्वथा परिचित थे।

दो एक पंक्ति से भी वह प्राणमय चित्र खींच सकता है। यहाँ एक मजलिस का चित्र है। यहाँ जाति-गौरव के प्रश्न पर बहस हो रही है।

कितना सच्चा चित्र है जो आज तक भी ग्रामों में मिल सकता है। शङ्खदत्त गौरव का स्थान न पाकर कहता है—

वणिक सभाय आसि आगे पाइ मान।
सम्पदे मातिया नाहि कर अवधान।
ये काले बापरे कर्म्म कैल धूसदत्त।
ताहार सभाय बेणे छिल सोल शत।
षोलशतेर आगे शङ्खदत्त पाइल मान।
धूसदत्त जाने इहा चन्द्र मतिमान।
इहा सुनि धनपति करिल उत्तर।
सेइ काले नाहिं छिल चाँद सदागर।
धने माने कुले शीले चाँद नहिं बाँका।
बाहिर महले यार सात घड़ाइ टाँका।

इस पर किसी ने कहा, रुपये से जाति नहीं बनती। चाँद उसके उत्तर में कहता है—

हाटे हाटे बाप तोर बेचित आमला।
यतन करिया ताहा किनित अवला॥

आदि

इस ग्राम्य-भाषा के "संपदे मातिया", 'हाटे हाटे बेचित' कितने स्फूर्तिमय शब्द हैं।

"आश्चर्य्य है, मुकुन्दराम किस Dramatic तौर से अपने काव्यों के पात्रों के भीतर अपनी आत्मा को विक्षिप्त कर देते हैं। इनके पात्रों की भाषा होती है स्वाभाविक। जीवन की गभीर व्यथा को व्यक्त करने के लिये हम अलङ्कार तथा उपमा आदि का व्यवहार नहीं करते हैं। अपने कामों के द्वारा हम जो वातावरण तैयार करते हैं, वही हमारे सीधे-सीधे वाक्यों को गभीर बना देता है। मुकुन्दराम भी वातावरण तैयार कर अपने पात्रों को स्वाभाविक भाषा में बोलने के लिये छोड़ देते हैं। वे पात्र रक्त-मांस से बने

हुये मानव के जैसे स्वाभाविक हो उठते हैं। यही कविता की पराकाष्ठा भी है और आधुनिक कवियों ने इसी मार्ग को अपनाया है। कवि मुकुन्दराम एक महान् कवि थे और संसार-साहित्य में उनका एक स्थान रहेगा।

चण्डी के अतिरिक्त षष्ठी, शीतला, गङ्गा आदि अन्यान्य देवताओं पर भी कवितायें बनीं; पर ऊपर जिन कवियों का उल्लेख हो चुका है वे अपने युग को भलीभाँति व्यक्त कर लेते थे। अतएव अब विकास-काल के महाकाव्य के कवियों पर विचार किया जायगा।

विकास-काल के महाकाव्य के कवि

पहले लिखा जा चुका है कि मुसलमान शासकों ने रामायण और महाभारत आदि के अनुवाद के लिये कितने ही लेखकों को नियुक्त किया था। इस कारण तथा कई और कारणों से बँगला भाषा में रामायण और महाभारत के अनुवादों की एक बाढ़-सी आगई।

कृत्तिबास

रामायण के अनुवादकों में कृत्तिबास का स्थान सर्वोच्च है। कृत्तिबासी रामायण की लोक-प्रियता हिन्दी के तुलसीदास के रामचरितमानस से कम नहीं। इसको बने पाँच सौ वर्ष से अधिक हुए, पर आज भी इसकी लाखों प्रतियाँ बंगाल में प्रतिवर्ष बिकती हैं और राजा से रङ्क तक इसे ख़रीदते और पढ़ते हैं। कृत्तिबास का रामायण वाल्मीकि के रामायण का कोरा अनुवाद नहीं है। उसमें कितनी ही नवीन बातों का समावेश होगया है। व्यथा से भरी कथायें, धर्म्म, जीवन-पर्य्यन्त भक्ति, व्रत-पालन की अविश्रान्त चेष्टा, और इसके फल-स्वरूप यातनायें आदि के कारण रामायण को जनता बहुत प्यार करने लगी और उसकी कथाओं से प्रभावित हो अपने जीवन को पवित्र बनाती रही है और रहेगी। साहित्य की दृष्टि से यह उच्च कोटि का ग्रन्थ तो है ही, साथही इसने कथा-

वर्णन के ढङ्ग के कारण लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। कृत्तिबास की लोक-प्रियता को देखकर हम आश्चर्य्य में पड़ जायँगे, यदि बंगाल के देहातों की सैर करें। रात्रि को जब सारी प्रकृति सो जाती है, हमें तरु-कुञ्जों से ढके कितने ही घरों के दरवाज़ों पर मिट्टी के दीप की रोशनी में बनिये आदि झुक-झुककर रामायण गाते मिलेंगे।

कृत्तिबासी रामायण की लोक-प्रियता का एक बड़ा कारण है मूल-रामायण की गभीर व्यथा को सुरक्षित रखना। भाषा के कवियों ने राम को ईश्वर बनाकर अपनी कविता को भक्ति-मय तो बनाया है, पर उनमें वह मानव-हृदय का प्रतिबिम्ब नहीं रह सका जो हमारे हृदय को उनकी कथायें सुन हर्षित, मुग्ध और विस्मित करता। राम राज्य छोड़कर बन जा रहे हैं, कैसा महान् त्याग है। हमारा हृदय इस त्याग की गम्भीरता में गोता लगानाही चाहता है कि भक्त कवि हमारी कमज़ोरी पर हँसकर हमें याद दिलाता है कि राम तो ईश्वर हैं, यह सब केवल माया है। हमारा हृदय क्षुब्ध होकर रह जाता है। हम तो चाहते हैं उस मानव-व्यथा को, जिसे हम अपनी कह सकें। कृत्तिबास की कविता में भी राम ईश्वर ही हैं, पर कवि गम्भीर वेदना-पूर्ण दशा को चित्रण करने में इस बात को भूल जाता है और इसी कारण हम उसकी कविता को पढ़ते हैं। रावण के हाथों से उद्धृत सीता अग्नि-परीक्षा के लिये आगे बढ़ रही है। कवि ने उस दृश्य को इतना मानवोचित और करुण बना दिया है कि सभी को आँसू आ जाते हैं। सीता धैर्य्य-पूर्वक आगे बढ़ती हैं, फिर राम की ओर देखती हैं—आदि उसकी करुणापूर्ण भक्ति कुछ देर तक हनूमान् और लक्ष्मण जैसे राम-भक्त के हृदय को भी उनकी ओर विद्रोही बना देती है। यहीं कवि पराकाष्ठा पर पहुँचता है। ऐसे स्थल कितने ही हैं, इसी मानवोचित करुणा के कारण कवि ने सैकड़ों हृदयों को मुग्ध किया है।

इनकी लोक-प्रियता का एक और कारण है इनकी पद्यशैली की सर-

लता। अलंकारादि से कम सम्बन्ध रखते हुए भी इन्होंने जिन सरल शब्दों में जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त किया है उन्हीं के कारण इनकी कविता अनायास सीधे-सादे ग्रामीणों के हृदय में बैठ जाती और उनपर अपना प्रभाव छोड़ देती है।

सदियों से कृत्तिवासी रामायण ने बंगाल की जनता को शिक्षा प्रदान की है। इसमें यदि कुछ भद्दा और गँवारू स्थल है भी, तो वह है इसे ग्रामीण जनता का प्रिय बनाने के लिये। युग पर युग कृत्तिबासी रामायण से बुद्धिमत्ता और आध्यात्मिकता का स्रोत बहता रहा है जो बंगाल के हृदय को शीतल बनाने में सफल हुआ है।

काशीदास

महाभारत के अनुवादकों में काशीदास का नाम सर्व-प्रधान है। यों तो इनके पहले भी सञ्जय, कवीन्द्र, परमेश्वर, नित्यानन्द आदि ने महाभारत के अनुवाद किये थे, और उनका अनुवाद उच्च कोटि का हुआ भी था;पर जिस प्रकार रामायण में कृत्तिबास का नाम सर्व-श्रेष्ठ है, उसी प्रकार महाभारत में काशीदास का। काशीदास बड़े प्रतिभाशाली और चतुर कवि थे, । वे दूसरे लेखकों से निःसङ्कोच अपनी कविता की सामग्री ले लेते और उनको फिर से परीक्षा कर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ देते थे। उन पर इतना ही नहीं, वह कभी-कभी अपनी कल्पना से अनुवाद में विचित्र घटनाओं का समावेश भी कर देते थे जो मूल में होती ही नहीं। और इन नवीनताओं में ही हम उनकी प्रतिभा की झलक पाते हैं। काशीदास जनता के कवि थे। वास्तव में उनकी शिक्षा, बुद्धिमत्ता की परिधि, लिखने की शैली, सभी ऐसी ही थी कि उन्हें जनता के उपयुक्त कवि बना दे। मूल महाभारत में आत्मा-सम्बन्धी गहन प्रश्नों पर जहाँ विशद रूप से विचार किया गया है, वहाँ काशीदास उसे या तो छूते ही नहीं, या संक्षेप में उससे छुट्टी पा लेते हैं। कहानी कहने का उनका ढंग अत्यन्त

लोक-प्रिय है। जनता धर्म्म के पीछे अन्धी है, ब्राह्मणों के पीछे पागल है, तो काशीदास भी बार-बार धर्म्म का महत्त्व दिखलायँगे या ब्राह्मणों का गौरव-गान करेंगे। विशाल महाकाव्य के वर्णन में वे कभी पाण्डित्य ग्रहण नहीं करते। वे पाठकों को बहुधा मामूली बातों की आवृत्ति से थका देते हैं। कभी-कभी तो उनकी अतिशयोक्ति हास्यास्पद हो उठती है; पर उनके लेख में सर्वत्र भक्ति की वह धारा बहती है, जो असुन्दर को सुन्दर तथा हास्यकर को गम्भीर बना देती है।

काशीदास के महाभारत में कितने ही स्थल ऐसे हैं जो कवि के उत्साह और कौशल के प्रमाण हैं। राजसूय-यज्ञ में विभीषण का समावेश ऐसे स्थलों में एक है। व्यास के महाभारत में विभीषण का नाम भी नहीं आता; पर काशीदास विभीषण को राजसूय-यज्ञ में युधिष्ठिर को गौरव प्रदान करने के लिये खींच लाते हैं। कथा कितने अंश में बिल्कुल गँवारू है, पर काशीदास अपने कौशल से सफलता-पूर्वक उसका निर्वाह कर लेते हैं। उस समय की सीधी-सादी जनता के लिये त्रेता और द्वापर में कोई अन्तर नहीं था, और विभीषण को खींचकर कवि ने अपने प्रतिनिधि के पद को बचा लिया है।

काशीदास का महाभारत भी बङ्गाल का बड़ा भारी शिक्षक रहा है, और आज भी कितने ही महलों और झोपड़ों में वह पढ़ा और सुना जाता है।

महाकाव्य के लेखकों के साथ-साथ Objectivism के युग का अन्त हो जाता है और वैष्णवों के साथ Subjectivism के युग का आरम्भ होता है।

वैष्णव-साहित्य

वैष्णव-साहित्य बँगला-भाषा का सबसे प्रधान और मनोरम साहित्य है। उस साहित्य ने भाषा पर जो महान् प्रभाव डाला है, उसके

अतिरिक्त चैतन्यदेव तथा अन्यान्य सच्चे वैष्णवों के आदर्श को फैलाकर उसने जनता में भी आध्यात्मिकता का एक स्रोत बहा दिया है।

बौद्ध-धर्म्म का महायान मत, जो बंगाल में कभी ज़ोरों से फैला हुआ था, पीछे चलकर नास्तिकता और वितण्डावाद में परिणत हो गया। मानव-हृदय के लिये वहाँ सान्त्वना-प्रद कुछ भी न था। था केवल तर्क, बुद्धि की युक्ति आदि। ऐसी परिस्थिति का लोगों के उपेक्षित हृदय को कहीं आश्रय ढूँढ़ने के लिये सचेष्ट कर देना स्वाभाविक ही था। उसी समय बंगाल और विहार में चण्डीदास और विद्यापति का जन्म हुआ। उनकी भक्ति-प्रवण प्रेम-गीति ने हताश जनता को आश्रय दिया और भक्तिमत के अनुयायी वैष्णवों की संख्या बढ़ने लगी। सोलहवीं शताब्दी में चैतन्यदेव का जन्म हुआ। युगों की जड़ता से जागी हुई जनता ने एक नवीन शक्ति का अनुभव किया। उस दिव्य पुरुष के जीवन ने उन्हें भारतीय आदर्श की पराकाष्ठा दिखला दी और उनके सामने एक प्राणमय आध्यात्मिकता का आदर्श रख दिया, जो कवियों की सारी प्रतिभा से सम्भव न था। वैष्णवों के लेखों की स्वच्छन्दता हमें अपनी साहसिकता से चकित कर देता है। वैष्णवों के गान हमें एक नवीन अनुभूति से परिचित करते हैं।

वैष्णव-साहित्य भक्ति का प्रतिपादन करता है। संस्कृत-रूप में यह है आत्मा का परमात्मा से मिलन, परमात्मा के लिये प्यास, परमात्मा की प्राप्ति में असफल आत्मा की दुःखानुभूति। पर लोक-प्रिय रूप में यह है अपने को राधा के रूप में मानकर कृष्ण के प्रति प्रेम। यही स्त्री और पुरुष के रूप में आत्मा और परमात्मा का दर्शन वैष्णव-मत की विशेषता है। वैष्णवों की कविता बहुधा प्रणय की कविता-जैसी जान पड़ती है। और उन लोगों के लिये, जिन्हें वैष्णवों के मत से पूरा परिचय नहीं है, यह प्रणय-कविता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही मानवी वासनाओं को

पुण्य एवं दिव्य रूप में देखना वैष्णव-मत की सबसे बड़ी विचित्रता है।

वैष्णवों के ग्रन्थों को समझने के लिए परकीय रस को समझ लेना बहुत आवश्यक है। यह है पर-स्त्री का पूजन। ऐसा भाव हिन्दुओं को पाप-मय और जघन्य जान पड़ेगा; पर बंगाल में इसमें आध्यात्मिकता कुछ इस प्रकार मिश्रित हो गई है कि लोग इन प्रणय-विषयक गीतों को धार्मिक स्तवों से किसी प्रकार कम नहीं मानते। इस भाव की उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जा सकती है। भारतवर्ष में जहाँ अन्तःपुर का द्वार बाहरी दुनिया की आँखों में सर्वदा बन्द रहता है और जहाँ स्त्रियों को असूर्यम्पश्या नाम का गौरव मिलता है, स्त्री-पुरुषों का स्वच्छन्द मेल-जोल किसी प्रकार नहीं हो सकता। पर मानव-प्रकृति सर्वत्र एक-सी है और कठिन से कठिन सामाजिक विधान भी व्यक्तिगत वासना और प्रेम को नहीं दबा सकते। बाहर से जितना ही दबाव हम डालते हैं, उतने ही ज़ोर से प्रताड़ित प्रणय फूटकर व्यक्त होना चाहता है। हमारे देश में अन्ध दैव दो अजान स्त्री-पुरुषों को एक साथ बाँधकर जन्म भर की भक्ति और प्यार की प्रतिज्ञा करवाता है। पर जब दोनों के सहवास में न विचित्रता रहती है, न कविता; उस समय भी विवाह-सम्बन्धी शास्त्रोक्त आदर्शों की थोथी युक्ति से उन्हें बाँधे रखने की चेष्टा की जाती है। बहुधा यह चेष्टा सफल हो जाती है; पर जहाँ वासना गहरी हो जाती है, शास्त्र भी उसे रोक नहीं सकते और वह दबाव डाले हुए कल के पानी के समान ज़ोरों से फूट पड़ती है।

इस परकीय रस के कारण कितनी ही कठिनाइयाँ आती हैं। प्रेमी और प्रेमिका को मिलने का मौक़ा बहुत कम मिलता है। अतएव उनकी विरह-दशा में अनूठी स्वप्न-भावनायें जागती रहती हैं। इस दशा को वैष्णवों ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है—नायिका कहती है—"आमार नामेर एकटि आखर पाइले हरसे लेय।" अथवा—"पदचिह्न चुम्बये कारा"

अथवा चण्डीदास के शब्दों में "परसङ्गेनाम शुनि दखये हिया, पुलक ढाकिते नाना करे परकार" अथवा "बिधुर निकट नेत्र पंच पंचवाण, नवहुँ नवहुँ रस इह परिमाण ।"

जहाँ ऐसी भावना जाग्रत होती है, और प्रेमी-प्रेमिका सच्चरित्र व्यक्ति होते हैं, सामाजिक वन्धन को तोड़ते तो नहीं, पर वासना-मय प्रेम के स्थान पर एक Romantic प्रणय जाग्रत हो जाता है। प्रणय की कविता अधिक गम्भीर हो जाती है। और प्रणयी एक दूसरे के लिए महान् से महान् त्याग करने को प्रस्तुत हो जाते हैं । सामान्य जीवन में यह निःस्वार्थ प्रेम परमात्मा के प्रति ठीक भक्त की आत्मा की प्यास से मिलता-जुलता है। अपने भाव की पवित्रता, भक्ति और त्याग के कारण वह प्रेम आध्यात्मिक हो जाता है। इसी कारण बंगाल में वैष्णव-धर्म्म ने परकीय रस को ईश्वर-प्रेम का द्योतक माना है। राधा चरवाहे कृष्ण को प्यार करने लगती है। पर राधा और कृष्ण साधारण मनुष्य नहीं हैं, आत्मा और परमात्मा हैं। इस कथा से सारी गन्दगी निकल जाती है और यमुना-तट पर अभिनीत नाटक में केवल स्तव की पवित्रता रह जाती है।

इस भाव का बंगाल में जयदेव ने प्रचार किया था। पीछे से चण्डीदास और विद्यापति ने इसे परिवर्द्धित और भूषित किया और अन्त में चैतन्यदेव ने इसे आध्यात्मिकता से सराबोर कर डाला।

वैष्णव-काल को दो भागों में बाँट सकते हैं—चैतन्य के पूर्व और पश्चात् का काल। पूर्वकाल के कवि हैं चण्डीदास तथा विद्यापति। ये दो तो इतने महान् हैं कि प्रत्येक के विषय में अलग-अलग विचार करना आवश्यक है।

चण्डीदास

चण्डीदास के गान का विषय है प्रेम। सर्वथा संस्कृत-रूप में जिस प्रकार वैष्णवों की कवितायें विभक्त की जाती हैं, राधा और कृष्ण-विषयक

चण्डीदास के गान भी उसी प्रकार विभक्त हो सकते हैं। गानों के प्रधान विषय हैं पूर्व-राग अर्थात् प्रेम का प्रभाव, दौत्य अर्थात् प्रेम का सन्देश, अभिसार अर्थात छिपे रूप से प्रेमी के पास जाना, सम्भोग, मिलन अर्थात् प्रेमियों का मिलन, माथुर अर्थात् कृष्ण का मथुरा जाना और भाव-सम्मिलन अर्थात् आत्मा के द्वारा प्रेमी से मिलना इत्यादि।

कृष्ण वैष्णवों के आराध्य देव हैं; ये ईश्वर के अवतार हैं। मानवी आत्मा ही राधा है। वैष्णवों के लिये प्रेम ही ईश्वर है। प्रेम के वात्सल्य-भाव, सख्य-भाव, दास्य-भाव तथा शान्त-भाव सभी में वे ईश्वर ही की विभूति देखते हैं। परन्तु सबसे उत्कृष्ट प्रेम, जिसमें ईश्वर अपने को पूर्ण-रूप से प्रकट करता है, वह मधुर-भाव अर्थात् स्त्री और पुरुष का प्रेम। चण्डीदास ने इसी मधुर-भाव को अपने पदों तथा कविताओं में गाया है।

चण्डीदास के पूर्व-राग में कृष्ण राधा के सामने स्वर्गीय कल्पना के रूप में प्रकट होते हैं। राधा को उनके स्निग्ध श्यामल वर्ण की एक झलक मिलती है और उस पर जादू का-सा प्रभाव पड़ता है। वह अकेली ध्यान-मग्न बैठ जाती है। कवि उसकी दशा का गान करता है—

राधार कि हैल अन्तर व्यथा।
से ये बसिया एकले, थाकये विरले
ना शुने काहार कथा।
सदाइ धेयाने, चाहे मेघपाने
नाचले नयनेर तारा।
विरति आहारे, राङ्गा बास परे
येमन योगीनो - पारा।
एलाइवा वेणी, फूलेर गाथुनि
देखये खसाये चलि।

आकुल नयने, चाहे मेघपाने
कि कहे दुहात तुलि।
एक दिठि करि, मयूर-मयूरी
कण्ठ करे निरक्षणे।
चण्डिदास कय, नव परिचय
कालि बँधुर सने।

चण्डीदास की कविता में मानव-हृदय के सारे मनोभावों का चित्र है। विदाई के समय की वेदना, अनोखे अवसरों पर छिप-छिपकर मिलने का आनन्द, ऐसे मिलन के लिये विचित्र युक्तिऔर प्रबन्ध आदि सभी को कवि ने सीधे-सादे रूप से वर्णन किया है। इन वर्णनों में प्राचीन कवियों या व्यर्थ के अलङ्कारों से सहायता नहीं ली गई है। बड़ी सरल भाषा में कवि ने गभीर से गभीर वासना को इतनी सफलता के साथ व्यक्त किया है कि हमें आश्चर्य्य हुए बिना नहीं रहता। परन्तु सबसे बड़ी बात तो उनकी कविता में है उनका अनूठा वस्तु-तंत्र (Realistic) वर्णन। प्रत्येक पंक्ति आँखों के सामने अपरूप सौन्दर्य्य से भरी एक-एक प्रतिमा ला देती है, जिसमें कहीं भी धुंधलापन नहीं है। ऐसे चित्रों में हम अपनी भावना का प्रतिबिम्ब पाते हैं। राधा और कृष्ण के मिलन का अकथनीय भाव हमें याद दिलाता है अपने यौवन के प्रभात के प्रेम की, जिस समय हम अनन्त प्रेम को पाकर उसकी गहराई में डूब जाते हैं। राधा और कृष्ण का गुप्त मिलन ठीक हमारे ही जीवन की घटनाओं का वर्णन है। यही स्वाभाविकता चण्डीदास की कविता को लोक-प्रिय बनाती है।

कृष्ण आते हैं स्त्री-वैद्य के रूप में राधा के हाथों का स्पर्श करने; जादूगर के रूप में राधा की एक झलक पाने; नाइन के रूप में राधा से कुछ देर बातें करने; अथवा आशीर्वाद देनेवाली ब्राह्मणी के वेष में राधा के कानों में प्रणय का एक शब्द कह देने।

राधा भी इसी प्रकार कृष्ण से मिलती है। इनके वर्णनों में कभी पुरातन कवियों के कलुषित अलङ्कारों का बिल्कुल ही व्यवहार नहीं हुआ है। उनकी आडम्बर-हीन भाषा भी गंभीर वासना को व्यक्त कर सकती है। यहाँ उनकी कविताओं के कुछ अंश नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(क) एमन पीरिति कभु देखि नाइ शुनि।
पराणे पराण बाँधा आपने आपनि॥
दुँहु कोरे दुँहु काँदे विच्छेद भाविया।
आध तिल ना देखलि याय ये मरिया॥
जल बिनु मीन जनु कबहुँ ना जीये।
मानुषे एमन प्रेम कभू ना देखिये॥
भानुकमले बलि सहे हेन न हे।
हिमे कमल मरे भानु सुसे रहे॥
चातक जलदे कहि से नहे तुलना।
समय ना हइले ना देय एक कणा॥
कुसुम मधुपे कहि सेह नहे तुल।
ना आसिले भ्रमर आपनि ना जाय फूल॥
कि छार चकोर चाँद दुँहु सम नहे।
त्रिभुवने हेन नाहि चण्डिदास कहे॥

(ख) एमन पीरिति कभु देखि नाहि शुनि।
निमिखे मान ये दूर कोरे दूर मानि॥
समुखे राखिया करे बसनेर बा।
मुख फिराइले तार भये काँपे गा॥
रजनी प्रभात हैले कातर हियाय।
देह छाड़ि येन मोर प्राण चलि याय॥
से कथा कहिते सइ बिदरे प्राण।
चण्डीदास कहे धनि सब परमाण॥

(ग) आमि याइ आमि पाइ बले तिन बोल ।
कतना चुम्बन देइ कत देइ कोल ॥
पद अधियाथ पिया चाय पलटिया ।
बयान निरखे कत कातर हइया ॥
करे कयधरि पिया शपथि देय मोरे ।
पुन दरशन लागि कत चाउ बले ॥
निगूढ़ पोरिति पियार आरति बहु ।
चण्डीदास कहे हियार माझारे रहु ॥

पर वह प्रेम की गभीरता में अपने को खो नहीं देता । मुक्त होकर वह अतीन्द्रिय राग भी आलाप सकता है, जो दिव्य-स्तोत्र की तुलना करती है ।

यथाः—

बधू तुमि से आमार प्राण ।
देह मन आदि, तोँहारे सँपेछि
कुल शील जाति मान ।
अखिलेर नाथ, तुनि हे कलिया
योगीर आराध्य धन ।
गोप गोआलिनी हाम अति दीना
ना जानि भजन-पूजन ।
पीरित सागर, ढालि तनुमन
दियाछि तोमार पाय ।
तुमि मोर गति तुमि मोर पति
मन नाहि आन भाय ।
कलङ्की बलिया डाके सब लोक
ताहाते नाहिक दुःख ।
तोमार लागिया कलङ्केर हार
गलाय परिते सुख ।

सती बा असती तोमाते विदित
भाल मन्द नाहि जानि।
कहे चण्डीदास पाप-पुण्य मम,
तोमार चरण खानि।

इसी राग में उस प्रेम के पुजारी ने, जिसने नीच धोबिन के प्रेम को भी गायित्री के समान पवित्र माना, राधा और कृष्ण के विषय में कितने ही गीत गाये, वे सभी नैसर्गिक सौन्दर्य्य से ओत-प्रोत हैं।

विद्यापति

विद्यापति की भी चण्डीदास ही की जैसी कविता होती थी। उपमा आदि के चमत्कार में, शब्दों के व्यवहार में, कल्पना की उच्च दौड़ में विद्यापति भाषा के सभी कवियों को छाया में डाल देते हैं। प्रकृति की सन्तान चण्डीदास इन बातों में उनकी तुलना नहीं कर सकते। सामान्य पाठक मैथिल कविको चमत्कार उक्तियों से मुग्ध हो जायगा; पर हृदय के गभीरतर भावों को व्यक्त करने में वे चण्डीदास से बहुत पीछे रह जाते हैं। विद्यापति के सुन्दर शब्द और अनोखी कल्पना में हम कौशल अधिक पाते हैं, प्रतिभा कम। पर कभी-कभी वे भी चण्डीदास की बराबरी कर लेते हैं और सफलतापूर्वक। पूर्वराग, सम्भोग-मिलन, अभिसार और मान में विद्यापति कवि हैं, पर द्रष्टा नहीं। उनकी आरंभिक कविता में आध्यात्म तो कम, पर इन्द्रिय-लिप्सा अधिक व्यंजित होती है। वे पुरानी, एक चुटकुली और उपयुक्त उपमा के लिये। कविता के सारे शास्त्र छान डालेंगे। पिङ्गल-शास्त्र का ज्ञाता होने के कारण इस प्रकार अलङ्कारों को सजाने में वे चूकते नहीं। यथा,राधा की आँखों की उपमा वे देते हैं कमल से—भौंरे से। यह बड़ी साधारण और भावहीन उपमा है, पर वह उसे कुछ ऐसे ढंग से कहेंगे कि यह घिसी हुई उपमा भी जगमगा उठेगी। यथा राधा की चंचल आँखों के विषय में—

जनु इन्दीवर पवने ठेलिल, अलि भरे उलटाय।

अथवा प्रेम-मग्न आँखों के विषय में—

लोचन जनु थिर भृङ्ग आकार।
मधुमातल किये उड़इ न पार॥

अथवा सद्यःस्नात राधा की लाल आँखों के विषय में—

नीरे निरञ्जन लोचन राता।
सिन्दुरे मण्डित जनु पङ्कज पाता॥

भारतीय कवि आँखों की उस भङ्गी का जो प्रेमी के पास प्रणय का सन्देश भेजती है, वर्णन करते कभी नहीं थकते। विद्यापति भी बड़े अनुभव से कहते हैं—

अंचल नयन बङ्क नेहारणी।

कवि राधा की वयःसन्धि से आरम्भ करता है। कवि ने इसका अपरूप वर्णन किया है। वह कभी बच्चे की सी चंचल गति से चलती, तो कभी लजाकर गंभीर भाव से युवती की नाईं चलती है। इसी प्रकार वह कभी स्वच्छन्द शिशु-सी हँसती है; पर शीघ्र ही युवती की मुसकान धारण कर लेती है। अपने सौन्दर्य से वह स्वयं आश्चर्य्य में पड़ गई है।

विद्यापति की राधा सौन्दर्य की एक अनुपम सृष्टि है। वह सदेह स्वप्न है। जहाँ उसका पद-स्पर्श होता है,कमल खिल जाते हैं। उसकी मुसकान आग बरसाती है और उसकी आँखें पाँच बाण नहीं, हज़ारों बाण छोड़तीं हैं। वह थोड़ा-सा परिवर्त्तन कर देने पर रवीन्द्रनाथ की उर्व्वसी ? के रूप में परिणत हो सकती है।

जब वह अभिसार को जाती है, कवि उसके चारोंओर उपमाओं का एक अरण्य खड़ा कर देता है। हमारे हृदय की राधा उसमें बहुत कुछ छिप जाती है; पर उसका ईषद्दर्शन भी अनुपम सौन्दर्य्य बरसाता है। इन वर्णनों में पुरातन ग्रन्थों के घिसे हुये अलङ्कार भार-स्वरूप हो उठे हैं। कवि उसे कहता है—दामिनी निर्मित प्रभा की यष्टि। उसके शिथिल कुन्तल को

कवि बादल अथवा भौंरे की श्यामता देता है,पर सुकुमारता और बङ्किमता की उपमा देता हैं शैवाल से।

राधा का प्रथम मिलन अकथनीय विषय है। वह मिलन इतना सुकुमार है कि लज्जारुण राधा कृष्ण को अपने पास पाकर कुछ नहीं कह सकती है। इस मिलन का अव्यक्त भाव रवीन्द्रनाथ के 'अव्यक्त-प्रेम' शीर्षक सुकुमार कविता को पढ़नेवाले समझ सकेंगे। राधा बाद को अपनी लज्जा को कोसती है और थोड़े ही समय के बाद दूसरे सर्ग में हम उसे सखियों के साथ कृष्ण के मिलन के लिये की गई कौशल-पूर्ण युक्तियों का वर्णन करती हुई पाते हैं।

इन वर्णनों में, जैसा कहा जा चुका है, कामुकता इतनी भरी हुई है कि उसे कोई भी धार्मिक-गान कहने पर राज़ी न होगा। पर अन्तिम सर्ग में कवि इन सब से ऊपर उठ जाता है और सारे पदों को आध्यात्मिकता से ढक देता है। इसका उदाहरण दिया जाता है। राधा के लिये कृष्ण हैं मस्तक पर रखने के लिये फूल, गले में धारण करने के लिये माला। कृष्ण के बिना वह जीने की कल्पना भी नहीं कर सकती। इस प्रकार वह अपने को प्रणय में बिलकुल मग्न पाती है। पर कृष्ण को सब कुछ कहकर भी वह उन्हें पा न सकी। अपनी आत्मा का पूर्णदान देकर भी राधा कृष्ण के रहस्य को नहीं पाती। अन्तिम पंक्ति में हठात् वह चिल्ला उठती है—"तुहुँ कैछ माधव कहबि मोय"। यह वेदनापूर्ण पुकार "तुहुँ कैछ माधव कहबि मोय" सर्वथा आध्यात्मिक है। यह क्षुद्र की विशाल के सम्मुख गम्भीर वेदना-पूर्ण उक्ति है।

माथुर गान में कवि कृष्ण के गोकुल-त्याग पर कितनी सुकुमार वेदना की सृष्टि करता है—

> हरि कि मथुरापुर गेल। अब गोकुल शून्य भेल।
> रोदिति पिञ्जरे शुके। धेनु धाय माथुर मुखे।

अवसइ यमुनारि कूले। गोप गोपी लाह्वि बुले।
कैछन पाउब यमुनार तीर। कैछे नेहारब कुञ्जकुटीर॥
सहचरी सह याहां कमल कुलसेरि। कैछने जीयब ताहि नेहारि।

सहेलियाँ कृष्ण के आने की दिलासा देती हैं। उत्तर में राधा कहती है—

हिमकर किरण नलिनी यदि जारब, कि करब माधवी मासे।
अङ्कुर तपन तापे यदि जारब, कि करब वारिद सेहे।
सिन्धुनिकट यदि कण्ठसुखाउब, को दूर करब पियासा।
चन्द अतरु यदि सौरभ छोड़ब, शशधर बरखिब आगी।
कि मोर करम अभागी।
श्रावण माह घन बिन्दु न बरखब, सुरतरु बाँझ कि छन्दे।
गिरिधर सेवि, ठाम नाहि पाओबे, विद्यापति रहु धन्दे॥

मृत्यु भी निकट है। राधा की उक्ति कितनी करुण हो उठती है—

मरिब-मरिब सखि, निचय मरिब,
कानु हेन गुणनिधि कारे दिये याब।
तोमरा यतेक सखी आछ मभु सङ्गे।
मरणकाले कृष्ण नाम लिख आमार अङ्गे॥
ललिता प्राणेर सखि मन्त्र दिह काणे।
भरादेह पड़ि ये न कृष्ण नाम शुने॥
ना पुड़िओ राधाअङ्ग ना भाषाइओ जले।
मरिले बाँधिया रेख तमालेर डाले॥
सेइ त तमाल तरु कृष्ण वर्ण हय।
अविरत तनु मोर तारे ये न रय॥
कबहुँ से पिया यदि आसे वृन्दावने।
पराण पायब हाम दिया दरशने॥
अवणहु श्याम नाम करु गान।
शुनइते निकसउ कठिन पराण॥

चण्डीदास और विद्यापति के विषय में कहा जा सकता है कि एक प्रकृति से प्रेरित होकर गाता है, उसकी पुकार है आत्मा की गहराई से; साहित्यिक अलङ्कार का वहाँ ध्यान नहीं है। वहाँ प्राकृतिक निर्झर की नाईं, कविता बहती है, उसमें पार्थिव कुछ भी नहीं है। दूसरा है सावधान कवि, विज्ञ पंडित, जिसकी उपमायें चमत्कार-पूर्ण होती हैं। वे कान को मुग्ध कर लेती हैं और प्रत्येक पंक्ति में जो चित्र जाग उठता है वह आँखों को भी चकित कर देता है। वासना और कामुकता के साथ आध्यात्मिकता का मिश्रण स्वर्ग और मर्त्य के मिलन के जैसा हो उठा है। चण्डीदास स्वर्ग के पक्षी हैं, जहाँ पार्थिव सौन्दर्य तो कम है पर स्वर्ग की शीतलता अधिक। पर विद्यापति दिन भर पृथ्वी के निकट सुन्दर-सुन्दर स्थानों पर मँडराते और साँझ को ऊपर उठकर अपने साथी को छू लेते हैं।

चैतन्य के पश्चात् के कवि

इस काल के प्रधान कवि हैं वृन्दावनदास, ज्ञानिदास, बलरामदास, आदि। इन्होंने प्रधानतः चैतन्यभागवत, चैतन्यचरितामृत, चैतन्य-मङ्गल आदि चैतन्य की जीवनी-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं। उन ग्रन्थों को कोई भी जीवनी अथवा इतिहास कहना नहीं चाहेगा; क्योंकि उनमें स्वाभाविकता से सम्बन्ध कम रखा गया है। भक्ति के आवेश में कवियों ने चैतन्य को अवतार मानकर उनके चरित को कृष्ण के समान बनाना चाहा। हाँ, उनमें कुछ सत्य भी है। पर उनको साहित्य में उतनी प्रधानता नहीं दी जा सकती।

इन कवियों के अतिरिक्त कितने ही पदकर्त्ता हुए, जिनकी कवितायें आज भी बङ्गाल में गाई जाती हैं। उनमें विद्यापति अथवा चण्डीदास की जैसी कुछ भी विशेषता नहीं है। वे उन्हीं के आदर्श पर कविता करते थे, अतएव उनके विषय में कुछ अधिक कहना नहीं है।

वैष्णवों का प्रणय-साहित्य एक अनुपम भण्डार है। यह प्रेम के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों तथा लक्षणों का वर्णन करता है। पूर्व-राग अर्थात् प्रेम का प्रभात इतने भागों में बँटा है—यथाः—वयःसन्धि, सख्युक्ति, चित्रपट-दर्शन, स्नान-काल में दर्शन, दौत्य आदि। तब आता है अभिसार, मान, कारणमान, मिलन, वासक-सज्जा, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहन्तरिता, आक्षेपानुराग, रूपोल्लास, प्रेमवैचित्र्य, माथुर, सम्भोग-मिलन, वात्सल्य-गोष्ठ, नौका-विहार, सौख्य आदि और भी। भक्ति रत्नाकार में तो प्रेम के ३६० लक्षण बतलाये गये हैं और उनमें प्रत्येक विषय पर अनुपम कवितायें वैष्णव-साहित्य में भरी पड़ी हैं।

वैष्णव-साहित्य विचित्र साहित्य है। उसमें मानव-हृदय के वासनापूर्ण प्रेम का वर्णन तो है; पर उसका द्वार सर्वदा स्वर्ग की ओर खुला रहता है। स्त्री-पुरुष के बीच के प्रेम का वर्णन पढ़ते-पढ़ते पाठक अपने को बीच-बीच में स्वर्ग की हवा में साँस लेते पाते हैं। जान पड़ता है, जैसे वह किसी नदी के समुद्र-सङ्गम पर खड़े हों; पीछे से नदी आती है, दूर में है विविध शोभामयी पृथ्वी, वहाँ सुन पड़ता है मानव-कण्ठों का धीमा स्वर; पर आगे की ओर बिछा है विस्तृत सागर, अनन्त, अकूल; जिसका अन्त दूर स्वर्ग की ओर होता है।

यह साहित्य तो कविता की एक खान ही है। यह पुराने लेखकों की शैली से स्वतन्त्रता की साँस लेता है। यहाँ के कवि प्राचीन रूढ़ियों का अनुकरण नहीं करते; वे जीवन के साधारण पदार्थों के सहारे अपनी कविता को भूषित करते हैं।

शैली ही की नाईं सामाजिक जीवन के चित्रण में भी हम वही स्वतन्त्रता पाते हैं। हिन्दुओं के काव्य-शास्त्रों में स्त्रियों के सतीत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है, पर वैष्णव-साहित्य निश्चिन्त राधा को

सतीत्व-बन्धन तोड़ती हुई देखता ही नहीं बल्कि उसकी स्वतन्त्रता का गान गाता है ।

आधुनिक काल

प्रारम्भिक काल

बँगला-साहित्य का आधुनिक-काल स्थूल रूप से १९वीं सदी के साथ आरम्भ होता है । १९वीं सदी का पूर्वार्द्ध बँगला-भाषा में आधुनिक युग की सूचना देनेवाला था । उस समय कोई वैसे विख्यात कवि नहीं हुए और तत्कालीन काव्य-साहित्य के ऊपर एक महान् युग के बाद आनेवाले अनुकरणशील-काल की छाया है । वैष्णवों ने गम्भीर से गम्भीर मनोभावों को सीधे-सादे शब्दों में गाया है । अतएव वैष्णवों के बाद के आनेवाले कवियों के लिये कोई गम्भीर विषय नहीं रह गया । लोग आत्मा की गहराई में रुद्ध-श्वास हो उठे थे; उन्हें अब आवश्यकता कुछ पार्थिव मनोरञ्जन की, कुछ चुटकुलों, कुछ श्रुति-मधुर-गान की थी, जहाँ वे मस्तिष्क तथा हृदय के उत्पीड़न से मुक्त हो सकते । अतएव तत्कालीन कवियों ने अपने पूर्वज वैष्णवों ही के विषय को कृत्रिमता से जगमगाकर जनता के सम्मुख उपस्थित किया । भारतचन्द्र, नवीनचन्द्र सेन, हेमचन्द्र आदि कवियों ने आत्मा की कोई गहरी अनुभूति व्यक्त न की । उन्होंने अपने विषय की दरिद्रता को अलङ्कारपूर्ण आडम्बर से छिपाने की चेष्टा की । कुछ दूर तक वे सफल हुए ; फलतः कविता-शिक्षकों और दरबारियों की सृष्टि हो गई । राज-सभाओं के भ्रष्ट स्वाद के साथ-साथ कविता में चतुर कुटनियाँ, पापमय प्यार की भ्रष्ट कथायें, पङ्गु उपमाओं की बनावटी झनकार आदि उतरने लगी । इस काल का प्रतिनिधि ग्रन्थ है भारत-चन्द्र-विरचित अन्नदा-मङ्गल । यहाँ अन्नदादेवी पापमय प्रेम की सफलता के लिये आहूत होती हैं । हीरा मालिन जैसी कुटनियाँ अपना षड्यन्त्र रचती हैं और

तत्कालीन कवि अपनी कविता की झनकार में इन्हें छिपाने की चेष्टा करते हैं।

इस प्रकार रूप और रय दोनों की दृष्टि से कविता पतित होरही थी। लोगों ने कल्पना की ऐसी उड़ान की, कि उनकी रचना संस्कृत प्रमन्तता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कही जा सकती। हीरा मालिन और विद्या ब्राह्मणी के पाप-प्रेम में जघन्य सहायता पहुँचाने से रय पङ्किल हुआ।

इस प्रकार कविता में प्राण न रहा; पर आँखों को ठगने के लिये उसमें कौशल-पूर्ण अलङ्कार, साजसज्जा आदि भरे गये। यद्यपि हमें किसी भी स्रष्टा का दर्शन नहीं मिलता, पर कविता को वाह्य सौन्दर्य्य से भूषित करने वाले अनेकों कुशल शिल्पी मिलते हैं। कवि चित्रकार बन गये थे। उन्हें जीवन में सन्देश पहुँचाना न था, उन्हें रूप का निर्म्माण करना था। उन्होंने अपनी सृष्टियों को इस प्रकार रँग डाला कि वे पीछे लुप्त सी होगईं। उनकी कवित्व-शक्ति नैसर्गिकता से सारा सम्बन्ध विच्छिन्नकर भ्रष्टवृत्ति पण्डितों को ख़ुश करने के लिये कृत्रिमता तथा अतिशयोक्ति की सहायता लेने लगी।

पर कोई भी युग पूर्णतः पतित नहीं हो सकता। इस काल की कृत्रिमता को भेदकर रामप्रसाद जैसे साधकों ने अपनी गभीर अनुभूति भी व्यक्त की थी। इनकी भाषा है सीधी, पर सजीव। इनकी कविता में प्राण है।

इस प्रकार इस युग के पूर्व्वार्ध पर हमें वैष्णवों की ही भ्रष्ट छाया मिलती है; पर श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर के आविर्भाव के साथ हमें अपने काल की भी कुछ-कुछ झलक मिलने लगती है। द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर का स्वप्न-प्रयाण आधुनिक युग का सच्चा सूचक है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आगमन के साथ बङ्ग-साहित्य में एक नया युग आरम्भ होता है। उनके दीर्घ जीवन में उनकी लेखनी से कविताओं

की कुछ ऐसी बाढ़ आ पड़ी है कि उसमें बँगला-साहित्य डूब-सा गया है। सर्वत्र रवीन्द्रनाथ ही की कविता का प्लावन है। प्रतिभावान् पुरुषों का एक बड़ा विषाद-जनक परिणाम यह होता है कि बहुधा वे अपने समीप के मस्तिष्क को मौलिक-रूप से बढ़ने के लिये प्रकाश देने के बदले उन्हें अपनी तीक्ष्णता से जला देते हैं। विशाल सूर्य्य की नाईं वे उन्हें अपने कक्ष पर स्वच्छन्द चलने देने के बदले अपना उपग्रह बनाकर अपनी ही परिक्रमा करना सिखलाते हैं। रवीन्द्रनाथ भी इस नियम के प्रतिकूल नहीं हैं। उनकी प्रशस्त प्रतिभा ने समकालीन कवियों की मौलिकता मिटाकर उन्हें छोटा-छोटा रवीन्द्रनाथ बना डाला। इस प्रकार लगभग आधी सदी तक बँगला-कविता का इतिहास रवीन्द्रनाथ ही की कविता का इतिहास हो उठा है। इस समय अन्यान्य लेखकों की शायद ही कोई नवीन दृष्टि हो, नहीं तो सभी रवीन्द्रनाथ की दृष्टि से देखते और अनुभव करते हैं।

इस प्रकार एक विशाल रवीन्द्र-साहित्य का निर्म्माण तो हुआ; पर यह साहित्य अपने युग का प्रतिनिधि नहीं बन सका। अभी तक बँगला-साहित्य बङ्गाल के जीवन की अभिव्यक्ति था। उसमें बङ्गालियों के हृदय और प्राण की छटा थी; उसमें बङ्गदेश का सुख-दुख-मय समाज मुखरित था। उन कविताओं में हमें बङ्गाल का साकार रूप इस कारण मिलता है कि वे जातीय कवियों की कृतियाँ हैं। उनके लेखक जनता के बीच में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने जनता के हृदय को प्रयास-पूर्वक अध्ययन किया था। उनका अनुभव स्वच्छंदजात था; जनता का जीवन तो उन्हीं का जीवन था। अतएव उन कवियों की वाणी जनता के सुख-दुःख तथा उसकी आशा और सन्देह को नैसर्गिक रूप से व्यक्त कर सकती थी।

पर रवीन्द्रनाथ अभिजात कुल में उत्पन्न हुए हैं। इससे स्वभावतः उनका अनुभव अध्ययन से प्राप्त हुआ है; उनमें जनता के हृदय

की प्रत्यक्ष झलक नहीं आ सकती। सम्भव है कि अपनी अनुपम प्रतिभा के कारण वे बीच-बीच में जनता के हृदय से एकता स्थापित कर सकें; पर अधिकांश में उनकी कविता में उनका प्रयास-पूर्ण अध्ययन प्रत्यक्ष रहेगा ही। 'स्वर्ग हते बिदाय', कविता में वे भले ही बंगाल की निःस्वार्थ पूजा, प्रेम, आनन्द और उत्सव का वर्णन कर लें, 'दुई बिघा जमि' में वे भले ही बंगाल के पीड़ित कृषकों की वेदना व्यक्त कर लें, 'पुरातन भृत्य' और 'केष्टा बेटाइ चोर' में सेवकों के जीवन की व्यथा भले ही फूट पड़े; परन्तु इतनी ही अल्प कविता के कारण वे अपने युग के प्रतिनिधि नहीं हो सकते।

भारतवर्ष के जीवन में १९वीं तथा २०वीं सदी ने जो नयी-नयी समस्यायें पैदा कर दी है, लोगों में जो अनिश्चितता, अविश्वास, सन्देह आदि फैला दिया है, उसकी अभिव्यक्ति रवीन्द्रनाथ की कविता में नहीं है। वैदिक काल के युवक ने जिस अनिश्चितता का गान अपने "कस्मै-देवाय हविषा विधेम" में किया है, वह एक सर्वजनीन विषय है और एक युग की अनिश्चितता को भाषा प्रदान करता है। रवीन्द्र की वाणी में अपने युग की समस्याओं, शङ्काओं आदि का प्रस्फुटन कहीं दीख नहीं पड़ता; यदि पड़ता भी है तो बहुत कम। इसी कारण रवीन्द्र अपने युग के प्रतिनिधि कवि नहीं हैं; वे यदि प्रतिनिधि हैं तो उपनिषद्काल के, जिसका साहित्य बँगला-भाषा में नहीं है।

रवीन्द्रनाथ हैं एक विराट् लेखक। ऐसी दशा में उनके विषय में कुछ कहना सहज नहीं है। परन्तु यदि हम पूर्ण नम्रता के साथ उनका अध्ययन करें तो उनके विषय में कुछ-कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

रवीन्द्रनाथ की प्रारम्भिक कवितायें, जैसे "पुरातन भृत्य", "येते नाहि दिब" आदि जीवन के सर्वजनीन विषय को लेकर लिखी गई हैं। उनमें जिन छोटे-छोटे विषयों का समावेश है, वे सभी भाव से भरे हैं। कवि ने अपनी उन कविताओं को स्पष्ट कर दिया है और पूरी सफलता के साथ।

उनमें न कुछ दुर्बोध्य है और न अस्पष्ट। पाठक सहज ही कवि के भावों को समझकर इन छोटे-छोटे विषयों में भी कविता का जो दर्शन प्राप्त करता है, उससे वह मुग्ध हो जाता है। कवि वहाँ कितने हो हृदयों को आन्दोलित कर देता है। इन लौकिक कविताओं में कवि ने अपरूप सफलता पाई है। कवि जितने ही अधिक हृदयों को प्रभावित कर सकता है, उतना ही वह सफल समझा जाता है। तुलसीदास लाखों व्यक्तियों के हृदय पर अपना प्रभाव डालते हैं, अतएव वे महाकवि हैं। रवीन्द्रनाथ भी इन प्रारम्भिक कविताओं से कितने ही हृदयों को प्रभावित करते हैं; अतएव इन कविताओं में वे स्पष्टतया महाकवि के रूप में दीख पड़ते हैं।

पर यह उनका एक ही पहलू है। उनकी कविता अनतिकाल ही में आध्यात्मिक होने लगती है और उसके साथ-साथ उसमें अस्पष्टता आती है। इन कविताओं में कवि "मनीषी और स्वयम्भू" तो हैं पर सबसे प्रधान 'परभू' नहीं हैं। तात्पर्य्य यह है कि कवि ने जहाँ अपनी कविता भाव-प्रधान बनाई, उसी क्षण से उनकी कविता-श्वास उनके ही हृदय की छाया बन जाती है। उसमें वह विशालता, वह उदारता नहीं रहती कि वे समष्टि-रूप से हमारे मनोभावों को व्यक्त करें। गीताञ्जलि के गानों में जहाँ वे कहते हैं—

'वैराग्यसाधने मुक्ति से आमार नय'

अथवा

'सकल अभिमान हे आमार वुचाओ चोखेर जले'

वहाँ वे हम साधारण जनता पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालते। इसका अर्थ यह नहीं कि कवि की प्रतिभा मन्द पड़ गई है, अथवा इन गानों का मूल्य ही नहीं है। ऐसा समझना मूर्खता होगा। मूल्य इन गानों का है और बहुत है। पर यह है विशेष श्रेणी के पाठकों के लिये ही। वह श्रेणी बहुत बड़ी नहीं है; अतएव रवीन्द्रनाथ की कविता में पूरी सर्वजनीनता नहीं है।

कवि ने अपने आध्यात्मिक गानों में विशेष मनोभाव के चिरन्तन सत्य को व्यक्त किया है। उन्होंने जिस आध्यात्मिक अवस्था में पहुँचकर उन गानों को रचा है, उसी आध्यात्मिक अवस्था में पहुँचने पर कोई उन्हें समझ सकता है। साधारण पाठक के जीवन में एक ही दो बार ऐसा अवसर आ सकता है, जब वह बिना भूमिका के रवीन्द्रनाथ के गानों का महत्व भली भाँति उपलब्ध कर सके।

कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ के गान यदि आध्यात्मिकता से इतने ओत-प्रोत हैं कि साधारण पाठक उन्हें नहीं समझ सकते, तो इसमें दोष महाकवि का नहीं है, वरन् पाठकों का है। यह तर्क कुछ अंशों में सत्य भी जान पड़ता है। परन्तु साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि यद्यपि हम कवि को अपनी ऊँचाई से उतर कर, अपने समझने के योग्य कविता लिखने को नहीं कह सकते, तौ भी इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि कवि चित्रकार की नाईं हमें काफ़ी सङ्केत देदे कि हम स्वयं उसको समझ सकें। मिल्टन सम्पूर्ण रूप से आध्यात्मिक था; पर उसने अपने को व्यक्तिगत सङ्कीर्णता में नहीं, बल्कि रूपक की प्रशस्तता में व्यक्त किया था। प्रत्येक मानव-हृदय का भाव किसी न किसी अंश तक सभी मानव-हृदय का भाव है। जो तथ्य एक हृदय को गहरी तौर से हिला सकता है, वह प्रत्येक हृदय को कुछ न कुछ दूरतक हिला सकता है, क्योंकि मानव-हृदय सर्व्वदा एक है। परन्तु वह गंभीर भाव जबतक सङ्कीर्ण रूप में व्यक्तिगत बना रहता है, तब तक कभी सर्वजनीन नहीं हो सकता। रवीन्द्रनाथ के भाव उनके लिये गंभीर हैं और बहुल। प्रत्येक हृदय पर उनका प्रभाव पड़ना चाहिये अवश्य; पर उनकी कविताओं में एक कमी है, जो उन भावों को सर्वजनीन नहीं बनने देती। वह कमी है कवि की वातावरण-सृष्टि की उपेक्षा। यह आवश्यक नहीं है कि सभी पाठक सदेह उन परिस्थितियों में पहुँचें, जिनमें रवीन्द्रनाथ हैं, तब वे उनकी कविता समझ सकेंगे। मानव-हृदय इतना व्यापक है कि वह

बिना वास्तविक अनुभव के भी कल्पना ही के सहारे गहरी तौर पर तथ्यों की उपलब्धि कर सकता है।

परन्तु उसे कुछ ऐसे सङ्केत मिलने चाहिएँ जो उस परिस्थिति पर पहुँचने में उसे सहायता दे सकें। रवीन्द्रनाथ परिस्थिति को जाग्रत् करने के लिये कोई सङ्केत नहीं देते। हमारा हृदय संसार में मग्न है; पर रवीन्द्र-नाथ उसे--उस अप्रस्तुत हृदय को--गहन आध्यात्मिकता का गान सुनाते हैं। फल यह होता है कि उनका गान बच्चों के सामने दर्शन के प्रश्नों पर बहस के समान जान पड़ता है। इन गानों में अपनी ही भाषा और शब्द मिलते हैं। इनमें कोई विचित्र शब्दावली नहीं आती; किन्तु उस शब्दावली को मिलाकर पाठक कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकाल पाते।

रवीन्द्रनाथ को समझने के लिये हमें प्रयासपूर्वक उनकी आध्या-त्मिक उँचाई तक उठना होगा। हमें उस आध्यात्मिक छाया का आश्रय लिये बिना उनकी कविता का कुछ स्वाद नहीं मिलेगा। फलतः उनकी कविता हुई एक संकीर्ण श्रेणी के लोगों के समझने के लिये। उसमें सभों को ढक लेने भर की व्यापकता नहीं है।

एक बहुत बड़ा सत्य कविता के विषय में यह है कि हमारी आत्मा में कुछ द्विवधा हो, कुछ संघर्ष हो। आत्मा तभी जागकर अपनी विशा-लता का अनुभव करती है जब उसके सामने कोई कठिन समस्या आ पड़ती है। रवीन्द्रनाथ की कविताओं में प्रायः यह संघर्ष देखने में नहीं आता। वे बहुधा सन्तुष्ट रहते हैं धरातल के सौन्दर्य से; 'सोनार तरी' को देखकर। उनके देव आते हैं, आते हैं, आते हैं, इतने प्रत्यक्ष कि कवि की आत्मा शान्त होकर पड़ी-सी रहती है; उसमें वह आशङ्का नहीं है जो आत्मा को जगाकर निरीक्षण करने को बाध्य करे। क्या वह सचमुच आते हैं? कवि की यह निष्क्रियता उनकी कविता को गति और शक्ति से वञ्चित कर देती है। वह जड़ और गतिहीन हो जाती है।

इस निष्क्रियता के कारण कवि शायद ही गम्भीरतापूर्वक आन्दोलित होते हों। वह गम्भीरता उनमें आती ही नहीं कि वे अपने को उसमें लुप्त कर दें। इस कारण वह भाव उनका बिल्कुल अपना नहीं बनता।

मनोभावों का ताण्डव कवि के हृदय में नहीं होता है, वह होता है उसकी आँखों के सामने। कवि अपनी प्रतिभा के सहारे बाहर से उन मनोभावों का विश्लेषण कर उनका तथ्य ढूँढ़ता है, उनकी गहराई नापता है। यह साहित्यिक दूरता इनकी कविताओं में उच्छ्वसित हृदय की गर्म-गर्म भावनायें नहीं भरने देतीं; वे बासी, ठण्डी बनकर व्यक्त होती हैं। यही कारण है कि हमें उन भावनाओं में बेचैनी—जीवन का चिन्ह नहीं मिलता।

सच बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ कवि से अधिक दार्शनिक हैं। कविता का सम्बन्ध हृदय से है। रवीन्द्रनाथ के पद्यों में हम हृदय की प्रधानता नहीं पाते। उसमें सिद्धान्तों की प्रधानता पाते हैं। कदाचित् कवि दार्शनिक दृष्टि से विषयों का अध्ययन कर रहा है, विश्लेषण कर रहा है। इस उक्ति का बहुत बड़ा प्रमाण है रवीन्द्रनाथ की कविता में अधिकांश कल्पनाप्रसूत शब्दों का प्रयोग। हमारा हृदय मूर्तिमान् चित्र चाहता है; उसे कोरा सत्य नहीं, मूर्त्त सुन्दरता भी चाहिये। मूर्तिमान् शब्द हमारी आँखों के सामने कुछ चित्र खड़ा करते हैं, जो बरबस हमारे हृदय को मुग्ध करते हैं। मनःकल्पित शब्द केवल अमूर्त्त आत्मा है। उसमें केवल आध्यात्मिकता का दर्शन हो सकता है; हमारी इन्द्रियों को प्रसन्न करने की कोई वस्तु उसमें नहीं है। रवीन्द्रनाथ की कविता पढ़ने में हमें बहुधा अपने हृदय से हटकर मस्तिष्क की मरु-भूमि में घूमना पड़ता है, जहाँ न हरियाली है, न सौन्दर्य्य।

पर इन सब के होते हुए भी रवीन्द्रनाथ एक चतुर शिल्पी हैं। यदि सङ्गीत-प्रेम उनके भावों को लुप्त कर देता है, यदि दार्शनिकता कविता से

रस छीन लेती है, तो भी अपनी कुशलता से कवि बहुत अंशों में कविता को सुन्दर बना लेते हैं। बँगला में दीर्घ स्वर की कमी है; कोई परवा नहीं; रवीद्रनाथ शुद्ध देशज शब्दों के स्थान पर संस्कृत के सामासिक शब्दों का व्यवहार कर दीर्घ स्वर ढूँढ़ लायेंगे।

इसी प्रकार संज्ञा को क्रिया के समान और विशेषण को संज्ञा के समान व्यवहार करके वे भाषा में नवीनता ला देते हैं। वे बहुधा उपनिषदों की संश्लेषणात्मक शैली को भी बँगला में खींच लाते हैं और एक नये ढंग से बातें कह देते हैं।

अत्याधुनिक काल

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आधी सदी तक रवीन्द्रनाथ की छाया किस प्रकार पड़ती रही। परन्तु अत्याधुनिक काल में उनकी कविता के विरुद्ध विद्रोह हो रहा है, जिसके नेता हैं अक्षयकुमार बड़ाल, यतीन्द्र-मोहन बागची, कृष्णधन दे, कामिनी राय आदि। हाँ, आज भी दिलीप-कुमार राय जैसे छोटे-छोटे रवीन्द्रनाथ की कमी नहीं है, जहाँ कविता अस्पष्टता से बिलकुल मुक्त नहीं हो सकी है। पर अब इन गण्यमान लेखकों के द्वारा जो नयी कविता की सृष्टि हो रही है, उसमें स्वस्थता है, स्पष्टता है, गति है और शक्ति है।

वर्त्तमान युग में फिर कविता लौकिक होती जा रही है, जैसी मुकुन्दराम आदि कवियों के समय में थी।

लौकिक कविता का एक बहुत बड़ा गुण यह है कि वह दर्पण के समान किसी भी पाठक का भाव प्रतिबिम्बित कर सकती है। वह कविता सर्वजनीन होती है। रवीन्द्रनाथ के अध्यात्मवाद के विरुद्ध विद्रोह का यह पहला पहलू है। यह है उन प्राचीन कवियों की पुनर्जागृति, जिन्होंने बेहुला अथवा उमा के वर्णन में संसार की व्यथा छिपा दी थी।

वस्तुवाद के फल-स्वरूप कविता स्पष्ट होने लगती है। उसमें कहीं धुँधलापन या अनिश्चितता नहीं रहती। पर रवीन्द्रनाथ की कविता में जहाँ हमें अध्ययन से प्राप्त किये हुए भावों का उदाहरण मिलता है, वहाँ इन अत्याधुनिक कवियों की कृति में हम पाते हैं नैसर्गिक भाव। यहाँ वह साहित्यिक-दूरता नहीं है। यतीन्द्रमोहन बागची अपनी महती सहानुभूति के कारण अपने व्यक्तित्व को यहाँ तक भूल सकते हैं कि उनकी आत्मा 'अन्ध-बधू' की आत्मा हो जाती है। कृष्णधन दे अपनी अनुभूति में इतने गहरे डूबे हैं, कि उस समय उनका हृदय 'अपढ़ देहाती बधू' का हृदय हो जाता है; उनकी आत्मा में जाग्रत हो उठती है 'बन्ध्या नारी' की गंभीर व्यथा। यहीं प्रत्यक्ष दर्शन में प्राप्त आत्मानुभव रवीन्द्रनाथ की कुछ कविताओं ही में मिलता है। यह रवीन्द्रनाथ के विरुद्ध विद्रोह का दूसरा पहलू है। रवीन्द्रनाथ जहाँ दार्शनिक बनकर भावों के कारण गंभीर-भाव से आन्दोलित नहीं होते, वहाँ अत्याधुनिक कवि, कवि बनकर हृदय की गहराई में मग्न हो जाते हैं।

अत्याधुनिक कवियों की कविता में एक और दर्शनीय विषय है उनका सत्तावाद और स्वाभाविकता। रवीन्द्रनाथ के पात्र बोलकर अपने भावों को व्यक्त करते हैं। ऐसा करने में स्वाभाविकता की सीमा से बाहर की भाषा का प्रयोग रटे हुये व्याख्यान के समान करते जाते हैं। उनकी भाषा में अर्थ तो होता है बहुत; पर इतना बहुत कि हम आश्चर्य्य और सन्देह की दृष्टि से देखते हैं कि पात्र सचमुच अपना भाव ही व्यक्त कर रहा है या अनर्गल-भाषा का व्यवहार कर रहा है। "अन्ध-बधू" कविता को देखिये। अन्धी बहू अपने पति की बहन के साथ शायद सरोवर को जा रही है। बहुत स्वाभाविक ढङ्ग से वह अपने हृदय की व्यथा व्यक्त कर रही है। वह वक्तृता झाड़कर प्रभाव को भङ्ग नहीं कर देती; अपनी सीधी-सादी भाषा में वही अपनी व्यथा भर देती है। पर वह अपनी व्यथा केवल सीधे तौर

से कह देती तो शायद उसका कुछ प्रभाव न पड़ता, पर वह अपनी व्यथा को व्यक्त करते-करते बीच में जब किसी नर्म चीज़ से टकराकर पूछ देती है, "यह क्या है"? अथवा किसी पिच्छल स्थान पर पहुँचकर अपनी असमर्थता दिखलाती हुई कह देती है "भाई ज़रा ठहरो, गिर न जाऊँ" आदि—तो ये छोटी-छोटी उक्तियाँ उसको स्वाभाविक ही नहीं बनातीं, प्रत्युत उसकी व्यथा को सीधे शब्दों कीअपेक्षा अधिक प्रभाव के साथ व्यक्त करती हैं। उसी प्रकार कृष्णधन दे को "बन्ध्या नारी" ज ब अपनी सखी के बच्चे को गोद में लेकर केवल यह कह सकती है कि तुम्हारे बच्चे को गोद में लेकर हृदय शीतल हुआ, तो वह उक्ति गभीर और बिल्कुल स्वाभाविक हो उठती है। उसी प्रकार जब अपढ़ देहाती बधू अपने पत्र में पति को लिखती है—

"तुमिइ सुधु एलन आजि घरे फागुन दिने मन ये केमन करे"।

उसकी सीधी-सादी भाषा के भीतर से भी है एक गंभीर वेदना, चमक उठती है, जिसका विश्लेषण वह अपढ़ ग्रामीण बधू नहीं कर सकती। संक्षेपतः इन कविताओं में जो भाषा व्यवहृत हुई है, वह स्वाभाविकता और सत्तावादात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। इन सब का कारण यह है, कि कवि कविता में सफलतापूर्वक नाटकीय पुट देकर शब्दों ही के सहारे नहीं, प्रत्युत उनके बिना भी परिस्थिति की सृष्टि करते हैं जहाँ हम स्वयं उनकी गंभीरता का अनुभव करते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, रवीन्द्रनाथ परिस्थिति उत्पन्न करने में प्रत्यक्ष रूप से असफल रहे हैं।

इन कवियों ने एक बड़ी साहसिकता का काम यह किया है कि इन्होंने इस सत्य को उपलब्ध किया है कि गंभीर व्यथा बोल-चाल की भाषा में भी व्यक्त हो सकती है; असल में चाहिये भाव। भाषा के सहारे वह सृष्ट नहीं हो सकता। इसी भावना से प्रेरित होकर उन लोगों ने दैनिक बोल-चाल के छोटे-छोटे शब्दों में वह गंभीरता भर दी कि वे विशुद्ध हो उठे। रवीन्द्र-

नाथ ठाकुर, जैसा लिखा जा चुका है, इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिये सामासिक शब्दों ही का अधिक व्यवहार करते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बँगला भाषा में एक ज़ोर का आन्दोलन हो रहा है। रवीन्द्रनाथ की कविता के विरुद्ध कवि विषयों ही में नहीं, शैली में, ढङ्ग में, शब्द-व्यवहार में, कला में सभी ओर बड़े ज़ोर का परिवर्तन और नवीनता का प्रचार हो रहा है। आशा की जाती है कि कुछ दिनों में बँगला की कविता संसार की कविता में अपना मस्तक ऊँचा करके खड़ी हो सकेगी।

बँगला की वर्त्तमान दशा

१९वीं सदी के उत्तरार्ध से बँगला-भाषा की प्रगति जारी है। टेकचन्द, कालीप्रसन्न सिंह, बंकिम बाबू, रमेशचन्द्रदत्त, विद्यासागर आदि विख्यात लेखकों ने बँगला-भाषा के भण्डार को रत्नों से भर डाला। बंगदर्शन आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन वृहत् रूप में आरम्भ हो गया। बँगला-गद्य और पद्य दोनों की उन्नति होने लगी। इस उन्नति में टैगोर-वंश का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इस प्रकार बँगला-भाषा संसार की भाषाओं की कोटि को पहुँचने लगी और अब तो बँगला का साहित्य इतना उन्नत हो गया है कि भारत की सारी भाषायें उससे पीछे रह गई हैं। क्या उपन्यास, क्या नाटक, क्या कविता और धर्म्म-नीति तथा विज्ञान, बँगला सभी विषयों से भरती जा रही है। इस समय तो बँगला गौरवान्वित है जगत्-प्रसिद्ध रवीन्द्रनाथ ठाकुर-जैसे कवि पाकर, एशिया के अन्यतम उपन्यास-लेखक शरच्चन्द्र चटर्जी-जैसे रत्न को पाकर। इनके अतिरिक्त अभी कितने ही सितारे प्रकट हो रहे हैं जो आगे चलकर बँगला-साहित्य को प्रदीप्त कर देंगे।

विचित्रा, प्रवासी, भारतवर्ष आदि मासिक पत्रिकायें किसी भी यूरोपीय पत्रिकाओं से टक्कर ले सकती हैं। उसी प्रकार बसुमती आदि

कितने ही साप्ताहिक और दैनिक-पत्र साहित्य की सेवा में हाथ बँटा रहे हैं। इस उत्साह-पूर्ण प्राण मय जागृति को देखते हुए यह बात सभी मानेंगे कि बँगला का भविष्य आशा और चमत्कार से भरा है। जिस भाषा को चण्डीदास और चैतन्य ने अपनाया था, उसका साहित्य यदि अमर हो जाय तो आश्चर्य ही क्या? डाक्टर केरे ने जो कहा था—"क्षेत्र-फल में ग्रेट--ब्रिटेन के बराबर देश में बोली जानेवाली यह भाषा (बँगला) अच्छी तरह मँज जाने पर सौन्दर्य्य और स्पष्टता में किसी से पीछे न रहेगी," यह उक्ति आज प्रमाणित हो रही है।
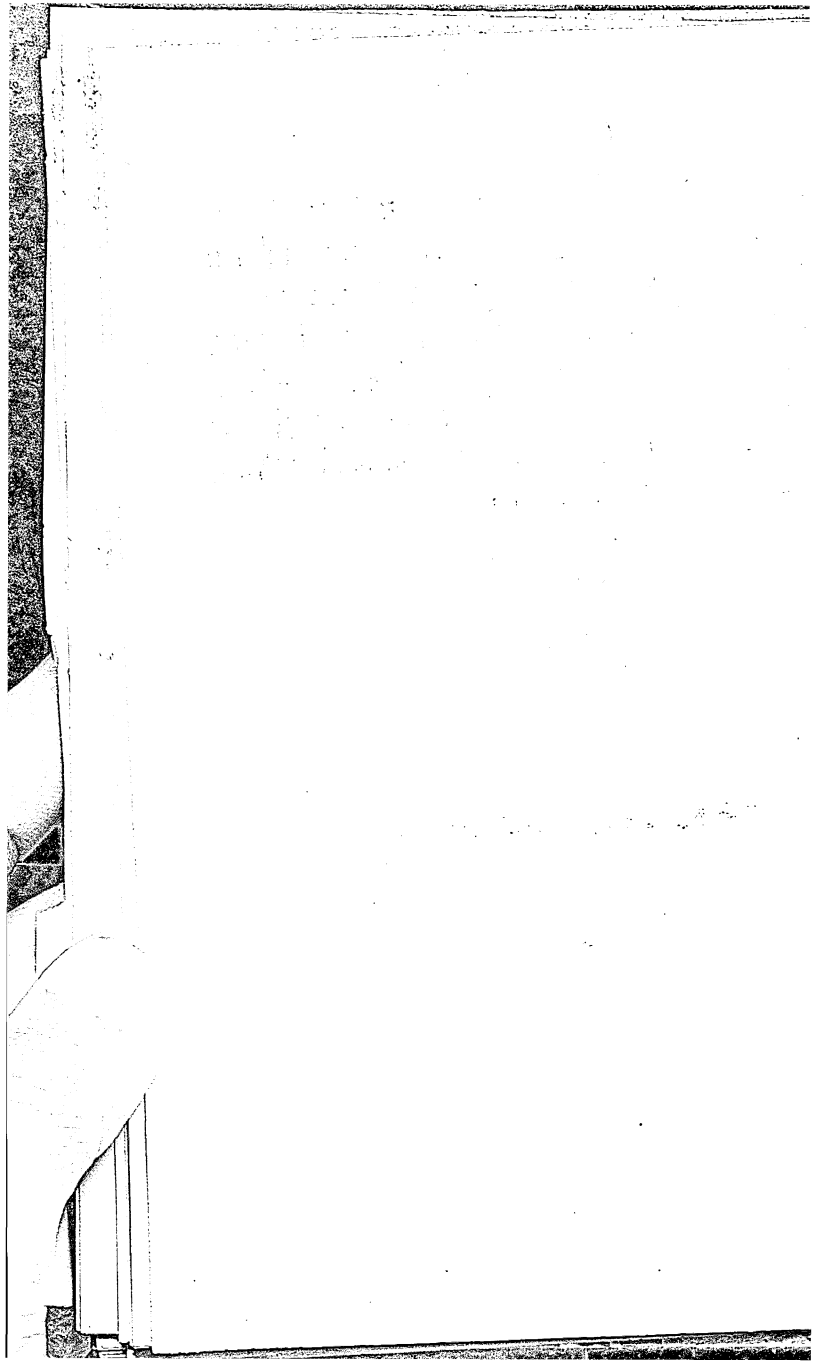
कविता-कौमुदी

बँगला

कविता-कौमुदी

प्रारम्भ काल के प्राचीन कवि

१—डाक	३—रामाइ पंडित
२—खना	४—अज्ञात

डाक

डाक ने जन्म लेने के बाद तुरंत ही माँ को पुकारा था, इसी से इनका नाम "डाक" पड़ा। "डाक" का अर्थ बँगला में 'पुकार' होता है।

उपजिये मायको दिले डाक।
सेइ से कारणे तार नाम हैला "डाक"॥

डाक के वचन आसाम, बंगाल और उड़ीसा में खूब प्रचलित हैं। सम्भवतः डाक का जन्म आसाम के बावसी परगने में हुआ था। लोग कहते हैं कि इनके ग्राम का नाम लोह था। इस नाम का एक ग्राम अब भी है। डाक के समय के सम्बन्ध में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके पद्यों की भाषा से यह अनुमान किया जाता है कि इन पद्यों की रचना का समय षष्ठ शताब्दी का प्रथम भाग रहा होगा। यह मत रायबहादुर दिनेशचन्द्र सेन का है।

डाक के बहुतेरे वचन दुर्बोध्य हैं। कारण यह है कि इन वचनों की भाषा पर अपभ्रंश की छाप अधिक है। ऐसे दुर्बोध्य वचनों का एक उदाहरण यह है:—

आदि अन्त भुझसि
इष्ट देवता येह पुजसि
मरणेर यदि डर वासिस
असंभय कभु न खायसि
बुंदा बुझिया एड़िव लुन्ड
आगल है ले निवारिब तुन्ड

डाक के वचन विहार के भिन्न-भिन्न स्थानों में भी प्रचलित हैं। इन वचनों की भाषा एक नहीं हैं। तो क्या एक ही डाक के वचन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित हुए? आधुनिक विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि डाक नामक कोई व्यक्ति-विशेष नहीं था। बौद्ध-युग में जो पुरुष सिद्ध होकर दो-चार, दस-बीस पद बना लेता था वह डाक कहलाता था। स्त्री होने पर वह डाकिनी कहलाती थी। यही मत ठीक जँचता है। यहाँ डाक के कुछ वचन दिये जाते हैं:—

(१)

सुगृहिणी के लक्षण

मिठ रान्धे सरुआ काटे।
से गृहिणीते घर ना टूटे॥
ये किछु मधुर बोले।
स्वामीर बोल शिरे धरे॥
सुशीला शुद्ध बंशे उत्पत्ति।
मिठ बोल स्वामीते भकति॥

आय व्यय करे शालुड़ीके पूजे ।
सर्व्वकाल स्वामीके पूजे
ताहाके धर्म्य आपनि युझे ॥
रौद्र काँटाकुटाय रान्धे ।
खड़ काठ वषा के बान्धे ॥
आतिथ्य देखिया मरे लाजे ।
तबु तार पूजाय लागे ।
काखे कलसी पानी के जाय ।
हेट मुंडे काकेहो न चाय ।
येन जाय तेन आइसे ।
बले डाक गृहिणी से ॥

"जो अच्छी तरह भोजन बना सकती है, जो खूब महीन रीति से खाद्य वस्तुओं को काट सकती है, ऐसी स्त्री गृहस्थी को चला सकती है; उससे घर नहीं टूटने का। जो मीठी बातें करे, स्वामी की आज्ञा का पालन प्रेमपूर्वक करे, जो सुशीला हो और जिसका जन्म अच्छे वंश में हुआ हो, बोली जिसकी मीठी हो और जो पति से प्रेम करे, अर्थात् पति में जिसकी भक्ति हो, घर के सारे आय-व्यय को सम्हाले रखे; जो सास को पूजे, वही गृहिणी है। जो सदा स्वामी का आदर करे— ऐसी गृहिणी की रक्षा स्वयं धर्म करता है। जो सदा गर्मी के दिनों में कँटा-कुटा (झाड़पात) से रंधन करे और वर्षा के लिये पुआल और काठ सुरक्षित स्थान में रखे, वही गृहिणी है। जो अतिथि को देखकर शर्म से अधमरी-सी हो जाय, तौभी जो उसके सत्कार में लग जाय, वही गृहिणी है। जब वह काँख के तले कलसी ले पानी भरने को जाती है, तब उसकी नज़र नीचे की ओर ही गड़ी रहती है। वह किसी को भी नज़र उठाकर

नहीं देखती है। जैसे जाती है, ठीक वैसे ही आती भी है। डाक कहते हैं, सच्ची गृहिणी वही है।"

(२)

कुगृहिणी के लक्षण

उचित बलिते पाड़े गालि।
पोये झिये हय बे-आलि॥
कान्दना शुनिया बाहिर हय।
नाटे गोते धाइया जाय।
ए नारीते याहार बास।
ताहार केन जीवनेर आश॥
अतिथि देखिया कोप मने।
गालि देय अतिथ शुने॥
भाल द्रव्य आपने खाय।
ये गृहिणी आय व्यय ना बुझे।
बोल बलिते उत्तर युजे॥
भाल बलिते रोष करे।
ताहार स्वामी केन थाके घरे॥

"यदि उससे उचित भी कहा जाय तो वह गाली देती है, लड़के-लड़कियों पर वह सदा कठोर बनी रहती है; कुँझलाती रहती है, कहीं से रोने की आवाज़ आई कि बस, वह बाहर निकल पड़ी, (अच्छी स्त्रियाँ रोना-धोना सुनकर उतावली से जल्द बाहर नहीं निकल आतीं)। जहाँ कहीं नाच-गान का नाम सुना कि बस, बेहाल होकर देखने को दौड़ो। ऐसी स्त्रियों के साथ जो रहता है, (अर्थात् उसका स्वामी) उसको जीवन की

क्या आशा ? अर्थात् पत्नी के अवगुणों को देखते-देखते वह जीवन से प्रायः निराश ही हो जाता है। अतिथि देखते ही गुस्से में आकर अतिथि को सुना-सुनाकर वह गाली देती है, अच्छी-अच्छी चीज़ें ख़ुद ही खाती है, दूसरे को नहीं खिलाती।

ऐसी कुगृहिणी को तो आय-व्यय का कुछ ख़याल ही नहीं रहता। अच्छी बात भी कहिए तो भी विवाद करने लगेगी, गुस्सा करने लगेगी। आश्चर्य्य है, कि उसका पति घर में क्योंकर रह सकता है!"

खना

खना के संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इनमें से विश्वास के योग्य एक भी नहीं है।

कहते हैं कि खना मिहिर की स्त्री थी। परन्तु वह मिहिर वराहमिहिर थे या कोई और था, यह कहना कठिन है। उस समय शाक-द्वीपीय ब्राह्मणों को उपाधि "मिहिर" होती थी; इसलिये संभव है कि, वराहमिहिर की स्त्री न होकर, खना किसी साधारण शाक-द्वीपीय ब्राह्मण की स्त्री रही हो।

खना के पिता का नाम अटनाचार्य्य था। वे ज्योतिषी थे। खना ने स्वयं कहा है—

आमि अटनाचार्य्येर बेटि,
गणते गाँथते कारे आँटि।

"मैं अटनाचार्य्य की बेटी ठहरी। फिर गणना आदि में किसी से क्यों डरूँ?'

कहा जाता है कि चन्द्रकेतु नामक राजा के समय में खना अपने पति मिहिर के साथ चंद्रपुर नामक ग्राम में बहुत दिनों तक रही। खना के

वाक्यों की रचना नवीं शताब्दी के बाद ही हुई होगी। उसकी भाषा के अध्ययन से ऐसा ही प्रतीत होता है।

उपर्युक्त मत रायबहादुर दिनेशचन्द्र सेन का है। लेकिन इधर खोज करनेवालों ने यह सिद्ध किया है कि खना के स्त्री होने में सन्देह है! खना (क्षणाँ) उड़िया भाषा में पुल्लिङ्ग है। बँगला में स्त्रीलिङ्ग है। यह संभव है कि "खना" (क्षण-संबंधी) नाम किसी ऐसे पुरुष का रहा हो जो क्षण-संबंधी बातों को खोज करता हो, अर्थात् जो ज्योतिषी रहा हो।"[१]

यहाँ "खना" के कुछ बचन दिए जाते हैं—

(१)

सन्तान-निर्णय

यय मासेर गर्भ नारीर नामे य अक्षर।
यय जन शुने पक्ष दिये एक कर॥
साते हरि चन्द्र नेभ बाण यदि रय।
एते पुत्र परे कन्या जानिह निश्चय॥
हरिते सकल अङ्क यदि रहे सात।
बराहमिहिरे बले हय गर्भपात॥

"गर्भ-मास के अक्षर की संख्या, गर्भिणी के नाम के अक्षर की संख्या और सुननेवालों के नाम की अक्षर-संख्या के साथ पन्द्रह जोड़कर योगफल को सात से भाग दो, यदि अवशिष्ट अयुग्म (एक, तीन, पाँच इत्यादि) संख्या रहे तो लड़का, यदि युग्म रहे तो लड़की और अवशिष्ट कुछ भो न रहे तो गर्भपात होगा।"

(२)

कृषि-तत्त्व

दिने रोद राते जल।
ताते बाड़े धानेर बल॥

कातिकेर ऊन जले ।
लेखनाब दुनो फले ॥
शुन बापु चाषार बेटा ।
बाँशेर झाड़े दिश्रो धानेर चिटा ॥
चिटा दिले बाँशेर गोड़े ।
दुइ कुड़ा भूँई वेड़बे झाड़े ॥

"दिन में धूप, और रात में वर्षा होने से धान का बल बढ़ता है। कार्त्तिक मास में कम वर्षा होने से दूना फल होता है। बाँस की जड़ में धान का पटपर डालने से उसकी कोठी दो बीघा फैल जाती है।"

(२)

वृष्टि-फल

यदि वरे आगने ।
राजा यान माँगने ॥
यदि बरषे पौषे ।
कड़ि हय तुषे ॥
यदि बरषे माघेर शेष ।
धन्य राजा पुण्य देश ॥
यदि बरषे फागुने ।
चिना काउन द्विगुणे ॥

"यदि अगहन में पानी पड़े तो राजा भीख माँगने लगें अर्थात् अगहन में पानी पड़ना बुरा है। अनाज इससे कुछ भी नहीं उपजता। अतएव राजा को लगान नहीं मिलता। फलतः वे भी कंगाल हो जाते हैं। यदि पौष में पानी पड़े तो ख़ूब रुपये मिलते हैं। अर्थात्, उपज से धन की प्राप्ति होती है। यदि माघ के अन्त में पानी पड़े तो वह देश बड़ा

पवित्र है। वह देश धन्य है, वहाँ का राजा धन्य है। यदि फाल्गुन में पानी पड़े तो चिना काउन (एक प्रकार का अनाज) दुगुना पैदा होता है।"

रामाइ पंडित

बँगला की सभी "धर्म्म-मंगल" कविताओं में इस बात का उल्लेख है कि बंगाल के राजा धर्म्मपाल द्वितीय की साली रंजावती ने रामाइ पंडित से धार्मिक-शिक्षा पाई थी। इस उल्लेख से सिद्ध है कि रामाइ पंडित का समय और धर्म्मपाल द्वितीय का राजत्व-काल एक रहा होगा। धर्म्मपाल द्वितीय का समय १०-११वीं शताब्दी था। इससे रामाइ पंडित का भी यही समय होना चाहिए।

कहते हैं कि राढ़ प्रांत के द्वारका नामक ग्राम में इनका निवास-स्थान था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ था। अस्सी वर्ष की अवस्था में केशवती नाम की स्त्री से इन्होंने विवाह किया था। इस विवाह का उद्देश्य स्त्री से धर्म-प्रचार में सहायता लेना था।

इनका लिखा शून्य-पुराण नामक ग्रंथ प्रख्यात है। यह ग्रंथ बंगीय-साहित्य-परिषत् की ओर से छपा है।

यहाँ रामाइ पंडित के कुछ पद्य दिये जाते हैं—

(१)

सृष्टि के पूर्व

नहि रेक नहि रूप नहि छिल बन्न चिन।
रबि शशी नहि छिल नहि छिल राति दिन॥
नहि छिल जल थल नहि छिल आकाश।
मेरु मन्दार न छिल न छिल कैलास॥
नहि छिल छिष्टि आर न छिल चलाचल।
देहारा देउल नहि छिल परबत सकल॥

देवता देहारा ना छिल पूजिवार देह ।
महाशून्य मध्ये परभुर आर आछे केह ॥
ऋषि ये तपसी नहि नहिक बाम्भन ।
पाहाड़ पर्वत नहि नहिक खरवर जङ्गल ॥
पुण्य थल नहि छिल नहि गंगाजल ।
सागर संगम नहि देवता सकल ॥
नहि छिल छिष्टि आर नहि सुर नर ।
रम्भा विष्णु न छिल न छिल महेश्वर ॥
वीरवरत नहि छिल ऋषि ये तपसी ।
तीर्थ थल नहि छिल गंगा वाराणसी ॥
पैराग माधव नहि कि करिब विचार ।
सरग मरत नहि छिल सभि धुन्धुकार ॥

"किसी भी चीज़ का नामोनिशान तक न था। न थी रेखा, न था रूप, न किसी प्रकार का वर्ण-चिन्ह; सूर्य्य, चाँद, रात, दिन, जल, थल, आकाश आदि कुछ भी नहीं था। यहाँ तक कि मन्दराचल एवं कैलाश—जैसे महापर्व्वतों का भी कुछ पता न था। न सृष्टि ही थी, न कोई जीव ही थे। द्वार, देवालय, पर्वत, कुछ भी नहीं थे। इस महाशून्य के बीच में ईश्वर की पूजा करनेवाले कहाँ से आते? ऋषि, तपस्वी, ब्राह्मण, पहाड़, पर्व्वत, चर, अचर, पुण्यस्थान, गंगाजल, गंगा-सागर, देवगण, सृष्टि, नर, रम्भा, विष्णु, महेश, वारव्रत वाराणसी, प्रयाग—कहीं भी कुछ नहीं था। स्वर्ग, मर्त्य आदि लोक भी नहीं थे। केवल घोर अन्धकार था।"

(२)

देवताओं का मुसलमानी वेश धारण

यतेक देवता गण सभे हयये एकमन
आनन्देते परिल इजार ॥

ब्रह्मा हैल महामद विष्णु हैला पेकम्बर
आदम्म हैल शूलपाणि ।
गणेश हइला गाजी कार्तिक हईल काजी
फकीर हइल यत मुनि ॥
तेजिआ आपन भेक नारद हइला शेख
पुरन्दर हइला मल्लना ।
चन्द्र सूर्य्य आदि देवे पदातिक हय्या सेवे
सभे मिलि बाजाय बाजना ॥
आपुन चण्डिका देवि तेहु हैला हाया बिबि
पद्मावती हल्य बिबि नूर ।
यतेक देवता गण हय्ये सभे एकमन
प्रवेश करिल जाजपुर ॥
देउन देहारा भाङ्गे काड़्या फिड़्या खाय रङ्गे
पाखड़-पाखड़ बोले बोल ।
धरिया धर्म्मेर पाय रामाइ पण्डित गाय
इ बड़ विषम गण्डगोल ॥

"सभी देव-गण एकमत होकर आनन्द से 'इजार' ग्रहण किये। ब्रह्मा मुहम्मद हुए, विष्णु पैगम्बर हुए तथा स्वयं महादेव आदम हुए। गणेश 'गाजी' बने, कार्त्तिक क़ाज़ी, और ऋषिगण फ़कीर बने। बाबा नारद वेष बदलकर शेख़ हो गये और इन्द्र मौलाना बन गये। चन्द्र, सूर्य्य इत्यादि देवगण, बजनियाँ बने। स्वयं चण्डिका देवी हाया बीबी हो गयीं। पद्मावती बीबी 'नूर' हुईं। इसी प्रकार सभी देवगण, मुसलमान-वेश धारणकर जाजपुर आये और वे देवालय, तोरणद्वार आदि तोड़ने लगे। साथ ही बलपूर्वक चीज़ें अपहरण कर, आनन्द मनाने लगे, और "पकड़ो-पकड़ो" कहने लगे। बड़ा कोलाहल मचा।"

अज्ञात

सूर्य्यदेव के सम्बन्ध में प्राचीन गीत

ग्यारहवीं शताब्दी में सूर्य्यदेव की उपासना बङ्गाल में प्रचलित थी। इसी युग में बहुतेरे लोगों ने सूर्य्यदेव की स्तुति में अनेक गीत बनाए। इन गीतों की भाषा प्राचीन है; पर भाव सरल और कहीं-कहीं सुन्दर भी हैं। इनके रचयिताओं के नाम अज्ञात हैं। ऐसे गीतों के दो नमूने यहाँ दिए जाते हैं—

(१)

सूर्य्य का रूप-वर्णन एवं उदय-दृश्य

सूर्य्य ऊठे कोन् कोन् वर्ण
सूर्य्य ऊठे आगुन वर्ण
सूर्य्य ऊठे कोन् कोन् वर्ण
सूर्य्य ऊठे रक्त वर्ण
सूर्य्य ऊठे कोन् कोन् वर्ण
सूर्य्य ऊठे ताम्बुलल।

"सूर्य्य कौन-कौन रङ्ग में उदय होते हैं? सूर्य्य अग्नि वर्ण, रक्त वर्ण और ताम्रवर्ण में उदय होते हैं।"

(२)

गौरी के अभाव-मोचन के लिये सूर्य्य का संकल्प

(उत्तर-प्रत्युत्तर)

तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि शंखेर दुःख पामु।
नगरे नगरे आमि शाँखरी बसामु॥
तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि सिन्दूरे दुःख पामु।
नगरे नगरे आमि बानिया बसामु॥

तोमार देशे यामुरे सूर्य्य आमि तेलेर दुःख पामु ।
नगरे नगरे आमि तेलिया बसामु ॥
तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि चाउलेर दुःख पामु ।
नगरे नगरे आमि हालिया बसामु ॥
तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि मा बलिमु कारे ।
आमार ये मा आछे मा बलिबा तारे ॥
तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि बाप बलिमु कारे ।
आमार ये बाप आछे बाप बलिबा तारे ॥
तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि भाइ बलिमु कारे ।
आमार ये भाइ आछे भाइ बलिबा तारे ॥
तोमार देशे यामुरे सूर्य्यइ आमि बुइन बलिमु कारे ।
आमार ये बुइन आछे बुइन बलिबा तारे ॥

"गौरी सरलता-पूर्व्वक कहती है—हे सूर्य्य! तुम्हारे देश को तो मैं जाऊँगी, पर मुझे कपड़े के दुःख होंगे"।

सूर्य—"मैं नगर-नगर में जुलाहा बसा दूँगा।"

"मुझे शंख, सिन्दूर, तेल, चावल के दुःख होंगे।"

"मैं नगर नगर में शँखेरी, बनिया और खेतिहर बसा दूँगा।"

"तुम्हारे देश तो मैं जाऊँगी, पर मैं माँ किसे कहूँगी? बाप किसे कहूँगी? भाई, बहन मैं किसे कहूँगी?"

"मेरे माँ, बाप, भाई, बहन को तुम माँ बाप, भाई, बहन कहना।"

विकास-काल के प्रारम्भिक कवि

१—नारायणदेव

२—विजयगुप्त

३—केतकादास क्षेमानन्द

४—कविकंकण मुकुन्ददास

५—भवानीशङ्कर दास

नारायणदेव

नारायणदेव विजयगुप्त के समकाल-जीवी थे। मैमनसिंह ज़िला-न्तर्गत किशोरगंज सब डिवीज़न के बोरा ग्राम में इनका निवास-स्थान था। ये कायस्थ जाति के थे, और नरसिंहदेव के पुत्र थे। इनके पूर्वज शुरू में मगध के रहनेवाले थे। उसके पीछे राढ़देश में आकर बसे और फिर वहाँ से मैमनसिंह चले आये। इनके वंशज अब तक बोराग्राम में पाये जाते हैं।

इनकी प्रधान कविता 'मनसा-मंगल' है। यह बहुत लोक-प्रिय ग्रंथ है। इनकी कविता सरस और मधुर होती थी।

इनके पद्य के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

आहा प्रभु लखीन्दर प्राण-सम-सर।
तोमारे पाइया हैलुम आनन्द विस्तर॥

तुमि प्रभु बिने मुनि जीव कि कारण ।
तोमा लइया भ्रासिमु ये ए तिन भुवन ॥
तबे यदि जीयाइते ना पारि तोमारे ।
तबे मुजि प्रवेशिमु तोमार चितानले ॥
तोमार सहिते याइमु देवेर भवन ।
जन्मे जन्मे तोमार आमार एकइ जीवन ॥
कोलेत करिया विपुला कान्दे उच्च स्वरे ।
विपुलार क्रन्दन शुनि वृक्षेर पात झरे ॥
स्वामी ब्रह्मा स्वामी विष्णु स्वामी ईश्वर ।
स्वामी से सकल कर्त्ता स्वामी महेश्वर ॥
स्वामी से देवता मोर स्वामी से सकल ।
स्वामी बिने नारीर जीवन ये विफल ॥
स्वामी स्वर्ग स्वामी सत्य परलोके गति ।
स्वामी तुष्ट हइले हय देवेर पीरिति ॥
स्वामी विद्यमाने जान मरे यार नारी ।
स्वर्गे पुरे याय सेइ हइया विद्याधरी ॥
स्वामी सङ्गे येइ नारी अग्निते प्रवेशे ।
सेइ सब नारी जान याय स्वर्गवासे ॥

"हे मेरे प्राण-समान प्रियतम लखीन्दर, तुम्हें पाकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुई थी। हे प्रभो, तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं तुम्हें लेकर तीनों भुवनों में जाऊँगी। यदि इस पर भी तुम्हें न जिला सकूँगी तो तुम्हारे साथ चिता में प्रवेश कर जाऊँगी। तुम्हारे साथ मैं भी स्वर्ग-लोक जाऊँगी—जन्म-जन्मान्तर में मेरा और तुम्हारा जीवन एक ही रहेगा। स्वामी को गोद में ले बिहुला उच्च स्वर से विलाप करने लगी। उसके क्रन्दन से दुखित होकर वृक्ष से पत्ते भी झड़ने लगे। मानो वे भी समवेदना प्रकट करते हैं। पति ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं। स्वामी

मेरे देवता हैं, मेरे सर्व्वस्व हैं। स्वामी के बिना नारी का जीवन व्यर्थ है। स्वामी ही स्वर्ग हैं, स्वामी सत्य हैं। उन्हीं से सद्गति प्राप्त होती है। स्वामी के प्रसन्न रहने से देवता भी प्रसन्न रहते हैं। स्वामी के जीवित रहते जो स्त्री मरती है वह विद्याधरी होकर स्वर्ग में वास करती है। जो स्त्री पति के साथ चितानल में भस्म हो जाती है, वह स्वर्ग को जाती है।"

विजयगुप्त

विजयगुप्त का जन्म बाकरगंज ज़िला के अन्तर्गत फूलश्री ग्राम के एक वैद्य-कुल में सन् १४४९ में हुआ। उनके पिता का नाम सनातन तथा माता का नाम रुक्मिणी था।

विजयगुप्त का "मनसा-मंगल" काव्य सबसे अधिक लोक-प्रसिद्ध है। पूर्वीय बंगाल में, और विशेष करके बाकरगंज ज़िले में, यह काव्य बहुत ही पवित्र समझा जाता है। श्रावण में मनसादेवी की पूजा के समय यह गाया जाता है। मनसादेवी का काव्य रयणी के नाम से और उसका गान जागरण के नाम से प्रसिद्ध है। रयणी है रजनी शब्द का अपभ्रंश। ये गीत प्रायः रात में गाये जाते हैं। इस काव्य की रचना सम्भवतः सन् १४८४ में हुई थी।

एक ग्रन्थ में यह वाक्य है—

ऋतु शून्य वेद शशी परिमित शक
सुलतान होसेन साहा नृपति तिलके

राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने बंगाल के शासनकर्त्ता हुसेन के संबंध में यह कहा है कि हुसेन ने १४९४ ई० से १५२३ पर्य्यन्त राज्य किया। यही विजयगुप्त का समय है।

इनकी कविता के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

लोहे के घर का निर्म्माण

लोहार मन्दिर घर करिब गठन ।
ताहार मध्ये रजनीते शुइब दुइ जन ॥
स्वामीर कथाय सोनका खानिक हैल स्थिर ।
सोनार आबास हत्ये चाँद हइला बाहिर ॥
विपरीत कर्म्म करिते चाँद भाल जाने ।
चौद्द शत कर्म्मकार डाक दिया आने ॥
तारापति कर्म्मकार सकलेर प्रधान ।
अधिक गुण ताहार जाने सर्व काम ॥
दीर्घ दीर्घ हात पा माथाय झाटा चुल ।
डान हाते हातुर बाम हातेते तुल ॥
पिङ्गल माथार चुल बेका काकालि ।
नाके मुखे चक्षुते लागियाछे कालि ॥
चाँद बले शुन वाक्य कर्म्मकार भाया ।
ये ये वाक्य बलि आमि शुन मन दिया ॥
बियाते लखाइ आजि याइबे उजानी ।
छल पाइया छले पाछे लघुजाति काणी ॥
मोर घरे आसिया बलिछे वीर दर्पे ।
बियार रात्रे लखीन्दर दंशिबे कालसर्पे ॥
घरे बसि नेमक खाओ किछु नाहि तार ।
आजि से जानिब भाइ चातुरी तोमार ॥
स्त्री पुत्रेर दया थाके प्राणे थाके डर ।
सबे मिलि कर घर लोहार बासर ॥
शीघ्र करि कार्य्ये मन देओ गो तोमरा ।
दुइ प्रहरेर मध्ये बासर करिबा सारा ॥

सुन्दर लोहार घर ताहे घाट पाट।
एक भिते थुइया लगाओ कपाट॥

"लोहे का मंदिर बनवाऊँगा। उसी के भीतर दोनों सोवेंगे। स्वामी की बातें सुनकर सोनका (स्त्री का नाम) को कुछ धीरज हुआ। इसके बाद चाँद सौदागर उसकी कोठरी से बाहर चला गया। चाँद सौदागर नीति-विरुद्ध काम करना ख़ूब जानता था। उसने चौदह सौ मज़दूर बुलाए। इन मज़दूरों का नायक था तारापति। उसके गुण अनेक थे; और वह सब काम जानता था। उसके हाथ-पाँव लम्बे-लम्बे थे और सिर के केश बड़े-बड़े। उसकी ज़ुल्फें टेढ़ी थीं और हाथ, मुँह और नाक में स्याही लगी थी। उसके दाहिने हाथ में हथौड़ा और बायें में छेनी थी। चाँद सौदागर ने कहा—भाई, जो मैं कहता हूँ सो मन लगाकर सुनो। मेरा लड़का लखीन्दर कल विवाह करने उज्जयिनी जायगा। नीच जाति की कानी अर्थात् मनसादेवी कहीं छिद्र या छल न करे। उसने मेरे घर में आकर वीर के से अभिमान से कहा है कि विवाह ही की रात को उसे सर्प डँस लेगा। तुम सदा से यहाँ रहकर हमारा नमक खाते आ रहे हो, उसे कभी अदा नहीं किया। आज तुम्हारी होशियारी देखनी है। अगर तुम्हें अपने स्त्री पुत्रों पर दया हो और प्राणों का भय हो तो जाओ, आज परिवार-सहित लगकर लोहे का घर तैयार कर दो और उसमें किवाड़ें लगा दो। जिससे वह और उसकी स्त्री उसमें सुरक्षित रूप से सो सकें।"

(२)

सोनका को मनसादेवी का वरदान

सपुटे युड़िया कर मागे सोना पुत्रवर
मोरे पुत्रवर देओ विषहरी।
दिलाम दिलाम पुत्रवर नाम थुइओ लख्मीन्दर
हइले मात्र आनिब हरिया।

शुन ओहे विषहरी ए वरे मोर कार्य्य नाइ
देय मोरे ए वर छाड़िया ॥
दिलाम दिलाम पुत्रवर नाम थुइओ लक्ष्मीन्दर
अन्नाशने आनिब हरिया ।
शुन ओहे विषहरी आइ ए वर मोर साध नाइ
देय मोरे ए वर छाड़िया ॥
दिलाम दिलाम पुत्रवर नाम थुइओ लक्ष्मीन्दर
बियार रात्रे आनिब हरिया ।
नेता बले सोना शुन विलम्बे नाहिक गुण
हल पुत्र न कराय बिया ॥
एतेक भाबिया राणी आपन हृदये गणि
लइल वर आँचल पातिया ।
पद्मावती परशने सानन्दे विजय भणे
लइल वर मस्तके बान्धिया ॥

"सोना हाथ जोड़कर माँगती है कि हे विषहरी—अर्थात् मनसादेवी मुझे पुत्र दीजिये। उत्तर में मनसादेवी ने कहा—मैं तुमको पुत्र-वर देती हूँ। उसका नाम लखीन्दर रखना, किन्तु उसके भूमिष्ठ होते ही मैं हर लाऊँगी। यह सुनकर सोना ने कहा—हे मनसादेवी, मुझे ऐसा वरन चाहिए, आप अपना वर वापस ले लीजिए। तब मनसादेवी ने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें पुत्र-वर देती हूँ; किन्तु जब वह अन्न खाने के योग्य होगा तब हर लाऊँगी। सोना ने जब इसे भी अस्वीकार कर दिया तब मनसा-देवी ने कहा—अच्छा; अब मैं तुम्हें पुत्र-वर देती हूँ, किन्तु उसे विवाह की रात को हर लाऊँगी। तब नेता (इस नाम की एक धोबिन थी, जो उस समय रानी के साथ में थी) ने कहा—हे रानी अब बिलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है, तुम इस वर को स्वीकार कर लो, तुम्हारे जब

पुत्र होगा, तब उसका विवाह ही न करना। रानी के मन में यह बात आगई। उसने मनसादेवी के चरण स्पर्श करके इसे मस्तक से धारण कर लिया।"

(२)

वेहुला भास्ये पाय देवीर कृपाय
दोखते नापाय तारे ॥
पाय्या पचा प्राण स्थिर नहे प्राण
यत पशुगण कय।
ए हेन सुन्दरी मड़ा कोले करि
कोथा जले भास्या याय ॥
हुकाइ धुकाइ तारा दुइ भाइ
श्टगाल छागल-धरा।
यतेक श्टगाल हय्या एक पान
कूले दांड़ाञा तारा ॥
मड़ा-घ्राण पायाँ कूले दांड़ाञा
आपन भाषाते डाके।
मड़ाटा फेलाञा देहना सुन्दरी
प्राण पाइ तोर पाके ॥
सप्त दिवा निसि आछि उपवासी
यतेक श्टगालपाल।
मड़ा दिया मोरे तुमि याह घरे
ख्याति रहु चिरकाल ॥
उदर पूरिया खाइ मड़ा मास
यतेक श्टगाल मोरा।
कुलधर्म्म यत राखिते उचित
तुमि घरे याह फिरा ॥

ऐ प्राणधन देख येइ जन
याहार पाय्याछ प्राण ।

"बिहुला मनसादेवी की कृपा से बही जा रही है। कोई उसे देख नहीं पाता। गले हुए मांस का गंध पाकर व्याकुल हो, पशुगण विहुला से कहने लगे—"ऐ सुन्दरी! मुर्दा गोद में ले कर कहाँ जाती हो?" हुकाई, धुकाई नामक दो शृगाल, एवं उनके साथ अन्यान्य शृगाल-गण मुर्दे का गंध पाकर किनारे पर एकत्र हो अपनी भाषा में कहने लगे—"ऐ सुन्दरी, मुर्दे को फेंक न दो। हम लोग तुम्हारी कृपा से मुर्दे को खाकर तृप्त होवें। हम लोगों ने सात दिन से कुछ नहीं खाया है। मुर्दे को हमें दे दो और आप घर चली जाओ। तुम्हारा यश चिरकाल तक रहेगा। हम सब भरपेट मुर्दे का मांस खायेंगे। तुम कुल-धर्म्म का पालन करने के लिए घर लौट जाओ। ये वचन सुनकर बिहुला बोली—जिन्हें तुम सब देख रहे हो और जिनका गंध तुम लोगों ने पाया है, वे मेरे प्राणों के प्राण हैं।"

(४)

हासेन होसेनेर पाला

दक्षिणे होसेन हाटि ग्रामेर निकट
तथाय यवन बसे दुई बेटा शठ ॥
हासन होसेन तारा दुइ भाएर नाम।
दुइ जन करे तारा विपरीत काम ॥
काजियानी करे तारा जाने विपरीत।
तादेर सम्मुखे नाजि हिन्दुयानी रीत ॥
एक बेटा हालदार तार नाम दुला।
बड़ अहङ्कार करे होसेनेर शाला ॥

सर्व्वक्षण होसेनेर आगे आगे आसे।
ताहार भये हिन्दु सब पलाय तरासे॥
याहार माथाय देखे तुलसीर पात।
हाते गल बान्धि लय काजिर साक्षात्॥
वृक्षतले खुइया मारे बज्र किल।
पाथरेर प्रमाण येन झड़े पड़े शिल॥
परेरे मारिते किबा परेर लागे व्यथा।
चोपाड़ चापड़ मारे देय घाड़काता॥
ये ये ब्राह्मणेर पैता देखे तारा कान्धे।
पेयादा बेटा लागे पाइले तार गलाय बान्धे॥
ब्राह्मण पाइले लाग परम कौतुके।
तार पैता छिड़ि फेले खु देय मुखे॥
ब्राह्मण सुजन तथाय बसे अतिशय।
गृहघर गोमय ना देय दुर्ज्जनेर भय॥

"दक्षिण में होसेनहाट ग्राम के समीप दोनों यवन दुष्ट रहते थे। हसन, हुसेन उन दोनों भाइयों के नाम थे। दोनों बड़े दुराचारी थे। वे दोनों न्याय करते थे; पर कुछ भी हिन्दुओं की रीति को नहीं जानते थे। दुला नामक हुसेन का साला था। वह बड़ा अहंकारी था। उसके भय से हिन्दू हमेशा भागते रहते। जिसके माथे पर तुलसीदल देखता, बस उसे बाँधकर काज़ी के पास ले जाता। पेड़ के नीचे पटककर बज्र-समान मुष्टिक प्रहार करता। पत्थर के समान उसके कील लगते। दूसरे को मारने में कष्ट ही क्या होता है? निर्दय हो थप्पड़ मारता, जिससे छाती दहल उठती। ब्राह्मणों के गले में जनेऊ देख उन्हें सिपाहियों से बँधवाता, जनेऊ तुड़वा देता, मुख में थूक देता। वहाँ अनेक ब्राह्मण रहते थे, उन दुर्जनों के भय से वे घर को गोबर से लीपते तक नहीं थे, अर्थात् गोबर लाने के लिये बाहर निकलते तक नहीं थे।"

केतकादास क्षेमानन्द

क्षेमानन्द का जन्म वर्द्धमान ज़िला के कान्थरा नामक ग्राम में हुआ था। ये कायस्थ जाति के थे और औष्कर्णराय के तालुके में रहते थे।

इनके पीछे केतकादास की उपाधि लगी थी। केतका मनसादेवी का नाम है। देवी के प्रति अपनी भक्ति दिखाने के लिये इन्होंने अपना नाम केतकादास रख लिया था।

'आत्म-चरित्र' में इन्होंने वर्द्धमान जिलान्तर्गत सलीलाबाद के राजा बाराखाँ का उल्लेख किया है और युद्ध में उनकी असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट किया है। बाराखाँ ने शिवराम भट्टाचार्य्य को २० बीघा ज़मीन १६४० ई० में दान किया था। इससे मालूम होता है कि क्षेमानन्द ने 'मनसा-मंगल' १६४० ई० के बाद लिखा था।

क्षेमानन्द के 'मनसा-भाषण' में ५००० पंक्तियाँ हैं। इस विषय के दूसरे ग्रन्थों से यह बहुत छोटा है; लेकिन छोटा होने के कारण आज-कल बँगला में यह सबसे अधिक लोक-प्रिय है। इसकी कविता सरस और रुचि-पूर्ण है।

इसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

(१)

प्राणनाथ कोले कान्दे बेहुला नाचनी।
घरे हैते शोने ताहा सोनका बराननी॥
क्रन्दन शुनिया तार शुकाइल हिया।
पुत्र-वधू देखिवारे चलिल धाइया॥

"पति को गोद में लेकर बेहुला सुन्दरी रो रही थी, अपने कमरे से उसका रुदन सुनकर सोना का हृदय सूख गया; पुत्र-वधू को देखने के लिए वह उतावली के साथ चली।"

(२)

श्येन-काक से निवेदन

प्राणनाथ कोले लैया जले भास्या याइ ।
एक निवेदन आमि कहि तव ठाञि ॥
जले ते भासिया याइ ताहे नाहि ताप ।
अति देश देशान्तर आमार मा बाप ॥
एमत व्यथित एसा नाहि ये आमार ।
आमार बापेर बाड़ी कहे समाचार ॥
श्येन-काक बले आमि याइते पारिब ।
सेखाने मनुष्य भाषा केमन-कहिब ॥

"बिहुला श्येन-काक से कहती है—'मैं अपने प्रियतम को ले, पानी में बहती हुई जा रही हूँ। मैं तुम से एक निवेदन करना चाहती हूँ। मैं जल में बही जा रही हूँ, इसका मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। पर मैं बहुत दूर रहने वाले अपने माता-पिता को अपनी दशा जताना चाहती हूँ। यहाँ पर ऐसा कोई भी नहीं है, जो उन्हें ख़बर दे सके।' श्येन-काक ने कहा—हम जा सकते हैं, किन्तु मनुष्य की भाषा वहाँ कैसे बोलेंगे ?"

(३)

शृगालों का घाट पर शव के लिए प्रार्थना करना

कान्त कोले करि बेहुला सुन्दरी
जलेते भासिया याय ।
सघने हुताश कलार मान्दास
चले मन्द मन्द बाय ॥
साछि घने घने प्रभुर वदने
उड़िया बसे गिया ।
बेहुला नाचनी ताड़ेन आपनि
नेंतेर आँचल दिया ॥

मृत पति कोले मांस पचे गले
प्राणे प्राण नहे स्थिर ।
दिवस रजनी भासेन नाचनी
पाय्या स्रोत पथ नीर ॥
वने बनचारी शार्द्दूल केशरी
शशक हरणी चरे ।
कि आर कहिब यारे खाइते चाह
मड़ा नहे मोर प्राण ॥
किवा कर आश सकलि निराश
यतेक जम्बुकी शुन ।
प्रभु पुनर्ब्बार जीवेक आमार
तोमरा ना करो दून ॥
एत कथा शुनि यत जम्बुकिनी
ए पड़े उहार गाए ।
अपूर्ब्ब काहिनी कभु नाहि शुनि
मड़ा नाकि प्राण पाए ॥
शुन धनी आली कूले टान्या फेल
उदर पूरिया खाइ ।
तुमि निज घरे चलह सत्वरे
मोरा वने वने याइ ॥
ए नव यौवने किसेर कारणे
मड़ाटो लइया कोले ।
लाजहीन नारी शुनह सुन्दरी
कोथा भास्या याह जले ॥
शृगाल कथने बेहुलार मने
किछु नाहि अभिमान ।

ए सब शोचन घुचिब तखन
प्रभु पाइले प्राणदान ॥
भासिजा सियाला नाचनी बेहुला
गेल बहु दूरान्तर ।

"पति को गोद में लेकर बिहुला जल में बहती हुई जा रही है। हवा कभी ज़ोर से और कभी धीरे-धीरें, मंजूषा को ले जा रही है। मृत लखोन्दर के शरीर पर मक्खियाँ उड़ उड़ कर बैठतीं। बिहुला उन्हें अँचल से उड़ा देती। मृत-पति गोद में है। मास गल रहा है। दुर्गन्ध से प्राण व्याकुल हैं; किन्तु तौ भी वह रातदिन धारा-मार्ग से बही जा रही है। वन में वनचर, बाघ, सिंह, शशक, हरिण इत्यादि चरते हैं। मैं और क्या कहूँगी, जिन्हें तुम सब खाना चाहते हो, वे मुर्दा नहीं, मेरे प्राण हैं। तुम व्यर्थ आशा करते हो। तुम अभिशाप न दो। मेरे प्रियतम पुनरपि जीवन लाभ करेंगे। इतना सुन वे (हँसते-हँसते) एक दूसरे के ऊपर गिरने लगे (लोट-पोट होने लगे)—यह तो अपूर्व्व कहानी है। ऐसा तो कभी नहीं सुना गया कि मृत भी कभी फिर जीवित हो सकता है? ऐ अलबेली! सुनो, किनारे पर मुर्दे को फेंक दो। हम सभी भरपेट खायँ। तुम भी घर चली जाओ, हम भी जंगल लौट जायँ। ऐ लज्जा-हीना! इस नवयौवन में इस मुर्दे को गोद में लेकर कहाँ बही जा रही हो?"

"बिहुला के मनमें ज़रा भी क्षोभ नहीं हुआ। यह सब चिन्ता तो तब दूर होगी जब उसके पति जीवित हो जायँगे। इसी प्रकार बिहुला बहती हुई बहुत दूर चली गयी।"

(४)

देवताओं के सामने बिहुला का नाच

नाचे सुन्दरी बेहुला अलक्षिते करे खेला
नाना रूपे करे अंग-भंग ।

नयन कटाक्षे चाय प्राण हरि निया याय
अपरूप मदन तरंग ॥
खञ्जन-गञ्जन-गति चलिते सुभाति अति
घने घने अङ्गुलि देखाय ।
क्षणे-क्षणे उठे बैसे अति सुललित वेशे
क्षणे क्षणे मन्दिरा बाजाय ॥
मुखे गीत गाय भाल सञ्जोगे बाजाय ताल
मयूर पेखम जिनि नाचये ये पाके ।
सुर मुनि आदि यत द्रव हैला जलवत
करुणाय भेदिल अधिके ॥
कोकिला जिनिया रव नृत्य करे असम्भव
क्षीण कटि सदाय हेलाय ।
अपरूप नृत्य करि मोहिलेक त्रिपुरारि
पण्डित जानकीनाथे गाय ॥

"बिहुला सुन्दरी नाचती है। नाना प्रकार के हाव-भाव से भाव-भंगी दिखाती हैं। उसके नयन-कटाक्ष से तो प्राण ही निकल जाते हैं। सब प्रेम-विभोर हो जाते हैं। उसकी खञ्जन को मात करनेवाली चाल है। कभी अँगुली दिखाती, कभी उठती, कभी बैठती, कभी नूपुर बजाती। मुँह से मधुर गीत गाती और साथ ही साथ ताल भी देती जाती है। मोर की तरह नाचती है। सुर, मुनि इत्यादि सब जलवत् द्रवित हो गये। बिहुला कोकिल-कण्ठ से पतली कमर हिला-हिला, अपूर्व्व नाच नाचती है। इस प्रकार एक अपूर्व्व नृत्य से उसने महादेवजी को प्रसन्न कर लिया।"

कविकंकण मुकुन्दराम

कविकंकण मुकुन्दराम बङ्गाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। ये आदर्श-वादी कवि थे; यथार्थवाद के पुजारी थे। इनकी कविता में वास्तविक जीवन का गुण-गान है। सोलहवीं शताब्दी का बङ्गाल का ग्राम्य-जीवन इनकी पंक्तियों में चित्रित है।

यही शताब्दी इनका समय रहा होगा। प्रोफ़ेसर कोवेल (Cowell) ने इनको बङ्गाल का क्रैब (Crabbe) कहा है।

इनके 'आत्म-चरित' से मालूम होता है कि ये बर्दवान ज़िला के दामन्या नामक ग्राम में रहते थे। उस परगना का गवर्नर महमूद शरीफ़ एक क्रूर मुसलमान था। उसके अत्याचारों और उपद्रवों से ग्रामवासी तंग आ गये थे। ऐसे दुर्दिन में मुकुन्दराम भी अपने जन्म-स्थान को छोड़कर भटेना चले आये। यहाँ रूपराय ने और यदुनान्दी ने इनकी सहायता की और अपने घर पर कुछ दिनों के लिये ठहराया। अपने 'आत्म-चरित' में इन्होंने लिखा है—स्नान करने के लिये हमलोगों को तेल नहीं मिला, पानी पीकर क्षुधा की तृप्ति की। बच्चे दाने-दाने के लिये तरस रहे थे। सालुक सापला से फूल तालाब पर चण्डी देवी की पूजा की। थके और भूखे ज़मीन पर सो गये। स्वप्न में चण्डी देवी का दर्शन हुआ। चण्डी देवी ही ने इनको मात्रा और माला का नियम सिखाया और कविता करने को कहा।

उसके बाद ये आड़रा (मेदिनीपुर) में आये। उस स्थान के जमींदार राजा बांकुड़ाराय इनकी कविता से बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें राजकुमार को पढ़ाने के लिये अपने यहाँ शिक्षक रख लिया। दरबार में इनका बड़ा आदर था और अन्त तक ये राजा के कृपापात्र बने रहे। जब देश की दशा सुधरी, तब ये अपनी जन्म-भूमि को लौट आये और शेष

जीवन चण्डी देवी की आराधना में व्यतीत किया। इनकी मृत्यु १६४० ई० के लगभग हुई।

मुकुन्दराम का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चण्डी-मंगल' है। यह काव्य १५८९ में समाप्त किया गया था। उस समय मानसिंह बङ्गाल के गवर्नर थे। यह ग्रन्थ तीन भागों में बँटा हुआ है। पहले भाग में शिव-पार्वती का वर्णन है, दूसरे भाग में शिकारी कालकेतु का और तीसरे में धनपति और श्रीमन्त का।

इनकी कविता के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

वसन्त ऋतु

संगेते मकरकेतु आइल बसन्त ऋतु
तरुगण पुलके पूर्णित।
अजय नदीर कूले अशोक तरुर मूले
शोभा हेरि कामिनी मोहित॥
नवीन पल्लवगण रामार हरये मन
देखि मने भावये खुल्लना।
बसन्त आसिया किबा अटवी करिल शोभा
भाले दिया सिन्दूर अर्च्चना॥
एक फूले मकरन्द पान करि सदानन्द
धाय अलि अपर कुसुमे।
एक घरे पाय्ये मान आमयाजी द्विज यान
अन्य घरे आपन सम्भ्रमे॥
मन्द-मन्द प्रभञ्जने पड़ये कुसुम-बने
पातिलेन अञ्चल खुल्लना।
मने नाना अभिलाष प्रभु आसिबेन बास
भेबे करे कामेर अर्च्चना॥

कोकिल पञ्चम गाय अलि मकरन्द खाय
मन्द-मन्द सुगन्धी पवन।
तरु डाले शारी शुके आलिङ्गन मुखे-मुखे
देखि रामा आकुलित मन ॥
देखि मुकुलित तरु प्रेम-मुग्धा रामा भीरु
गञ्जिया बलेन शारी शुके।

"कामदेव को साथ लेकर बसन्त आ धमके। सभी वृक्ष सुन्दर दीखने लगे। अजय नदी के तीर पर अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई सुन्दरी (खुल्लना) बसन्त की शोभा देख मोहित हो गयी। नये-नये पत्ते रामा (खुल्लना) के मन को मोहने लगे। यह देख वह सोचने लगी—क्या बसन्त ने इस उद्यान के ललाट में सिंदूर सुशोभित किया है? एक पुष्प के सुधा-माधुर्य्य को पान कर भ्रमर दूसरे पुष्प पर जा बैठता। एक घर में सम्मानित होने पर भी ग्राम के पुरोहित दूसरे घर को जाते हैं (संसार का यह नियम ही है कि कोई चिरकाल तक एक वस्तु से संतुष्ट नहीं रहता) मन्द-मन्द वायु से कुसुम झड़ रहे थे। खुल्लना ने अञ्चल बिछा दिया। प्रियतम घर आवेंगे, नाना अभिलाषाओं से उसने मदन की आराधना की। कोकिला पञ्चम स्वर से गाती, भ्रमर मधुपान करते, मन्द-मन्द सुगन्ध समीर बहते और डाल पर बैठे शुक-सारिका—एक दूसरे का मुख चुम्बन करते, खुल्लना प्रेम से मुग्ध होगयी और शुक-सारिका से कहने लगी—

(२)

शुक तुमि दिला कतेक यातना।
आइल राजार स्थान पिञ्जरे साधिते मान
अनाथिनी करिल खुल्लना ॥
गौड़े गेल प्राणनाथ छेलि राखि खाइ भात
परिते न मिले परिधान।

सतिनी मरण ताके केवल तोमार पाके
खुल्लनार एत अपमान ॥
आमार बधिते प्राण आइला किबा एइ स्थान
पिञ्जरेर बिलम्ब देखिया ।
हेर आइस शारी शुक तुमि दिला एत दुःख
गौड़े बारता देह गिया ॥
शिखिया व्याधेर कला हाते लये सातनला
कानने एड़िब जाल फान्दे ।
तोमारे बधिया शुक घुचाब मनेर दुःख
एकाकिनी शारी येन कान्दे ॥
खाइया शारीर माथा शुन मोर दुःख कथा
तोमारे लागिब मोर बध ।
कर कर्म्मे अवधान राखह आमार प्राण
झाट याह गौड़ जनपद ॥
आमारे करिया दया दुःखेर बारता लय्या
देह स्वामीर बारता ।
उड़े गेल शारी-शुक खुल्लना भाबेन दुःख
मुकुन्द रचिल गीत गाथा ॥

"हे शुक, तुमने मुझे कितनी पीड़ा दी ! तुमने राजा के यहाँ आकर खुल्लना को अनाथिनी बनाया ! प्राणनाथ गौड़ देश गये ! यहाँ मुझे छोड़ गए । भात खाती हूँ । पहनने को कपड़े नहीं मिलते । सौत मेरी मृत्यु-कामना करती है । केवल तुम्हारी ही कृपा से खुल्लना का इतना अपमान हो रहा है । या मुझे ही मारने के लिए यहाँ आये हो ? देखो, तुमने इतनी यंत्रणा दी । अब (कृपाकर) गौड़ देश जाकर मेरा समाचार जताओ । नहीं तो मैं व्याधा के कौशल को सीखकर, सतनला ले, जङ्गल में जाल बिछा, तुम्हारा वधकर मनके ताप को दूर करूँगी, जिससे सारिका

अकेली ही विरह दुख से रोवे। देखो, कर्तव्य-पथ पर सतर्क हो जाओ— झट जनपद से गौड़ जाओ। मुझ पर दया कर, मेरी दुःख-वार्त्ता मेरे स्वामी को दें। शुक-शारी उड़ गये। खुल्लना बहुत दुखी हुई। श्री मुकुन्दराम ने इस गीत को रचा।"

(२)

भ्रमरी भ्रमर तोरे युड़ि कर
ना गाओ मधुर गीत।
तोर मधु राय शर ताय
चित्त हय चमकित॥
संगेते अलिनी निवस नलिनी
ना जान विरह-व्यथा।
चित्त चमकित यदि गाओ गीत
खाओ भ्रमरीर माथा॥
षट्पदी संगेते पाप कैलि पथे
विनये मातये अरि।
करिनु विनय ना हलि सदय
किसेर विनय करि॥
तुइ मातोयाल मोर हैलि काल
ना शुन विनय-वाणी।
धूतूरार फुले किबा मधु पीले
ताहा मने नाहि गणि॥
छाड़िया सुहृद चले षट्पद
कोकिल सुनाद पुरे।
विनय भर्त्सना करये खुल्लना
षोड़-कर करि शिरे॥

"हे भ्रमर-दम्पती ! मैं हाथ जोड़ती हूँ। अब मधुर गान न गाओ। तुम्हारा मधुर गीत मेरे हृदय में तीर के समान लगता है। मैं चौंक उठती हूँ। तुम विरह-व्यथा क्या जानो? साथ में भ्रमरी है, निवास-स्थान भी (मधुमय) कमल-क्रोड़ है। तुम्हें भ्रमरी के शिर की शपथ, न गाओ। अब अधिक गान न करो।

ओ भ्रमरी के साथ केलि में विभोर! ओ मेरे शत्रु, विनय करने से तुम और भी उन्मत्त हो रहे हो! तुमसे मैंने कितनी प्रार्थना की— तो भी तुम नहीं पिघलते। फिर मैं किसलिये विनय करूँ!

अरे उन्मत्त, तुम मेरे काल हो रहे हो। तुम अनुनय-विनय भी नहीं सुनते। भला, धतूरे के फूल में तुमने कौनसा मधुपान किया?"

भ्रमर वहाँ से उड़कर कोकिला के कलरव से पूर्ण आम्रकुञ्ज में चला गया। खुल्लना विनय और भर्त्सना करती ही रही।

(४)

कोकिल के प्रति

कोकिल रे कत डाक सुललित हा।
मधुस्वरे दिवा निशि उगारह नित्य विषि
विरहिजनेर पोड़े गा॥
नन्दन कानने बास सुखे थाक बार मास
कामेर प्रधान सेनापति।
केवा तोरे बले भाल अन्तरे बाहिरे काल
बध कैलि अनाथ युवती॥
आर यदि कर वा वसन्तेर माथा खा
मदनेर शतेक दोहाइ।
तोर रव येन शर अङ्ग मोर जर जर
अनाथेर तोर दया नाइ॥

जाति अनुसारे रा नाहि चिन बाप मा
काल साप कालिया वरण ।
सदागर आछे यथा केन नाहि याओ तथा
एइ बने डाक अकारण ॥
आसिया बसन्त काले बसिया रसाल डाले
प्रतिदिन देह बिडम्बना ।
हेन करि अनुमान आइल किबा एइ स्थान
पिकरूपी हइया लहना ॥
खाओ सुमधुर फल उगारह हलाहल
वृथा बध करह युवती ।
पिक याओ अन्य बन खुल्लना अस्थिर मन
मुकुन्देर मधुर भारती ॥

"अरे कोकिल ! तुम्हारी बोली कितनी मीठी है ! (किन्तु) मृदु स्वर से दिन-रात, तुम विष ही उगलती हो, जिससे वियोगियों का शरीर जल जाता है। नन्दन-कानन में (आम्र-बाग में) तुम्हारा आवास है, बारहों महीने चैन से बीतती है। तुम कामदेव की प्रधान सेनापति (सहायक) हो। फिर भी तुम्हें अच्छा कौन कहता है? भीतर बाहर से काली ही काली हो। (आज) तुमने अनाथ युवती का वध किया। अर्थात्, पति-वियोगिनी-दुखिनी युवती को तुमने अपने मृदु-रव से मर्म्माहत किया। अब तुम्हें बसन्त के सिर की शपथ है, मत बोलो। मदन की अनेकों दुहाई ! अब न बोलो। तुम्हारी बोली तो तीर के समान चुभती है। मेरा अङ्ग (आघात खाकर) व्याकुल हो रहा है। ओह ! तुम्हें अनाथिनी पर दया नहीं आती ? तुम्हारा स्वर जाति-अनुकूल ही है। अकृतज्ञ, एवं स्वार्थी होने के कारण माँ-बाप को भी नहीं पहचानती। फिर दूसरों को क्या समझोगी रंग भी अनुरूप ही मिला है। काले साँप का सा तुम्हारा रङ्ग है। सौदागर (खुल्लना) का पति जहाँ है, वहाँ क्यों नहीं जाती ?

यहाँ व्यर्थ क्यों बोल रही हो? इस बसन्त-काल में, आम की डाली पर बैठकर मुझे प्रतिदिन दुःख क्यों देती हो? मालूम तो होता है, जैसे जादूगरनी हो, मेरा उपहास करने के लिये कोकिल बनकर आई हो। मेवा-फल खाती हो, विष उगलती हो और एक निरपराध युवती का व्यर्थ वध करती हो। जाओ, जाओ, किसी दूसरे वन में चली जाओ। खुल्लना बड़ी व्याकुल है।"

(५)

देवो की दया

प्रचण्ड तपने गात्र भासे घर्म्म-जले।
पल्लव-शय्याय रामा शोय तरुतले॥
निद्राय आकुल रामा हरये चेतन।
चरण-पल्लव देखि धाय अलिगण॥
आकाशविमाने यान देवी महेश्वरी।
जया पद्मा विजया सहिते सहचरी॥
अधोमुखी दुःखे तारे देखि भगवती।
कहेन तरुर तले काहार युवती।
परम रूपसी कन्या देव अवतार।
परिते नाहिक वस्त्र गाय अलंकार॥
पद्मावती बले माता शुन नारायणी।
रत्नमाला एइ कन्या इन्द्रेर नाचनी॥
ताल-भङ्गे शाप दिया आनिला अवनी।
एत्रे अवधान केन नाहि गो भवानी॥
सतिनेर हाते रामा पड़िल सङ्कटे।
कानने छागल राखे तोमार कपटे॥
एतेके शुनिया चण्डी पद्मार भारती।
खुल्लनार शियरे बसिला भगवती॥

कपटे धरिला चण्डी रम्भार आकृति।
काँदिया खुल्लनारे बलेन पार्व्वती॥
कत दुःख आछे झीये तोमार कपाले।
सर्व्वंशी छागल तोर खाइल श्रृगाले॥

"सूर्य्य की प्रचण्ड गर्मी से पसीने से तर हो, रामा (खुल्लना) वृक्ष की छाया में पत्ते बिछाकर सोयी हुई है। 'नींद से मातो' रामा अचेत पड़ी है, भ्रमर उसके (रक्तिम) कोमल चरणों को नये पत्ते समझ उधर ही मँड़रा रहे हैं। आकाश-मार्ग में रथपर देवी महेश्वरी जा रही थीं— जया, पद्मा और विजया उनके साथ थीं। खुल्लना को उदास एवं दुःखो देख देवो ने उस युवती के विषय में पूछा—यह तो अत्यन्त रूपवती एवं (स्वर्गीय छटा से पूर्ण) कोई देवी-सी प्रतीत होती है। इसके अंग पर न तो कपड़े हैं, न गहने। पद्मावती ने कहा—माँ, यह रत्नमाला इन्द्र की अप्सरा है; ताल-भंग होने के कारण आपही के शाप से शापित पृथ्वी पर आई है। भवानी, आप क्या इसे भूल गईं? सौत के हाथों यह पीड़ित है, जंगल में तुम्हारी ही दया से बकरियाँ चराती है। चण्डी इतना सुनते ही खुल्लना के सिरहाने बैठ गईं। उसकी माँ (रम्भा) का वेश बना रो-रोकर खुल्लना से कहने लगीं—बेटी, तुम्हारे भाग्य में कितने दुःख बदे हैं? तुम्हारी सब बकरियाँ सियार खा गये।"

(६)

तोर दुःख देखिया पाँजरे बिन्धे घुण।
आजि तो लहना तोरे करिबेक खुन॥
एमन स्वपन तारे दिया महेश्वरी।
निज रथे नियोजिल अष्ट विद्याधरी॥
विद्याधरीगण व्रत करे सरोवरे।
छेलो लुकाइया माता रहिल अम्बरे॥

निद्रा हइते उठे रामा खुल्लना सुन्दरी ।
धरणी लोटाये कान्दे जननीके स्मरि ॥

"तुम्हारे कष्ट देखकर मेरे पञ्जर में घुन लग गये । आज तो जादूगरनी तुम्हें मार डालेगी ।" इस प्रकार स्वप्न देकर देवी ने अपने रथ पर की आठ विद्याधरियों (अप्सराओं) को वहाँ रक्खा । विद्याधरीगण तालाब में व्रत करने लगीं और माता अन्तर्धान होगईं । खुल्लना निद्रा से चौंककर उठ बैठी । वह माँ का स्मरण कर, पृथ्वी पर लोट-लोटकर, रोने लगी ।"

(७)

सिंहल के राजा शालिवाहन की कन्या सुशीला की

बारहमासी

बैशाख बसन्त ऋतु सुखेर समय ।
प्रचण्ड तपनताप तनु नाहि सय ॥
चन्दनादि तैल दिब सुशीतल बारि ।
सामली गामछा दिब सुगन्धी कस्तूरी ॥
पुण्य बैशाख मास पुण्य बैशाख मास ।
दान दिया द्विजेर पुराओ अभिलाष ॥
निदारुण ज्येष्ठ मासे प्रचण्ड तपन ।
पथ पोड़े खरतर रविर किरण ॥
शीतल चन्दन दिब चामरेर बाय ।
बिनोद मन्दिरे थाक न चलिह राय ॥
निदाघ ज्येष्ठ मासे निदाघ ज्येष्ठ मासे ।
पुरिले उदरनाथ पाका आम्ररसे ॥
आकाशे गर्जये मेघ नाचये मयूर ।
नवजले मदमत्त डाकये दादुर ॥

आमार मन्दिरे थाक ना चलिह पुर।
शालि अन्न दधि खण्ड भुञ्जाव प्रचुर॥
आषाढ़ सुखेर हेतु आषाढ़ सुखेर हेतु।
निदाघ वरिषा हिम एके तिन ऋतु॥
सङ्कट समय धाराधर श्रावण।
साध लागे अङ्गे दिते रविर किरण॥
जलधार बरिषये आट दिगे धाय।
विनोद-मन्दिरे थाक ना चलिह नाथ॥
पूरिब अभिलाष पूरिब अभिलाष।
मनोहर घरे नाथ कराइब बास॥

"वसन्त-काल, बैशाख, सुख का समय है। सूर्य्य की प्रचण्ड किरणों को शरीर सह नहीं सकता। चन्दन-तैल लगाने के लिए दूँगी, ठंढा पानी दूँगी, सुन्दर अँगोछा, सुगन्ध कस्तूरी सब कुछ दूँगी। पुण्य बैशाख मास है। ब्राह्मणों को दान देकर अभिलाषा पूर्ण करो। ज्येष्ठ मास, जो अत्यन्त कराल है, सूर्य्य अति प्रचण्ड है, उसकी किरणों से पथ जाज्वल्यमान है। शीतल चन्दन दूँगी, चँवर से हवा कर दूँगी, आनन्द-भवन में रहो। हे नाथ (राजा)! मत जाओ। ज्येष्ठ मास बड़ा भयंकर है। हे नाथ, पके आम्र-रस से भूख मिटाओ। आकाश में मेघ गर्जन करते हैं, मयूर नृत्य करता है, दादुर नये जल पाकर आनन्दित हो ध्वनि करता है, मेरे मन्दिर में रहो, घर मत जाओ, तुम्हें सुन्दर भोजन कराऊँगी, खूब प्रेम से दही-चीनी खिलाऊँगी, आषाढ़ तो केवल आनन्द के लिये है। ग्रीष्म, वर्षा, हिम तीनों ऋतुओं का समावेश इसी में है। श्रावण मास तो पृथ्वी के लिये बड़े सङ्कट का समय है। सूर्य्य की किरणें देह में लगाने की बड़ी इच्छा होती है, सूर्य्य की अनुपस्थिति-बड़ी ही खटकती है पानी बड़े ज़ोरों में बरसकर चारोंओर फैल जाता है। हे नाथ, विनोद-मन्दिर में रहो और कहीं मत जाओ।

तुम्हारी सब अभिलाषायें मैं अवश्य पूर्ण करूँगी; मनोहर घर में तुम्हें रखूँगी।"

भाद्रपद मासे बड़ दुरन्त बादल।
नद नदी एकबार आट दिगे जल॥
मशा निवारिते दिव पाटेर मशारि।
चामर वातास दिव हये सहचरी॥
मधु घरे प्राणनाथ कराइब बास।
आर ना करिह प्रभु उजावनी आश॥
आश्विने अम्बिका पूजा करिबे हरिषे।
षोड़शोपचारे अजा गाड़र सहिषे॥
तत धन दिव आमि यत देह दान।
सिंहलेर लोके यत करिवे सम्मान॥
आसि कहिया राजाय आसि कहिया राजाय।
आनाइब तोमार जननी सत्माय॥
वृष्टि टुटिया आइल कार्त्तिक मासे।
दिवसे दिवसे हय हिम परकाशे॥
तुलि पाटनेत कराइव नियोजित।
अर्द्धराज्य दिब वापे करिया इङ्गित॥
पुण्य कार्त्तिक मास पुण्य कार्त्तिक मास।
दान दिया पूरिह द्विजेर अभिलाष॥
सकल नूतन शस्य अग्रहायण मासे।
धान चालु मुग माष पूरिब आश्रोयासे॥
राजारे कहिया दिब शतेक खामार।
कृपा करि निवेदन राखह आमार॥

"भादों मास में तो बादल बड़े ही दुरन्त होगये हैं; नद-नदी में चारों ओर जल ही जल है। मच्छड़ दूर करने के लिये (मच्छड़ों

से बचने के लिये) पाट की मशहरी दूँगी, तुम्हारी सहचरी बनकर तुम्हें चँवर से पंखा कर दूँगी, मधु-गृह (केलि-भवन) में तुम्हे वास कराऊँगी। हे प्रभो ! अब और अधिक उज्जयिनी की आशा न करो। आश्विन में आनन्द से पशुबलि और षोड़शोपचार के साथ दुर्गा-पूजा करें, जितना दान देना हो उतना धन मैं दूँगी। सिंहल की सारी प्रजा आप का सम्मान करेगी। मैं राजा (पिता) से कहकर तुम्हारी माँ और सतैली माँ को बुलवा दूँगी। वर्षा बन्द हुई, कार्त्तिक-मास आया। दिन-दिन सर्दी बढ़ रही है। तुम्हें पिताजी से आधा राज्य दिला दूँगी। पुण्य कार्त्तिक-मास है, दान दे ब्राह्मणों की आशा पूर्ण करो। अगहन में नये नाज धान, चावल, मूँग, उर्द सब घर में भरा दूँगी। राजा से कह कर सौ गुदाम दिला दूँगी। पर कृपा कर मेरी विनती तो मानो।"

धन्य अग्रहायण मास धन्य अग्रहायण मास।
विफल जनम तार यार नाहि वास॥
पौष तुलि पाति तैल ताम्बुल तपने।
शीत निवारण दिब तसर वसने॥
शीत गोड़ाइवे नाथ अष्टम प्रकारे।
मत्स्य मांस मधुपान आदि उपहारे॥
सुखे गोड़ाइवे हिम सुखे गोड़ाइवे हिम।
उजावनी नगर बासिबे येन निम॥
माघ मासे प्रभात समये करे स्नान।
सुपाठक आनिबे दिब शुनिबे पुराण॥
मिष्ट अन्न पायस योगाब प्रति दिन।
आनन्दे करिबे माघ मासे त्याग मीन॥
माघ ऋतु कुतूहले माघ ऋतु कुतूहले।
शीतल योगार आमि बिहान बिकाले॥
फाल्गुने फुटिबे पुष्प मोर उपवने।
तथि दोल-मञ्च आमि करिब रचने॥

हरिद्रा कुङ्कुम चुयां करिया भूषित।
आगु दोल करिया गाओया नित नित।
सखी मेलि गाब गोत सखी मेलि गाब गीत।
आनन्दित हये सबे कृष्णेर चरित॥
मधु मासे मलय मारुत मन्द मन्द।
मधुकर मालतीर पीये मकरन्द॥
मालती मल्लिका चाँपा विछाइब खाटे।
मधुपाने गोड़ाइब सदा गीत नाटे॥
मोहन मधुमासे मोहन मधुमासे।
सुखेर मन्दिरे थाक ना याइह बासे॥
सुशीलार अभिलाष शुनि सदागर।
हेट मुख करि तारे दिलेन उत्तर॥
सर्व्व उपभोग मोर मायेर चरण।
वार मास्या गीत गान श्रीकविकङ्कण॥

"धन्य अग्रहण मास है। उसका जन्म ही वृथा है जिसका प्रेमिक पास न हो। पौष में तैल, ताम्बूल, तसर-वस्त्र, सूर्य्य किरणें, सब कुछ शीत-निवारण को मिलेंगी। तुम मत्स्य, मांस, मधुपान (सुरापान) इत्यादि आठों प्रकार के सुखों से शीत-काल व्यतीत करोगे। तुम आनन्द से शीत-काल काटोगे, उस समय उज्जयिनी (प्रेमिक का निवास-स्थान) तो नीम जैसा तीता मालूम होगा। माघ के महीने में प्रातः स्नान कर लेंगे, फिर मैं पंडित बुला दूँगी, तुम पुराण सुनना। मीठा अन्न, पायस मैं ठीक (तैयार) रखूँगी। आनन्द से माघ में मछली खाना छोड़ देंगे। माघ में मैं आनन्द से तुम्हारे लिए साँझ-सबेरे शीत-निवृत्ति का प्रबंध रखूँगी। फाल्गुन में मेरी फुलवाड़ी में फूल खिलेंगे। वहीं पर मैं दोल-मञ्च बनाऊँगी। हरिद्रा, कुंकुम इत्यादि के रङ्ग से भूषित कर-दोल का नित्य नया-नया गान करूँगी। सखियों के साथ गीत गाऊँगी।

कौन सा गीत ? कृष्ण-चरित्र ! चैत मास में मन्द- मन्द मलय-पवन चलता है। भ्रमर मालती का मधुपान करते हैं। मैं मालती, मल्लिका, चम्पा इत्यादि फूलों की सेज बिछाऊँगी । मधुपान और नाच- गाने में हमलोगों का समय बड़े आनन्द से बीतेगा। मधु-मास बड़ा ही मनोहर है। सुख-मन्दिर में रहो, घर न जाओ। सुशीला की बात सुन सौदागर ने मुँह नीचा करके उत्तर दिया—मेरे सारे सुख मेरी माता के चरणों ही में हैं।"

भवानीशंकरदास

भवानीशंकरदास के पूर्वज पहले राढ़देश (पश्चिमी बंगाल) में रहते थे। लेकिन उन लोगों का दिन वहाँ सुख से नहीं कटता था, दरिद्रता मुँह बाये द्वार पर खड़ी रहती थी। इस कारण राढ़देश को छोड़कर वे चटगाँव ज़िले के चन्द्रशाला ग्राम में आकर बसे।

भवानीशंकर का जन्म चटगाँव ही में हुआ था। ग़रीबी के कारण इनका बाल्यकाल आनन्द से नहीं व्यतीत हुआ। ये माता चण्डी के अनन्य भक्त थे। १६९० ई० के लगभग इन्होंने कविता रची है।

इनकी अधिकांश कवितायें चण्डी देवी की सेवा में समर्पित हैं। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चटगाँव ज़िले में ये लोक-प्रिय कवि थे।

इनकी एक कविता यहाँ दी जाती है—

चंडी का रूप

कि वर्णिब मायेर रूप नराधम दीने।
याँहार रूप-आभाय त्रिभुवन जिने॥
प्रातरर्केर आभा जिनि शोभे पदतल।
पदोपरे अलङ्कारे करे झलमल॥
पदनखे निन्दियाछे इन्दु द्वितीयार।
नखाग्रते खगाग्रज हैछे एकओर॥

मृगेन्द्र जिनिया कटि देखिते सुन्दर ।
करिकुम्भ जिनि स्तन अति मनोहर ॥
मृणाल जिनिया बाहु अति सुलक्षण ।
ग्रीवाय निन्दिछे पितामहेर वाहन ॥
विम्बफल जिनियाछे अधरेर वरणे ।
गजमति जिनि ज्योतिः करेछे दशने ॥
खग-चञ्चु जिनिछे सुन्दर नासिकाय ।
लोचन देखिया कुरङ्गिणी निन्दा पाय ॥
अनङ्गेर गाण्डीव जिनि भ्रूरूर भङ्गिमा ।
तार माझे शोभे विन्दु सिन्दूर रङ्गिमा ॥
बड़इ उज्ज्वल देह जिनि पुष्पातसी ।
बदनेर आभाय जिनिछे पूर्ण शशी ॥
भवानी शङ्करे एइ बान्छे मानसेते ।
रूप भावि प्राणी मोर याउक कालान्तते ॥

"मैं नराधम माता के स्वरूप का क्या वर्णन करूँ! उनकी रूप-ज्योति तीनों लोकों को जीत लेती है। प्रातः सूर्य्य की आभा से बढ़कर माँ के चरणों की लाली है। पावों के अलंकार झलमल करते हैं। पदनख तो द्वितीया के चन्द्रमा को भी लज्जित करते हैं। नख के आगे मानो स्वयं अरुण आ लगे हों। मृगेन्द्र-विनिनिन्दनो कटि अत्यन्त ही सुन्दर है। करि-कुम्भ को जीतने वाले स्तन हैं। मृणाल (कमल-नाल) से भी सुन्दर बाहु हैं, ग्रीवा तो मानो राजहंस को लजाती है, अधर की लाली तो विम्बाफल से भी बढ़कर है। दशन-ज्योति गजमुक्ता से भी अधिक चम-कीली है। सुन्दर नासिका ने तो पक्षि-चञ्चु को जीत लिया है। लोचन देख मृगी लज्जित है। भ्रू-भंगिमा तो मदन-चाप को लज्जित करती है, भ्रुओं के बीच में लाल सिन्दूर-विन्दु शोभायमान है। उनका शरीर तीसी के फूल के समान उज्ज्वल है, मुख सौन्दर्य्य-पूर्ण चन्द्र के समान है।"

विकास-काल के महाकवि
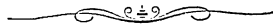
कृत्तिवास

कृत्तिवास का जन्म १३४६ ई० में श्रीपंचमी के दिन हुआ था। सरस्वती देवी की कृपा इन पर आरम्भ ही से थी। इनका बाल्यकाल घर ही पर व्यतीत हुआ था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वारा गंगा नदी के तीर पर एक पाठशाला में ये संस्कृत पढ़ने के लिये गये। वहाँ कई वर्ष तक रहकर इन्होंने संस्कृत के व्याकरण और साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। शिक्षा समाप्त कर ये गौड़ाधिपति के दरबार में पहुँचे। महाराज काव्य के रसिक थे। राजदरबार में इनका बड़ा आदर-सम्मान हुआ। कृत्तिवास की काव्य-प्रतिभा पर मुग्ध होकर महाराज ने इनसे रामायण का पद्यानुवाद करने का अनुरोध किया। इस ऐतिहासिक राजदर्शन का वर्णन बाद के कई एक लेखकों ने अपने ग्रन्थों में किया है।

महाराज से इस प्रकार सम्मानित होकर ये बड़े उत्साहित हुए। इनका यश चारोंओर फैल गया और दूर-दूर से लोग इनके दर्शन के लिये आने लगे। इनके जीवन के अन्तिम भाग के विषय में बहुत कम पता चलता है। ध्रुवानन्द मिश्र ने 'महावंशावली' में लिखा है कि कृत्तिवास अच्छे कवि थे। शान्त प्रकृति और मिलनसार थे।

कृत्तिवास बंगाल के लोक-प्रिय कवि हैं। इनका रामायण बंगाल के घर-घर में श्रद्धा और भक्ति से पढ़ा जाता है। पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन इनके ग्रन्थ की लोक-प्रियता वैसी ही बनी हुई है। कृत्तिवासी रामायण बंगाल की ग्रामीण जनता की बाइबिल है।

"आत्म-चरित्र" में इन्होंने अपने पूर्वजों का संक्षिप्त विवरण दिया है। ये लोग कुलीन ब्राह्मण थे और श्रीहर्ष के वंशज थे। राजा आदिसुर के कहने से ये लोग कन्नौज से आकर पूर्वीय बंगाल में बसे थे। नरसिंह झा जी श्रीहर्ष से सत्रहवीं पीढ़ी के थे। राजा वेदानुज के प्रधान मंत्री थे। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में फ़कीरुद्दीन ने पूर्व्वीय बंगाल पर चढ़ाई की। इस कारण ये लोग वहाँ से हट गये और चौबीस परगना के फुलिया नामक ग्राम में अपना निवास-स्थान बनाया। इनके लड़के गर्वेश्वर झा अपनी उदारता और दानशीलता के लिये प्रसिद्ध थे। मुरारी झा इस वंश के सबसे ख्यातनामा पुरुष थे। कृत्तिवास इन्हों के पौत्र थे।

इनका प्रधान ग्रन्थ 'रामायण' है। इनकी कविता रोचक, सरस और मधुर है।

इनकी कविता के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

अशोक वन में शोक

कुहु कुहु शब्दे कोकिल करए रोदन।
मा छाड़ा गेल आन्धार हव अशोक वन॥

मयूरगण नृत्य छाड़ि करे हाय हाय ।
भ्रमर गुण गुण छाड़ि लोटाय सीतार पाय ॥
सीतार चरण धरि कान्दने सरमा ।
दासी करि सङ्गे नेह ना करिह घृणा ॥
जानकी कहेन शुन मिता विभीषण ।
सरमा बोहिनोर तुमि करिह पालन ॥
आमार सङ्गेते याइबे अयोध्या भुवने ।
राक्षसी देखिया लोके भय पाइबे मने ॥

"कोकिल कुहू-कुहू शब्द कर रोदन करते हैं कि माँ (सीता) के छोड़कर चले जाने से अशोक-वन अन्धकारमय हो उठेगा । नाचना भूल कर मोर 'हाय-हाय' करते हैं और भौंरे मधुर गुञ्जार छोड़कर सीता के चरणों पर लोट रहे हैं। सरमा (राक्षसी) सीता के चरणों को पकड़कर रोती हुई कहती है—मुझे दासी बनाकर साथ कर लो, मुझसे घृणा न करना । उत्तर में जानकी कहती हैं—विभीषण ! सुनो, सरमा बहन का तुम पालन करना । मेरे साथ यदि वह अयोध्या जायगी, तो लोग उसे राक्षसी जान कर उससे डरेंगे ।"

(२)

राम की कटूक्ति

चतुर्दोल हैते तखन नाम्बिल जानकी ।
लज्जाते आपनार गाए आपनि हैला लुकि ॥
केहो किछु नाहि बोले सभार भितरे ।
शोक सम्वरिया राम बलेन धीरे धीरे ॥
रावणेर घरे छिले करिलाङ उद्धार ।
तोमार लागिया अपयशः घोषए संसार ॥

आमार अपयशः घुचिल तोमार उद्धारे ।
उद्धारिजा मेलानि दिलाङ सभार भितरे ॥
आमार केहो नाहि छिल तोमार पाशे ।
शयन भोजन तोमार ना जानि दशमासे ॥
सूर्य्यकुले जन्म दशरथेर नन्दन ।
तोमा हेन स्त्रीये मोर नाहि प्रयोजन ॥
आजि हैते नह सीजा आमार घरणी ।
यथा तथा याह तुमि दिला मेलानि ॥
हेर देख सुग्रीव बानर-अधिपति ।
उँहार ठाञि थाक गिया यदि लय मति ॥
राक्षस-राज देख ऐ राजा विभीषण ।
उँहार ठाञि थाक गिया यदि लय मन ॥
भरत शत्रुघ्न देख सहोदर दु-भाइ ।
नय सेवा कार्या थाक गिया ता सभार ठाञि ॥
यथा तथा याह सीता आपनार सुखे ।
केन आज आइञा कान्द आमार समुखे ॥

"जब जानकी चतुर्दोल से नीचे आईं, लज्जा के कारण अपने शरीर में वे आप ही गड़ी जाती थीं। सभा में कोई कुछ नहीं बोलता था। यह देख राम स्वयं शोक को संयत कर धीरे-धीरे बोले—तुम रावण के घर में थी, मैंने तुम्हारा उद्धार किया। संसार तुम्हारे कारण मुझे अपयश देता है। मेरा अपयश तो तुम्हारे उद्धार से मिट गया। अब तुम्हें सभा में लाकर मैंने खड़ी कर दी। मेरा कोई व्यक्ति तुम्हारे पास न था। दस महीने तक तुम्हारे शयन और भोजन की हालत मैं कुछ भी नहीं जानता। मेरा जन्म सूर्यबंश में हुआ। मैं दशरथ का पुत्र हूँ। तुम्हारी जैसी स्त्री से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। आज से सीता मेरी गृहिणी नहीं है। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जा सकती हो। मैंने अनुमति दे दी। देखो, यह बानरराज

सुग्रीव है। इच्छा हो तो इनके पास जाकर रहो। देखो, यह राजा विभीषण राक्षसों के अधिपति हैं। यदि इच्छा हो तो इनके पास जाकर रहो। देखो, दोनों सहोदर भाई भरत-शत्रुघ्न हैं। मेरी सेवा की ज़रूरत नहीं, उनके पास जाकर ठहरो। अपना जहाँ सुख हो, जाओ। मेरे सामने आकर आज क्यों रोती हो?"

(३)

सीता का उत्तर और अग्नि-परीक्षा

यत यत बलेन राम अति निठुर वाणी।
धारा श्रावणेर दुइ चक्षे झरे पानी॥
केहो किछु नाञि बोले सभार भितरे।
आँखिर लोह मुछि मा सीता बलेन धीरे-धीरे॥
जनक झियारी उत्तम सुले उत्पत्ति।
दशरथ-सुत राम मोर हन पति॥
भाल मते जान गोसाञि-आमार चरिति।
जानियाँ शुनिञा केन करिछ दुर्गति॥

"राम ज्यों-ज्यों कठोर वचन बोलते, त्यों-त्यों सीता की आँखों से श्रावण की धारा की नाईं जल गिरता था। सभा में कोई कुछ नहीं बोलता था। तब धीरे-धीरे आँखें पोंछकर सीता ने कहा—मैं जनक की पुत्री हूँ। श्रेष्ठ कुल में मेरा जन्म हुआ है। दशरथ के पुत्र राम मेरे पति हैं। आप मेरे चरित्र को अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी जान-सुनकर मेरी दुर्गति क्यों करते हैं?"

(४)

धर्मशील गोसाञि तुमि विचारे पण्डित।
विभाकाल हैते जान आमार चरित॥
आद्य उपान्तेर कथा शुन ठाकुर राम।
तोमा बिनु अन्य पुरुष पितार समान॥

बलिबे येबा रावण हरे दुराचार मति ।
लोके बलिबे अनुचित सीता नय सती ॥
हेन काले सीता देवी युड़े दुइ हात ।
अभागी विदाय माँगे तोमार साक्षात् ॥
अभागी विदाय माँगे तोमार चरणे ।
दया ना छाड़िह प्रभु जनमे जनमे ॥
जन्मे जन्मे राम तुमि मोर स्वामी हय्य ।
आर जन्मे हेन रूपे मोरे ना छाड़िह ॥
तोमार बालाइ लय्य हब छार खार ।
ब्रह्मार बाञ्छित पद ना देखिब आर ॥
तिन बार प्रदक्षिण कर्या रघुनाथे ।
चलिला जानकी लक्ष्मी अनल पशिते ॥
सरमाए गेला लक्ष्मी पद दुइ चारि ।
पुनर्बार दाण्डाइला पादपद्म हेरि ॥
बालकेर खेला येन तेमति हइल ।
दयानिधि बिधि मोर वञ्चित करिल ॥

"आप धर्म्म-शील और विचार में पण्डित हैं। विवाह-काल ही से मेरा चरित्र जानते हैं। राम! आदि और अन्त की कहानी सुनें। आप के अतिरिक्त जितने पुरुष हैं, सभी मेरे पिता के तुल्य हैं। मैं नहीं कहती कि रावण दुराचारी न था। लोग अनुचित कहेंगे ही कि सीता सती नहीं है। अब सीतादेवी दोनों हाथ जोड़कर कहती हैं—आपके सामने यह अभागिनी विदा माँगती है। आपके चरणों से विदा माँगती है। प्रभो! जन्म-जन्मान्तर में भी दयाभाव न भूलें। राम! जन्म-जन्म में आप ही मेरे पति हों और जन्मान्तर में इस प्रकार मेरा परित्याग न करें। आप की बला लेकर मैं भस्मसात् हो जाऊँगी। जिन चरणों के दर्शन की कांक्षा ब्रह्मा को भी है, मैं अब उनका दर्शन न करूँगी। तीन बार राम

की प्रदक्षिणा कर श्रीसीतादेवी अग्नि में प्रवेश करने चलीं। लक्ष्मी लजाती हुई दो चार पग गई होंगी कि फिर चरण-कमल देखकर खड़ी हो गई। यह बालक के खेल ही की नाईं हुआ, दयानिधि विधाता ने मुझे वञ्चित ही रखा।"

(५)

पुनरपि जोड़करे बलेन धीरे-धीरे।
कि लागिया प्रभु राम छाड़िले आमारे॥
कान्दिते-कान्दिते सीता पशिल अनल।
तो देखि अवनी पड़े बानर सकल॥
पशु पक्षि जाय अचेतन गड़ागड़ि।
चलिलेन चन्द्रमुखी माया मोह छाड़ि॥
एमन व्यथित मोर यदि केहो थाके।
प्राणनाथे बुझाइया अभागीरे राखे॥
ता देखिया लक्ष्मणेर मुखे नाइ रा।
चरणे धरिया बले ना छाड़िह मा॥
विषाद भाबिया लक्ष्मण जाय गड़ागड़ि।
कार बोले रामचन्द्रे तुमि जाबे छाड़ि॥
आसिवार काले माता सौंपिल तोमारे।
दन्ते तृण धर्या बलि ना छाड़िह मोरे॥
तुमि यदि अग्नि माझे करिबे प्रवेश।
तबे आर रामचन्द्र ना जाबेन देश॥
चित्रकूटे जननी बरिला तोमार हाते।
आपन माथार दिव्य दिला कान्दिते-कान्दिते॥
राम-सङ्गे अवश्य आसिह चन्द्रमुखी।
अमि येन तोमादेर चाँद सुख देखि॥

"फिर उन्होंने हाथ जोड़ धीरे-धीरे कहा—प्रभो! मुझे किस कारण

त्याग दिये ? रोती-रोती सीता ने अग्नि में प्रवेश किया। यह देख सभी बानर भूमि पर गिर पड़े। जितने पशु-पक्षी थे, सभी अचेतन हो पड़े। चन्द्रमुखी सारी ममता त्यागकर चली। यदि कोई ऐसा व्यथित हो, प्राणनाथ को समझाकर अभागी को बचावे। यह देखकर लक्ष्मण के मुखपर रङ्ग न रहा। राम के चरण पकड़कर बोले—माँ को मत त्यागिये। दुःख से लक्ष्मण सीता से बोले—किसके ऊपर तुम राम को छोड़ जाओगी ? आते समय माता ने तुम्हें राम के हाथों सौंपा था। कहा था, मुँह की वास के समान उसे न छोड़ना। यदि तुम अग्नि में प्रवेश करती हो, तो राम फिर देश नहीं जा सकते। चित्रकूट में माता ने अपनी कसम दे देकर रोती हुई कहा था—हे चन्द्रमुखी ! राम के साथ अवश्य आना, जिससे मैं तुम्हारा चन्द्रमुख देखूँ।"

(६)

अङ्गीकार केले तुमि ताँहार निकटे।
भाबिते से सब कथा मोर प्राण फाटे॥
तोमा बिने अयोध्या केहो आर नाहि जाबे।
बल देखि अभागी माएर किबा हबे॥
जानकी बलेन लक्ष्मण आर केने कान्द।
पुनः पुनः कत आर माया-जाले बान्ध॥
मोर कर्म्म-दोषे दुःख बिधाता लिखिल।
हैल मोर एइ दशा कपाले ये छिल॥
पोड़ाइब निज अंग अनल प्रवेशे।
तुमि प्रभु लय्या सङ्गे जायय निज देशे॥
इहा बलि लक्ष्मण राखिया पिछु भिते।
धीरे-धीरे यान लक्ष्मी कान्दिते-कान्दिते॥
पवन-नन्दन हनु दूरे हैते देखे।
सीतार साक्षाते पड़्या मा मा बल्या कान्दे॥

हनुमान् बले मा एक दण्ड थाक ।
अग्निकुण्ड कर्या मरि दाण्डाइया देख ॥

पोड़ाब आपन अंग हैब छारखार ।
पुत्रेर मरण देख्या तुमि कर आगुसार ॥

एत बलि हनुमान् लोटाइया कान्दे ।
छटपट करे वीर स्थिर नाहि बान्धे ॥

"तुमने उनको वचन भी दिया है। यह सब सोचकर मेरा हृदय फटता है। तुम्हारे बिना कोई अयोध्या न लौटेगा। भला कहो तो, अभागी माँ का क्या होगा? जानकी ने कहा—लक्ष्मण ! अब क्यों रोते हो? फिर-फिर अब कितने माया-जाल में बाँधते हो। मेरे कर्म्म-दोष से विधाता ने दुःख लिखा है। मेरे भाग्य में जो था, वही हुआ। मैं अग्नि में प्रवेश कर शरीर भस्म कर डालूँगी। तुम प्रभु को लेकर अयोध्या जाना। यह कह लक्ष्मण को पीछे कर सीता रोती-रोती चलीं। पवन-नन्दन हनुमान् दूर से देख सीता के सामने गिरकर "माँ-माँ" कर रो पड़े। हनुमान् ने कहा—माँ, एक क्षण ठहरो। देखो, अग्नि-कुण्ड में कूदकर मर जाता हूँ। पहले पुत्र को मरते देख लो, तब तुम मरना। यह कह हनुमान् लोट-लोटकर रोये। वे छटपटा रहे थे। धीरज धारण न कर सकते थे।"

(७)

सीता बले केन कान्द बाछा हनुमान् ।
तोमारे करिबेन दया गुणनिधि राम ॥
हनुमान् बलेन मागो तोमार कारणे ।
सर्व्वइ मरिब केहो ना जीब पराणे ॥
मरिब लक्ष्मण आर गुणनिधि राम ।
मरिब तोमार पुत्र वीर हनुमान ॥

एमति जननी यदि सभारे छाड़िबे ।
आर कि बलिब बधभागी हबे ॥
सीता बोलेन कर्म्मभोग ना कान्दिह आर ।
राम लय्या अयोध्या के जायग्र एक बार ॥
एत बलि पश्चाते राखिया हनुमाने ।
पुनरपि कान्दे वीर बोध नाहि माने ॥
एक महादु:ख मोर रहिल अन्तरे ।
आपनि जननी मागो बल्याछिला मोरे ॥
यदि आमि एकबार देखि प्रभु राम ।
तोमारे सन्तुष्ट हैय्य किछु दिब दान ॥
आजि त रामेर पद देखिले नयने ।
तबे केने वञ्चित करिले हनुमाने ॥
सीता बलेन माँगो बापु येइ इच्छा मने ।
तोमारे से दिया दान पशिब आगुने ॥
ये कर्म्म कर्याछ बापु पवन-कोङर ।
शोधिते नारिब धार जन्म-जन्मान्तर ॥

"सीता ने कहा—वत्स हनुमान्! क्यों रोते हो? तुम्हारे ऊपर गुणनिधि राम दया करेंगे। हनुमान् ने कहा—माँ, तुम्हारे कारण सब मरेंगे। कोई जीवित न रहेंगे। लक्ष्मण, राम और तुम्हारे पुत्र वीर हनुमान् मरेंगे। माँ, यदि इस प्रकार सबको छोड़ जाओगी, तो मैं और क्या कहूँ, हत्या के पाप की भागिनी होगी। सीता बोली—कर्म्म भोगना ही पड़ेगा। अब मत रोओ। राम को लेकर अयोध्या जाओ। ऐसा कह हनुमान् को पीछे छोड़ सीता आगे बढ़ी। हनुमान् का क्रन्दन बन्द न हुआ। वे बोले—माँ, हृदय में एक दुःख रह गया। माँ, तुमने मुझसे कहा था कि यदि एक बार राम को देख पाऊँगी तो तुम्हें कुछ पुरस्कार दूँगी। आज तुमने राम के चरण देखे। फिर हनुमान् को वञ्चित क्यों

करती हो ? सीता ने कहा—बेटा, जो इच्छा हो माँगो । तुम्हें वह पुरस्कार देकर मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी । पवनकुमार, तुम ने जो काम किया है, उसका ऋण तो जन्म-जन्मान्तर में न चुका सकूँगी ।''

(८)

अश्रुमुखो हनुमान् धीरे-धीरे कय ।
कहिते ना पारे प्रेमे दुइ धारा बय ॥
हनुमान् बले तबे दान पाइ आमि ।
यदि एकबार रघुनाथेर बामे बैस तुमि ॥
एत बलि हनुमान् पड़िला लोटाय्या ।
जनम सफल करि नयने देखिया ॥
सीता बलेन साध छिल विधि हल्य बाम ।
पाथारे फेलाल्यो मोरे गुणनिधि राम ॥
जन्म-जन्म ऋणो आमि पवन-नन्दन ।
शोधिते तोमार धार नारिब कखन ॥
कर्म्म कर्याछ तुमि के करिब आर ।
मोर लागि दारुण समुद्र हैया पार ॥
सेइ दिन नाञ्जि गेले मरिताङ आपने ।
तुमि रामेर अङ्गुरी दिया राखिले पराणे ॥
सेइ आशे एत दिन आमि प्राणे नाहि मरि ।
नयने देखिलाङ आमि रूपेर मुरारि ॥
तव पुण्ये राम-पद पुनर्ब्बार देखि ।
हइल परम भाग्य जुड़ाइल आँखि ॥

"आँसू बहाते हुए हनुमान् ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया । बात निकलती न थी । प्रेम के आँसू झर रहे थे । हनुमान् ने कहा—तो मुझे पुरस्कार दीजिये । तुम एकबार राम के बाईं ओर बैठो तो आँखों से देख जन्म सफल करूँगा । यह कह हनुमान् पृथ्वी पर लोट गये । सीता बोलीं—

मेरी भी यही अभिलाषा थी, पर विधाता वाम हो गया। गुण-निधि राम ने मुझे पथ में फेंक दिया। पवन-नन्दन, मैं जन्म-जन्म ऋणी रहूँगी। तुम्हारा ऋण कभी न चुका सकूँगी। मेरे कारण दारुण समुद्र पारकर तुमने जो काम किये, वैसा कौन करता? उस दिन यदि तुम न गये होते तो मैं मर ही जाती। तुमने राम की अँगूठी देकर मेरे प्राण बचाये। उसी आशा से इतने दिन जीवित रही। तुम्हारे प्रताप से फिर राम के चरणों को देखकर नेत्रों को शीतल करने का सौभाग्य मिला है।"

(६)

अयोध्या नगरे याबो मने छिल आशा।
विधि मोरे दुःख दिल हल्य एइ दशा॥
ये आमार प्राणधन से छाड़िल मोरे।
कह बाछा हनुमान् याबो कोथा कारे॥
अतएव आमि आर देह ना राखिब।
रामेर बालाइ लय्या अनले पड़िब॥
तोमा बिने मोर बन्धु आर केह नाइ।
पुत्र-कार्य्य कर बापु कहि तोमार ठाञि॥
तुमि पुत्र हनुमान् राम मोर पति।
पुत्रेर साक्षाते मरे सेइ पुण्यवती॥
जगते दुर्म्मति नाइ आमार समान।
सब दुःख देखिते न पान भगवान्॥
अतएव पुत्र-कार्य्य करिते युयाय।
राम याते पाब तार कह त उपाय॥
एइ खाने बाछा तुमि एक दण्ड थाक।
पुत्र कार्य्य कर बाछा राम नाम डाक॥
तोमार मुखे राम नाम शुनि मृत्युकाले।
इहा बड़ भाग्य नाइ ए महीमण्डले॥

ये काले अग्निर कुण्डे पड़िब आपनि ।
सेइ काले येन राम नाम तोमार मुखे शुनि ॥

"मन में आशा थी कि अयोध्या जाऊँगी । विधाता ने दुःख दिया । यह दशा हुई । मेरे जीवन-धन ने मेरा परित्याग कर दिया । वत्स हनुमान्, बताओ अब मैं कहाँ जाऊँ? । अतएव मैं अब शरीर न रक्खूँगी ! राम को बलाई लेकर अग्नि में जल जाऊँगी । तुम्हारे सिवा मेरा और कोई बन्धु नहीं है । बाबू, पुत्र का काम करो । हनुमान्, तुम मेरे पुत्र हो और राम पति हैं । जो पुत्र के सामने मरे वही पुण्यवती है । मेरे समान दुर्मति संसार में और नहीं है । भगवान् को सब दुख न देखना पड़े । अतएव तुम पुत्र-धर्म का पालन करने का उद्योग करो । कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे राम को मैं फिर पा सकूँ । वत्स ! तुम एक क्षण यहीं ठहरो । पुत्र का काम करो, राम का नाम लो जिससे अग्निकुण्ड में प्रवेश करते समय तुम्हारे मुँह से राम-नाम सुनूँ । मृत्युकाल में तुम्हारे मुँह से राम-नाम सुनने से बढ़कर सौभाग्य भूमण्डल में और कुछ नहीं हो सकता ।"

(१०)

एत बलि सीता देवी अन्तरे व्यथित ।
अग्निकुण्ड-समीपे हइल उपनीत ॥
सीता बले साक्षी हय सकल देवता ।
राम बिने अन्य यदि जाने रामेर सीता ॥
तबे मोर एइ अङ्ग छारखार हब ।
निरमल सूर्य्य-वंशे कलङ्क रहिब ॥
राम बिने आमि यदि अन्य नाहि जानि ।
तबे मोर देह रक्षा करिबे आगुनि ॥
कृत्तिवास पण्डितेर कवित्त मधुर ।
शुनिले परमानन्द पाप जाय दूर ॥

वृद्ध वाल्य पशुगण कान्दिते लागिल ।
राम राम बलि लक्ष्मी अग्निते पशिल ॥
परशमणिर मात्र अङ्ग-परशने ।
लौह आदि स्वर्ण येन हय तत्क्षणे ॥
तेमति सीतार अङ्ग परशे केवल ।
ज्वलन आगुनि हल्य सुशीतल ॥
सीतार शपथ-काले त्रिभुवन आल्य ।
आगुने अङ्गेर शोभा आभर हइल्य ॥
तिन लोके हाहाकार उठे हेन काले ।
महावेगे उठे अग्नि गगनमण्डले ॥
क्रमे क्रमे अग्नि गिया युड़िल आकाश ।
देखिया सकल लोके लागिल तरास ॥

"यह कह सीतादेवी हृदय में व्यथित हो अग्नि-कुण्ड के समीप गईं। सीता ने कहा—सभी देवता साक्षी हों। राम की सीता यदि राम के सिवा दूसरे को जानती हो, तब यह मेरा अङ्ग भस्मसात हो जाय। निर्मल सूर्य-वंश में कलङ्क न रहने पावे। यदि मैं राम के सिवा और किसी को नहीं जानती, तो अग्निदेव मेरे शरीर की रक्षा करें। कृतिवास की यह मधुर कविता सुनने से परम आनन्द मिलता है और पाप नष्ट हो जाते हैं। (सीता के मुँह से यह करुणा वाक्य सुनकर) बालक से वृद्ध तक, यहाँतक कि पशु-पक्षी आदि भी रोने लगे। लक्ष्मी "राम राम" कहती हुई अग्नि में प्रवेश कर गईं। जिस प्रकार स्पर्श-मणि के छूने से लोहा तत्काल सोना बन जाता है, उसी प्रकार सीता के स्पर्श से ही जलती हुई आग ठण्ढी हो गई। सीता के शपथ के समय तीनों लोक आ पहुँचे। अग्नि में शरीर की आभा और चमक उठी। इसी समय तीनों लोकों में हाहाकार हुआ। अग्नि महावेग से आकाश की ओर उठने लगी, उसकी ज्वाला क्रमशः आकाश से जा मिली, यह देख सारा संसार भयभीत हो गया।"

(११)

तावत् आछिला राम हेट कर्या साथा।
यत क्षण अग्नि माझे ना पड़िल सीता॥
उठिलेन रघुनाथ अस्तव्यस्त हय्ये।
कोथा गेल प्राण सीता आमारे छाड़िए॥
हेदे रे लक्ष्मण भाइ सीता कोथा गेल।
सीता बिनु चारि दिक अन्धकार हल्य॥
सीता बिने मोर प्राण तिलेक ना रय।
कान्दिते कान्दिते बले दुइ धारा बय॥
कहरे लक्ष्मण भाइ कि करिब आर।
सीता बिने दश दिग हल्य अन्धकार॥
आमि आर ना याइब आपन नगर।
सीता बिने प्रवेशिब अग्निर भितर॥
कहिबे माएर आगे तुमि याह देशे।
आमि गिया अग्निकुण्डे करिब प्रवेशे॥
एत बलि रामचन्द्र वेगे यान धाजा।
आमि घुचाइब दुःख कुण्डे झाँप दिया॥
प्राणेर दोसरी सीता गेल येइ पथे।
आमि सङ्गी हब भाइ याब ताँर साथे॥
ज्ञानहीन हजा राम धाजा यान वेगे।
त्वरात्वरि लक्ष्मण धरिल पदयुगे॥
छाड़रे लक्ष्मण भाइ देह रे छाड़िया।
सीतार विरह-दुःख याब एड़ाइया॥

"सीता ने जब तक अग्नि में प्रवेश नहीं किया था, तब तक राम सिर झुकाये बैठे रहे। उनके अग्निकुण्ड में कूदते ही वे अस्त-व्यस्त होकर उठे और कहने लगे—मेरी प्राण सीता, मुझे छोड़ कहाँ

चली गई? भाई लक्ष्मण, सीता कहाँ गई? उसके बिना चारों दिशाओं में अन्धकार छा गया। सीता के बिना प्राण क्षण भर भी स्थिर नहीं रहते। आँखों से केवल आँसू बहते हैं। अब मैं अयोध्या न जाऊँगा। सीता के बिना आग में कूद पड़ूँगा। तुम लौटकर मां को ख़बर देना, मैं अग्नि में प्रवेश करता हूँ। ऐसा कह रामचन्द्र आगे बढ़े और बोले—मैं अग्नि-कुण्ड में कूदकर दुःख मिटा लूँगा। प्राणप्रिया सीता जिस मार्ग से गई है, उसी का मैं भी अनुसरण करूँगा। राम अचेत हो वेग से दौड़े। यह देखकर लक्ष्मण ने उतावली के साथ उनके पैर पकड़ लिये। राम ने कहा—भाई, लक्ष्मण छोड़ो, सीता के विरह का दुःख न भूल सकूँगा।"

(१२)

लक्ष्मण बलेन नाथ सङ्गे कर मोरे।
चल दुटी भाइ प्रवेशिब कुण्डेर भितरे॥
लक्ष्मणेर गला धरि अचेतन हल्या।
हाय हाय करि लक्ष्मण कान्दिते लागिला॥
× × आमार मने आगे नाञि हल्य।
त्रिभुवन—जयलक्ष्मी अनले पड़िल॥
शक्तिशेले पड़्या केने नहिल मरण।
विषम दैवेर गति दुःखेर कारण॥
तुमि ये छाड़िबे लक्ष्मो जानिब केमने।
ना राखिब देह आर पोड़ाब आगुने॥
किन्तु आर प्रभु राम नारिब राखिते।
देशान्तरी हब रामे बान्धिया गलाते॥
लक्ष्मणेर मुख हेरि पाइया चेतन।
कि करिब बुद्धि मोरे बल हे लक्ष्मण॥
यारे ना देखिले प्राण तिलेक ना रय।
से मोर आगुने पुड़्या हल्य भस्ममय॥

जानकीरे सङ्गे लयया हल्याङ वनवासी ।
कि लयया याइब देशे कर्या भस्मराशि ॥

"लक्ष्मण बोले—नाथ ! मुझे भी साथ में लेकर चलिये। दोनों भाई अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करेंगे। राम लक्ष्मण के गले लगकर अचेत हो गये। लक्ष्मण हाय हाय करके रो पड़े—मेरे मन में पहले क्यों न आया? त्रिभुवन की विजय-लक्ष्मी आग में जल गई! जिस समम मेरे शक्ति लगी थी, उसी समय मैं क्यों न मर गया? दैव की गति विषम दुःख-दाई है। हे लक्ष्मी, कैसे समझूँ कि तुमने मुझे छोड़ दिया? अब मैं इस शरीर को सजीव न रक्खूँगा; किन्तु अग्नि में जला डालूँगा। किन्तु अब मैं प्रभु रामचन्द्र को भी न बचा सकूँगा। लक्ष्मण का मुख देखकर राम सचेत हुए और बोले—बताओ लक्ष्मण, क्या करूं? जिस सीता को देखे बिना प्राण क्षण भर भी नहीं रहते, वह आग में जलकर भस्म हो गई। जानकी को लेकर वनवासी हुआ था। अब उसे जलाकर देश क्या ले जाऊँ?"

हनुमान् के साथ उनकी माता अंजना की भेंट

(१)

चक्षु मेलिआ बानरी पुत्र पाने चाइ।
बानरी बलेन आमार पुत्र केह नाइ॥
हनुमान बले बटे एकटी पुत्र छिल।
ना जानि निर्ब्बली बेटा कोथा गिया मैल॥
हनु बले मरि नाइ बाच्या आछि प्राणे।
अंजना बले माथाय तबे चुल नाइ केने॥
हनुमान् मार कहेन कर-योड़ हञा।
माथार केश उठ्या गेछे गाछ पाथर बञा॥
एत शुनि अंजना चान हनूर पाने।
आचम्बिते गाछ पाथर बैले कि कारणे॥

हनूमान् बलेन मा निवेदन करि।
दशरथ-सुत हैल पूर्णब्रह्म हरि॥
कैकै बिमाता तार हैल पाषण्डी।
भरते राजत्व दिल रघुनाथे भाण्डि॥
पितार सत्य पालिते राम वनचारी।
पंचबटीर बने रावण सीता कैल चुरि॥
सीता खुज्या रघुनाथे भ्रमेन बने बने।
ऋष्यमुखे देखा हैल सुग्रीवेर सने॥
बालि बध्या सुग्रीव के दिला छत्रदण्ड।
सुग्रीव साजिल रणे लय्य राज्य खण्ड॥

"आँख गड़ाकर वानरी पुत्र की ओर देखती है। वानरी कहती है—मेरे कोई पुत्र नहीं है। हनुमान् नाम का एक पुत्र था अवश्य, पर वह न जाने कहाँ जाकर मरा। हनुमान् बोले—मरा नहीं, जीवित हूँ। अंजना ने कहा—तब माथे पर बाल क्यों नहीं हैं? हनुमान् ने हाथ जोड़कर माँ से कहा—माथे के बाल वृक्ष और पत्थरों के ठोकर से उड़ गये। अंजना हनुमान को देखकर बोली—वृक्ष और पत्थर क्यों ढोये? हनुमान् ने निवेदन किया—भगवान् पूर्णब्रह्म दशरथ के पुत्र हुए, उनकी विमाता कैकेयी ने पाषण्ड किया, राम को हटाकर भरत को राजत्व दिया। पिता के सत्य-पालन के लिये राम बन गये। पंचवटी के वन में रावण ने सीता को चुरा लिया। सीता को ढूँढ़ते हुए राम वन-वन फिर रहे थे। ऋष्य-मूक पर्वत पर सुग्रीव से उनकी भेंट हुई। बालि को मारकर उन्होंने सुग्रीव को गद्दी दी। सुग्रीव ने युद्ध की तैयारी की।"

(२)

शतेक योजन सेइ प्रलय सागर।
सागर बान्धिते बइलाङ गाछ पाथर॥

बानरीर क्रोध तखन के बलिते पारे ।
असार्थक आमि तोरे धर्याछि उदरे ॥
धिक तोरे वृथा ब्याँच्या आछ हनुमान् ।
एक धार दुग्ध मोर कर नाइ पान ॥
एक धार दुग्ध यदि एक दिन खात्ये ।
तबे केने एत श्रम पाबे रघुनाथे ॥
सागरेर माझे यदि पड़िते नार्या युयो आड़ ।
कटक लय्या तोमार पृष्टे राम हैतेन पार ॥
वज्रठाट मारिते नाब्याजु लङ्कार उपरे ।
राक्षस सहित दशानन यात्य यमेर घरे ॥
पृष्ठे करि सीता आनिते रामेर सदने ।
रण करि रघुनाथ श्रम पाबेन केने ॥
हनुमान् ब्रलिल मा कहि तोमार ठाञि ।
सकल क्षमता आछे रामेर आज्ञा नाञि ॥
माए पोएर शुनि राम कथोपकथन ।
रथे हैते नाम्बि तथा याइल तिन जन ॥

"सौ योजन यह अगाध समुद्र था। उसको बाँधने के लिए पत्थर और वृक्ष लाया था। उस समय बानरी के क्रोध का वर्णन कौन कर सकता है? वह बोली—"मैंने तुम्हें व्यर्थ उदर में धारण किया। तुम्हारा जीवन धिक् है। तुमने मेरा दूध न पिया। यदि एक धार भी दूध पिये होते तो राम को इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ता? तुम समुद्र में पड़ जाते और तुम्हारी पीठ पर से सेना लेकर राम पार हो जाते। लङ्का के ऊपर वज्र-सी मुष्टिका मारते। रावण राक्षसों-सहित यमलोक चला जाता। सीता को पीठ पर चढ़ाकर राम के घर ले आते; राम को युद्ध का कष्ट क्यों सहना पड़ता?" यह सुनकर हनुमान् ने कहा, पर "माँ, मैं तुम्हारे समीप कहता हूँ। यह सब कर देने की शक्ति मुझ में है, राम की आज्ञा न थी।" माँ-बेटे की बातें सुनकर राम रथ से उतरे और तीनों व्यक्ति उस स्थान पर गये।"

घनश्यामदास

इनका असली नाम नरहरि चक्रवर्ती था। 'घनश्यामदास' इनका उपनाम था। इनका जन्म सोलहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था और सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ये जीवित रहे। ये सुविख्यात विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। वैष्णव-सम्प्रदाय में इनकी भगवद्गीता की टीका प्रामाणिक मानी जाती है।

ब्राह्मण होकर भी ये एक शूद्र के अनन्य भक्त थे और उसकी जीवनी इन्होंने बड़ी श्रद्धा से लिखी है। उस समय का कट्टर समाज यह धृष्टता कभी नहीं सहन कर सकता था। परन्तु इस सम्बन्ध में लोगों की उपेक्षा के कारण यह अनुमान होता है कि उस समय जाति-पाँति का बंधन ढीला होने लगा था और लोग चरित्र और गुण-सम्बन्धी उच्चता का आदर करने लगे थे।

घनश्यामदास के प्रधान ग्रन्थ ये हैं—

(१) नरोत्तम-विलास—यह श्रीनरोत्तमदास की विस्तृत जीवनी है, जो सोलह वर्ष ही की अवस्था में संन्यासी हो गये थे।

(२) भक्ति-रत्नाकर—यह एक बड़ा ग्रन्थ है और पन्द्रह परिच्छेदों में बँटा हुआ है। इसमें प्रधान-प्रधान वैष्णव लेखकों, कवियों और पन्थों का वर्णन है। इसमें संस्कृत के लगभग चालीस ग्रन्थों का उल्लेख आया है।

घनश्यामदास नाम के दो व्यक्ति थे। (१) भक्तिरत्नाकर नामक प्रसिद्ध वैष्णव-इतिहास-ग्रंथ के प्रणेता—घनश्यामदास उर्फ़ नरहरि चक्रवर्ती और (२) कविराजवंशोद्भूत महाकवि गोविन्द कविराज का पौत्र घनश्यामदास कविराज। पद-कल्प-तरु में नरहरि के ३४ पद हैं। गोविन्द कविराज की मृत्यु १६१२ ई० में हुई थी। इसलिये घनश्यामदास का समय इसके बाद रहा होगा। दोनों घनश्यामदास पद-कर्त्ता थे।

घनश्यामदास के जिन ग्रन्थों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनके अतिरिक्त इन्होंने बहुत-सी फुटकर कविताएँ भी रची हैं। उनमें से कुछ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

(१)

बलेन कौशल्या रानी शुन सीता मोर वाणी
कि कारणे याइबे कानने ।
ना याइह भागीरथी तीरे ।
ए हेन कमल-पाय लागिबे कण्टक घाय
बड़ दुःख पाइबे शरीरे ॥
बने बड़ जन्तु भय व्याघ्र भल्लूकचय ।
सिंह गण्डा सर्प नाना जाति ।
बड़इ दुरन्त बन नाहि ताहे लोके जन
भये केह ना करे बसति ॥
तव पद सरसिजे शिला ठेकि पाछे बाजे
रौद्रे मिलाय सुख-शशी ॥
चामरी चिकुर देखि मनेते हइया दुःखी
हैल सेइ कानने निवासी ॥
पितृ-सत्ये राम सने बड़ दुःख पाल्ये बने
(बाछा) तोमा ना देखिल प्राण फाटे ।
तुमि मोर लक्ष्मी सती तोमा लागि रघुपति
लङ्काय रावण माइल हटे ॥
ना देखिया सीता तोरे केमने रहिब घरे
शून्य घर सकल सङ्काश ।
कौशल्या ना कर चिन्ता पश्चाते पाइबे सीता
निवेदिल घनश्यामदास ॥

"कौशल्या रानी बोलीं—सीता, मेरी बात सुनो। किस कारण बन जाओगी? इन कमल जैसे चरणों में काँटे गड़ेंगे; तुम्हारे शरीर को दुःख होगा। बन में जानवरों का बड़ा भय है। वहाँ बहुतेरे बाघ, भालू, सिंह गैंडे और अनेक प्रकार के साँप रहते हैं। बन बड़ा दुर्गम है, वहाँ भय से कोई वास नहीं करता। तुम्हारे पद-कमल में जिससे शिलाखण्ड न गड़ें, चन्द्रमा जैसा मुख धूप में मलिन न होवे, यही बात सोचकर चंचला चमरी मन में दुखी हो उस कानन में निवास करने लगी। (ताकि तुम्हें कुछ आराम दे सके)। पिता के सत्य का पालन करने के लिए राम जब बन गये थे, तब उनके साथ वन में तुमने बड़ा कष्ट पाया। तुमको देखे बिना मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। तुम मेरी लक्ष्मी हो, तुम्हारे ही लिये राम ने लङ्का में रावण को मारा। तुमको न रख घर में कैसे रहूँगी? सारा घर सूना पड़ जावेगा। घनश्यामदास कहते हैं—कौशल्या, चिन्ता न करो। पीछे सीता मिलेगी।"

(२)

बलेन सुन्दरी सीता कौशल्यार स्थाने।
कोन भय नाहि माता श्रीरामेर गुणे॥
विपिने कण्टक कत चरणे बाजिल।
श्रीराम-स्मरणे किछु दुःख ना जानिल॥
यार गुणे बन्दी हैल वनेर वानर।
हेन राम निरवधि अन्तर-भितर॥
तोमार चरणे राम ना मुखे निब।
क्षुधा तृष्णा व्यथा पीड़ा किछु ना जानिब॥
एत बलि कौशल्यार बन्दिल चरण।
प्रणमिला सुमित्रा-कैकेयीर चरण॥
लक्ष्मण आछेन यथा दाण्डाइया पथे।
सेइ खाने गिया सीता आरोहण रथे॥

पुरीर बाहिर हैया याइत जानकी।
नाना अमङ्गल सीता पथ मध्ये देखि॥
सीतार दक्षिण भुज करए स्पन्दन।
दक्षिण लोचन तार स्पन्दे घने घन॥
दक्षिण राकाड़े शिवा करि उद्र्ध्वगल।
राम पाशे भुजंगम देखिल अमंगल॥
अंगेर भूषण घन आलाइया पड़े।
समुखे थाकिया कालपेचा ये राकाड़े॥
अमंगल देखि सीता कहेन लक्ष्मणे।
एत अमंगल आजि पथ-मध्ये केने॥

"सुन्दरी सीता ने कहा—हे माता, श्रीराम के प्रताप से मुझे कोई भय नहीं है। वन में कितने काँटे गड़े, पर रामचन्द्र के स्मरण से दुःख न जान पड़ा। जिनके प्रताप से वन का बन्दर बन्दी हो गया, वही राम निरन्तर मेरे मन में रहेंगे। मुख से राम-नाम लूँगी और भूख-प्यास, व्यथा और पीड़ा कुछ न जान पड़ेगी। यह कहकर सीता ने कौशल्या के चरणों की बन्दना की, सुमित्रा और कैकेयी के चरणों में प्रणाम किया और मार्ग में जहाँ लक्ष्मण प्रतीक्षा कर रहे थे, जाकर रथारूढ़ हुईं। नगर से बाहर मार्ग में सीता ने कितने अमंगल देखे। उनकी दाहिनी भुजा फड़कती, दाहिनी आँख फड़क उठती, शिवा (सियारिन) गला उठाकर दाहिनी ओर शब्द करती, बाईं ओर अमंगल सर्प दीख पड़ते, अंगों के भूषण गिर जाते और सामने पेचक शब्द करता। इन अशुभ शकुनों को देखकर सीता लक्ष्मण से बोलीं—

(२)

समुखे लाँघिया पथ याय कुरङ्गिणी।
देखिया लक्ष्मण मोर दगधे पराणी॥

मुञि अभागिनो रहुक रामेर कुशल ।
ठाकुराणी कौशल्यार सर्वत्र मङ्गल ॥
ये जन मारिल दुष्ट खर ये दूषण ।
सागरे जाङ्गाल बन्ध कैल येइ जन ॥
विभीषण शरण लइल याँर ठाञि ।
सेइ प्रभु आमार हउक सचिराइ ॥
दशस्कन्ध ये जन मारिल बाहु-बले ।
मन्दोदरी ये जन सिञ्चिल लोह जले ॥
मोर ठाञि ये जन पाठाल्य हनूमान् ।
अयोध्यारे राजा येबा दूर्व्वादल-श्याम ॥
सेइ प्रभु युगे युगे करुक राज्य भार ।
ताँहार चरणे भक्ति रहिए आमार ॥
दुःखित हइया सीता भाबिते अन्तरे ।
प्रवेश करिल सीता भागीरथीर तीरे ॥
रथे हैते नाम्बिलेन जानकी-लक्ष्मण ।
नौकाय पार हैया गेलेन दुइ जन ॥
स्नान पूजा दुइ जन कैल गङ्गाजले ।
लक्ष्मण जानकी दोँहे उठिलेन कूले ॥

"लक्ष्मण, आज मार्ग में इतने अशकुन क्यों दीख पड़ते हैं। सामने से हिरणी पथ नाँघ कर जाती है, यह देख मेरे हृदय को दुख हो रहा है। मैं अभागिनी हूँ। राम का कल्याण हो। देवी कौशल्या का सर्वत्र मङ्गल हो। जिस पुरुष ने खर-दूषण को मारा, समुद्र में पुल बाँधा, विभीषण ने जिनकी शरण ली, वे ही मेरे प्रभु चिरायु हों। जिन्होंने बाहु-बल से रावण को मारा, मन्दोदरी को आँसू के जल से सींचा, मेरे पास हनूमान् को भेजा, वे दूर्व्वादलश्याम अयोध्या के राजा हैं, वे युग युग राज्य करें, उनके चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे। यह बातें मन में सोचती हुई

दु:खिता सीता भागीरथी के तीर पर पहुँचीं। जानकी और लक्ष्मण रथ से उतरे और नाव पर गङ्गा पार हुए। गङ्गाजल में दोनों ने स्नान-पूजा किया, फिर किनारे पर चढ़ने लगे।"

(४)

महारण्ये प्रवेश करिला सीता सती।
नाना भयङ्कर तथा बनजन्तु देखि॥
तमाल हिन्ताल बट पाकुड़ी शिमुली।
अश्वत्थ पियाल शाल बदरी भैजरी॥
बहेड़ा कड़ार आम्र आमलकी।
महा महा खदिर पलाश हरीतकी॥
बड़ बड़ बृक्ष सब ताहार कोटरे।
गृध्र आदि कत पक्षी ताहे बासा करे॥
कुशेर कण्टक कत शिला बहुतर।
व्याघ्र भल्लूक गण्डार ताहार भितर॥
देखिया लक्ष्मणे जिज्ञासिला देवी सीता।
पवित्र उत्तरीबास मुनि-पत्नी कोथा॥
कह कह आमारे लक्ष्मण महाशय।
नाहि देखि से सकल मुनिर आलय॥
किबा बले आइलाम कोन अभिलाषे।
यज्ञ-धूम नाहि देखि मुनिर सकाशे॥
महावृक्ष सब कत पोड़े दावानले।
पर्व्वत आकार सर्प चतुर्दिके बोले॥
हेन बुझि राम सने हैल अदर्शन।
बनबासी हैलाम पारा शुनह लक्ष्मण॥
रोदन करेन सीता स्मरिया श्रीराम।
कृष्णेर किङ्कर कहे दास घनश्याम॥

"सीता सती महावन में घुसीं। बहुतेरे भयङ्कर वन्य जीव देखे। तमाम, हिन्ताल बड़, पोकर, पीपल, पियार, साल, बैर, बहेरा, कड़ार, आम, आँवला, धव, पलास, हरीतकी आदि बड़े-बड़े वृक्ष देखे। उनके कोटरों में गोध आदि कितने हो पक्षो वास करते थे। कुश के कितने ही काँटे, कितने ही चट्टान, उनके भीतर कितने बाघ, भालू और गैंडे देख-देखकर सोता ने लक्षण से पूछा—पवित्र तपोवन में मुनि-पत्नी कहाँ है? कहो लक्ष्मण, मुनियों का आश्रम नहीं दीखता है। कहाँ आई, किस अभिलाषा से? मुनियों के निकट यज्ञ के धुयें नहीं देखती। सब बड़े-बड़े वृक्ष दावानल में जल रहे हैं। चारों ओर पर्व्वत के आकार के साँप बोलते हैं। जान पड़ता है रामसे भेंट न होगो। राम को याद कर सीता रोने लगीं। कृष्ण के सेवक घनश्यामदास का ऐसा कहना है।"

(५)

हेट माथे कान्देन लक्ष्मण सकरुणे।
सोह करि लोह कत भरए नयने॥
शोके गद्‌गद हैया सीतार बलिल।
मुनिर मन्दिर पावे धीरे धीरे चल॥
कहिते विदरे बुक दुःख उठे मने।
श्रीरामेर वाक्य लङ्घिब केमने॥
लोक-अपवादे तोमा करिल नैराश।
श्रीराम पाठान तोमा दिते बनबास॥
लक्ष्मणेर बोले सीता करिल रोदन।
कोन् दोषे प्रभु राम करिला वर्ज्जन॥
शुनह लक्ष्मण मोर प्राणेर दोसर।
आमाके करिले रक्षा दण्डक-भितर॥
प्राणेर देवर तुमि आमार लागिया।
परिचर्य्या कैले कत फल मूल खायया॥

निदाघ बरषा शीत नाहि रात्रि दिने ।
निद्रा नाञि गेले तुमि आमार कारणे ॥
हेन जने केमने दिलेहे वनवास ।
कि करिया दाण्डाइबे श्रीरामेर पाश ॥
पर्ण-शाला चित्रकूटे कैले मोर तरे ।
ताहाते गाण्डीव लय्या थाकिले बाहिरे ॥

"लक्ष्मण सिर झुकाकर रोने लगे । शोक से गद्गद होकर वे बोले—धीरे-धीरे चलिये, मुनि का आश्रम मिलेगा । कहते हृदय फटता है, श्रीराम की आज्ञा कैसे लङ्घन करूँ ? लोक-निन्दा के कारण राम ने तुम्हें निर्वासित कर दिया । सीता लक्ष्मण से रोती हुई बोलीं—रामने मुझे किस दोष के कारण त्याग दिया ? लक्ष्मण, तुम मेरे प्राण-प्रिय हो । तुमने दण्डक बन में मेरी रक्षा की । मेरे लिए तुमने फलाहार कर कितनी सेवा की । जाड़ा, गरमी, बरसात, दिनरात तुम मेरे कारण कभी न सोए । फिर मुझे बन में क्यों छोड़ते हो ? राम के पास कैसे खड़े होगे ? मेरे लिये चित्रकूट में पर्ण-कुटी बनाई और तुम स्वयं धनुष लेकर बाहर पहरा देते रहे ।"

(६)

अरण्येर मध्ये मोर कोन गति हब ।
श्रीराम लक्ष्मण बिने के मोरे राखिब ॥
तुमि गेले आमि आजि तेजिब जीवन ।
एइ अरण्येर माझे के करिब रक्षण ॥
वस्त्र ना सम्बरे सीता आउदड़ चुलि ।
धरणी लोटाय सीता कान्दिया आकुलि ॥
श्रीकृष्ण-पदारविन्द-मकरन्द-पाने ।
घनश्यामदास कहे कृष्णेर चरणे ।

व्याकुल हइया सीता स्मरिया श्रीरामे ।
केने तेजिले हे प्रभु अपराध बिने ॥
उच्चैः स्वरे रोदन करेन अतिशय ।
श्रीरामेर रूप-गुण स्मरिया हृदय ।
आजानुलम्बित भुज दूर्व्वा-दल-श्याम ।
उन्नत नासिका भाषा बल्लकी समान ॥
पदयुवा सरसिज चाचर कुन्तल ।
कुण्डले मण्डित गण्ड करे झलमल ॥
देखिया से मुखशशी कान्दे अभिमाने ।
सिंहेर सदृश गति अति सुलक्षणे ॥
कराङ्गुलि अतिशय चम्पक कलिका ।
मधुकर-शिशु येन लम्बित अलका ॥

"जङ्गल में मेरी क्या दशा होगी ? राम और लक्ष्मण के बिना मुझे कौन बचावेगा ? तुम्हारे चले जाने पर आज मैं प्राण त्याग दूँगी । इस बन में मेरी कौन रक्षा करेगा ? सीता जी के वस्त्र गिर रहे थे । वे आकुल हो कर रोती-रोती भूमि पर गिर पड़ीं । श्रीकृष्ण के सेवक घनश्यामदास ने यह कथा कही ।

"व्याकुल होकर सीता राम को याद करने लगीं—प्रभो ! अपराध के बिना मुझको क्यों त्यागा ? राम के रूप-गुण को याद कर वे बहुत रोईं । दूर्वादल-श्याम आजानुलम्बित बाहु, उन्नत नासिका, कमल के से पैर, सर्प के से कुन्तल, गण्ड-स्थल कुण्डल से मण्डित, चन्द्रमा का सा मुख याद कर सिंहगति, सुलक्षणा, चम्पकाङ्गुलि, भ्रमरालका सीता रोती थीं ।"

(७)

दशन दाड़िम्ब-बीज-रुचि सविधाने ।
देखिया अङ्गेर आभा काम अभिमाने ॥

हेन राम गुण रामेर केमने पासरि ।
कोन् दोषे श्रीराम करिल वनचारी ॥
हरेर धनुक भाङ्गि आमा बिभा कैले ।
आमार हाइबासे प्रभु वृत्त कोल दिले ॥
कि लिखिले दैव मोरे किछुइ ना जानि ।
प्रभुर नाहिक दोष मुञि अभागिनी ॥
कौशल्यारे आमार कहिय परणाम ।
अनुलद्य सीता तोमार करेन धेयान ॥
प्राणेर देयर तुमि याह निज पुरे ।
आलिङ्गन बलिह मोर कनिष्ठ-भगिनीरे ॥
कहिअ प्रभुर स्थाने आमार मरण ।
गङ्गार सलिले मोर करिते तर्पण ॥
जन्मे-जन्मे मोर पति सेइ दण्डधारी ।
आमा हेन कोन युगे ना हइए नारी ॥
लदमण प्रणति कैल सीतार चरणे ।
लोहेते मुदित आखि-पद्म अदर्शने ॥
लदमण याइते नारे तेजिया सीताये ।
पद आध चलिते ना पारे यान धीरे-धीरे ॥

"उनके दाँत दाड़िम के बीज जैसे थे। शरीर की आभा से काम भी गौरव पाता था। इस प्रकार राम के गुण यादकर सीता रोती हुई बोलीं—किस दोष से राम ने मुझे निर्वासित किया? शङ्करजी का धनुष तोड़कर उन्होंने मुझसे विवाह किया था। वृक्ष के नीचे मेरी गोद पर सिर रखे। फिर भी विधाता ने मेरे भाग्य में न जाने क्या लिख रक्खा था? इसमें प्रभु का दोष नहीं, मैं ही अभागिनी हूँ। कौशल्या को मेरा प्रणाम कहना, छोटी बहनों को मेरा आलिङ्गन कहना। जाओ, राम से कहना—मेरे मरने पर गङ्गा में तर्पण करें। जन्म-जन्म मेरे वही पति हों! मुझे छोड़कर और कोई

भी किसी युग में उनकी सहधर्मिणी न हो। लक्ष्मण ने सीता के चरणों में प्रणाम किया। उनकी आँखें आँसू से अन्धी थीं। सीता को छोड़कर लक्ष्मण से चला नहीं जाता था, वे धीरे-धीरे आधे पैर जाते थे।"

(८)

उच्चैः स्वरे कान्दे लक्ष्मण मने-मने व्यथा।
एकाकिनी केमने रहिबे बने सीता॥
कि करिया अयोध्याय रहिब भारती।
वनेते रहिल सीता सती गर्भवती॥
व्याघ्र महिष गण्डार भल्लुक बारणे।
सर्प सिंह आसि पाछे मारए पराणे॥
पृथिवीते एत दुःख कार नाञि हय।
देवता मनुष्य मध्ये काहार हृदय॥
भाबि-भाबि लक्ष्मण हइला अदेख।
भूमिते पड़िया सीता कान्दे अतिरेक॥
भज कृष्ण-पद-द्वन्द्व चित्त अभिलाष।
भकति करिया बले घनश्याम दास॥
कान्दे सीता करुणा करिया।
भूमेते पड़िया धूलाय लोटाञा॥
एकाकिनी अरण्य भितर।
सङ्गे केहो नहिक दोसर॥
कि हबे कि हबे परिणाम।
मोरे बिधि केने हैल बाम॥
कान्दे सीता आकुल-पराणी।
सिंह भये येमत हरिणी॥

"मनमें व्यथित होकर लक्ष्मण उच्चस्वर से रोने लगे—बन में सीताजी अकेली कैसे रहेंगी? मैं अयोध्या में किसलिये रहूँ? सती

गर्भिणी सीता बन में रही जाती हैं। बाद को बाघ, महिष, गैंडे, भालू, हाथी, साँप, सिंह आदि आकर कहीं उनके प्राण न ले लें। पृथ्वी में देवता या मनुष्य किसो के भी हृदय को मेरे जैसा दुःख न हो। यह सब सोचते-सोचते लक्ष्मण अदृश्य हो गये। भूमि पर पड़कर सीता व्याकुल भाव से रो रही थीं। घनश्यामदास कहते हैं कि भक्ति से पदयुगल को भजो।

जङ्गल में अकेली, सञ्ज्ञोहीन सीता भूमि पर पड़कर विलाप कर रही थीं। सिंह के भय से हरिणी की नाईं व्याकुल सीता रो रही थीं। वे सोचतो थीं कि आगे चल कर मेरी न जाने कौन-सी गति हो? विधाता मुझ पर बाम क्यों है?"

(६)

पिता मोर जनक नृपति।
तपस्या करिया पाल्य पति॥
रघुपति हेन स्वामी यार।
एत दुःख केने हय तार॥
कनक-रचित सिंहासन।
ताहे आमि करिताङ शयन॥
अङ्गे यार अगुरु चन्दन।
से केने बासित हैला बन॥
सीता देखि यत हस्तिगण।
जल आनि करिआ सेचन॥
तृण जल हरिणी तेजिया।
कान्दे तारा सीता के देखिया॥
पशुगण आदि कुम्भ आर।
कान्दे दुःख देखिया सीतार॥
नृत्य तेजि मयूरगण।
सीतार अग्रे धरिया पेखम॥

महासर्प निकटे आसिया ।
छाया करे फणाय धरिया ॥
चामरी आसिया सीतार पाश ।
सीतार अङ्गे करए बातास ॥

"जनक राजा मेरे पिता हैं। तपस्या से राम-जैसा पति पाया। फिर मेरी-जैसी स्त्री को इतना दुःख क्यों? मैं सोने के सिंहासन पर सोती थी। जिसके शरीर में अगुरु-चन्दन लगे रहते, उसे वन में क्यों बसना पड़ा? सीता को देखकर हाथी जल ला उनको सींचते, मृगी चरना छोड़कर रोती, पशु आदि उनके दुःख से रोते। नृत्य छोड़ मोर सीता के निकट आकर देखते, विशाल सर्प फण से उनको छाया करता, और चमरी निकट आ उन्हें हवा करती।"

(१०)

मन्द-मन्द पवन गमन ।
दक्षिण मलया सुशोभन ॥
व्याकुल बलेन रामराम ।
निवेदिल दास घनश्याम ॥

आलायया कुन्तल भार कान्दे सीता अनिवार
अंग सब धूलाय धूसर ।
करि नाना माया मोहे बसन तितिल लोहे
सघने डाकए रघुबर ॥
श्रीरामेर अभिमान कानने तेजिया प्राण
ना जानि कि फल कर्म्मदोषे ।
पाषाण राजये पाय धारे रक्त पड़े ताय
कुशेर कण्टक दुइ पाशे ॥
एइ मोर बड़ व्यथा कि करिब याब कोथा
केबा मोरे करिब रक्षण ।

आमि राज-रानी हैया सिंहासन तेजिया
नाना दुःखे बुलि बने-बन ॥
केमने थाकिब बने नाहि अन्य लोकजने
जन्तुगण देखिया मराइ ।

"घनश्यामदास कहते हैं—दक्षिण दिशा से शीतल मलयानिल मन्द-मन्द चल रहा था। उससे व्याकुल हो सीता राम-राम कहतीं। कुन्तलभार झुलाकर वे निरन्तर रोती रहतीं। उनका सारा शरीर धूलि-धूसर था। नाना माया-मोह से आँसू से वस्त्र भिगाती हुई सीताजी ज़ोर से राम को पुकारतीं। वे सोचतीं—श्रीराम के अभिमान से बन में प्राण दे दूँ तो न जाने क्या फल होगा। पैर में पत्थर के ठोकर से लहू की धारा बह जाती है, दोनों ओर कुश के काँटे हैं। ओह, मुझे इतनी व्यथा है! क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरी कौन रक्षा करेगा? मैं राज-रानी होकर सिंहासन छोड़ बन-बन घूमती हूँ। बन में कैसे रहूँगी? यहाँ एक भी आदमी नहीं है। हिंसक जीवों को देख डर से मरी जाती हूँ।"

(११)

आइलाङ साधन करि देखिब मुनिर नारी
ताहे विधि चिन्तल हेथाइ ॥
एइ तो अरण्य माझे पशु-पक्षी तरु राजे
केबा मोरे करे परित्राण ।
रामेर रमणी हय्या बने बड़ि दुःख पाय्या
केने मोरे तेजिला श्रीराम ॥
उच्चैः स्वर करि कान्दे शोके बुक नाजि बान्धे
शुनिला बाल्मीकि तपोधन ।
शिष्य-सहिते मुनि सीतार क्रन्दन शुनि
आसिया दिलेन दरशन ॥

कृष्ण-पदारविन्द मधु-पाने मत्त भृङ्ग
शुनि भेल घनश्यामदास।
नतुन मंगल गाँथा जैमिनि भारत पृता
भकत जनार अभिलाष॥
सशिष्य सहिते मुनि काष्टेर कारणे।
यज्ञ-हेतु कानने आइला तपोधने॥
एकाकिनी कानने देखिया मुनि तारे।
कार कन्या कार नारी सत्य कह मोरे॥

"आई थी आशा में कि ऋषि-पत्नियों से भेंट होगी। विधाता ने यही सोचा। इस बन में, पशु-पक्षी और वृक्षों के राज्य में, मुझे कौन बचावेगा? राम को सहधर्मिणी होकर बन में दुःख भोगती हूँ। राम ने मुझे क्यों छोड़ा? इस प्रकार सीताजी फूट-फूटकर रो रही थीं कि उनका क्रन्दन सुनकर शिष्यों-सहित वाल्मीकि मुनि आये और सीता जी को दर्शन दिया। घनश्यामदास सुनकर कृष्ण के चरण-कमल का मत्त भृङ्ग हो गया।

तपोधन मुनि शिष्यों को लेकर यज्ञ के लिये समिधा लेने आये थे। सीता जी को बन में अकेली देखकर उन्होंने पूछा—मुझसे सच बताओ, तुम किसकी कन्या और किसकी स्त्री हो?"

(१२)

बिम्बफल जिनि तोमार अधर सुरंग।
देखिया बदन शशी लाजे दिल भंग॥
मृणाल विहित बाहु सुरु रामधनु।
पद कर सरसिज हरि-मध्य जनु॥
अलका अमृत कत अलि-कुल घटा।
दशन मुकुता हास्य विद्युतेर छटा॥
एकाकिनी केने माता कानने भितर।
शुनिया जानकी तार कहेन उत्तर॥

तोमार चरणे प्रणमिजे महामुनि ।
श्रीरामेर नारी आमि जनक-नन्दिनी ॥
आमि अभागिनी मोर दृष्टि हैल होने ॥
तेजिलेन राम मोरे बने ते कारणे ॥

"तुम्हारे अधर का रङ्ग बिम्ब-फल को हरा देता है। तुम्हारा मुँह देख चन्द्रमा लज्जित हो जाता है। मृणाल की बनी हुई तुम्हारी भुजायें हैं, इन्द्रधनुष की सी भ्रू है, हाथ और पाँव कमल-जैसे हैं, सिंह की सी तुम्हारी कमर है, तुम्हारे केश अमृत का पान करनेवाले भृङ्ग को भी जीत लेते हैं, तुम्हारे दाँत मोती से हैं और हँसो बिजली की छटा-सी है। फिर माँ, तुम बन में अकेली क्यों हो? यह सुनकर जानकी ने उत्तर दिया—महामुने! आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ। मैं श्रीराम की पत्नी और जनक की पुत्री हूँ। मैं अभागिनी हूँ। मेरे अदृष्ट के कारण रामने मुझको बनमें छोड़ दिया।"

मान

(१)

तुया बिनु कान आन नाहि जानत फुल-शरे जरजर देह ।
तुहुँ बिनि मने आन नाहि जानसि अपरूप तोहारि सेनेह ॥
सुन्दरि दूर कर बचन बिभङ्ग ।
तोहारि बिरह अबे सो गिरिधर धरइ ना पारइ अङ्ग ॥
कि कहब तोहे अति तोँहारि चरणे नति कहइते कहन ना फुर ।
एतहिँ पराभव शुनइते तछु यब अबहुँ ना बाओरि दूर ॥
हेरइते भीत मझु चितहि कठिन हृदय हेन मानि ।
कह घनश्यामदास तुया पाशहि अतएसे ऐछन बाणी ॥

"हे कृष्ण, तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी को नहीं जानती और फूलशर से मेरा शरीर जर्जर है; अर्थात् काम से मैं बहुत व्यथित हूँ। तुम्हें छोड़कर दूसरे पुरुष की ओर मेरा चित्त ही नहीं जाता। तुम्हारा स्नेह

अपूर्व है। राधा की ये बातें सुनकर कृष्ण उत्तर देते हैं—हे सुन्दरी, तुम इस तरह चतुरतापूर्वक बातें मत करो। जिस समय तुम्हारा वियोग होता है, उस समय गिरिधर होकर भी मैं अपने इस शरीर को धारण नहीं कर पाता हूँ। मैं अपनी उस समय की दशा का तुमसे किस प्रकार वर्णन करूँ? उन बातों को कहते समय मेरी जिह्वा ही रुक जाती है। केवल तुम्हारे चरणों में मस्तक झुकाकर ही मैं उसे ज्ञापित करता हूँ। हे बावली, मेरी इतनी हीन दशा सुनकर भी तुम्हारा मान दूर नहीं होता। तब तो तुम्हें देखकर ही मेरे चित्त में भय का संचार हो आता है, क्योंकि तुम्हारा हृदय मुझे बहुत कठोर जान पड़ता है।"

(२)

घोर तिमिर अति घन काजर ज्योतिः निवसइ बिपिने एकान्त।
पिक-कुल बोले समाधि समापइ चमकि नेहारइ पन्थ॥
मानिनि इथे किये नाहि अवधान।
निमिख बिमुखे यछु जीवन संशय कि फल ता सने मान॥
याक शयन पुन शिरीष-कुसुम जिनि अति सुखमय परियङ्क।

❀ ❀ ❀

पेखनु सो पुन तोहारि परश बिनु पानी-बिहीन जल-मीन।
कह घनश्यामदास नाहिँ जानिह ऐछन प्रेम कठिन॥

"कज्जल के समान काला और घोर अन्धकार था। राधा एकान्त बन में कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी थीं। कोयल बोल बोलकर उनका ध्यान भंग कर देती और वे चकित होकर मार्ग की ओर ताकतीं। उनकी अवस्था को सोचकर घनश्यामदास कहते हैं—हे मानिनी, इस बात पर पहले नहीं ध्यान दिया था? जिससे विमुख रहकर क्षण भर भी जीवित रहना कठिन हो जाता है, उससे मान करने में भला क्या लाभ है? शिरीष के फूलों से भी अधिक कोमल जिसकी शैया है——उनकी भी दशा का अवलोकन करने पर जान पड़ता है कि

पानी के बिना जैसे मछली दुःखी होती है, वैसे ही तुम्हारे बिना वे भी दुःखी हैं। मैं नहीं समझता था कि प्रेम इतनी कठिन वस्तु है।"

प्रेम-वैचित्र्य

आजु हाम याइते यमुना एकान्त।
एकलि नेहारि आगोरल पन्थ॥
चौदिके सचकित पुन पुन हेरि।
ईषत हासि पुछत बेरि बेरि॥
कर परशिते मझु करु अनुबन्ध।
शपति करायल रति निरबन्ध॥
कुल अबला हाम सो युवराज।
निरजने ता सने हट नाहि काज॥
पेखलु हाम यो सङ्कट भेल।
लोचन इङ्गिते अनुमति देल॥
ए सखि अब किये करिये विधान।
आजु पुन मन्दिरे आओब कान॥
कह घनश्यामदास मुख गोइ।
सती-अनुमति कभु असती ना होइ॥

"आज मैं एकान्त मार्ग से यमुनाजी की ओर जा रही थी। कृष्ण ने मुझे अकेली देखकर मेरा मार्ग रोक लिया। चकित भाव से चारों ओर ताकते हुए वे मुस्कराकर मन्द स्वर में मुझसे पूछने लगे। मैं ने उनसे कहा कि मेरा हाथ न पकड़िये। उन्होंने बड़े आग्रह से मुझ से रति के लिये शपथ करवाया। मैं एक असहाय अबला हूँ और वे युवराज हैं। अकेले में उनसे अधिक हठ करना मैंने ठीक नहीं समझा था और उस सङ्कट के समय आँख के इशारे से उन्हें अपनी स्वीकृति दे दी थी। उसके अनुसार कृष्ण अब मेरे यहाँ आ पहुँचे हैं। बताओ सखी, ऐसी अवस्था में मेरा क्या कर्तव्य है? घनश्यामदास कहते हैं, सत्यवादी

जब अनुमति दे देता है तब उसे असत्य नहीं होने देता; अर्थात् अपने बचन का पालन करता ही है।"

विरह

(१)

कुसुम-शेज भेल शर परियङ्क ।
बजर-बिघातन मधुकर भङ्क ॥
गाथल पदुमिनि भेल भुजङ्ग ।
गरल उगारल मलयज पङ्क ॥
हरि हरि कोहि नहत अनुकूल ।
पायलु हरि सञे प्रेम कि मूल ॥
कि करब काहे कहब पुन एह ।
आयर काँहा ना पायर खेह ॥
दोषर दैव बुझिये अनुमान ।

× ×

कैछले जीउ रहत इह देह ।
नाशक भेल सकु बासक गेह ॥
हरि रहुँ कोन कलावती-पाश ।
आयत कह घनश्यामदास ॥

"फूलों की शैया बाणों की सी मालूम पड़ती है। भ्रमरों का गुंजन मेघ का गर्जन सा मालूम पड़ता है। कमल का मृणाल मेरे लिये भुजङ्ग हो गया है, और यह जो मलय चन्दन घिस कर रक्खा है, इसमें से विष सा निकल रहा है। हा ईश्वर, इस समय कोई भी वस्तु मेरे अनुकूल नहीं प्रतीत होती! कृष्ण के साथ प्रेम करने का मुझे क्या मूल्य मिला? मैं क्या करूँ, किस से कहूँ और अपनी इस दुर्दशा के लिये किसे दोषी ठहराऊँ। इससे तो यही समझ लेना अच्छा है कि इसमें मेरे भाग्य ही का दोष है।————मेरे इस शरीर में प्राण कैसे रहें? यहाँ

मेरी यह वासक शय्या मेरे लिये विघातक हो रही है। और वहाँ कृष्ण किसी कलावती के साथ विहार कर रहे होंगे। घनश्यामदास कहते हैं, वे (तुम्हारे पास) आ रहे हैं।

(२)

एके विरहानल सहजे दुरन्त।
दोसर भेल ताहे समय बसन्त॥
ए हरि कहलुम तुया पाश लागि।
सो अब जीवइ रवहुँ पुन भागी॥
किये घर बाहिर नाहि समित।
यत उपचारत तहिँ विपरीत॥
हिमकर हेरि हुताशन भान।
घरे पैठहिँ भये मुदि नयान॥
कोकिल कलरवे कुलिश गेयान।
हरि हरि बोलि ततहिँ मुरछान॥
गरल गरल किये मलयज भास।
कि करब कह घनश्यामदास॥

"एक तो विरह की अग्नि स्वभावतः बहुत ही भयंकर होती है, तिस पर बसन्त का समय है। ऐ हरि, मैंने तुमसे कितना कहा कि मैं तुम्हारे समीप रहने ही के कारण जीवित रहती हूँ; परन्तु फिर भी तुम मुझे छोड़ कर भाग गये और मैं पड़ी रोती रह गई। अब घर में या बाहर कहीं भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। जितना ही उपचार करती हूँ, उतनी ही मेरी व्यथा बढ़ती है। चन्द्रमा की ओर ताकने पर वह आग सा मालूम पड़ता है। उसकी किरणें जब घर में पहुँचती हैं तब उनकी ओर देखा नहीं जाता; आँखें मूँद लेती हूँ। कोकिल का कलरव वज्र-सा मालूम पड़ता है। जितनी ही हरि का स्मरण करती हूँ उतनी ही मेरी व्याकुलता बढ़ती है। विष विष करने पर चन्दन का आभास मिलता है, अर्थात् मेरे लिये सब कुछ विपरीत है। घनश्यामदास कहते हैं कि ऐसी दशा में क्या करूँ?"

विरह-बारहमासा

अग्रहायण—देख पापि आवन मास ।
यतु नाह-बिरह-हुताश ॥
दरशाइ सुख बिहि नेल ।
हिये कैछे सहइह शैल ॥
भेलय प्राण-प्रिय परदेशिया ।
यतु छुटल विष-शर फुटल अन्तर रहल तँहि परदेशिया ॥

"देखो, पापी अगहन का महीना आगया। यह महीना मानों प्राण-नाथ के विरह की अग्नि होकर आया है। विधाता ने सुख दिखाकर छीन लिया। यह आघात हृदय कैसे सहन कर सके? मेरे प्राणनाथ परदेशी हैं। मानों किसी ने विष से बुझा हुआ बाण छोड़कर मेरे हृदय को भेद दिया है और उसी के घाव पर मेरे वे परदेशी विराजमान हैं।"

पौष—अब पौष भेल परवेश ।
मझु नाह रह परदेश ॥
गणि सोयि कामिनी भागी ।
रहु प्रियक हियहिय लागि ॥
शयनहिँ बयने नयनहिँ झापिया ।
हामसे पापिनी पौष-यामिनी रहु थरहरि काँपिया ॥

"अब पौष ने प्रवेश किया है। मेरे स्वामी परदेश में हैं। मैं उसी सुन्दरी को सौभाग्यशालिनी समझती हूँ, जो सदा पति के हृदय से लगी रहे और वह पति की शय्या पर निरन्तर विराजमान रहकर अपने नेत्रों और वाणी को तृप्त करती रहे। मुझसे बढ़कर हतभाग्य स्त्री भला और कौन होगी जो पूस की रात थर-थर काँप कर बिताती है।"

माघ—दिन रजनी गणि-गणि शेष ।
अब माघ भेल परवेश ॥

अब कतहुँ हेरब पन्थ।
नाहि यात जीवन दुरन्त॥
नाहि यात जीवन दुरन्त कान्त सन्तत चिन्तिया।
परम जरजर नयन झरझर तिलेक नाहि विछुरन्तिया॥

"गिनते ही गिनते कितने रात-दिन व्यतीत हो गये। अब माघ मास ने प्रवेश किया है। अब कहीं कोई मार्ग ढूढूँगी, इन पापी प्राणों का अंत भी नहीं होता। अपने कान्त की निरन्तर चिन्ता करती रहती हूँ, उन्हीं के मोह में ये अँटके हैं, शरीर से निकलते नहीं। परन्तु प्रतीक्षा करते-करते नेत्र बिलकुल थक गये हैं। इनमें से सदा ही झड़ी लगी रहती है, पल भर के लिये भी वह नहीं रुकती।"

फाल्गुन—देख भेल फालगुन मासा।
नाहि गेल तबहुँ दुराशा॥
हत चित आल ना फुर।
दिन राति तछु गुण झुर॥

दिन राति तछु गुणझुर दूर सो उर परयर नायिये।
तबहिँ हतचित होत सचकित हेरि पुन नाहि पाइये॥

"देखते-देखते फागुन का महीना भी आगया; किन्तु फिर भी मेरी दुराशा न गई। यह हतभाग्य चित्त अब भी उनकी ओर से निराश नहीं होता; निरन्तर उन्हीं के गुणों का ध्यान करता रहता है। रात-दिन उनके गुणगान में मग्न रहकर उनकी प्रतीक्षा करता है, चकित हो-होकर ताकता है, अन्त में उन्हें न पाकर फिर निराश हो जाता है।"

चैत्र—देख शिशिर निशि बहि गेल।
मझु पियाक दरशन ना भेल॥
मधुमास पहिलहि साज।
हत मदन सजे ऋतुराज॥

हत मदन सजे ऋतुराज आओत भङर गायत मातिया।
कुहले कोकिल कुहु कुहुहु फाटि याओत छातिया॥

"देखो, शिशिर ऋतु की रातें निकल गईं, किन्तु मेरे प्राणपति के दर्शन न मिले। चैत का महीना ठाट-बाट से आ गया। उसके साथ में पापी कामदेव के साथ ऋतुराज बसन्त भी आ गया। पापी कामदेव को भी साथ में लेकर बसन्त के आने पर भौंरे मदोन्मत्त होकर गूँजते हैं। कोयल भी कुहू-कुहू करके बोलती है, जिससे मेरी छाती फटी जाती है।"

वैसाख—अब मास भेल बैसाख।
तरु कुसुमे भरु नत शाख।
वह मलय-मारुत मन्द।
झरु माधवी मकरन्द॥

झरु माधवी मकरन्द सो मत्त मधुकर झङ्कहिँ॥
टङ्कारि कार्मुक साजि मनसिज बिन्धे मरम निशङ्कहिँ।

"अब बैशाख मास आया है। पुष्पों के भार से वृक्षों की शाखायें झुक गई हैं। मन्द-मन्द मलयानिल बह रहा है, जिससे हिलने के कारण माधवी के पुष्पों का मकरन्द गिर रहा है। उस मकरन्द के गिरने से उन्मत्त होकर भौंरें गूँजते हैं, और कामदेव अपने धनुष पर बाण चढ़ा कर निश्शङ्क भाव से मेरे हृदय को बेधता है।"

ज्येष्ठ—इह जेठ पैठल आगि।
दह दहत तनु-बन लागि॥
रह बेढ़ि आगल पाश।
नाहि जोउ-हरिण-निकाश॥

नाहि जोउ-हरिण-निकाश श्वास ना निकशे फाँफर धुमहिँ।
हृदय-हृदरस शेष शोषित लुठत सुतपत भूमहिँ॥

"अब ज्येष्ठ का महीना आरम्भ होगया है। शरीर-रूपी बन में धधकती हुई आग लगाकर उसे यह जलाये डालता है। उसके मध्य में जीव-रूपी हरिण जाल में फँसा है। अतएव अपनी प्राण-रक्षा के लिये वह कहीं अन्यत्र नहीं भाग सकता। इस प्रकार यह जीव-रूपी हरिण पाशबद्ध होकर तड़फड़ा रहा है और इसके गर्म-गर्म श्वास धुयें के समान निकल रहे हैं। हृदय-रूपी जो नद है, उसका सारा जल सूख गया है, और वह तप्त भूमि में सूखा पड़ा है।"

आषाढ़—अब मास भेल आषाढ़।
हिये दाह दुह-गुण बाढ़॥
याहाँ दैव दारुण लागि।
ताहाँ चाँद बरिखये आगि॥

ताहाँ चाँद बरिखये आगि लागये गरल मलयज पङ्कहिँ॥
कमल कोमल सजल किशलय अनल दलसम शङ्कहिँ॥

"अब असाढ़ का महीना आरम्भ हुआ। इस समय हृदय का ताप दुगुना बढ़ गया है। एक तो दैव ही दुख दे रहा है, तिस पर चन्द्रमा आग बरसाता है। उसकी किरणें शरीर में लग-लगकर उसे जलाती हैं। मलयागिरि चन्दन को रगड़ने पर उसमें से विष निकलता है। कोमल कमल और नर्म-नर्म नई पत्तियाँ आग की लपट-सी शरीर में लगकर दुख देती हैं।"

श्रावण—देख भेल शाओन मास।
अब नाहिँ जीवन आश॥
घन गगने गरजे गभीर।
हिये होयत येङ चौचीर॥

हिये होयत येङ चौचीर थिर न बान्धे मत्त दादुरी-रवे।
झलके दामिनी खने खने यनु मदन शर बरखरे॥

"देखो, अब सावन का महीना आ गया है। अब जीवन की आशा नहीं है। आकाश पर बादल बड़े ज़ोर से गरज रहे हैं। उनका गरजना सुनकर हृदय के चार टुकड़े हो जाते हैं। मेढकों के मत्त-स्वर सुनते-सुनते किसी प्रकार भी धैर्य नहीं होता। क्षण-क्षण पर बिजली चमकती है, मानो कामदेव बाणों की वर्षा कर रहा है।"

भाद्र—देख भेल भादर मास।
घन बरिखे नाहि दिश पाश॥
किये कान बाहुक लागि।
दिन राति पति भये भागि॥
दिन राति पति भये भागि रह नह दिवस रजनी बिभेद रे।
ऐछे समये ना कानु मन्दिरे कैछे सह इह खेद रे॥

"देखो, यह भादों का महीना है। ज़ोरों की वर्षा हो रही है। कोई भी दिशा दिखाई नहीं देती। कृष्ण के बाहुओं के स्पर्श के लिये मुझे रात-दिन पति से भयभीत रहना पड़ता है। परकीया नायिका कहती है—श्रीकृष्ण के साथ संभोग करने के लिये रात-दिन पति से छिपा-छिपाकर प्रयत्न करती रहती हूँ। इस प्रकार सदा भयभीत और उत्सुक रहने के कारण मेरे लिये दिन और रात में कोई अन्तर नहीं है। ऐसे समय में कृष्ण भी घर में नहीं हैं, यह दुख मैं कैसे सहन करूँ?"

आश्विन—दश दिश भेल परकाश।
भैगेल आशिन मास॥
हत चित अबहुँ ना जान।
अब पुन कि हेरब कान॥
अब पुन कि हेरब कान निरिखर नियड़े सो मुख बान्धरे।
अमिञा माखन मधुर भाखन शुनब पुन मृदु सन्दरे॥

"अब कुआर का महीना आया। दसों दिशायें उज्ज्वल हो गईं। ऐ अभागे चित्त, अब भी तू नहीं जानता! क्या अब भी हमें कृष्ण को

खोजना पड़ेगा ? अब उनका मुख अपने समीप ही देखकर उन्हें खोजना न पड़ेगा। अब वे यहाँ आकर फिर मक्खन-मिश्री खायेंगे और वह मन्द-मन्द भाषण फिर हमको सुनने को मिलेगा।"

कार्त्तिक—देख सोइ कार्त्तिक मास।
भेल कुन्द-कुसुम-बिकाश॥
पुन सोइ रजनी सुठान।
इह सबहुँ बिछुरब कान॥

इह सबहुँ बिछुरब कान कानहि कोन पुन सोङबार रे।
प्रिय नन्द-नन्दन-चरणे यब घनश्यामदास ना आयब रे॥

"देखो, यह वही कार्त्तिक का महीना है। अब कुन्द के फूल खिल आये हैं। वही रातें भी आ रही हैं। अब हम लोग उन्हीं स्थानों में फिर उसी प्रकार विहार करते, किन्तु कृष्ण नहीं हैं। उनके बिना सारा आनन्द फीका है।"

भावसम्मिलन का पूर्व्वाभास

आजु हाम स्वपने समुखे एक मुनिवर हेरि करल परणाम।
सो मोहे कहल अचिरे तुया मङ्गल पूरब मानस काम॥
सजनि ए पुलक हइ सब कोइ।
रजनी-शेष समय अरुणोदय स्वपन बिफल नाहि होइ॥
आयब कान पुनहिँ किये ब्रज-माह ऐछे मनहिँ यब केल।
तबहिँ एकजन फुकरये आयत उतरहिँ इङ्गित भेल॥
स्फुरये बाम नयन भुज घन घन होयत मनहुँ उल्लास।
ऐछन सुलक्षण आनन हत पुन भण घनश्यामदास॥

"आज स्वप्न में एक मुनिवर को देखकर मैंने प्रणाम किया। मुनिवर ने आशीर्वाद दिया कि अब शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। हे सजनी, इस तरह की बात सुनकर कोई भी पुलकित हो सकता है। क्योंकि रात बीतने पर अरुणोदय-काल का स्वप्न कभी मिथ्या नहीं होता।

इसलिये व्रज में कृष्ण फिर आवेंगे। मन में जब इस प्रकार की बात आई, ठीक उसी समय मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मानो कोई पुकारता हुआ चला आ रहा है। बाईं आँख फड़कने लगी, भुजा भी फड़कने लगी और मन में उल्लास का संचार हुआ। घनश्याम दास कहते हैं कि कृष्ण के आगमन के सम्बन्ध में ये सभी लक्षण बहुत अच्छे हैं।"

वर्षा

डाके डाहुक झमक झमकल झारि झलकत झारिया।
डिण्डिमायित मण्डुकीबर मयूर नाचत साजिया॥
रे घन घन घन गहन दूरगह गगने घन घन गर्ज्जिया।
आओये रतिपति मत्त गज-पर बिरहिणीगण तर्ज्जिया॥
हाने तनु मन पलक पलकन झलके यामिनी काँतिया।
खुरधार-खरग उधारि झाकत बीररस-भरे मातिया॥
अरबिन्द नाहि पर जीउ संहर असम सरवर खन्तिया।
नन्द-नन्दन-चरणे भण घनश्यामदास नमस्तिया॥

"डाहुक (एक प्रकार का जलचर-पक्षी) बार-बार बोलता है। झिमझिम पानी बरसता है, और बिजली चमकती है। मेढक उन्मत्त होकर अबाध-गति से किट-किट करते हैं, और ख़ुश हो-होकर मोर नाचते हैं। आकाश पर बादल उमड़-उमड़कर गरजते हैं, माना मेघ का रूप धारण करके कामदेव ही चढ़ आया है और वह युद्ध के लिये विरहिणियों को ललकार रहा है। यही कारण है कि वीर-रस से पूर्ण होकर जो बिजली चमकती है, वह तलवार की पैनी धार सी मालूम पड़ती है। आजकल तालाबों में जो कमल दिखाई पड़ते हैं, वे कमल नहीं हैं, बल्कि विषम शर से भेदकर विरहिणियों के जीव को संहार करनेवाले हैं। घनश्यामदास श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम करके ऐसा कहते हैं।"

संजय

संजय कृत्तिवास के समकालीन थे। ये ब्राह्मण जाति के थे और भरद्वाज के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुये थे। "महाभारत" का बंग-भाषा में अनुवाद पहले, पहल संजय ही ने किया है। व्यासमुनि के महाभारत के अठारह पर्वों का अनुवाद करना सचमुच बड़ा कठिन काम था, लेकिन इन्होंने बड़ी धीरता और परिश्रम से काम लिया है। इनकी भाषा सरल लेकिन पुराने ढङ्ग की है।

इनकी कविता के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

विराट् पर्व

(१)

धन्य धन्य पुत्र मोर धन्य कुलमणि।
एकेश्वर पुत्र आइल कुरुसैन्य जिनि॥
भीष्म द्रोण कर्ण आदि राजा महाशय।
हेन सब समरे पुत्र जिनिल रणाय॥
हेन जनेर पितृ आमि संसार भितर।
एहि मते नरपति प्रशंसे बिस्तर॥
हेन बुलि नरपति बिस्तर प्रशंसे।
ईषत हासिया तबे कहिलेक कङ्के॥
बृहन्नला थाके जान याहार सारथि।
पृथिबी जिनिते पारे सेई महारथी॥
कुमारक बाखानये बिराट राजन।
बृहन्नला बाखानये कङ्क ये ब्राह्मण॥

शुनिया बिराट राजा हइल कुपित ।
कङ्केर चाहिया राजा क्रोधे अतुलित ॥

× ×

ओष्ठ थर थर काँपे विराट राजार ।
क्रोध-दृष्टि कङ्करे नेहाल बारे बार ॥

"धन्य पुत्र, धन्य ! मेरे कुलमणि, धन्य ! बेटा एकेश्वर कौरवों की सेना जीत आया । मेरे पुत्र ने भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि सभी राजाओं को युद्ध में जीत लिया; संसार में मैं ऐसे पुरुष का पिता हूँ । इसी प्रकार राजा ने अपनी बड़ी प्रशंसा की । तब कङ्क ने मुस्कराकर कहा—बृहन्नला जिसका सारथी हो, समझ लीजिए कि वह महारथी सारे संसार को जीत सकता है । राजा विराट कुमार की प्रशंसा करते और ब्राह्मण कङ्क बृहन्नला की । ये बातें सुनकर विराट बहुत क्रुद्ध हुये । भीषण क्रोध से राजा ने कङ्क की ओर ताका । राजा के ओठ थरथर काँप रहे थे और बार-बार उनकी रोष-भरी दृष्टि कङ्क के ऊपर पड़ रही थी ।"

(२)

आर बार कहे राजा परम पीरिते ।
एक रथे कुरु-सैन्य जिने मोर पुत्रे ॥
मोर सम केबा आछे संसार भितर ।
कुरु-वंश मोर पुत्रे जिने एकेश्वर ॥
कङ्क बले साजे यदि ए तिन भुवने ।
तथापि जिनिते नारे बृहन्नला सने ॥
इन्द्र यदि रणे आइस देवेर सहित ।
बृहन्नला सहिते ना पारे कदाचित ॥
शुनिया बिराट राजा क्रोधे अति ज्वले ।
त्रिगुण कुपिया राजा कङ्क प्रति बोले ॥

मोर पुत्रे जय कैल ताहाके निन्दसि ।
बृहन्नला नपुंसक ताहाके प्रशंसि ॥
मोर कथा हैल तोहार मने अनादर ।
कोन् गुणे बृहन्नला प्रशंस बिस्तर ॥
ब्राह्मण ना हइते यदि लइताम जीवन ।
एइ बुलि पाशा क्रोधे करिल क्षेपण ॥
एकखान पाशा पुनि हातेर उलटे ।
हस्तबेगे पड़े गिया कङ्केर कपटे ॥

"फिर भी राजा प्रसन्नता से कहने लगे—मेरे पुत्र ने एकरथ लेकर कौरव-सेना जीत ली । मेरे समान संसार में कौन है ? मेरे पुत्र एकेश्वर ने कुरु-वंश पर विजय प्राप्त कर ली । कङ्क ने उत्तर दिया—यदि तीनों लोक साथ हो जायँ, तो भी बृहन्नला को नहीं जीत सकते । यदि इन्द्र भी देवताओं के साथ उतर आवें तो भी कदाचित् बृहन्नला से लोहा न ले सकेंगे । यह सुनकर विराट राजा क्रोध से जल उठे और तिगुने क्रोध के साथ कङ्क से कहने लगे—मेरे पुत्र ने विजय पाई, उसकी तुम निन्दा करते हो और नपुंसक बृहन्नला की प्रशंसा करते हो ! मेरी बातें उड़ाकर किस गुण पर बृहन्नला की इतनी प्रशंसा करते हो ? यदि तुम ब्राह्मण न होते, तो तुम्हारी जान ले लेता । ऐसा कहकर राजा ने क्रोध से पासा फेंका । एक पासा हाथ के उलट जाने से कङ्क पर जा पड़ा ।"

(३)

ललाटे पड़िया पाशा गलित रुधिर ।
सेइ क्षणे चापि धरे राजा युधिष्ठिर ॥
बिराटेर उपकार मने कैल हित ।
भूमिते टलिब करि सेइ ये शोणित ॥
बुझिया सैरिन्ध्री तबे कङ्केर आशय ।
सुबर्णेर पात्र आनि दिल समुखय ॥

तातें समर्पिल राजार सेइ से रुधिर।
देखिया बिराट राजा हइल मर्म्म पीड़ ॥
ब्राह्मण शोणित तबे देखिया ततक्षण।
मनेत पाइल व्यथा बिराट राजन ॥
तबे राजा अधोमुखे कहे नम्र मने।
धीरे धीरे कहिलेक बिराट राजने ॥
हृष्ट हइया कहि आह्मि तोह्मा प्रशंसन।
बृहन्नला प्रशंसये कङ्क ये ब्राह्मण ॥
तबे आमि क्रोध हइया फेलाइलुम सारि।
उलटिया पड़े सारि कपट-उपरि ॥
तबे मुञि शङ्का चित्ते हइलुम मृत्युवत्।
लज्जायुक्त हइया पुनि हइलुम अनुगत ॥

"ललाट पर पड़कर पासा रुधिर से भीग गया। राजा युधिष्ठिर ने उसे तुरंत ही ज़ोर से पकड़ा और विराट के उपकार को याद कर यह चाहा कि उस रक्त को पृथ्वी पर न गिरने दें। सैरिन्ध्री ने तब तक कङ्क का आशय समझ लिया और सोने का एक पात्र ला कर सामने रख दिया। उसी में उसने राजा को रक्त भरकर दिया। यह देख विराट राजा बड़े मर्म्माहत हुए। ब्राह्मण का रक्त देखकर राजा को बड़ी व्यथा हुई। तब राजा ने अधोमुख हो नम्रतापूर्व्वक कहा—मैंने प्रसन्न होकर तुम्हारी प्रशंसा की। इस पर ब्राह्मण कङ्क ने बृहन्नला की प्रशंसा की। तब मैंने क्रोध से पासा फेंका, जो उलटकर कङ्क के ललाट पर जा लगा। मैं शङ्का से मृतवत् हो गया। लज्जावश अनुगत होना पड़ा।"

(४)

कुमारे बोलेन नहे धर्म्म अनुरोध।
ब्राह्मणेर प्रति क्षत्री ना हय विरोध ॥

परिहार माँगि तान चरणे धरिया ।
शरीर भूषिमु तान पदधूलि दिया ॥
ना पुनि पातक दूर हैब एइ स्थान ।
कङ्केर समान करि सुवर्ण कर दान ॥
तबे राजाए सेइ मते स्वीकार करिल ।
कङ्केर पाएत धरि परिहार कैल ॥
कङ्के बोले आमि तोह्मा प्रथमे क्षमिल ।
द्रौपदी दिलेक पात्र ताते समर्पिल ॥
आमारे शोणित-बिन्दु ये भूमेते पड़े ।
से भूमिर राजा प्रजा मृत्यु ये पीड़े ॥
एतेक तोह्मारे आह्मि क्षमिछि प्रथमे ।
तोह्मा सने क्रोध पुनि नाहि मोर मने ॥

"कुमार ने कहा--धर्म्म का यह अनुरोध है कि क्षत्रिय ब्राह्मण से विरोध नहीं करते। पैर पकड़कर आप उनसे क्षमा माँगिए। उनकी पद-धूलि शरीर में लगाइए, अन्यथा पाप दूर न होगा। कङ्क के बराबर सुवर्ण दान कीजिए। राजा ने इस मत को स्वीकार किया। कङ्क के पैरों पर पड़कर उन्होंने क्षमा माँगी। कङ्क ने कहा--मैंने तुम्हें पहले ही क्षमा कर दिया। द्रौपदी ने एक पात्र दिया था, उसी में रक्त भरा था। मेरे रक्त का बूँद जिस स्थान पर पड़ेगी, उस भूमि का राजा प्रजा की मृत्यु से पीड़ित होगा। इस प्रकार अपना रक्त भूमि पर न पड़ने देकर मैंने तुम्हें पहले ही क्षमा कर दिया। मेरे मनमें तुम्हारे प्रति ज़रा भी क्रोध नहीं है।"

पाण्डवों का अज्ञातवास

(१)

एइ मते पञ्च दिन तथा निर्व्वाहिल ।
शुभ दिने पञ्च भाइ एकत्रे मिलिल ॥

द्रौपदी सहिते पञ्च कुतूहल मन ।
कनक रतन हीरा करिल भूषण ॥
बिचित्र उत्तरी परि नाना पुष्पमाला ।
इन्द्र हेन परि हइल सुबर्ण मेखला ॥
नाना गन्धे आमोदित शरीर सुठान ।
पञ्च जन हइलेक देवेर समान ॥
गौरी सङ्गे शङ्कर देखि शची तिलोत्तमा ।
शुभ क्षणे छय जने करिल गमना ॥
बिराटेर सिंहासने करिल आरोहण ।
आनन्दे पूर्णित सब पुलकित मन ॥
युधिष्ठिर राजा हैल सर्व्व अधिकारी ।
बाम पाशे बसिल द्रौपदी पाटेश्वरी ॥
युवराजे छत्र धरि भीम महावीर ।
सहदेव वीर देख ढुलाय चामर ॥
अमात्य सकल हैया रहिल सकल ।
धनुहस्ते सम्मुखे अर्ज्जुन महाबल ॥
गाण्डीव धनुक हाते इन्द्रेर समान ।
मृग धरिबारे येन सिंहेर पयान ॥
हेन काले देवगणे पुष्प-वृष्टि कैल ।
स्वर्गेते दुन्दुभि बाद्य तखनेइ हइल ॥
हेन काले बिराटेर देखिलेक दूरे ।
सत्वरे जानाइल गिया बिराट गोचरे ॥

"इसी प्रकार उन लोगों ने वहाँ पाँच दिन व्यतीत किये। एक शुभ दिन को पाँचो भाई एकत्र हुए। द्रौपदी के साथ पाँचो कौतूहल-वश कनक, रत्न, हीरे आदि से भूषित हुए। विचित्र उत्तरीय धारण किये। विविध पुष्प-मालायें पहनीं। सुवर्ण-

मेखला पहनकर इन्द्र के समान बन गये। उनके शरीर तरह-तरह की सुगन्धि से आमोदित थे। पाँचो भाई देवता-जैसे बन गये थे। गौरी के साथ शिव, शची और तिलोत्तमा को देख छहों ने शुभ क्षण में प्रस्थान किया। वे सब विराट् के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। सबका मन आनन्दसे पुलकित था। युधिष्ठिर सर्व्वाधिकारी राजा हुए। उनकी बाईं ओर द्रौपदी पटरानी बनकर बैठीं। सहदेव वीर चमर डुलाते थे। सभी मन्त्री अपने अपने स्थान पर बैठे थे। महाबली अर्ज्जुन हाथ में धनुष लिये सामने खड़े थे। हाथ में गाण्डीव लेने पर वे इन्द्र जैसे मालूम पड़ते थे। उनका तेज देखकर मालूम पड़ता था, मानो मृगों को पकड़ने के लिये प्रस्तुत सिंह हो। उस समय देवताओं ने फूलों की वर्षा की। स्वर्ग में दुन्दुभि बजी। उस समय राजा विराट् सभा-भवन में नहीं थे। उनके द्वार-रक्षक ने तुरन्त ही उन्हें सूचना दी।"

(२)

शुन-शुन महाराज विराट अधिकारी।
राजा हैया वसियाछे अय देशान्तरी॥
सिंहासने वसि कङ्क हइछे राजन।
युवराज हइयाछे वल्लभ ब्राह्मण॥
पाटेश्वरी हइआछे सैरिन्ध्री गुणवती।
गोवैद्य अश्ववैद्य समुखे सारथि॥
बृहन्नला नाटकी ये समुखे दयान।
विचित्र धनुक हाते इन्द्रेर समान॥
तेजबले देखि यदि मनुष्य ना हय।
कहिलाम सकल कथा शुन महाशय॥
अनुचर मुखे शुरे विपरीत काम।
अन्द हइया आसिं चलिला मत्स्यराज॥

देखिया बिराट राजा सविस्मय मन।
छय देशान्तरी देखे एकत्र मिलन॥
बिराटे कहेन देख इकि बिपरीत।
एमत करिते नहे शास्त्र अनुचित॥
एतेक कहिये आह्मि न हये उचित।
धर्म्मेत बिरोध हये लोकेत कुत्सित॥

"सुनिये महाराज विराट, छहों विदेशी राजा बनकर बैठे हैं। सिंहासन पर बैठकर कङ्क राजा बना है। बल्लभ ब्राह्मण युवराज बना है। गुणवती सैरिन्ध्री पाटेश्वरी बनी है। गोवैद्य और अश्ववैद्य सामने सारथी बने हैं। बृहन्नला विचित्र धनुष हाथ में लेकर इन्द्र के समान दीख पड़ता है। इस समय इन सब में इतना तेज आ गया है कि ये मनुष्य नहीं जान पड़ते। सुनिये महाराज! मैंने सारा हाल कह दिया। अनुचर के मुख से उल्टी बातें सुनकर मत्स्यराज शीघ्रता से चले। वह दृश्य देख राजा विराट ने विस्मित होकर देखा कि एक साथ छः विदेशी आ जुटे हैं। राजा ने सोचा—यह कैसी उल्टी बात है। ऐसा करना तो शास्त्र में अनुचित कहा गया है। ऐसा तो उचित नहीं। इससे धर्म्म-विरोध और लोक-निन्दा हो सकती है।"

(३)

पात्र हैया येबा लय राजार आसन।
बहुत पातक हय नरके गमन॥
मत्त हइया कर्म्म करए अहङ्कार।
तबे आर ना रहिब धर्म्मेर आचार॥
यार येइ कर्म्म जानि बिधिनियोजित।
सेइ से करिब कर्म्म बेदेर बिहित॥
एतेक कहिए आह्मि शुन दिया मन।
मत्त हइया लय तुह्मि आमार आसन॥

ताहा शुनि ईषत हासए धनञ्जय ।
कहिते लागिल वीर प्रसन्न हृदय ॥
इबा कोन आसन लइब अहङ्करी ।
इन्द्रेर आसन लैते निमेषेके पारि ॥
दिनेते भुञ्जाए विप्र सहस्रेक सती ।
षष्टि सहस्र अन्ध खोड़ा भुञ्जए निति निति ॥
कुरुबल कम्पवान याहार संहति ।
कुन्तीसुत युधिष्ठिर भुवन भितर ॥
पृथिवी व्यापिया आछे एक दण्डधर ।
हेन युधिष्ठिरे तोह्मारे लइबे सिंहासन ॥
अनुचित वाक्य केने कहत अखन ।
अर्ज्जुनेर मुखे शुनि एहि सब बात ॥
बिराट नृपति कहे योड़ करि हात ।
सत्य यदि युधिष्ठिर एइ महाशय ।
तबे केन्हे हेन मोर आह्मार अन्याय ॥

"आश्रित होकर जो राजा का आसन लेता है, उसे बड़ा पातक होता है और नरक में जाना पड़ता है। मत्त होकर जो अहङ्कार करता है, उससे धार्म्मिक आचार की रक्षा नहीं होती। विधाता ने जिसके लिए जो कार्य निर्दिष्ट कर दिया , वही उसे करना चाहिए, वेद का यह आदेश ध्यान देकर सुनो। तुम ने मत्त होकर मेरा आसन ले लिया है। यह सुनकर धनञ्जय कुछ हँसा। वह वीर मनही मन प्रसन्न होकर कहने लगा—ऐ अहङ्कारी, यह तुम्हारा आसन क्या चीज़ है, इन्द्र का आसन भी क्षण भर में ले सकता हूँ। जो प्रतिदिन एक हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराता है, जिसके यहाँ रोज़ साठ हज़ार अन्धे-कुब्जे भोजन करते हैं, उन कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर पृथ्वी पर एकच्छत्र राजा हैं, जिनके सामने कौरवों की सेना काँपती है। वे क्या तुम्हारा सिंहासन लेंगे? ऐसी अनु-

चित बात क्यों कहते हो ? अर्जुन के मुँह से ये बातें सुनकर विराट राजा ने हाथ जोड़कर कहा—यदि यह महाशय वास्तव में युधिष्ठिर हैं, तब तो ऐसा कहकर मैंने अन्याय किया है ।"

(४)

अर्ज्जुन बलेन शुन अज्ञातवास पण ।
हेन हेतु कैल सभे कपट मिलन ॥
रन्धनेते गेल भीम एहि महाजन ।
युधिष्ठिर महाराज हइल ब्राह्मण ॥
द्रौपदी सैरिन्ध्री गेल सुदेष्णार पाश ।
यार लागि सवंशे कीचक हैल नाश ॥
सहदेव नकुल गोप अश्वपाल ।
अर्ज्जुन नाटोया एहि देखियाछ भाल ॥
एतेक खण्डिल भाले अज्ञातेर पण ।
हेन हेतु आह्मि सब एकत्रे मिलन ॥
आर दिन बिराट राजा पात्रेर सहिते ।
मन्त्रणा करिल राजा हइया एक चिते ॥
अर्ज्जुन तुषित्र आमि दिया कोन् धन ।
कोन् वस्तु दिले पाइम अर्ज्जुनेर मन ॥
धन दिया आमि ताने तुषिते ना पारि ।
तुषिबेक आह्मि दिया उत्तरा कुमारी ॥

"अर्जुन ने कहा—सुनिये विराटराज, हम लोगों की अज्ञात-वास की प्रतिज्ञा थी, इसी कारण आज यह कपट-मिलन हुआ । यह महा-पुरुष भीम रन्धन-कार्य्य में थे, महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मण थे, द्रौपदी सुदेष्णा के पास थीं, जिनके कारण सपरिवार कीचक का नाश हुआ । सहदेव और नकुल गोप और अश्वपाल थे । अर्जुन नर्तक थे, यह सब आपने अच्छी तरह देखा है । अज्ञातवास का समय अच्छी तरह कट गया,

इसी कारण हम लोग मिले हैं। दूसरे दिन राजा विराट ने एकाग्र चित्त हो मन्त्रियों से सलाह करके कहा—अर्जुन को कौन-सी वस्तु देकर संतुष्ट करूँ? कौन-सी वस्तु देने पर वे मेरे अनुकूल हो सकेंगे? धन देकर तो उन्हें संतुष्ट न कर सकूँगा, उन्हें उत्तराकुमारी देकर सन्तुष्ट करूँगा।"

(५)

सर्व्वगुणयुता कन्या शास्त्रेत विदुषी।
अर्ज्जुनेर योग्य कन्या परम रूपसी॥
एतेक भाबिया राजा पात्रेर सदन।
प्रभाते सभाते गिया कहिल राजन॥
अर्ज्जुनके भूपतिए करन्त परिहार।
एक बाक्य महाशय पालिब आह्मार॥
यदि तुह्मि मोरे कृपा हयत आपन।
तबे मोर कन्या तुह्मि करह ग्रहण॥
युधिष्ठिर प्रणय करए पुनिपुनि।
आपने करह आज्ञा धर्म्म महामणि॥
नृपति कहेन भाइ नहे अनुचित।
बिराट कुमारी गृहे आह्मारे कुत्सित॥
योड़हस्ते धनञ्जये कहिल बचन।
उत्तरा कुमारी आह्मार कन्यार लक्षण॥
पठाइलाम स्नेह करि दुहिता ये हए।
ज्ञानदाता पिता हेन सर्ब्बशास्त्रे कए॥
एतेक कहिए आह्मि मोर योग्या नहे।
अभिमन्यु पुत्र मोर तान योग्या हए॥

"कन्या सर्व्वगुण-युक्त है, शास्त्र में विदुषी है, अर्ज्जुन के अनुरूप परम सुन्दरी है। यह सोचकर राजा ने सबेरे सभा में जाकर कहा—

अर्ज्जुन, कृपाकर मेरी एक बात मानो। मेरी कन्या को ग्रहण करो। फिर युधिष्ठिर से बार-बार प्रार्थना करके उन्होंने कहा—हे धर्मराज, आप अर्जुन को ऐसा करने की आज्ञा देदें। युधिष्ठिर ने कहा—विराट-कुमारी का मेरे घर में आना अनुचित नहीं है। तब अर्जुन ने हाथ जोड़ कर कहा—उत्तराकुमारी मेरी कन्या के समान है। उसको मैंने पुत्री के समान प्रेम से पढ़ाया है। शास्त्र कहता है कि ज्ञानदाता पिता होता है। इस कारण वह मेरे योग्य तो नहीं, मेरे पुत्र अभिमन्यु के योग्य है।"

(६)

शुनि राजा युधिष्ठिर अमृत सिञ्चिल।
पाछु पाछु करि ताहाऐ आलिङ्गन दिल॥
शुनिजा विराट-राजा हैल हरषित।
बिबाह-मङ्गल-बाद्य राजार पुरीत॥

"यह सुन राजा युधिष्ठिर इतने संतुष्ट हुए कि मानो उन्हें किसी ने अमृत से सींच दिया हो। उन्होंने बार-बार अर्जुन को आलिङ्गन किया। यह बात सुनकर विराट भी हर्षित हुये। राजा के नगर में विवाह के सब मङ्गल होने लगे और बाजे भी बजने लगे।"

काशीरामदास

काशीरामदास बर्द्दवान ज़िले के रहनेवाले थे। इनका जन्म ब्राह्मणी नदी के किनारे सिङ्गी ग्राम में हुआ था। पहले इस ग्राम का नाम सिद्ध या सिद्धि था। कविता इनके परिवार की सम्पत्ति हो गई थी। इनके ज्येष्ठ भ्राता कृष्णदास ने एक कविता श्रीकृष्ण भगवान् के जीवन पर रची थी और दूसरे भ्राता ने 'जगतमंगल' नामक काव्य में श्रीजगन्नाथजी की स्तुति की है। इनके पोष्यपुत्र नन्दराम ने

महाभारत का द्रोण पर्व्व लिखा है, जो महाभारत में मिला हुआ है। यह एक दन्त-कथा चली आ रही है कि काशीराम आदि पर्व्व, सभा पर्व्व, बन पर्व्व और विराट् पर्व्व का कुछ अंश ही लिखकर परलोक सिधारे थे।

इनका जन्म सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुआ था और १६७८ ई० के लगभग इनकी मृत्यु हुई। यह समय कई एक अनुमानों से सिद्ध होता है।

इनका अमर-ग्रंथ 'महाभारत' है। बंगाल के घर-घर में इसका प्रचार है। इस ग्रंथ का बंगाल की ग्रामीण-जनता पर जैसा प्रभाव पड़ा है, वैसा शायद ही किसी दूसरे ग्रन्थ का पड़ा हो। इन्होंने "भारत-पुराण" नामक ग्रन्थ भी लिखा था।

काशीदास के जीवन की घटनाओं के विषय में बहुत कम पता चलता है। कहा जाता है कि मिदनापुर ज़िले के आवासगढ़ में ये कुछ दिन तक शिक्षक थे। उस ग्राम में कथा-वाचक पण्डित प्रायः आया करते थे। उन्हीं लोगों की संगति से इनको महाभारत के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और इन्होंने उसका अनुवाद बंग-भाषा में किया।

सिङ्गी में एक तालाब है। उस तालाब का नाम इन्हीं की स्मृति में "केशे-पुकुर" रखा गया है। कलकत्ता की 'बंगीय साहित्य-परिषद्' इनका स्मारक बनाने का प्रयत्न कर रही है।

इनकी कविता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

आदि पर्व्व

समुद्र-मन्थन में शिव

सुरासुर यक्ष रक्ष भुजङ्ग किन्नर।
सभे मथिलेक सिन्धु ना जाने शङ्कर॥
देखिया नारद मुनि हइया चिन्तित।
कैलास-शिखरे गिया हैल उपनीत॥

प्रणमिला शिव दुर्गा दुँहार चरणे ।
आशीर्व्वाद करि देवी दिलेन आसने ॥
नारद बलिला आछिलाम सुरपुरे ।
शुनिल मथिला सिन्धु यत सुरासुरे ॥
बिष्णु पाइला कमला कौस्तुभ मणि आदि ।
हय उच्चैःश्रवा ऐरावत गजनिधि ॥
देवे नाना रत्न पाइल मेघे पाइल जल ।
अमृत अमरवृन्द कल्पतरुवर ॥
नाना धातु महौषधि पाइल नरलोके ।
एइ हेतु हृदय जन्मिल बहु शोके ॥
स्वर्ग मर्त्य पाताले निवसे यत जने ।
सभे भाग पाइल केवल तोमा बिने ॥
ते कारणे तत्व लइते आइलाम एथा ।
सभार ईश्वर तुमि विधातार धाता ॥
तोमारे ना दिया भाग बाँटि सभे निल ।
एइ हेतु मोर मन धैर्य्य ना हइल ॥

"सुर और असुर, यक्ष और राक्षस, नाग और किन्नर सब ने मिलकर समुद्र मथे। शिव को इसकी कोई ख़बर न थी। यह देख नारद हृदय में बहुत चिंतित हुए और कैलास पर्व्वत पर जा उपस्थित हुए। शिव-दुर्गा दोनों ही के चरणों में मुनि ने प्रणाम किया। देवी ने आशीर्वाद देकर आसन दिया। नारद ने कहा—मैं देवलोक में था। वहाँ मैंने सुना कि जितने सुर और असुर हैं, सब ने मिलकर समुद्र मथे। विष्णु को कमला, कौस्तुभ-मणि आदि मिले। देवताओं को उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी तथा तरह-तरह के रत्न मिले। मेघ ने जल पाया, देवताओं ने अमृत और कल्पतरु लिये। मनुष्यों को नाना धातु और औषधियाँ मिलीं। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में जितने बसते हैं,

सबों ने भाग पाया। केवल आपही वञ्चित रहे; इससे मेरे हृदय को बड़ा क्लेश हुआ। इसी कारण मैं आप को वहाँ ले जाने के लिये आया हूँ। आप सर्वेश्वर हैं, विधाता के पालक हैं। आप को भाग न देकर और सब ने बाँट लिया। इसी कारण मेरे मन को धीरज न हुआ।"

चण्डी का क्रोध-युक्त उत्तर

एतेक नारद मुनि बलिला वचन।
शुनिया उत्तर ना करिला त्रिलोचन॥
देखि क्रोधे कम्पिता कहेन त्रिलोचना।
नारदेरे कहे देवी करि अभ्यर्थना॥
काहारे एतेक वाक्य कहिले मुनिवर।
कुचेरे कहिले येन ना पाय उत्तर॥
कण्ठेते हाड़ेर माला विभूषण यार।
कौस्तुभेर मणिरत्न किवा काय तार॥
कि काय चन्दने यार विभूषण धूलि।
अमृते कि काय तार भक्ष्य सिद्धिमूली॥
मातङ्गे कि काय यार बलद वाहन।
पारिजाते किवा काय धूस्तूर भूषण॥
सकल चिन्तिया मोर अङ्ग जरजर।
पूर्व्वेर वृतान्त सब जान मुनिवर॥
जानिया जेहारे दक्ष पूजा न करिल।
सेइ अभिमाने आमि शरीर तेजिल॥

"नारद ने ये बातें कहीं, पर शिव ने इन्हें सुनकर कोई उत्तर न दिया। यह देखकर क्रोध से काँपती हुई देवी पार्वती ने नारद की अभ्यर्थना करके कहा—मुनिवर, किससे ये बातें कह रहे थे? आपने मानो यह सब कुच से कहा है; क्योंकि आपको इसका कोई उत्तर नहीं

मिला । जिसके कण्ठ का विभूषण हड्डियों की माला है, उसे कौस्तुभ-मणि की क्या ज़रूरत ? जिसके शरीर की शोभा धूलि ही से बढ़ जाती है, उसे चन्दन से क्या काम ? जिसका भक्ष्य विष है, उसे अमृत से क्या काम ? जिसका बाहन बैल है, उसे हाथी से क्या ? जिसका भूषण धतूरे का फूल है, उसे पारिजात की क्या ज़रूरत ? यह सब कुछ सोचकर मेरा शरीर जलता है । हे मुनिवर, आप तो इनका सारा हाल जानते हैं । इन्हें जानकर दक्ष ने इनकी पूजा नहीं की थी, इसी अभिमान से मैंने शरीर त्याग दिया था ।"

शिव का उत्तर

देबीर बचने हासि बलेन भगवान् ।
ये बलिला हैमवती किछु नहे आन ॥
बाहन भूषण मोर कोन् प्रयोजन ।
आमि लइ याहा नाहि लय अन्य जन ॥

भक्तिते करिया बश मागि निल दास ।
अम्लान अम्बर पट्टाम्बर दिव्यबास ॥
घृणा करि व्याघ्रचर्म्म केह ना लइल ।
तेजि मोर बाघाम्बर परिते हइल ॥

अगुरु चन्दन लइल कुङ्कुम कस्तुरी ।
बिभूति ना लय तेजि बिभूषण करि ॥
मणिरत्न सभे लैल मुकुता प्रबाल ।
केह ना लइल तेजि आछ हाड़माल ॥

बिल्वपत्र धूस्तूरा-कुसुम घन घसि ।
केह ना लइल तेजि अङ्गेते बिभूषि ॥
रथ गज लइल बाहन परिच्छद ।
केह ना लइल तेजि आछये बलद ॥

कहिला ये दक्ष मोरे पूजा ना करिल ।
अज्ञान तिमिरे दक्ष मोहित आछिल ॥
तेञि मोके न जानिया पूजा ना करिल ।
ताहार उचित फल ततक्षणे पाइल ॥

"देवी की बातें सुनकर शंकरजी हँसकर बोले—पार्वती ने जो कहा है, वह सब ठीक ही है । वाहन-भूषण से मेरा क्या प्रयोजन ? जो वस्तु और लोग नहीं लेते, उसे मैं लेता हूँ । मेरे दासों ने भक्ति से मुझे वश कर अम्लान अम्बर, पीताम्बर और दिव्य वस्त्र आदि माँग लिये । घृणा के कारण किसी ने व्याघ्र-चर्म न लिया, इसीलिए वह मुझे धारण करना पड़ा । और सब ने अगुरु, चन्दन, कुङ्कुम और कस्तूरी ली, विभूति न ली, इसी कारण उसे मैं धारण करता हूँ । सबने मणि, रत्न, मुक्ता और प्रवाल लिये; हड्डी किसी ने न ली; इस कारण मैंने उसकी माला पहनी । बिल्व-पत्र और धतूरा किसी ने न लिया, इस कारण उसे मैं धारण करता हूँ । सब ने रथ, गज, वाहन, और परिच्छद लिये । बैल किसी ने न लिया, इसी कारण वह मेरे पास है । दक्ष ने जो मेरी पूजा नहीं की थी, उसका कारण यह था कि वे अज्ञान में भूले थे । मुझे न पहचानकर उन्होंने मेरी पूजा न की, उसका उचित फल उन्हें उसी समय मिल गया ।"

चण्डी का उत्तर

देवी बले दारा पुत्र गृही येइ जन ।
ताहारे ना हय युक्त ए सब बचन ॥
बिभव बिभूति आदि सञ्चे यत जने ।
संसारे विमुख इथे आछे कोन् जने ॥
संसारे ते बिमुख ये जन ए सकले ।
कापुरुष बलिया ताहारे लोके बले ॥

ब्रह्मा विष्णु इन्द्रे तुमि येमत पूजित ।
साक्षाते ते सकल हैतेछे बिदित ॥
रत्नाकर मथिया लभिल रत्नगण ।
केह ना पुछिल तोमा करिया हेलन ॥
पार्व्वतीर एइ बाक्य शुनिया शङ्कर ।
क्रोधेते अवश अङ्ग काँपे थर-थर ॥
काशीराम कहे काशीपति क्रोधमुखे ।
बृषभ साजिते आज्ञा करिला नन्दीके ॥

"देवी ने कहा—जिस पुरुष के स्त्री-पुत्र हैं, घर है, उसके मुँह से यह बात शोभा नहीं देती । संसार में विभव, विभूति इत्यादि के सञ्चय से कौन विमुख है ? इन सबसे जो पुरुष विमुख रहता है, संसार उसे कापुरुष समझता है । ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र तुम्हारी जैसी पूजा करते हैं, वह सब स्पष्ट रूप से प्रकट है । समुद्र मथकर सब ने रत्न लिये, तुम्हारी बात भी न पूछी । पार्वती के वचन सुनकर शङ्करजी क्रोध से अवश हो उठे । उनका शरीर काँपने लगा । काशीराम कहते हैं कि शिवजी ने क्रुद्ध होकर तत्काल नन्दी को बैल तैयार करने की आज्ञा दी ।"

महादेव का क्रोध

पार्व्वतीर कटु भाष शुनि क्रोधे दिग्वास
टानिया आनिल बाघबास ।
बासुकि नागेर दड़ि काँकालि बान्धिल बेड़ि
तुलिया लइल युगपाश ॥
कपाले कलङ्कि-कला कण्ठेते हाड़ेर माला
करयुगे कञ्चुकि कङ्कण ।
भानु बृहद्भानु शशी त्रिविध प्रकार भुषि
क्रोधे येन प्रलय-किरण ॥

येन गिरि हेमकूटे आकाशे लहरी उठे
उथे मध्ये गङ्गा जटाजूटे।
रजत-पर्व्वत आभा कोटि चन्द्र मुख शोभा
फणिमणि बिराजे मुकुटे॥
गले दिल हार साप टङ्कारि फेलिल चाप
त्रिशूल भ्रुकुटि लइया करे।
पदभरे चिति लड़े चिक्कार छाड़िया चले
अतिशय वेगे भयङ्करे॥
डम्बुरेर डिमि डिमि आकाश पाताल भूमि
कम्प हैल त्रैलोक्य मण्डले।
अमर ईश्वर भीत आर सभे चिन्तित
ए कोन् प्रलय हैल बले॥

"पार्वती की कटु बातें सुनकर क्रोध से शिवजी ने बाघम्बर खींच लिया। बासुकि नाग को डोरी से उन्होंने अपनी जटा बाँधी और दोनों पाश उठा लिया। कपाल में चन्द्रमा की कला, कण्ठ में हड्डियों की माला, दोनों हाथों में कञ्चुकी के कङ्कण, तीन प्रकार के भानु, बृहद्भानु और चंद्रमा का भूषण धारणकर प्रलयङ्कर किरणों के-से क्रोध के साथ, हिमालय पर जैसे आकाश लहरा उठा हो, उसी प्रकार ऊपर जटा-जूट में गङ्गा के साथ रजत-पर्व्वत की आभा के समान करोड़ों चन्द्रमा की शोभा मुख-मण्डल पर धारण किये हुये, मुकुट पर विराजित सर्पों के कारण सुन्दर, शिवजी ने गले में सर्प-माला पहनी और हाथों में त्रिशूल लेकर वज्र-घोष के साथ बाण फेंका। पदभर पृथ्वी पर लड़ते हुए, बड़े वेग से भयानक चिक्कार करते हुये चले। आकाश, पाताल और पृथ्वी, तीनों लोक डमरू के शब्द से काँपने लगे। 'यह क्या प्रलय हुआ' सोचकर इन्द्र भयभीत हो गये थे; और सब चिन्तित थे।"

वृषभ साजिया बेगे　　　नन्दी आनि दिल आगे
नाना रत्न करिया भूषण ।
क्रोधे काँपे भूतनाथ　　　येन कदलीर पात
अति शीघ्र कैला आरोहण ॥

आगु दले सेनापति　　　मयूर-वाहने गति
शक्ति करे करि षडानन ।
गणेश चड़िया मूष　　　करे धरि पाशङ्कुश
दक्षिण भागेते क्रोधमन ॥

बामे नन्दी महाकाल　　　करे शूल गले माल
पाछे ज्वरासुर षट्पदे ।
चलिला देवेर राज　　　देखिया शिवेर काज
तिन लोके गणेन प्रमादे ॥

क्षणेके क्षीरोद-कूले　　　उतरिला सहदले
यथाय मथने सुरासुर ।
काशीरामदास कय　　　शीघ्र गति पणमय
सर्व्व देवे देखिया ठाकुर ॥

"नन्दी ने तरह-तरह के रत्न-आभूषण से बैल को सजाकर शीघ्र सामने ला दिया। केले के पत्ते के समान भूतनाथ क्रोध से काँप रहे थे। वे शीघ्र बैल पर सवार हुये। सामने सेनापति मयूर-वाहन कार्त्तिकेय को रखा। दाहिनी ओर क्रोधोन्मत्त होकर हाथों में पाश और अङ्कुश लिये हुए मूषक-वाहन गणेश चले। बाईं ओर गले में माला पहनकर और हाथ में शूल लेकर महाकाल नन्दी और उनके पीछे षट्पद ज्वरासुर चले। इस प्रकार देवाधिदेव चले। शिवजी का यह कृत्य देखकर सारे संसार में आतङ्क फैल गया। क्षण भर में वे अपने दल के साथ क्षीरसागर के तट पर, जहाँ देवता और असुर समुद्र-मन्थन कर रहे थे, जा उतरे।

काशीरामदास कहते हैं कि महादेव को देखकर सभी देवता शीघ्रतापूर्वक प्रणाम करने लगे।''

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में विभीषण

एत बलि रथे आरोहिला लङ्केश्वर।
सङ्गेते चलिल लक्ष लक्ष निशाचर॥
बाजाय बिबिध बाद्य राक्षसि-बाजना।
शत शत श्वेतच्छत्र नाना बर्ण बाना॥
दक्षिण द्वारेते उपनीत बिभीषण।
मिशमिशि हइल राक्षस नरगण॥
बिकृत आकार यत निशाचरगण।
बिस्मय हइया सभे करे निरीक्षण॥
दुई तिन मुण्ड कार अश्वप्राय मुख।
बक्रदन्त दीर्घनासा चक्षु येन कूप॥
रथे हैते भूमिते नामिला बिभीषण।
यज्ञस्थान देखि हैला सबिस्मय मन॥
ओर अन्त नाहि लोक चतुर्दिगे बेड़ि।
उच्च नीच जल स्थल आछे सर्ब्ब युड़ि॥
कोथाय देखये एकपद नरगण।
दीर्घकर्ण देखे कोथा बिबर्ण-बदन॥
कोथाय किरात म्लेच्छ बिकृति-आकार।
ताम्रकेश कृष्ण-अङ्ग देखे कत आर॥

''इतना कह लङ्केश्वर रथारूढ़ हुए। साथ में लाख-लाख निशाचर चले। राजा के साथ में कितने ही लोग राक्षसी बाजे बजाते हुये चले। सैकड़ों उज्जवल छत्र और रङ्ग-बिरंगे झंडे लेकर विभीषण दक्षिण द्वार पर आ उपस्थित हुए। राक्षस और मनुष्य एक साथ मिल गये। सभी लोग विकृताकार राक्षसों को विस्मय से ताकने लगे। किसी के दो-तीन मुख थे, किसी

का मुँह घोड़े का-सा था। टेढ़े दाँत, लम्बी नाक, कुएँ की नाईं आँखवालों के साथ विभीषण भूमि पर उतरे। यज्ञ-भूमि देखकर वे बहुत विस्मित हुए। ऊँचे पर, नीचे-जल-स्थल में, जहाँ कहीं भी दृष्टि जाती, चारों ओर आदमी ही आदमी दिखाई पड़ते। भीड़ का कहीं अंत न था। कहीं एक पैर वाले, कहीं लम्बे कान वाले और कहीं रंग-बिरंगे शरीरवाले आदमी दिखाई पड़ते थे। कहीं विकृत शरीर-धारी ताम्रवर्ण के बाल और कृष्ण वर्ण के शरीर वाले कितने ही किरात और म्लेच्छ आदि दिखाई पड़ते थे।"

कोथाय देखये राजा आछे कपिगण।
ताम्रवर्ण कृष्णमुख लोहित-लोचन॥
कोथाय देखये यक्ष गन्धर्व्व किन्नर।
कोथाय देखये फणी शिरे फणधर॥
कोथाय अमरगण नाना क्रीड़ा करे।
राक्षस दानव दैत्य अनेक विहरे॥
सिद्ध साध्य योगी ऋषि अनेक ब्राह्मण।
बिबिध वरणे कोथा मत्त हस्तिगण॥
कोटि-कोटि अश्वगण कोटि-कोटि रथ।
स्थाने-स्थाने नृत्य गीत हये अनुव्रत॥
अपूर्व्व देखिया राजा भाव मने मन।
ए हेन अद्भुत नाहि शुनिये कखन॥
ये देव दानवे बैरी आछये सदाय।
हेन देव दानवेते एकत्रे खेलाय॥
येइ फणी गरुड़ेते कभु नाहि देखा।
एकत्र खेलये येन छिल पूर्व्व-सखा॥
राक्षस मानुषे पाइले करये भक्षण।
मनुष्येर आज्ञावर्त्ती निशाचरगण॥

अद्भुत मानिया राजा नाके दिल हात ।
जानिल ए सब माया कैल जगन्नाथ ॥

"राजा कहीं ताम्रवर्ण, कृष्णमुख, रक्तनेत्र कपिसमूह देखता है, कहीं यक्ष, किन्नर और गन्धर्व देखता है और कहीं फणिधर सर्प देखता है। कहीं देवता लोग तरह-तरह की क्रीड़ा करते हैं, कहीं कितने ही राक्षस, दानव और दैत्य विहार करते हैं, कहीं बहुतेरे सिद्ध, योगी, ऋषि और ब्राह्मण खड़े हैं, कहीं विचित्र वर्ण के मतवाले हाथी, कहीं करोड़ों घोड़े और रथ दीख पड़ते हैं। स्थान-स्थान पर नृत्य और गीत होते हैं। यह अपूर्व दृश्य देखकर राजा मनही मन सोचने लगा—ऐसी अद्भुत बातें तो कभी सुनी भी न गई थीं। देव और दानव, जो सदा के शत्रु हैं, यहाँ एक साथ खेलते हैं। सर्प और गरुड़, जिनका एकत्र दर्शन कभी नहीं होता, यह पुराने मित्र की तरह एक साथ खेल रहे हैं। राक्षस मनुष्य का भक्षक होकर भी यहाँ उसका आज्ञावर्ती है। राजा ने इसे अद्भुत समझकर नाक पर हाथ रक्खा और समझा कि यह सब जगन्नाथ की माया है।"

दुइ भिते देखे राजा अनिमिष आँखि।
एतिन भुवनलोक एकु ठाँइ देखि ॥

केबा कारे आनि देइ नाहिक निर्बन्ध ।
आसन भोजन पाने सभार आनन्द ॥

परिवार लोक आर बहाइया रथ ।
ठेलाठेलि पदब्रजे गेला कथो पथ ॥

आगु आर नहे गम्य याइते काहारे ।
आछुक अन्येर काय पिपीलिका नारे ॥

कत दूरे आछे द्वार नाहि चले दृष्टि ।
राजागण दाँड़ाइया आछे पृष्ठापृष्टि ॥

दुइ भिते द्वारिगण प्रहारये बाड़ि ।
एक दृष्टे आछे सभे दुइ कर युड़ि ॥
पथ ना पाइया दाँड़ाइला बिभीषण ।
अन्तर्यामी सकल जानिला नारायण ॥
के आइल के खाइल केबा नाहि पाय ।
प्रतिजने जगन्नाथ चर्चिया बेड़ाय ॥

"अनिमेष दृष्टि से तीनों लोकों को एकत्र देख, राजा दोनों ओर आँख फिराते थे। आसन, भोजन, जल आदि कौन किसको ला देता है, इसका कोई पता नहीं चलता था। सभी आनन्द में मग्न थे। परिवार, नौकर-चाकर और रथ छोड़कर पैदल कितनी दूर धक्के खाते-खाते चले गये। आगे जाना सम्भव नहीं था। द्वार कहाँ है, यह नहीं दीख पड़ता था। राजा लोग एक-एक के पीछे खड़े थे। दोनों ओर हाथ जोड़ द्वारपाल पहरा देते खड़े थे। रास्ता न पाकर विभीषण भी रुक गये। अन्तर्यामी नारायण को सब मालूम हो गया। जगन्नाथ सभी का पता लगाते फिरते थे—किसको भोजन मिला और किसको नहीं।"

दूरे थाकि देखिल राक्षस-अधिपति ।
दिव्यचक्षे जानिल ये एइ लक्ष्मीपति ॥

अष्टाङ्ग लोटाइया नति करे कर योड़े ।
चारिधारा नयनेते अश्रु-जल पड़े ॥

देखिया निकटे गेला देव दामोदर ।
आलिङ्गन दिया कृष्ण तुषिला बिस्तर ॥

स्तुति करे बिभीषण युड़ि दुइ कर ।
आनन्दे चक्षुर जल बहे जलधर ॥

नाना रत्न निछिया फेलिल भूमितले ।
पुनः पुनः धरि पड़े चरण-कमले ॥

यतेक आनिल राजा बिबिध रतन।
गोबिन्देर चरणे करिल समर्पण॥
कर योड़ करि बले राक्षसेर राज।
आज्ञा कर जगन्नाथ करिब कि काज॥
गोबिन्द बलिला आसियाछे येइ काजे।
मोर सङ्गे चल भेटाइब धर्म्मराजे॥
बिभीषण बले कर्म्म सम्पूर्ण हइल।
तोमार पदारबिन्द नयने देखिल॥
तोमार कोमल अङ्ग दृढ़ आलिङ्गन।
पितामहे अप्राप्य ये अन्य कोन जन॥
लक्ष्मीर दुर्लभ मोरे करिले प्रसाद।
चिरकाल बिच्छेदेर खण्डिल बिषाद॥
सम्पूर्ण मानस हइल सिधि हैल काज।
एखने कि करि आज्ञा कर देवराज॥

"राक्षसराज ने दूर ही से देखकर दिव्यदृष्टि से लक्ष्मीपति को पहचान लिया और हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। आखों से आँसुओं की धारा बह चली। यह देखकर दामोदर उनके निकट गये और छाती से लगाकर उन्हें बहुत सन्तुष्ट किया। विभीषण ने हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति की। आनन्द से आँखों में जल उमड़ आया। तरह-तरह के रत्न उतारकर उन्होंने पृथ्वीपर डाल दिया। वे पुनः पुनः भगवान् के चरण-कमल पकड़ लेते थे। विभीषण जितने रत्न लाये थे, सभी भगवान् के चरणों पर समर्पण कर दिया। फिर हाथ जोड़कर उन्होंने पूछा--जगन्नाथ, मैं क्या करूँ? गोविन्दने कहा—जिस कार्य्य से आये हो। चलो, मैं तुम्हें धर्म्मराज से मिला देता हूँ। विभीषण ने कहा--मेरा अब सारा मतलब हो गया। मुझे आपके चरण-कमलों का दर्शन मिल गया। आपके कोमल अङ्गों का आलिङ्गन ब्रह्मा को भी अप्राप्य

है, औरों का क्या कहना? जो आनन्द लक्ष्मी को दुर्लभ है, वह मुझे मिल गया। चिरविच्छेद का विषाद दूर हुआ। हृदय की अभिलाषा पूर्ण होगई। सारा कार्य्य सिद्ध हुआ। मैं अब क्या करूँ, आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

गोबिन्द बलिला येइ हेतु आगमन।
यार दूत-सङ्गे पूर्ब्बे पाठाइला धन॥

यार निमन्त्रणे तुमि आइला एथाय।
चल भेटाइब सेइ ठाकुरे तोमाय॥

बिभीषण बले कहिलेक दूतगण।
पाण्डवेर यज्ञे अधिष्ठाता नारायण॥

तब द्रोही हइब ना दिले तारे कर।
अन्य कि तोमार नामे दिब कलेवर॥

एके ना आइनु पूर्ब्बे मुञि अपराधी।
आपनि डाकिले हेन मिलाइल बिधि॥

संसारेर ठाकुर तोमारे आमि जानि।
तोमार ठाकुर आछे कभु नाहि शुनि॥

ये होक से होक प्रभु तोमा बिनु नाञि।
प्रयोजन नाहि मोर अन्यजन ठाञि॥

"गोविन्द ने कहा—जिस कार्य के लिए तुम आये हो, जिसे दूत के हाथ पहले धन भेजा था, जिसके निमन्त्रण से तुम यहाँ आये हो; चलो, मैं उन महाराज से तुम्हें मिला दूँ। विभीषण ने कहा—दूतों ने मुझ से कहा कि पाण्डवों के यज्ञ के अधिष्ठाता नारायण हैं। यह सुनकर मैं ने सोचा कि उनको कर देने से मैं आपका द्रोही न हूँगा। आपके नाम पर शरीर तक दे सकता हूँ। पहले न आया, यही एक अपराध हुआ। मैं जानता हूँ कि आप संसार के स्वामी हैं। मैं नहीं मानता कि आप के

ऊपर भी किसी और का प्रभुत्व है। आप के अतिरिक्त मुझे और किसी से कोई प्रयोजन नहीं है।"

गोबिन्द बलिला धर्म्म-पुत्र युधिष्ठिर।
यार दरशने हये निष्पाप शरीर॥
सत्यबादी जितेन्द्रिय सर्व्वगुणधाम।
ये तिन भुवनेते बिख्यात यार नाम॥
प्रतापे याहार इन्द्र आदि जय हैल।
कर दिया फणीन्द्र शरण आसि लइल॥
उत्तरे उत्तरकुरु पूर्व्वे जलनिधि।
पश्चिमेते आमि दक्षिणे तोमावधि॥
नाहि दिल ना आइल नाहि हेन जने।
साक्षाते नयने तुमि देखह आपने॥
देवता गन्धर्व्व यक्ष रक्ष कपि फणी।
मनुष्य आइल यत बैसये अवनी॥
अष्टाशी सहस्र द्विज नित्य गृहे भुजे।
त्रिश त्रिश सेवके सेवये एक द्विजे॥
दश सहस्र ऊर्द्ध्वरेता इहार उपान्त।
एखने एतेक द्विज के करिब अन्त।
स्थाने स्थाने रन्धन हैतेछे अविराम।
लक्ष लक्ष ब्राह्मण भुजये एकु ठाम॥

"गोविन्द ने कहा—युधिष्ठिर धर्म्मपुत्र हैं। उनके दर्शन से शरीर निष्पाप होता है। वे सत्यवादी, जितेन्द्रिय तथा सर्व्वगुणाकर हैं और उनका नाम तीनों लोकों में विख्यात है। उनके प्रताप से इन्द्रादिक विजित हुये, फणीन्द्र ने भी कर देकर उनकी शरण ली है। उत्तर में उत्तर कुरु, पूरब में समुद्र, पश्चिम में द्वारका और दक्षिण में लङ्का तक ऐसा कोई नहीं है जो उनके यज्ञ में न आया हो अथवा भेंट न दी हो।

तुम अपनी आँखों से देख लो। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, कपि, नाग और मनुष्य संसार में जितने हैं, सब आये हैं। अट्ठासी हज़ार द्विज प्रति दिन भोजन करते हैं। प्रत्येक द्विज की सेवा में तीस-तीस सेवक हैं। उसके बाद दस हज़ार ब्रह्मचारी हैं। यहाँ जितने द्विज हैं, उनकी गिनती कौन कर सकता है? स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े रसोईं-घर हैं, जहाँ निरन्तर पकवान बन रहे हैं। एक-एक स्थान पर लाख-लाख विप्र भोजन करते हैं।"

एक लक्ष द्विज यब करये भोजन।
एकबार शङ्खनाद करये तखन॥
हेन मते मुहुर्मुह हये शङ्खध्वनि।
चतुर्द्दिगे शङ्खरवे किछुइ ना शुनि॥

तिन पद्म अयुत मातङ्ग दीर्घदन्त।
तिन पद्मायुत रथ तुरङ्ग अनन्त॥
एक लक्ष नृपतिर पदा अगणित।
चारि जाति यतेक निवसे पृथिवीत॥

अर्द्धेक रन्धने भुञ्जे अर्द्धेक आमान्न।
काहार शकति ताहा करे परिमाण॥
एकजन सन्तोष नाहिक इहाते।
खाओ-खाओ लओ-लओ ध्वनि चतुर्भिते॥

मनु आदि यत हैल पृथिवोर पति।
हेन कर्म्म ना करिल काहार शकति॥
यत दूर पर्य्यन्त निवसे जन प्राणी।
हेन जन नाहि युधिष्ठिरे नाहि जानि॥

स्मरणे कुमति हरे निष्पाप दरशने।
प्रणामे परम गति आमार समाने॥

तोमा हेन जन नाहि जान हेन जन ।
शीघ्र चल लइया कर कर दरशन ॥

"एक लाख ब्राह्मण जब भोजन कर चुकते हैं, तब एक बार शङ्खनाद होता है। इसी प्रकार क्रमशः शंखनाद होता है, जिसके रव से चारों ओर कुछ नहीं सुन पड़ता। तीन पद्म अयुत बड़े दाँत वाले हाथी, तीन पद्म अयुत रथ, असंख्य घोड़े, एक लाख राजों के अगणित सिपाही, संसार में जितने हैं, कुछ रसोई में भोजन करते हैं और कुछ सीधा लेते हैं। परन्तु उसका हिसाब लगाना शक्ति से परे है। एक आदमी को सन्तोष नहीं है। चारों दिशायें 'खाओ', 'लो' आदि शब्दों से मुखरित हैं। मनु आदि जितने दिक्पाल हैं, ऐसा करना किन्हीं की शक्ति में नहीं है। ऐसा कोई नहीं है जो युधिष्ठिर को न जानता हो। युधिष्ठिर का स्मरण करने से कुमति जाती रहती है और उनके दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। उन्हें प्रणाम करने से मनुष्य मेरे समान परम गति पाता है। युधिष्ठिर-जैसा पुरुष अन्यत्र नहीं है। शीघ्र चलो, दर्शन कर लो।"

विकास-काल के वैष्णव कवि

१—नित्यानन्द

२—मालाधर बसु

३—चण्डीदास

४—विद्यापति

५—गोविन्ददास

६—ज्ञानदास

नित्यानन्द

वैष्णव-सम्प्रदाय में नित्यानन्द का स्थान बहुत ऊँचा है। ये महाप्रभु चैतन्य के समकालजीवी थे। इन दोनों में बहुत घनिष्ठता थी। जब ये पनिहाटी भ्रमण करने गये थे, तब इनकी मुलाक़ात रघुनाथ संन्यासी से भी हुई थी।

वैष्णव-गण इनको 'पतितपावन' कहकर सम्बोधित करते हैं। नीच, पथ-भ्रष्ट, और दुखी-दरिद्र के प्रति इनकी बड़ी सहानुभूति रहती थी। कहा जाता है, जब ये खारशह में ठहरे हुए थे, तब नवजाति के १२०० पुरुष और १२०० स्त्रियाँ इनके पास दीक्षा लेने के लिये आईं थीं। उन लोगों को नित्यानन्द ने सहर्ष गले लगाया था।

इनका जन्म श्रीखण्ड नामक स्थान में हुआ था। ये वैद्य जाति के थे। आत्मारामदास इनके पिता का नाम था।

इनके प्रधान ग्रन्थ ये हैं :—

१—महाभारत का अनुवाद

२—शीतला-मंगल। यह शीतला देवी के गानों का विस्तृत संग्रह है।

३—प्रेम-विलास। यह बड़ा ग्रन्थ है और बीस अध्यायों में बँटा हुआ है। यह ग्रन्थ सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में लिखा गया था। प्रधान तौर से इसमें श्रीनिवास और श्यामानन्द के जीवन-चरित्र का वर्णन है। इनके अतिरिक्त बहुत-सी फुटकर कवितायें भी हैं। नमूने के तौर पर इनके कुछ पद्य यहाँ दिये जाते हैं—

नित्यानन्द का महाभारत

स्त्री-पर्व

गान्धारी-विलाप।

(१)

महाभय उपजिल देखि रणस्थल।
शकुनि गृध्रिनी शिवा करे कोलाहल॥
हाते मुण्ड करिया नाचये भूतगण।
कुक्कुर करिछे मांस शोणित भक्षण॥
रक्तेर कर्दम शीघ्र चलिते ना पारि।
शोके दग्ध नारी गण याय धीरि धीरि॥
केह केह नाज्ञि पाय पति-दरशन।
भूमेते पड़िया कान्दे हय्या अचेतन॥
आभरण फेलि केहो शोकाकुल हय्या।
पतिहीन कोन नारी बुलये धाइय्या॥

धाय्या बुले सकले यतेक कुलनारी ।
सिगाल पत्तगणे भय नाहि करि ॥
अनेक खुँजिया केह निज पति पाइलय ।
स्कन्धे मुण्डे योताइया प्रतीत हइल ॥
पासरिले पूर्वकथा प्रीत सब यत ।
हास्य परिहास्य ताहा स्मङरिव कत ॥

"रणस्थल देखकर बड़ा भय हुआ । शकुनि, गृद्धिनी और सियार कोलाहल कर रहे थे । भूत-गण हाथ में मुण्ड ले-लेकर नाचते थे । कुत्ते शोणित और मांस भक्षण कर रहे थे । रक्त के कीचड़ में शोक-दग्ध स्त्रियाँ चल न सकती थीं । किसी प्रकार धीरे-धीरे चल रही थीं । कोई-कोई पति का दर्शन न पा अचेत हो पृथ्वी पर गिरकर रोने लगतीं । कोई शोकाकुल हो आभूषण खोलकर फेंक देती । कोई पतिहीन नारी यों ही घूमती । जितनी राजघराने की नारियाँ थीं, सभी घूम रही थीं । सियार और पक्षी ज़रा भी नहीं डरते थे । कोई बहुत खोजने पर अपने पति को पाती, उसका कन्धा वा मुण्ड पाकर ही वह ख़ुश होती । फिर पूर्व की प्रीति की बातें कहती, कितने हास्य-परिहास की बातें याद करती ।"

(२)

संग्राम करिते आइल्ये केमने कुखने ।
पुनश्च ना हैल देखा अभागिनो सने ॥
हेन मते पतिहीन्या यत यत नारी ।
विलाप करिया कान्दे नाना मत करि ॥
ता देखि गान्धारी प्राण धरिते ना पारे ।
पति कोले बधू सब कान्दे उच्चैः स्वरे ॥
रण-भूमि देखि देवी अति भयङ्कर ।
कपाले कङ्कण मारि कान्दये बिस्तर ॥

सभे शोके अचेतन पड़िया भूमिते ।
हेन केह नाहि तथा प्रबोध करिते ॥
के कोथा पड़िया कान्दे नाहिक तरास ।
रण-भूमि देखि देवगणे लागे त्रास ॥
मड़ार उपरे मड़ा नाहि लेखा तार ।
गान्धारी देखिया मने पाइल चमत्कार ॥
हस्ती अश्व पड़ियाछे रथ बहुतर ।
नाना अलङ्कार अस्त्र-वस्त्र मनोहर ॥
माथार मुकुट पड़ि आछे रण भूमे ।
आद्य अन्त नाहि पड़ि आछे एकक्रमे ॥
ध्वज छत्र चामर पड़िल रणस्थले ।
खड्ग ढाल नाना अस्त्र भासे रक्तजले ॥

"कहतीं—कैसे कुसमय में युद्ध करने आये, फिर अभागी से भेंट भी न हुई। इसी प्रकार जितनी पतिहीना स्त्रियाँ थीं, सब विलाप करके रो रही थीं। यह देख गान्धारी प्राण नहीं धारण कर सकती थीं। पति को गोद में लेकर सभी बधुयें उच्च-स्वर से रो रही थीं। अति भयङ्कर रण-भूमि को देख देवी कङ्कण से माथा पीट-पीटकर रोने लगीं। सभी भूमि पर अचेत भाव से पड़ी थीं। ऐसी एक भी स्त्री न थी जो किसी को होश में लाती। कौन कहाँ रोती है, किसी को कुछ पता नहीं। रण-भूमि को देख देवता भी काँपते। शव पर शव पड़े थे। उनकी कोई गिनती नहीं थी। गान्धारी देखकर जैसे चौंक उठीं। कितने ही हाथी, घोड़े, रथ, नाना अलङ्कार, अस्त्र, मनोहर वस्त्र, माथे का मुकुट आदि रण-भूमि में पड़े थे। आदि और अन्त नहीं, सब एक तरह पड़े हैं। रक्तजल में ध्वजा, छत्र, चामर, खड्ग, ढाल और अन्यान्य अस्त्र बह रहे थे।"

(३)

पड़िआछे वीर सब विचित्र शरीर ।
बाणेते जर्ज्जर अङ्ग बहिछे रुधिर ॥
कार हस्त पाद नाहि नाक चाक्षु काण ।
अस्त्राघाते कार कार मूर्ति देखि आन ॥
विबर्ण हइया भूमे आछये पड़िया ।
नारीगण भय पाय स्वामी के देखिया ॥
रुधिर कर्द्दम-भूमि पङ्क बहुतर ।
शोणितेर नदी बहे संग्राम-भितर ॥
स्रोते भासे हस्ती घोड़ा नर लक्ष लक्ष ।
शृगाल कुकुरेर खेला देखिते असंख्य ॥
शकुनि गृधिनी करे अति कलरव ।
डाकिनी योगिनी नाचे हाते करे शव ॥
मुण्डमाला गले परे प्रेत भूत दाना ।
कलसी भरिया पीये शोणितेर पाना ॥
नर-अन्त्र बिदारिया केह खाय सुखे ।
तुरङ्ग हस्तीर मांस शोभे कार मुखे ॥
रक्त मांस खेय्या बुले हास्य परिहासे ।
केहो कारे खेदाड़िया याय अति रोषे ॥
कलह करये कोथाय डाकिनी योगिनी ।
भूत-प्रेत-शब्दे किछु श्रवणे ना शुनि ॥

"विचित्र शरीरवाले वीर पड़े थे। उनके अङ्ग बाणों से जर्ज्जर थे। उनसे रुधिर बह रहा था। किसी के हाथ न थे, किसी के पैर, किसी के नाक, कान, आँख। अस्त्राघात से किसी-किसी का चेहरा ही दूसरा होगया था। विरूप होकर सब विकृताकार भूमि पर पड़े थे। पति को देखकर स्त्रियाँ डरती थीं। भूमि रुधिर

के कारण पङ्कमय हो गई थी। युद्ध में शोणित की नदी बहती थी। उसके प्रवाह में हाथी, घोड़े, लाख-लाख नर बह रहे थे। कितने ही सियार और कुत्ते खेल देख रहे थे। शकुनि और गृधिनी कलरव कर रही थीं। डाकिनी और योगिनी हाथों में शव लेकर नाच रही थीं। प्रेत, भूत और दानव मुण्ड-माला पहनते और कलसी भर-भर रक्त पीते। किसी के मुँह में हाथी के मांस थे। रक्त और मांस खा-खाकर वे हँस रहे थे। कोई किसी को रोष से खदेड़ देता। कहीं डाकिनी और योगिनी झगड़तीं। भूत-प्रेत के शब्द से कहीं कुछ न सुन पड़ता था।"

(४)

मेघेर निनाद येन गंभीर भाषण।
ताहा शुनि नारी गण भयानक मन॥
मांसेर पसरा दिया राक्षस पिशाच।
बेचा किना करे केह मने अभिलाष॥
महाघोरतर शब्द शुनिआ गान्धारी।
काक चिल उड़े कत वर्णिते ना पारि॥
वधूगण सङ्गे राणी मुकुलित चुले।
दुर्य्योधने खुँजिया बेड़ाय रणस्थले॥
युवती धाइया बुले लाज नाहि बासे।
भयहीन हैल्य पति-दरशन-आशे॥
कार कार पतिर ना हइल्य दरशन।
मुक्तकेशे रणभूमे करए भ्रमण॥
हस्त-पद-हीन केह आछये पड़िया।
केहो पति बिने बुले उद्देश करिया॥
मांस खाय काक चिल गृधिनी कुकुर।
महा कोलाहल करे शब्द थाय दूर॥
भय तेजि कुरु-वधू यत नारीगण।

मृत-पति कोले करि करये रोदन ॥
विलाप करये केहो मुखे मुख दिया ।
अभागिनी डाके नाथ ना चाह फिरिया ॥
मुक्तकेशे केन आछ भूमेते पड़िया ।
डाकये पाण्डवगण युद्ध कर गिया ॥

"मेघ के निनाद के समान गंभीर भाषण सुनकर स्त्रियाँ डर जाती थीं। राक्षस लोग माँस की ढेर लगाकर क्रय-विक्रय करते थे। अगणित कौवे और चीलें उड़ रही थीं। सब यह देखती हुई गान्धारी बधुओं के साथ युद्ध-भूमि में दुर्योधन को खोजती फिरती थी। युवतियाँ निर्लज्ज हो पति-दर्शन की आशा से निडर दौड़ रहीं थीं। किसी के पति न मिलते थे। वह खुले केश युद्ध-भूमि में घूमती थीं। हाथ-पैर से हीन होकर किसी-किसी के पति का धड़ पड़ा था। कोई पति को न पाकर उसे पुकारती थी। तुमुल कोलाहल कर कौए, चील और कुत्ते मांस खा रहे थे। भय छोड़कर कुरु-वधू पति को गोद में ले रोती थीं। कोई-कोई तो मृत-पति के मुख पर मुख रखकर रोती थीं। कोई अभागिनी पति को पुकारती—नाथ, देखते क्यों नहीं हो? भूमि पर केशों को खोलकर क्यों पड़े हो? पाण्डव-गण बुला रहे हैं, जाओ युद्ध करो। वीर-वेष धारण करो।"

(५)

वीर वेश धरह धरह धनुः शर ।
भीमार्ज्जुन डाके नाथ करिते समर ॥
एइ मते नारीगण करिये रोदन ।
बदने बदन दिया करये चुम्बन ॥
डाकिनी योगिनीगण करे नाना केलि ।
मांस खेय्या मत्त हय्या चले चुलि चुलि ॥

स्वामी पुत्र पौत्र आर बन्धु सहोदर।
पड़िया आछये कत संग्राम भितर॥
दुर्य्योधन चेष्टा करि पाइल गान्धारी।
कथोदूरे पाइलेन कुरु अधिकारी॥

धूलाय पड़िया आछे राजा दुर्य्योधन।
गान्धारी देखिल सङ्गे सह बधू-गण॥
पुत्र दरशने देवी अचेतन हैल!
दुर्य्योधनेर स्त्री आसि कोलेते करिल॥

बूके करि राजारे कान्दये राजा राणी।
तोमार बिहने आमि हइलाङ अभागिनी॥
क्षेत्रीर स्वधर्म्म कर्म्म करिले पालन।
राखिले प्रतिज्ञा निज करिले ये पण॥

विषाद करिया सभे करये रोदन।
शुनिया मूर्च्छित शोके हइल राजन॥
पञ्च पाण्डवते ताँरे धरिया तुलिल।
श्रीकृष्ण सात्यकि नृपे प्रबोध करिल॥

"हे नाथ, वीर-वेष धारण करो, भीम-अर्ज्जुन युद्ध करने को बुला रहे हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ रोतीं, मृत-पति के मुख पर मुख रखकर चूमतीं। डाकिनी और योगिनी केलि करतीं। मांस खा-खाकर मत्त हो केलि करतीं। कितने पति, पुत्र, भाई संग्राम-स्थल पर पड़े हैं। बड़े प्रयत्न से गान्धारी ने दुर्योधन को खोजा। गान्धारी ने वधुओं के साथ देखा—राजा दुर्योधन धूलि में लेटे हैं। पुत्र को देखकर महाराणी अचेत हो गईं। दुर्योधन की स्त्री ने पति को गोद में उठा लिया और रोने लगी—तुम्हारे बिना मैं अभागिनी हो गई। तुमने क्षत्री के धर्म्म का पालन किया। जो प्रतिज्ञा की थी, उसे निबाहा। यह कहकर सभी रोने

लगीं। सुनकर राजा धृतराष्ट्र शोक से मूर्च्छित हो गये। पाँचो पाण्डवों ने उन्हें पकड़ा और कृष्ण और सात्यकि उन्हें होश में लाये।"

(६)

पुनः पुत्र शोकेते गान्धारी मूर्च्छा हैल।
भूमेते पड़िया राणी अचेतन हैल्य॥
सम्बित पाइया तबे सुबल-तनया।
चाहिल कृष्णेर मुख शोकाकुल हय्या॥
देख कृष्ण महाशय कुरु-नितम्बिनी।
केमने ए दुःख सहे मायेंर पराणी॥
देख कृष्ण मरियाछे राजा दुर्य्योधन।
सङ्गेते ना देखि केन कर्ण दुःशासन॥
शकुनि सङ्गेते केने ना देखि राजन।
कोथा भीष्म महाशय गान्धार-नन्दन॥
कोथा द्रोणाचार्य्य आर कोथा परिवार।
एकेला पड़िया आछेन आमार कुमार॥
कह दुःशासन कोथा गेल पुत्रगण।
सहोदर छाड़ि केन एका दुर्य्योधन॥
एकादश अक्षोहिणी यार सङ्गे याय।
हेन दुर्य्योधन राजा धूलाय लुटाय॥
सुबर्णेर खाटे यार सतत शयन।
धूलाय धूसर तनु हय्याछे एखन॥
जाति यूथी पुष्प आर चम्पा नागेश्वर।
बकुल मालती आर मल्लिका सुन्दर॥
एक सकल याहार पुष्पपाति शयन।
से तनु भूमे लोटाय भूमे नाहि सम्वरण॥

"फिर पुत्र-शोक से गान्धारी मूर्छित हो भूमि पर गिरकर बेहोश हो गईं। बाद को जब वे होश में आईं तब श्रीकृष्ण का मुख देखकर बोलीं—देखिये, महाशय यह दुःख कैसे सहा जाय। देखिये, राजा दुर्योधन मर गया। फिर कर्ण, दुःशासन और शकुनि को क्यों नहीं देखती हूँ? गान्धार-नन्दन भीष्म कहाँ हैं, द्रोणाचार्य्य और सारे परिवार कहाँ हैं? मेरा बेटा अकेला पड़ा है। दुःशासन आदि तुम्हें अकेला छोड़कर कहाँ गये? जिसके साथ ग्यारह अक्षौहिणी दल जाता था, वह दुर्योधन धूलि में लोट रहा है। जो सर्वदा सोने के बिछावन पर सोता था, वह आज धूलि से धूसर है। जूही, चम्पा, बकुल, मालती और मल्लिका के फूलों से जिसकी शय्या रची जाती थी, वह भूमि पर बिना चद्दर के पड़ा है।"

(७)

अगुरु चन्दनगन्ध कुङ्कुम कस्तूरी।
लेपन करये सदा अङ्गेर उपरि॥
शोणिते भेस्याछ देह कर्दमे शयन।
आहा मरि कोथा गेले बाछा दुर्य्योधन॥
तेजिया आलस्य केन ना देह उत्तर।
युद्ध करिवारे बाछा डाके वृकोदर॥
उठ पुत्र तेज निद्रा अस्त्र लह हाते।
गदा युद्धे कर गिया भीमेर सहिते॥
भीमार्ज्जुन डाके तोमाय करिवारे रण।
प्रति-उत्तर नाहि देह केन दुर्य्योधन॥
एत बलि गान्धारी हइले अचेतना।
प्रिय वाक्ये नारायण सान्त्वना॥
शुन शुन आरे भाइ हय्या एकमन।
नित्यानन्द घोष कहे भारत-कथन॥

"जो सदा अङ्ग-अङ्ग में अगुरु, चन्दन, कुङ्कुम और कस्तूरी लगाता था, आज वह लहू में लथ-पथ होकर कीचड़ में सो रहा है। हाय बेटा दुर्योधन, तू मरकर कहाँ गया? आलस छोड़कर उत्तर नहीं देते? देखो, वृकोदर युद्ध करने को बुला रहा है। उठो बेटा, नींद छोड़ो। हाथ में अस्त्र लो और भीम के साथ गदा-युद्ध करो। भीम और अर्जुन युद्ध के लिये तुम्हें बुला रहे हैं। दुर्योधन, उत्तर क्यों नहीं देते? यह कह गान्धारी चेतना-शून्य हो गई और भगवान् ने प्रिय वचनों से उन्हें सान्त्वना दी। भाई, एकाग्रचित्त होकर सुनो, नित्यानन्द घोष महाभारत की कथा कहते हैं।"

मालाधर बसु

मालाधर बसु का जन्म पुरी ज़िला के कुलीन ग्राम में प्रसिद्ध बसु-परिवार में हुआ था। बसु-परिवार उस समय बहुत प्रतिष्ठित और शक्तिशाली था। पुरी के सब यात्रियों को इस परिवार से पास लेना पड़ता था, तब वे मन्दिर में जा सकते थे। ये कायस्थ-जाति के थे।

मालाधर बसु हुसेनशाह बादशाह के दरबार में रहते थे। उन्हीं की आज्ञा से इन्होंने भागवत का बँगलानुवाद १४७७ में शुरू किया। सात वर्ष में इन्होंने दो अध्याय समाप्त किये। इनके साहित्यिक गुणों से प्रसन्न होकर बादशाह ने 'गुणराज खाँ' की उपाधि से इनको भूषित किया। सब से पहले उन्होंने भागवत का बँगला-अनुवाद किया था।

इनका मुख्य ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण-विजय' है। इनकी शैली बहुत ही अच्छी है। इनकी कविता में माधुर्य्य और रोचकता है। भागवत के अनुवाद में इन्होंने स्वतन्त्रता से काम लिया है। राधा के प्रेम-वर्णन में इनकी काव्य-शक्ति का परिचय मिलता है।

इनके पद्यों के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों का शोक

(१)

आजि शून्य होल मोर रसेर वृन्दाबन ।
शिशु संगे केबा आर राखिबे गोधन ॥
अनाथ हइल आज सब ब्रजवासी ।
सब सुख निल बिधि दिया दुःखराशि ॥
आर ना याइब सखी चिन्तामणि घरे ।
आलिंगन ना करिब देव गदाधरे ॥
आर ना देखिब सखी से चाँद बदन ।
आर ना करिब सखी से मुख चुम्बन ॥
आर ना पाइब सखी कल्पतरु तले ।
आर कानु संगे सखी ना गांथिब फुले ॥
शिपर ना दिब आर कानाइर हाथे ।
नाना फुल आर कृष्ण न पराबेन माथे ॥
आर ना दिबेन कृष्ण चर्व्वण-ताम्बूल ।
कानुर बिहने गोपी काँदिया व्याकुल ॥
कृष्ण गेले मरिब सखी ताहे किबा काय ।
कृष्णेर साक्षाते मैले कृष्ण पावै लाज ॥

"आज मेरा रस का वृन्दावन सूना हो गया। लड़कों के साथ कौन अब गौ चरावेगा? आज सब ब्रजवासी अनाथ हो गये। विधाता ने महादुःख दे सब सुख ले लिया। हे सखी! अब तो चिन्तामणि (कृष्ण) के घर नहीं जाऊँगी। अब तो देव गदाधर को कलेजे से नहीं लगाऊँगी। सखी, अब तो वह चन्द्रमा-सा मुख नहीं देखूँगी। अब तो उस मुख को चूम भी नहीं सकूँगी। अब तो सखी, उस कल्पवृक्ष (कदम्ब वृक्ष) के नीचे क्यों जाऊँगी। अब कृष्ण के साथ माला नहीं गूथूँगी। अब तो कृष्ण के हाथों पर अपने मस्तक नहीं रक्खूँगी। अब

तो कृष्ण तरह-तरह के फूलों की माला मेरे मस्तक में नहीं पहनावेंगे। अब तो कृष्ण पान नहीं देंगे। कृष्ण के विरह में गोपी रो-रोकर व्याकुल हो गयी। कृष्ण के जाने से सखी, निश्चय मरूँगी; लेकिन उससे क्या? हाँ, कृष्ण के सामने प्राण-त्याग करने से कृष्ण को लज्जा होगी।''

(२)

अल्प धन लोभ लोके एड़ाइते पारे।
कानु हेन धन सखी छाड़ि दिब कारे॥
कासने करिब क्रीड़ा यमुनार कूले।
के आर घुचाबे सखी विरह आकुले॥
केमने धरिब प्राण कानु ना देखिया।
रथे चड़ि यान कृष्ण ना चान फिरिया॥
मथुरा गेलेन कृष्ण ना आसिबे हेथा।
नाना रूपे युवतीगण निवसये तथा॥
ताहा सने क्रीड़ा यबे करिब मुरारी।
पासरिब आमा सबा आमि बनचारी॥

''थोड़े धन के लोभ को मनुष्य छोड़ भी सकता है। लेकिन कृष्ण ऐसे धन को किसे छोड़ दूँ! किस के साथ अब यमुना के तट पर खेल करूँगी! सखी, कौन अब बिरह-व्यथा को दूर करेगा? कृष्ण को देखे बिना कैसे प्राण धारण करूँगी? कृष्ण तो रथ पर चढ़कर चले गये, मुँह फेरकर भी उन्होंने इस ओर नहीं देखा। वे तो मथुरा चले गये। अब यहाँ नहीं आवेंगे। वहाँ नाना रूपवती युवतियाँ रहती हैं। जब मुरारी उन सभों के साथ क्रीड़ा करेंगे तो हम बन-वासियों को भूल जायँगे।''

चण्डीदास

"जय जयदेव कवि नृपति शिरोमणि विद्यापति रस-धाम ।
जयजय चंडिदास रसशेखर अखिल भुवने अनुपाम ॥"

चण्डीदास का जन्म वीरभूमि ज़िला के छटना ग्राम में हुआ था। ये विद्यापति के समकालीन थे। परन्तु बाल्यकाल ही में ये नन्नुरा ग्राम में जा बसे थे, जो बोलपुर से दस मील दक्षिण-पूर्व में है। वहाँ ये बाकुली देवी के मन्दिर में पुजारी थे। इनके घर का भग्नावशेष अब तक वहाँ वर्त्तमान है और उस मन्दिर के स्थान पर नया मन्दिर बनवाया गया है।

चण्डीदास प्रेम के दीवाने थे। पूर्व बंगाल में विलक्षण स्वभाववाले पुरुष को लोग पगला चण्डी कहकर पुकारते हैं। इनको रामी धोबिन से प्रेम हुआ। संसार की निन्दा की परवा न कर इन्होंने उस प्रेम को आजीवन निभाया। रामी के प्रति इनका प्रेम विमल, विशुद्ध और वासना से एकदम परे था।

ये जिस रीति से रामी के प्रेम में बँधे, वह बड़ा ही अद्भुत है। एक दिन ये मछली ख़रीदने के लिये बाज़ार गये थे। वहाँ एक मछली बेचनेवाली ने जितने पैसे पर इनको मछली नहीं दे रही थी, उतने ही पैसे में उसने एक दूसरे ग्राहक को उससे ज्यादा मछली दे दी। यह देखकर चण्डीदास ने आश्चर्यित होकर कारण पूछा। स्त्री ने जवाब दिया—उसकी बात दूसरी है। हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं। यह सुनकर चण्डीदास अवाक् रह गये और सोचते हुये घर आये। संयोगवश उसी दिन रामी सुन्दरी से इनको भेंट हुई और उस युवती के प्रेम में मतवाले हो गये। मन्दिर के काम-काज भुलाकर ये उसी के प्रेम-गान में मस्त रहने लगे। उस समय का कट्टर ब्राह्मण-समाज इस बात को नहीं सह सकता था। ये ब्राहाण-जाति से अलग कर दिये गये। तब इनके भाई नकुल ने

इनकी सहायता की और फिर से जाति में मिलाने की कोशिश की। उसके लिये चण्डीदास को रामी के प्रेम को छोड़ने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी और एक जातीय दण्ड देना पड़ा। जब रामी को इस बात की खबर मिली, तब वह बहुत विह्वल हुई और लोक-लज्जा को छोड़कर चण्डीदास के सामने आ खड़ी हुई। अपनी हृदयेश्वरी रामी को देखते ही ये सब प्रतिज्ञा भूलकर उसकी आराधना में तल्लीन हो गये। कहा जाता है कि उस समय कितने ही सज्जनों ने रामी के रूप में चतुर्भुजा काली का दर्शन पाया।

चण्डीदास ब्राह्मण थे और रामी एक धोबिन। इन्होंने बतला दिया कि प्रेम के राज्य में जाति-पाँति, ऊँच-नीच का प्रश्न नहीं होता है। इनका प्रेम निःस्वार्थ और पवित्र था। इनके अलौकिक प्रेम की तुलना दान्ते और बीट्रान्स के प्रेम से नहीं हो सकती है।

इनकी मृत्यु बड़ी ही शोक-जनक हुई। किर्णहार नामक ग्राम में चण्डीदास अपने मित्र के घर पर प्रेम-गान गा रहे थे, उसी समय छत के गिर जाने से इनका देहान्त हो गया।

इनकी कविताओं का प्रधान विषय राधा-कृष्ण का प्रेम है। पूर्वराग, शयन, अभिसार, सम्भोग और मिलन।

ये गान इनके हृदय के सच्चे उद्गार हैं। इनमें कृत्रिमता और परिश्रम की झलक नहीं है।

चण्डीदास के कुछ गान यहाँ दिये जाते हैं—

श्री राधिका का पूर्व्व राग

(१)

सइ केवा शुनाइल श्याम-नाम।
काणेर भितर दिया मरमे पशिल गो आकुल करिल मोर प्राण॥
ना जानि कतेक मधु श्याम नाम आछेगो बदन छाड़िते नाहि पारे।
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो केमने पाइब सइ तारे॥

नाम परतापे यार ऐछन करल गो अङ्गेर परशे किबा हय ।
येखाने बसति तार नयने देखिया गो युबति धरम कैछे रय ॥
पाशरिते करि मने पाशरा न जायगो कि करिबे कि हबे उपाय ।
कहे द्विज चण्डिदासे कुलवती-कुल नाशे आपनार यौवन याचाय ॥

"हे सखी, किसने श्याम का नाम सुनाया ! कान के भीतर से होकर वह हृदय में प्रवेश कर गया और मेरे प्राणों को उसने व्याकुल कर दिया । यह समझ नहीं पड़ता कि श्याम का नाम कितना मधुर है ! वह मेरे शरीर से इस तरह से चिपट गया है कि उसे छुड़ा नहीं पाती हूँ । उस नाम का स्मरण करते-करते मैं तो आपे में नहीं रही हूँ । ऐ सखी ! उसे किस तरह पा सकूँगी ? जिसके नाम ही के प्रताप से ऐसी अवस्था हो गई है, उसका अंगस्पर्श होने से तो न जाने क्या होगा ? उसे नेत्र से देखकर युवती-धर्म कैसे रह सकता है ? क्या उपाय किया जाय ? चंडीदास कहते हैं कि वह कुलवती का कुल नष्ट करना चाहता है और यौवन की भिक्षा माँगता है ।"

(२)

आमि से अबला अखल-हृदया भाल मन्द नाहि जानि ।
बसिञा बिरले लेखा चित्रपटे बिशाखा देखाल आनि ॥
हरि हरि एमन केन वा हल ।
बिषम बाड़ल अनल-शिखाय आमारे फेलिया दिल ॥
बएसे किशोर अति मनोहर अति सुमधुर रूप ।
नयन-युगल करए शीतल अमिया-रसेर कूप ॥
निज परिजन से जन आपन वचन बिश्वास करि ।
चाहिते ता पाने पशिल पराणे बुके बिदारिया मरि ॥
चाहि छाड़ाइते छाड़ा ना जाय किते एखन करिब कि ।
कहे चण्डिदासे श्याम-नवरसे ठेकिले राजार भी ॥

"मैं भोली-भाली अबला हूँ। अच्छा-बुरा नहीं जानती। एकान्त में बैठी थी। विशाखा ने आकरके चित्रपट पर उसका चित्र दिखलाया। हा! भगवान्! यह क्या हुआ! हृदय में अग्नि की ज्वाला बड़ी तेजी से बढ़ी और मुझे मूर्च्छित कर दिया। उसकी अवस्था किशोर है। रूप बहुत सुन्दर है, दोनों नेत्रों को वह इस तरह शीतल करता है, मानो उसकी मूर्ति अमृत का कूप है। अपने परिजन, स्वजन और अपने वचन का विश्वास करके उसकी ओर देखते ही उसकी मूर्ति हृदय में प्रवेश कर गई, है और उसे विदीर्ण करके मेरा अंत ही कर देना चाहती है। मैं अपने चित्त से उसे निकालना चाहती हूँ; किन्तु वह किसी तरह से भी नहीं निकलता। अब मैं क्या करूँ? चंडीदास कहते हैं कि श्याम के नवीन रस में सभी सराबोर हैं।"

(३)

बंधु काहारे वा दिब दोष।
ना जानिया यदि करेछि पीरिति काहारे करिब रोष॥
सुधार समुद्र समुके देखिया आइनु आपन सुखे।
केजाने खाइले गरल हइबे पाइबे एतेक दुखे॥
सो यदि जानिताँग अलप इंगिते तबे कि एमने करि।
जाति कुल शील मजिल सकल झुरिया झुरिया मरि॥
अनेक आशार भरसा मरुक देखिते करि ए साध।
प्रथम पोरिति ताहार नाहिक बिभागेर आधेर आध॥
याहार लागिया ये जन मरये सेइ यदि करे आने।
चण्डिदासे कहे एमनि पीरिति करये सुजन सने॥

"हे भाई, मैं दोष ही किसे दूँ? बेजाने यदि प्रीति कर ली है तो किस पर रोष करूँ? अपने सामने अमृत का सागर देखकर अपनी इच्छा ही से आकर्षित होकर मैं आई हूँ। मुझे क्या पता था कि उसका रस-पान करने पर वह विष का काम करेगा, और उसके कारण मुझे इतना

क्लेश उठाना पड़ेगा ? बातचीत या इशारे से यदि मुझे ज़रा भी इस तरह का आभास मिलता, तो मैं ऐसा क्यों करती ? जाति, कुल, शील सब उसमें डूब गया। अब मैं व्याकुल होकर मरती हूँ। यह दशा देखकर तो यही जान पड़ता है कि किसी भी बहुत बड़ी आशा में पड़ना अत्यन्त ही दुःखदायी हो जाता है। आरम्भ की प्रीति का समान विभाग नहीं हो सकता। जिसके लिये जो व्यक्ति मरता है, वह स्वयं आकर प्रीति करे, चंडीदास कहते हैं कि सज्जनों की प्रीति ऐसी होती है।"

प्रभाती

आमि जाइ आमि जाई बले तिन बोल।
कत ना चुम्बन देइ कत बार कोल॥

करे कर धरि कए शपथि देय मोरे।
पुन दरशन लागि कत चाटु बोलें॥

पद आध जाय प्रिया चाय पालटिया।
बदन निरखे कत कातर हइया॥

पियार पीरिति हियाय जागिया रहिल।
चण्डिदासे कहे से कुल शील गेल॥

"मैं जाता हूँ, मैं जाता हूँ, यह बात तीन बार कहकर कितने बार चुम्बन करता है और कितने बार आलिङ्गन करता है। हाथ पर हाथ रखकर मुझे कितनी बातें कहकर शपथ देता है और फिर से दर्शन पाने के लिये खुशामद करता है। दो-एक पग चलकर फिर लौट पड़ता है और प्यारी की ओर ताकने लगता है। बहुत कातर होकर मुख देखने लगता है। प्रियतमा की प्रीति हृदय में जाग उठती है। चंडीदास कहते हैं कि अब वह कुल-शील गया।"

सखो के प्रति

(१)

सइ कि आर बलिब तोरे ।
अनेक पुण्येर फले से हेन बन्धुया मिलायल मोरे ॥

ए घोर यामिनी मेघेर घटा केमने आइले बाटे ।
आङ्गिनार कोणे बन्धुया तितिछे देखिया पराण फाटे ॥

गुरुजनार घर नहे स्वतन्तर बिलम्बे बाहिर हनु ।
आहा मरि मरि सङ्केत करिया कत ना यातना दिनु ॥

बंधुर पीरिति आरति देखिया हेन मोर मने करे ।
कलङ्केर डाला माथाय करिया अनल भेजाब घरे ॥

बंधु आपनार दुख सुख करि माने आमार दुखेर दुखी ।
चंडिदासे कहे बंधुर पीरिति जगत हइल सुखी ॥

"हे सखी ! तुम्हें और क्या कहूँ ? अनेक पुण्यों के प्रभाव से उसका-जैसा बंधु मुझे मिला है। इस तरह की अँधेरी रात में, जब कि चारोंओर मेघ की घटा छाई हुई है, वह रास्ते में किस तरह आया ! आँगन के कोने में अपने उस बंधु को भीगता हुआ देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। मेरा घर गुरुजनों से भरा है, स्वतंत्रता नहीं है। इसलिये बिलम्ब से बाहर निकली। अहा, इशारा करते-करते मैं मर गई, उसे भी कितनी पीड़ा दी। बंधु की प्रीति और उसकी व्यथा देख-कर मेरे मन में तो यही आता है कि कलङ्क का टोकरा मस्तक पर रख लूँ और ऐसे घर में आग लगा दूँ। मेरा यह बन्धु ऐसा है कि अपने दुःख को वह सुख ही समझता है और मेरे ही दुख से दुखी होता है। चण्डीदास कहते हैं कि बन्धु की प्रीति से संसार सुखी हुआ है।"

(२)

सइ के बले पीरिति भाल ।
हासिते हासिते पीरिति करिया कान्दिते जनम गेल ॥
कुलवती हइया कुले दाँड़ाञा ये धनी पीरिति करे ।
तुषेर अनल येन साजाइया एमति पुड़िया मरे ॥
हाम अभागिनी दुखेर दुखिनि प्रेम-छलछल-आखि ।
चंडिदास कहे थे गति हइल पराणे संशय देखि ॥

"हे सखी ! कौन कहता है कि प्रीति अच्छी चीज़ है ? हँसते-हँसते प्रीति की थी; किन्तु अब रोते-रोते जीवन व्यतीत हो रहा है । जो युवती कुलवती होकर अपने कुल में रहती हुई भी (दूसरे से) प्रीति करती है, उसे इस तरह कलभ-कलभकर मरना पड़ता है कि मानो वह भूसी की आग में बैठी जल रही हो । मैं अभागिनी हूँ, (प्रीति के दुख से) दुखो हूँ, किन्तु फिर भी मेरे नेत्र प्रेम से प्लावित हो जाते हैं । चंडीदास कहते हैं—इस प्रीति के कारण मेरी जो अवस्था हो गई है, उसे देखते हुए जीवन में भी मुझे संशय मालूम पड़ता है ।"

वंशी-शिक्षा

(१)

बंधु तुमि से आमार प्राण ।
देह मन आदि तोँहारे सँपेछि
कुल शील जाति मान ॥
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिये
योगीर आराध्य धन ।
गोप गोयालिनी हाम अति दीना
ना जानि भजन पूजन ॥
कलङ्की बलिया डाके सब लोके
ताहाते नाहिक दुख ।

तोमार लागिया कलङ्केर हार
गलाय परिते सुख ॥
पीरिति रसेते ढालि प्राण मन
दियाछि तोमारे पाय ।
तुमि मोर गति तुमि मोर पति
मन नाहि आन भाय ॥
सती बा असती तोमाते बिदित
भाल मन्द नाहि जानि ।
कहे चंडिदास पाप पुण्य मम
तोमार चरण खानि ॥

"हे बन्धु, तुम्हीं मेरे प्राण हो। अपना तन-मन मैं सौंप चुकी हूँ। हे कृष्ण, मेरे कुल-शील, जाति और मान-प्रतिष्ठा आदि के तुम्हीं एकमात्र स्वामी हो। योगियों की आराधना के लक्ष्य हो। मैं गाय चराने वाली ग्वालिन हूँ, बहुत ही दीन हूँ, भजन-पूजा आदि नहीं जानती। सारा संसार मुझे कलङ्किनी कहता है; किन्तु इसका मुझे दुख नहीं है। तुम्हारी सेवा में लगी रहकर कलङ्क का हार पहनने में भी मुझे सुख है। प्रेम-रस में डुबाकर मैंने अपने हृदय और जीवन को तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया है। तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरे पति हो, तुम्हें छोड़ मेरे मन में और किसी को स्थान नहीं है। मैं सती हूँ या असती, यह बात तुमसे छिपी नहीं है। मैं स्वयं अच्छा-बुरा कुछ नहीं जानती हूँ। चण्डीदास कहते हैं कि मैं अपने पाप-पुण्य तुम्हारे ही चरणों में अर्पण कर देती हूँ।"

(२)

बंधु कि आर वलिब आमि ।
जीवने मरणे जनमे जनमे प्राणनाथ हैओ तुमि ॥

तोमार चरणे आमार पराणे बान्धिल प्रेमेर फाँसि ।
सब समर्पिया एक मन हैया निश्चय हइलाम दासी ॥

भाबिया देखिलाम ए तिन भुवने आर के आमार आछे ।
राधा बलि केह सुधाइते नाइ दाँड़ाब काहार काछे ॥

एकुले ओकुले दुकुले गोकुले आपना बलिबो काय ।
शीतल बलिया शरण लइलाम ओ दुटी कमल पाय ॥

ना ठेल ना ठेल अबले अखले ये होय उचित तोर ।
भाबिया देखिलाम प्राणनाथ बिने गति ये नाहिक मोर ॥

आखिर निमिखे यदि नाहि देखि तब से पराणे मरि ।
चंडिदास कय परश-रतन गलाय गाँथिया परि ॥

"हे बन्धु, मैं और क्या कहूँ ? मेरे जीवन-मरण के तुम्हीं साथी हो और जन्म-जन्मान्तर में तुम्हीं मेरे पति होना । तुम्हारे चरणों में मेरा हृदय प्रेम की रस्सी से बँध गया है । अपना सर्वस्व अर्पण करके एकान्त मन से मैं तुम्हारी दासी बन गई हूँ । मैंने सोच-समझकर यह देख लिया है, तीनों लोक में मेरा और कौन है ? 'राधा' कहकर प्रेम से पुकारनेवाला भी तो कोई नहीं है ! मैं खड़ी ही किसके पास हूँगी । गोकुल में इस कुल या उस कुल (मातृ-कुल या पति-कुल) में से मैं किसे अपना कहूँ ? तुम्हारे इन दोनों चरणकमलों को शीतल समझकर मैंने उनकी शरण ली है ।"

रामी के प्रति

एक निवेदन करि पुन पुन
शुन रजकिनि रामि !
युगल चरण शीतल देखिया
शरण लइलाम आमि ॥

रजकिनि रूप किशोरी स्वरूप
काम गन्ध नाहि ताय ।
ना देखिले मन करे उचाटन
देखिले पराण जुड़ाय ॥
तुमि रजकिनी आमार रमणी
तुमि हओ मातृ-पितृ ।
त्रिसन्ध्या याजन तोमारि भजन
तुमि वेदमाता गायत्री ॥
तुमि वाग्वादिनी हरेर घरणी
तुमि से गलार हारा ।
तुमि स्वर्ग मर्त्य पाताल पर्ब्बत
तुमि से नयनेर तारा ॥
तोमा बिना मोर सकल आँधार
देखिले जुड़ाय आखि ।
ये दिने ना देखि ओ चाँद वदन
मरमे मरिया थाकि ॥
ओ रूप-माधुरी पासरिते नारि
कि दिये करिब वश ।
तुमि से तन्त्र तुमि से मन्त्र
तुमि उपासना रस ॥
भेबे देख मने ए तिन भुवने
के आछे आमार आर ।
बाशुली आदेशे कहे चंडिदासे
धोपानी-चरण सार ॥

"हे रामी धोबिन, सुनो, मैं एक बात के लिये तुमसे बार-बार निवेदन कर रहा हूँ। तुम्हारे दोनों शीतल चरणों को देखकर मैंने उनकी शरण

ली है। हे धोबिन, तुम्हारा यह रूप किशोरी का रूप है, इसमें काम की गन्ध नहीं है। तुम्हारे उस रूप को देखे बिना चित्त में उच्चाटन होता रहता है और उसे देखने पर हृदय शीतल हो जाता है। चाहे माता हो या पिता हो, तुम्हीं मेरी सर्वस्व हो। प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों संध्याओं के समय मैं तुम्हारी ही उपासना करता हूँ और रात-दिन तुम्हीं को भजता रहता हूँ। तुम वेदों की माता गायत्री हो, तुम सरस्वती हो, तुम गौरी हो। स्वर्ग, मर्त्य, आकाश, पाताल और पर्वत आदि तुम्हीं सब कुछ हो। तुम मेरे गले का हार और नेत्रों की तारा हो। तुम्हारे बिना मेरे लिए सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार विद्यमान रहता है और तुम्हें देखते ही नेत्रों में शीतलता आ जाती है। जिस दिन मैं तुम्हारा चन्द्रमा-सा मुख नहीं देखता हूँ, उस दिन मेरी अन्तरात्मा बहुत ही दुःखित रहती है। तुम्हारी इस रूप-माधुरी का मैं निरन्तर पान नहीं कर पाता हूँ, इसे किस तरह अपने वश में करूँ! तुम्हीं तन्त्र हो, तुम्हीं मन्त्र हो और तुम्हीं उपासना को पात्र हो। ज़रा सोचकर देखो तो, इन तीनों लोकों में मेरा और कौन है? चण्डीदास कहते हैं कि इस धोबिन के चरण ही मेरे सर्वस्व हैं।"

विद्यापति

विद्यापति का जन्म चौदहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था और वे लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक जीवित रहे। उनके पूर्वज विद्या-बुद्धि-सम्पन्न थे। मिथिलाधिपति के दरबार में उन लोगों का बड़ा आदर-सम्मान था। विद्यापति के पितामह जयदत्तजी संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। धार्मिक और सच्चरित्र होने के कारण उनको 'योगेश्वर' की उपाधि मिली थी। वीरेश्वर-पद्धति के रचयिता श्रीवीरेश्वरदत्त उनके प्रपितामह थे।

जन्मदाता मोर गणपति ठाकुर मैथिलो देशे करु वास।
पञ्चगौड़ाधिप शिवसिंह भूप कृपा करि लेउ निज पास॥
बिस्फि ग्राम दान करल मुझे रहतहि राजसन्निधान।
लक्ष्मी-चरण ध्याने कविता निकलये विद्यापति इह भाण॥

उपर्युक्त पद्य से मालूम होता है कि विद्यापति के पिता का नाम गणपति ठाकुर था। वे मैथिल ब्राह्मण थे। पञ्चगौड़ाधिप शिवसिंहजी ने कृपाकर उन्हें अपने आश्रय में रक्खा और बिस्फि ग्राम उनको दान में दिया। प्रायः उनकी कविता महाराणी लक्ष्मीदेवी के चरण-स्मरण से होती थी।

चण्डीदास के गान से आकर्षित होकर विद्यापति उनसे मिलने गये थे। दोनों कवियों का सम्मिलन बड़ा ही आनन्ददायक था। प्रेम-कविता से दोनों ने एक दूसरे का मनोरञ्जन किया। कहा जाता है—विद्यापति चंडीदास की काव्य-प्रतिभा से बड़े प्रभावित हुए थे। वैष्णव-समाज के महर्षि, शान्तिपुर के अद्वैताचार्य्य जब १४९८ में मिथिला भ्रमण करने आये थे, तब विद्यापति को उनसे भी मुलाकात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपने एक कविता में ग़यासुद्दीन का और दूसरी में नासिरशाह का उल्लेख किया है। अधिकांश गीत आपने अपने मित्र और आश्रयदाता राजा शिवसिंह को समर्पित किया है।

विद्यापति के रचे हुए कई ग्रन्थ हैं। ८०० मैथिलो गीतों के अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत के ग्रन्थ भी आपके रचे हैं:—

(१) पुरुष-परीक्षा। (२) शैव-सर्वस्वसार। (३) दान-वाक्यावली। (४) विवाद-सार। (५) गयापत्तन (६) गंगा-विक्यावली (७) दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी। (८) कीर्ति-लता।

मैथिल दरबार में आप की प्रसिद्धि संस्कृत कविता ही के कारण से थी। लेकिन आप के हृदय के आन्तरिक भाव गीतों ही में व्यक्त हैं। उपमा-अलंकार के चमत्कार में, भाषा और शब्द-योजना की उत्तमता में और कल्पना-शक्ति में आपसे शायद ही कोई कवि बढ़ सका हो। आप के

गीत मधुर, सरस और चित्ताकर्षक हैं। उनका प्रधान विषय राधा-कृष्ण का प्रेम है—पूर्व-राग, सम्भोग-मिलन, अभिसार, मान, विरह।

यहाँ विद्यापति के कुछ गीत उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

नन्दक-नन्दन कदंबेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बलाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव॥ १॥
सामरी तोरा लागि अनुखने बिकल मुरारि॥
जमुनाक तिर उपबन उदबेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि।
गोरस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि॥ २॥
तोंहे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति बन्दह नन्दकिसोरा॥ ३॥

"नन्द के नन्दन कदम्ब के वृक्ष के नीचे धीरे-धीरे वंशी बजाते हैं। नियमित समय पर संकेत-स्थान में बैठकर बार-बार वे बुलावा भेजते हैं। हे सुन्दरी, तुम्हारे लिये कृष्ण प्रतिक्षण व्याकुल रहते हैं। यमुना के तट पर उपवन में उद्विग्न-भाव से वे बार-बार मुँह फेरकर ताकते हैं। मानो वे किसी से पूछते हैं कि दही बेचकर मेरी प्राणप्रिया ग्वालिन लौट रही है, या नहीं। हे बुद्धिमती, ज़रा मेरी भी बातें मान लो, कृष्ण तुम्हारे प्रति अनुरक्त हैं। विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ-युवती, तुम नन्दकिशोर की वन्दना करो।"

(२)

देख देख राधा रूप अपार।
अपरुब के विहि आनि मिलाओल खिति तल लावनि सार॥ १॥
अङ्गहि अङ्ग अनङ्ग मुरछायत हेरए पड़इ अथीर।
मनमथ कोटि मथन करु ये जेन से हेरि महिमइ गीर॥ २॥
कत कत लखिमी चरनतल नेउछय रङ्गिनि हेरि बिभोरि।
करु अभिलाष मनहि पदपङ्कज अहोनिशि कोरि अगोरि॥ ३॥

"राधा की अनुपम सुन्दरता को देखो। इस प्रकार की अनुपम सुन्दरता का सार विधाता ने कहाँ से लाकर इस पृथिवी-तल पर एकत्र कर दिया है! उनकी सुन्दरता देखकर (कृष्ण) मोहित हो जाते हैं और उनका अङ्ग-अङ्ग काम से पीड़ित होकर उन्हें मूर्छित कर देता है। राधा की ओर दृष्टि जाते ही मानो करोड़ों कामदेव (कृष्ण के) चित्त को व्याकुल करने लगते हैं और वे उनकी ओर दृष्टि डालते ही विह्वल-भाव से धरणी पर गिर पड़ते हैं। उस सुन्दरी के चरणों पर कितनी लक्ष्मी न्यौछावर की जा सकती हैं। मन में यही अभिलाषा होती है कि मैं रात-दिन उनके चरण-कमलों का ध्यान करता रहूँ।"

(३)

शैशव यौवन दुहु मिलि गेल।
श्रवणक पथ दुहु लोचन लेल ॥ १ ॥
बचनक चातुरि लहु लहु हास।
धरनिये चाँद करल परगास ॥ २ ॥
मुकुर लइ अब करत शिङ्गार।
सखि पूछइ कैसे सुरत बिहार ॥ ३ ॥
निरजने उरज हेरइ कतबेरि।
हसइत अपन पयोधर हेरि ॥ ४ ॥
पहिल बदरि सम पुन नवरङ्ग।
दिने दिने अनङ्ग अगोरल अङ्ग ॥ ५ ॥
माधव पेखल अपरुव बाला।
शैशव यौवन दुहु एक भेला ॥ ६ ॥
विद्यापति कह तुहु अगेयानि।
दुहु एक योग इहके कह सयानि ॥ ७ ॥

"शैशव और यौवन अब दोनों मिल गये और कानों का मार्ग नेत्रों ने ले लिया; अर्थात् अब अपने प्रेमी से नायिका नेत्रों के इशारे ही से

उत्तर-प्रत्युत्तर करती है। उसकी वचन-चातुरी अब मन्द-मन्द मुसकान से मालूम पड़ती है। उसका मुँह देखकर ऐसा जान पड़ता है कि मानो भू-मण्डल पर चन्द्रमा उतर आया है। दर्पण लेकर अब वह शृंगार करने लगी, साथ ही सखियों से रति-क्रीड़ा के आनन्द के सम्बन्ध में बातचीत भी करने लगी। एकान्त में अपने स्तनों को वह कितनी बार देखती है और उनको बढ़ते देखकर बहुत प्रसन्न होती है। पहले-पहल ये पयोधर उसे बेर के बराबर फिर नारंगी से जान पड़ते थे। कामदेव धीरे-धीरे सारे शरीर पर अधिकार करके पहरा देने लगा। कृष्ण ने जब इस अनुपम सुन्दरी को देखा तब उन्हें शैशव और यौवन दोनों का समागम-सा मालूम पड़ा। विद्यापति कहते हैं कि तुम अज्ञानी हो, इन दोनों का योग होने पर ही तो बालायें सयानी कहलाती हैं।"

(४)

शैशव यौवन दरशन भेल।
दुहु दल बले दन्द परि गेल ॥ १ ॥
कबहु बाँधय कच कबहु बिथारि।
कबहु झाँपय अङ्ग कबहु उघारि ॥ २ ॥
अति थिर नयन अथिर किछु भेल।
उरज उदय थल लालिम देल ॥ ३ ॥
चञ्चल चरन चित्त चञ्चल भान।
जागल मनसिज मुदित नयान ॥ ४ ॥
विद्यापति कह सुन बर कान।
धैरज धरह मिलायब आन ॥ ५ ॥

"शिशुता और यौवन दोनों का एक साथ दर्शन हुआ और दोनों में दल-बल-सहित युद्ध होने लगा। नायिका कभी तो बालों को समेटकर बाँध लेती है और कभी खोल देती है। शरीर को कभी ढक लेती है और कभी उस पर से वस्त्र हटा लेती है। जो नेत्र बहुत स्थिर थे, उनमें

कुछ चञ्चलता आ गई है। स्तनों के स्थान पर लालिमा छा गई। चरणों को चञ्चलता चित्त में पहुँचकर उसे भी विचलित करने लगो। काम जाग्रत् हो आया और चेहरे में प्रसन्नता आ गई। विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण, धैर्य धारण करो, उस सुन्दरी को लाकर तुमसे मिलाऊँगा।"

(५)

शैशव यौवन दरशन भेल।
दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल ॥ १ ॥
मदनक भाव पहिल परचार।
भिन जने देल भिन अधिकार ॥ २ ॥
कटिक गौरव पाओल नितम्ब।
एकक खीन अओके अवलम्ब ॥ ३ ॥
प्रकट हास अब गोपत भेल।
उरज प्रकट अब तन्हिक लेल ॥ ४ ॥
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचनक धैरज पदतले पाव ॥ ५ ॥
नवकविशेखर कि कहइत पार।
भिन भिन राज भिन बेवहार ॥ ६ ॥

"शैशव और यौवन दोनों का दर्शन मिला। दोनों ही के सहारे से कामदेव ने प्रवेश किया। पहले-पहल जब काम का भाव प्रकट हुआ तब भिन्न-भिन्न अंगों ने अपना-अपना अधिकार दूसरों को दिया। कटि की गुरुता नितम्बों को मिली। एक में जब क्षीणता आई तब दूसरे में मोटापन आगया। हँसी जो प्रकट रहा करती थी, अब कुछ-कुछ अप्रकट होने लगी और उसके विकास को पयोधरों ने ले लिया। चरणों की चञ्चलता नेत्रों को मिल गई। अर्थात् शैशव-सुलभ चञ्चलता के कारण बालिका

जहाँ दौड़कर चला करती थी, वहाँ अब गति तो मन्द हो गई; किन्तु दृष्टि में चञ्चलता आ गई। साथ ही नेत्रों की धीरता चरणों ने ले ली। विद्यापति कहते हैं कि जब राज्य पृथक होगया तब व्यवहार भी बदल गये।"

(६)

किछु किछु उतपति अङ्कुर भेल।
चरन चपल गति लोचन लेल ॥ १ ॥
अब सब खन रहु आँचरे हात।
लाजे सखि गने न पुछय बात ॥ २ ॥
कि कहब माधव बयसक सन्धि।
हेरइते मनसिज मन रहु बन्धि ॥ ३ ॥
तइअओ काम हृदय अनुपम।
रोपल घट उचल करि ठाम ॥ ४ ॥
शुनइते रस कथा थापय चीत।
यइसे कुरङ्गिनि शुनए सङ्गीत ॥ ५ ॥
शैशव यौवन उपजल बाद।
केओ न मान ए जय अवसाद ॥ ६ ॥
विद्यापति कौतुक बलिहारि।
शैशव से तनु छोड़ नहि पारि ॥ ७ ॥

"स्तनों के अङ्कुर ज़रा-ज़रा दिखाई पड़ने लगे। चरणों की चञ्चलता नेत्रों ने ले ली। अब हर समय अञ्चल पर ही नायिका का हाथ बना रहता है। लज्जा के मारे वह सखियों को बात तक नहीं पूछती। हे माधव, शैशव और यौवन का सन्धि-काल कितना आकर्षक होता है, यह किस तरह वर्णन करूँ? नायिका की उस अवस्था को देखकर कामदेव मानो उसमें बँध गया है और वक्षःस्थल का सुन्दर और ऊँचा स्थान देखकर उसने घट (कुच) स्थापन कर दिया है। रस की बातों को सुनने में इस तरह ध्यान लगाती है, जैसे कि मृगी सङ्गीत बड़े

ध्यान से सुना करती है। शैशव और यौवन दोनों में विवाद उत्पन्न होगया, कोई भी हार या जीत नहीं मानता। विद्यापति कहते हैं कि इस कौतुक की बलिहारी है। शैशव से यह शरीर छोड़ा नहीं जाता।"

(७)

दिने दिने उन्नत पयोधर पीन।
बाढ़ल नितम्ब माझ भेल खीन ॥ १ ॥
आवे मदन बढ़ाओल दीठ।
शैशव सकल चमकि देल पीठ ॥ २ ॥
शैशव छोड़ल शशिमुखि देह।
खत देइ तेजल त्रिबलि तिन रेह ॥ ३ ॥
अब भेल यौवन बङ्किम दीठ।
उपजल लाज हास भेल मीठ ॥ ४ ॥
दिने दिने अनङ्ग अगोरल अङ्ग।
दलपति पराभवे सैनक भङ्ग ॥ ५ ॥
तकर आगे तोहर परसङ्ग।
बूझि करब जे नह काज भङ्ग ॥ ६ ॥
सुकवि विद्यापति कह पुन फोय।
राधा रतन जैसे तुय होय ॥ ७ ॥

"दिन ही दिन पयोधर उन्नत और पीन यानी मोटे होते गये। नितम्ब बढ़ आया और कमर पतली हो गई। शिशुता की सारी आदतें धीरे-धीरे विदा होने लगीं। चन्द्रमुखी के शरीर को शिशुता ने त्याग दिया। अब यौवन-काल आगया, चितवन में टेढ़ापन आने लगा, लज्जा की उत्पत्ति हुई और हँसी में मधुरता आगई। दिन-दिन शरीर पर कामदेव का अधिकार होता जा रहा है, शिशुता की सारी बातें अब दूर हो गईं। ऐसी नायिका के सामने मैं तुम्हारी चर्चा करती हूँ। देखना, सावधानी से काम लेना, ताकि वह काम बिगड़ने न पावे। विद्यापति बात को

स्पष्ट करके कहते हैं कि तुम ऐसा व्यवहार करना, जिससे राधा-रूपो रत्न तुम्हारे हाथ में आजाय।"

(८)

पहिल बदरि कुच पुन नवरङ्ग।
दिने दिने बाढ़य पिड़य अनङ्ग ॥ १ ॥
से पुन भइ गेल बीजकपोर।
अब कुच बाढ़ल सिरिफल जोर ॥ २ ॥
माधव पेखल रमनि सन्धान।
घाटहि भेटल करत सिनान ॥ ३ ॥
तनु शुक वसन हिरदय लागि।
ये पुरुख देखब ताकर भागि ॥ ४ ॥
उरहि लोलित चाँचर केश।
चामरे झाँपल कनक महेश ॥ ५ ॥
भनइ विद्यापति शुनह मुरारि।
सुपुरुख विलसय से बरनारि ॥ ६ ॥

"पहले पहल स्तन बेर के समान थे। फिर नारंगी हो गये। ज्यों-ज्यों वे बढ़ते गये, त्यों-त्यों काम की पीड़ा भी बढ़ती गई। कुछ दिनों में वे ही स्तन बिजौरे नीबू के समान हो गये और अन्त में बढ़कर बेल का आकार धारण कर लिये। कृष्ण उस सुन्दरी की ताक में थे। अन्त में स्नान करते समय घाट पर उससे उनकी मुलाकात हो गई। पतला वस्त्र भीगकर छाती से छपट गया था। उस समय उसे जो पुरुष देख पाता, मानो उसके बड़े भाग्य थे। खुले हुए बाल स्तनों पर इस तरह मालूम पड़ते थे कि मानो चामर से सोने के महादेवजी ढके हैं। विद्यापति कहते हैं कि हे मुरारी, वही सत्पुरुष है, जो ऐसी सुन्दरी के साथ रमण कर सके।"

(६)

खने खन नयन कोन अनुसरई ।
खने खन बसन धूलि तनु भरई ॥ १ ॥
खने खन दशन छटा छट हास ।
खने खन अधर आगे गहु बास ॥ २ ॥
चउकि चलय खने खन चलु मन्द ।
मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध ॥ ३ ॥
हृदय मुकुलि हेरि हेरि थोर ।
खने आचर दई खने होय भोर ॥ ४ ॥
बाला शैशव तारुन भेठ ।
लखइ न पारिअ जेठ कनेठ ॥ ५ ॥
विद्यापति कह शुन बर कान ।
तरुनिम शैशव चिन्हइ न जान ॥ ६ ॥

"बाला क्षण-क्षण पर अपने नेत्रों से कटाक्ष मारने लगती है और फिर क्षण ही भर बाद एक भोली बालिका के समान धूल में लोट-लोट कर खेलने लगती है। क्षणभर बाद दाँतों की छटा विकसित करती हुई खिलखिलाकर हँसती है और फिर क्षण ही में घूँघट खींच लेती है। कभी चौंककर अर्थात् भोली लड़कियों के समान उछलती-कूदती चलती है और फिर क्षणभर के बाद युवती-सुलभ लज्जा से धीरे-धीरे चलने लगती है। उसकी हृदय-रूपी कली अभी ज़रा ही ज़रा विकसित हुई है और पहले पहल काम का संचार हुआ है। अतएव कभी क्षण भर नवयुवती की-सी रसिकता-व्यञ्जक गम्भीरता का आचरण करती है तो क्षण ही में बिलकुल भोली-भाली बालिका बन जाती है। उसकी अवस्था बाल्य, शैशव और तारुण्य का सम्मिश्रण है। इन तीनों में से किसकी अधिकता है और किसकी न्यूनता है, यह नहीं कहा जा

सकता। विद्यापति कवि कहते हैं, हे चतुर कृष्ण, तुम्हें तरुणावस्था और शैशव को पहचानने का ज्ञान नहीं है।"

(१०)

खन भरि नहि रह गुरुजन माझे।
वेकत अङ्ग न झपावय लाजे॥ १॥

बालाजान सङ्गे यव रहइ।
तरुनी पाइ परिहास तँहि करइ॥ २॥

माधव तुय लागि भेटल रमनी।
के कहु बाला के कहु तरुनी॥ ३॥

केलिक रभस यव शुने आने।
अनतए हेरि ततहि दए काने॥ ४॥

इथे यदि केओ करए परचारी।
काँदन माखी हसि दए गारी॥ ५॥

सुकवि विद्यापति भाने।
बाला चरित रसिकजन जाने॥ ६॥

"गुरुजनों के बीच में अब वह एक क्षण भी नहीं रहती। जब वह बालाओं के साथ में रहती है तब लज्जा से अपने खुले हुए अङ्गों को नहीं ढकती। परन्तु तरुणियों को जब पा जाती है तब उनसे ख़ूब मजे में हँसी-ठट्ठा भी करती है। उस कामिनी को बाला भी कहा जा सकता है और तरुणी भी। जब काम-कला की बातें होती हैं तब हर जगह से कान हटाकर उसे ख़ूब ध्यान से सुनती है; परन्तु यहाँ यदि कोई ठट्ठा करता है तब पहले तो वह रुआसी हो जाती है, फिर हँसने भी लगती है और गालियाँ देती है। सुकवि विद्यापति कहते हैं कि बालाओं का चरित्र रसिक लोग ही जानते हैं।"

(११)

भौंह भाङ्गि लोचन भेल आड़ ।
तैअओ न शैशव सोमा छाड़ ॥ १ ॥
आवे हसि हृदय चीर लए थोए ।
कुच कञ्चन अंकुरए गोए ॥ २ ॥
हेरि हल माधव कए अवधान ।
जौवन परसे सुमुखि आवे आन ॥ ३ ॥
सखि पूछइते आवे दरसए लाज ।
सींचि सुधाए अध बोलिअ बाज ॥ ४ ॥
एत दिन शैशव लाओल साठ ।
आवे सबे मदने पढ़ाउलि पाठ ॥ ५ ॥

"भौंहों को टेढ़ी करके नायिका कटाक्ष मारने लगी तो भी शिशुता की सोमा पार नहीं कर सकी। हँसती हुई आती है और वक्षःस्थल पर साड़ी रखकर उभड़ते हुए कञ्चन-कुचों को ढक लेती है। हे माधव, सावधानी से तुम इसकी भावभंगी देखो। यौवन का स्पर्श हो जाने के कारण इस सुमुखो की गति-विधि और ही तरह की हो गई है। अब वह लजाती हुई चलती है और मन्द-मन्द स्वर में जब बातचीत करती है तब मानो उसके मुँह से अमृत बरसता है। इतने दिनों तक वह शिशुता को साथ में लेकर आती थी; किन्तु अब हाल ही में कामदेव उसे पाठ पढ़ाने लगा है।"

(१२)

अपरुब पेखल सोइ ।
कनक लताञे उयल किए हिमकर ऐसन लागल मोइ ॥ १ ॥
कुटिल केश चञ्चल अति लोचन नासा आँतर भीन ।
राग अधर दशन मनि भेटल दुहु कुच दुहु कठीन ॥ २ ॥

त्रिवलिक माझे तसु निबि बान्धल नाभि सरोवर गोइ ।
भारि जघन सम्बल रहु दुबरि परदुखे दुखि नइ कोइ ॥ ३ ॥

"उस सुन्दरी की शोभा मुझे अपूर्व ही जान पड़ी। कनक-लता के ऊपर मानो चन्द्रमा उदित है। बाल टेढ़े हैं, नेत्र बहुत चञ्चल हैं और नाक भी बहुत आकर्षक है। अधर लाल हैं, दाँत मोती के समान हैं और दोनों कुच बहुत कड़े हैं। त्रिबलियों के बीच में नाभि-रूपी सरोवर को छिपाकर नीवी बाँध ली है। जंघायें भारी हैं और उनका आधार दुर्बल है। संसार की दशा ही ऐसी है कि दूसरों के दुख से कोई भी दुखी नहीं होता।"

(१२)

सजनि अपरुप पेखल रामा ।
कनक लता अवलम्बन ऊयल हरिणहीन हिमधामा ॥ १ ॥
नयन नलिन दउ अञ्जने रञ्जइ भौंह विभङ्ग विलासा ।
चकित चकोर जोर विधि बान्धल केवल काजर पासा ॥ २ ॥
गिरिवर गरुअ पयोधर परशित गीमे गजमोतिय हारा ।
काम कम्बु भरि कनय शम्भु परि ढारत सुरधुनि धारा ॥ ३ ॥
पयसि पयागे जाग शत जागइ सोइ पाए बहु भागी ।
विद्यापति कह गोकुलनायक गोपी जन अनुरागी ॥४॥

"हे सजनो, उस बाला को मैंने अपूर्व रूप में देखा। कनक-लता का अवलम्बन पाकर मानो निष्कलंक चन्द्रमा उदित है। अर्थात् कनक-लता-सा उस सुन्दरी का शरीर है और सुन्दर मुख मानो निष्कलंक चन्द्रमा है। दोनों कमल-जैसे नेत्रों में अंजन लगा है, इससे वे जान पड़ते हैं कि मानो उन पर बैठकर भौंरे मधु का पान कर रहे हैं। या यों कहिये कि चञ्चल चकोर को केवल कज्जल-रूपी पाश से ज़ोर देकर बाँध रक्खा है। पीन-पयोधर गिरिवर के समान हैं और गले में पड़ी हुई मोतियों की माला उन पयोधरों को स्पर्श करती है। उन्हें देखकर ऐसा

जान पड़ता है कि मानो कामदेव शंख में गंगाजल भर उसकी धारा सुवर्ण के बने हुये शंभुओं पर छोड़ता है। विद्यापति कहते हैं कि हे गोपियों से अनुराग करनेवाले गोकुल-नायक, ऐसी सुन्दरी उसी पुण्यवान् को उपलब्ध होती है, जो प्रयाग में सौ यज्ञ करता है।"

(१४)

कामिनि करए सनाने।
हेरितहि हृदअ हनए पचबाने ॥ १ ॥
चिकुर गरए जलधारा।
जनि मुखससि डरे रोअए अन्धारा ॥ २ ॥
कुच जुग चारु चकेवा।
निअकुल मिलत आनि कौने देवा ॥ ३ ॥
तें संकाने भुज पासे।
बाँधि धयल उड़ि जाएत अकासे ॥ ४ ॥
तितल बसन तनु लागू।
मुनिहुक मानस मनमथ जागू ॥ ५ ॥
भनइ विद्यापति गावे।
गुनमति धनि पुनमत जनि पावे ॥ ६ ॥

"कामिनी स्नान कर रही है। उसकी ओर दृष्टि जाते ही काम की पीड़ा उत्पन्न होती है। बालों के ऊपर से गिरकर जल की धारा इस तरह मालूम पड़ती है कि मानो मुख रूपी चन्द्रमा के भय से अँधेरा आँसू बहा रहा है। दोनो कुच मानो चक्रवाक हैं। इस शंका से कि ये कहीं आकाश में उड़ न जाँय, नायिका अपनी भुजाओं के पाश में उन्हें बाँध लेती है। भीगे हुए वस्त्र जब शरीर से लिपट जाते हैं तब नायिका को देखकर मुनि के मन में भी काम जाग्रत हो आता है। विद्यापति कहते हैं कि गुणवती बाला पाकर कोई पुण्यवान् ही व्यक्ति धन्य होता है।"

(१५)

आजु मझु शुभ दिन भेला।
कामिनि पेखल सनानक बेला ॥ १ ॥
चिकुर गलय जलधारा।
मेह बरिस जनि मोतिय हारा ॥ २ ॥
वदन पोछल परचूरे।
माजि धएल जनि कनक मुकूरे ॥ ३ ॥
तेंइ उदसल कुच जोरा।
पलटि वैसाओल कनक कटोरा ॥ ४ ॥
नीवि बन्ध करल उदेस।
विद्यापति कह मनोरथ शेस ॥ ५ ॥

"आज मेरा शुभ दिन है; क्योंकि स्नान के समय मैंने कामिनी को देख लिया। उसके बालों के ऊपर से जल की धारा गिर रही थी। मानो मेह मोतियों के हार बरसा रहे थे। शरीर को जब वह पोंछने लगी तब ऐसा जान पड़ा कि मानो सुवर्ण के दर्पण को साफ़ करके रख दिया हो। उसी समय कुच भी प्रकाशित हो उठे। वे इस तरह मालूम पड़ रहे थे कि मानो सोने के कटोरे उलटकर रक्खे हुये हैं। अन्त में नीवी का बन्धन भी खोल दिया। विद्यापति कहते हैं कि मनोरथ पूर्ण हो गया।"

(१६)

जाइत पेखल नहाइल गोरी।
कति सजे रूप धनि आनल चोरी ॥ १ ॥
केश निंगारइत बह जलधारा।
चामरे गलय जनि मोतिय हारा ॥ २ ॥
अलकहि तीतल तहि अति शोभा।
अलिकुल कमले बेढ़ल मधु लोभा ॥ ३ ॥

नीरे निरञ्जन लोचन राता ।
सिन्दूरे मण्डित जनि पङ्कज पाता ॥ ४ ॥

सजल चीर रह पयोधर सीमा ।
कनक बेल जनि पड़ि गेल हीमा ॥ ५ ॥

ओ नुकि करतहि चाहे किय देहा ।
अबहि छोड़ब मोहि तेजब नेहा ॥ ६ ॥

ऐसन रस नहि पाओब आरा ।
इथे लागि रोइ गलय जलधारा ॥ ७ ॥

विद्यापति कह शुनह मुरारी ।
वसन लगल भाव रूप निहारी ॥ ८ ॥

"कृष्ण ने जाकर स्नान करती हुई सुन्दरी को देखा और कितनी चतुरता से उसकी बहुत-सी रूप-राशि चुरा ली। भीगे हुये बालों के ऊपर से जल की धारा बहकर इस तरह मालूम पड़ती थी कि मानो चामर के ऊपर से मोतियों का हार गिर रहा है। भीगी हुई अलकें इस तरह सुशोभित होती थीं, मानो मधु के लोभ से भौंरे कमल के ऊपर मँडरा रहे हैं। जल में अंजन से शून्य लाल-लाल आँखें इस तरह जान पड़तीं थीं मानो कमल के पत्ते में सिन्दूर लगा है। भीगी हुई साड़ी पयोधरों पर पड़कर इस तरह जान पड़ती थी मानो सुवर्ण की लता पर तुषार पड़ा हो। वह भीगा हुआ वस्त्र सुन्दरी के शरीर को अच्छी तरह ढक रखने का प्रयत्न करता है। उसे इस बात का भय है कि यह मुझे अभी त्याग देगी और दूसरा सूखा हुआ वस्त्र पहन लेगी। तब मैं फिर इस रूपमाधुरी का पान न कर सकूँगा। विद्यापति कहते हैं कि हे मुरारी, सुनो; उस बाला की सुन्दरता पर भीगा वस्त्र भी मुग्ध होगया है और उसके द्वारा परित्यक्त होने की सम्भावना से इतना दुखी है कि रो-रोकर जल की धारा गिरा रहा है।"

(१७)

नहाइ उठल तीरे राहि कमलमुखि समुखे हेरल बरकान ।
गुरुजन सङ्गे लाजे धनि नतमुखि कैसने हेरब बयान ॥१॥
सखि हे अपरुब चातुरि गोरि ।
सब जन तेज अगुसरि सञ्चरि आड़ बदन तहिं फेरि ॥२॥
तँहि पुन मोति हार टूटि फेकल कहइत हार टूटि गेल ।
सब जन एक एक चुनि सञ्चरु शाम दरश धनि लेल ॥३॥
नयन चकोर कान्ह मुख शशिवर कयल अमिय रस पान ।
दुहु दुहु दरशन रसहु पसारल कवि विद्यापति भान ॥४॥

"चन्द्रमुखी स्नान करके यमुना के तट पर आई और उसने सामने ही कृष्ण को देख लिया । साथ में गुरुजन भी थे, इसने वह उनकी ओर देख न सकी और विवश होकर उसने लज्जा से अपना मस्तक नीचा कर लिया । परन्तु हे सखी, उस समय उसने असीम चतुरता से काम लिया । सब लोगों को छोड़कर वह बहुत आगे बढ़ गई । फिर ज़रा-सा आड़ में होकर उसने मोतियों की माला तोड़कर फेंक दिया । और सब लोगों से कह दिया कि मेरा हार टूट गया । लोग झुक-झुककर उसके दाने बीनने लगे । इसी बीच में सुन्दरी ने कृष्ण को जी भरकर देख लिया । उसके नेत्र-रूपी चकोरों ने कृष्ण-रूपी चन्द्रमा के अमृत-रस का पान किया । विद्यापति कहते हैं कि उन दोनों ने ही परस्पर एक दूसरे की रूप-माधुरी का पान करके तृप्ति लाभ की ।"

(१८)

किय मझु दिठि पड़लि शशि बयना ।
निमिख निवारि रहल दुहु नयना ॥१॥
दारुण बंक बिलोकन थोरा ।
काल होय किए उपजल मोरा ॥२॥

मानस रहल पयोधर लागि ।
अन्तरे रहल मनोभव जागि ॥३॥

श्रवण रहल अछ शुनइते राव ।
चलइते चाहि चरण नहि जाव ॥४॥

आशा पाश न तेजइ संग ।
अनायत कयल हमर सब अंग ॥५॥

"वह चन्द्रमुखी नाहक मेरे दृष्टि-पथ में आगई । निमेषभर में ही उसने मेरे ऊपर से दृष्टि हटा ली । ज़रा देर का ही तिर्छी दृष्टि से उसका ताकना मेरे लिए बहुत भयङ्कर हो गया । उसकी वह चितवन मानो मेरा काल होकर उत्पन्न हुई । उसके युग्म पयोधर हृदय में गड़ गये हैं, अन्तःकरण में काम जाग्रत हो गया है । उस सुन्दरी के शब्द सुनने के लिए श्रवण उत्सुक रहते हैं और पैर यहाँ से चलना ही नहीं चाहते । आशारूपी बंधन से छुटकारा नहीं मिलता । उसने मेरे सभी अंगों को अवश कर दिया है ।"

(१६)

देखल कमलमुखि बरनि न जाइ ।
मन मोर हरलक मदन जगाइ ॥१॥
तनु सुकुमार पयोधर गोरा ।
कनक लता जनि सिरिफल जोरा ॥२॥
कुञ्जरगमनि अमिय रस बोले ।
श्रवणे सोहङ्गम कुण्डल दोले ॥३॥
भौंह कमान धयल तसु आगू ।
तीख कटाख मदन शर लागू ॥४॥
सब तह सुनिअ ऐसन बेवहारा ।
मारिअ नागर उबर गमारा ॥५॥

विद्यापति कवि कौतुक गाव ।
बड़ पुने रसवति रसिक रिझाव ॥६॥

"उस कमलमुखी का वर्णन मैं किस तरह करूँ? उसने काम को जाग्रत करके मेरा मन हर लिया है। उसके सुकुमार शरीर पर गोले-गोले पयोधर इस तरह मालूम पड़ते हैं कि मानो कनक-लता पर बेल के दो फल लगे हों। हाथी के समान वह चलती है और उसकी बातों से अमृत-रस चूता है। कानों में सुन्दर-सुन्दर कुंडल हिलते हैं, भौंहें कमान के समान हैं, उनके सामने पड़ते ही चित्त घायल हो जाता है। सुन्दरी के तीक्ष्ण कटाक्ष हृदय में काम के बाण-से लगते हैं। इसी तरह के उसके सारे व्यवहार हैं। उसके कारण चतुर तो मारे जाते हैं और गँवार बच जाते हैं। विद्यापति कहते हैं कि रसिक-जन बड़े पुण्य से सुन्दरियों की रिझा पाते हैं।"

(२०)

अलखिते हमेरि हे बिहुसलि थोर।
जनि रयनि भेल चाँद उजोर ॥१॥
कुटिल कटाख लाट पड़ि गेल ।
मधुकर डम्बरे अम्बर देल ॥२॥
काहिक सुन्दरि के ताहि जान ।
आकुल कए गेलि हमर परान ॥३॥
लीला कमले भमर धरु वारि ।
चमकि चललि गोरि चकित निहारि ॥४॥
तें भेल वेकत पयोधर शोभ ।
कनय कमल हेरि काही न लोभ ॥५॥
आध नुकायलि आध उदास ।
कुचकुम्भे कहि गेल अपनक आस ॥६॥

से सबे अमिल निधि दए गेलि सन्देस ।
किछु नहि रखलह्नि रस परिसेस ॥७॥

भनइ विद्यापति दुहु मन जागु ।
विसम कुसुमशर काहु जनु लागु ॥८॥

"सुन्दरी ने मुझे एकान्त में देखा और ज़रा-सा मुस्कराकर हँस दिया । उसकी हँसी ने अँधेरी रात में चन्द्रमा का-सा प्रकाश कर दिया । उसके कुटिल कटाक्ष उसके मुख-मण्डल पर इस तरह जान पड़ते थे कि मानो संध्या-काल में आकाश की लालिमा के नीचे भौंरे उड़ रहे हों । पता नहीं कि वह सुन्दरी मेरे हृदय को इस तरह व्यग्र करके क्यों चली गई । हाथ में क्रीड़ा के लिए कमल लिये हुए थी, उस समय चकित भाव से कटाक्ष मारती हुई जब चली तब उसके चञ्चल नेत्र हाथ के कमल के ऊपर भौंरे के समान मँडराने लगे । उस समय उसके स्तनों पर से वस्त्र हट गये थे । वे सोने के कमल-से मालूम पड़ रहे थे । भला, उन्हें देखकर कौन न लुभा जाता ? उसके स्तन अर्द्ध विकसित अवस्था में थे । उन्हें देखकर मनमें आशा का सञ्चार हुआ । इन सब बातों को देखते हुए अमूल्य निधि के समान यह सन्देश मिला है कि मानो रस अब कुछ-कुछ परिपक्व अवस्था में आ रहा है । विद्यापति कहते हैं कि मानो प्रेमी-प्रेमिका दोनों ही कुसुम-शर से घायल हैं ।"

(२१)

अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि करे कुच झाँपु सुछन्दा ।
कनक सम्भु सम अनुपम सुन्दर दुइ पङ्कज दश चंदा ॥१॥
कत रूप कहब बुझाई ।
मन मोर चंचल लोचन बिकले ओओ अनइते जाई ॥२॥
आड़ बदन कए मधुर हास दए सुन्दरि रहु सिर लाई ।
अओंधा कमल कान्ति नहि पूरए हेरइत जुग बहि जाई ॥३॥

भनइ विद्यापति सुन वरजौवति पुहवी नव पचवाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन लखिमा देवि रमाने ॥४॥

"एकाएक कामिनी की साड़ी खुल गई । तब उसने अपने हाथों से स्तनों को ढक लिया । उस समय उसके दोनों स्तन ऐसे मालूम पड़ने लगे कि ये मानो सोने के बने हुए महादेव जी हैं । उनके ऊपर दोनों हथेलियाँ कमल के समान हैं, और दसों नाखून मानो दस चन्द्रमा हैं । उसकी उस समय की सुन्दरता का मैं किस तरह वर्णन करूँ ? उसके देखते ही मेरा मन चञ्चल और नेत्र विकल हो गये । वे मेरे अधीन नहीं रह गये । सुन्दरी ने मुँह छिपाकर मुस्करा दिया और फिर सिर नीचा कर लिया । उलटकर रक्खे हुए कमलों की कान्ति सदा एक ही तरह रहती है, चाहे उसी तरह रखकर उन्हें कितने दिन तक देखते रहो । तात्पर्य यह कि कमल का ऊपर का भाग तो सूर्यास्त हो जाने पर संकुचित होकर प्राणहीन हो जाता है, किन्तु नीचे का भाग ज्यों का त्यों बना रहता है, इस प्रकार उस युवती की कान्ति भी हर समय आकर्षक बनी रहती है । विद्यापति कहते हैं कि हे वरानने, लखिमादेवी के प्रति आशक्त शिवसिंह भी पृथिवी पर एक नये कामदेव के समान हैं ।"

(२२)

सहजहि आनन सुन्दर रे भँउह सुरेखलि आँखि ।
पङ्कज मधु पिवि मधुकर उड़ए पसारए पाँखि ॥१॥
ततहि धाओल दुहु लोचन रे जतहि गेलि वर नारि ।
आसा लुबुधल न तेजए रे कृपनक पाछु भिखारि ॥२॥
इङ्गित नयन तरङ्गित देखल बाम भउँह भेल भङ्ग ।
तरुने न जानल तेसरे गुपुत मनोभव रङ्ग ॥३॥
चन्दने चरचु पयोधर गृम गजमुकुता हार ।
भसमे भरल जनि शङ्कर सिर सुरसरि जलधार ॥४॥

बाम चरण अनुसारल दाहिन तेजइते लाज ।
तखन मदन सरे पूरल गति गञए गजराज ॥५॥
आज जाइते पथ देखलि रे रूपे रहल मन लागि ।
तेहि खन सञो गुन गौरव रे धैरज गेल भागि ॥६॥
रूप लागि मन धाओल रे कुच कञ्चन दिरि साँधि ।
तें अपराधे मनोभव रे ततहि धएल जनि बाँधि ॥७॥
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझ रसमन्ता ।
रूपनरायन नागर रे लखिमा देविक सुकन्ता ॥८॥

"एक तो उस सुन्दरी का मुँह यों ही सुन्दर है, तिसपर भी काली-काली आँखें और तिर्छी भौंहों ने उसकी सुन्दरता और भी बढ़ा दी है। वे ऐसे जान पड़ते हैं कि मानो मुख-रूपी कमल का मधु पान करके भौंरे पंख फैलाये उड़ रहे हैं। वह कमल-नयनी जिस ओर गई। उसी ओर मेरे भी नेत्र इस प्रकार दौड़ते गये जैसे कि आशा के लोभ में पड़कर कृपण का पीछा भिखारी नहीं छोड़ता। जिस समय मैंने उसका संकेत-मय कटाक्ष देखा और उसकी बाईं भौंह कुटिल होगई, उस समय मुझे यह कहाँ पता था कि इसकी इस भावभंगी में काम की मादकता छिपी है। पयोधरों पर चन्दन लगा था और गले से गजमुक्ता का हार उनपर झूल रहा था। उस समय ऐसा मालूम पड़ा कि मानो भस्म से भूषित महादेवजी पर गंगाजी की धारा गिर रही है। उस सुन्दरी ने पहले बायाँ चरण बढ़ाया, फिर लज्जित भाव से दाहिना चरण भी बढ़ा दिया। उस समय उसकी गति काम के बाणों से पूर्ण होकर गजराज की गति को भी मात कर रही थी। आज मैंने रास्ते में उसे जाते देखा था; तब से उसकी सुन्दरता मेरे चित्त में गड़ गई है। उस समय मेरे गुणों का जितना भी गौरव था, वह सब मिट्टी में मिल गया और धैर्य जाता रहा। वक्षःस्थल-रूपी पर्वत पर कुच और कंचन का समागम देखकर रूपमाधुरी का पान करने के लिए मेरा चित्त दौड़ पड़ा। उस अपराध

से कामदेव ने मानो उसे उसी स्थान पर बाँध लिया। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के सुकन्त रूपनारायण चतुर हैं, वे रस को समझते हैं।"

(२३)

पथ गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पै पीड़लि रहल कुमुदनिधि साधा ॥ १ ॥
ननुया नयनि नलिन जनु अनुपम बङ्क निहारइ थोरा।
जनि श्रृङ्खल में खगवर बाँधल दिठिहु नुकाएल मोरा ॥ २॥
आध बदनशशि बिहसि देखाउलि आध पीहलि निअ बाहू।
किछु एक भाग बलाहके झाँपल किछु एक गरासल राहू ॥ ३ ॥
कर जुग पिहित पयोधर अञ्चल चंचल देखि चित भेला।
हेम कमलिन जनि अरुणित चञ्चल मिहिर तर निन्द गेला ॥४ ॥
भनइ बिद्यापति सुनह मथुरपति इह रस के पय बाधा।
हास दरस रसे सबहु बुझाएल नाल कमल दुइ आधा ॥ ५ ॥

"कृष्ण कहते हैं कि रास्ते में मैंने राधा को जाती हुई देखा। उस समय मेरे हृदय में जो भाव जाग्रत हुआ उसने मेरा चित्त व्याकुल कर दिया और राधा के चन्द्रमुख को फिर से देखने की प्रबल इच्छा जाग्रत हुई। उसके सुन्दर-सुन्दर कोमल नेत्र कमल के समान जान पड़ते हैं और जरा ही देर की टेढ़ी चितवन में इतना आकर्षण था कि उसने मेरी दृष्टि को भी ठीक उसी तरह से बाँध लिया है, जैसे किसी ने जंज़ीर से किसी पक्षी को बाँध लिया हो। नीली साड़ी के घूँघट की आड़ से मुस्कराकर उसने अपना आधा मुँह मुझे दिखलाया और फिर उसे बाँह से ढक लिया। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि आधा चन्द्रमा मानो बादल से ढँका है और आधे को राहु ने ग्रसित कर रक्खा है। अपने दोनों चञ्चल कुचों पर उसने जब बाँह रख ली तो ऐसा मालूम पड़ा कि मानो सोने का कमल सूर्य के नीचे

दब गया है। विद्यापति कहते हैं कि हे मथुरापति, क्या तुम्हें यह नहीं मालूम है कि इस रस में कौनसी बाधा है ? राधा ने अपनी मुसकान और दर्शन से यह बात प्रकट कर दी है कि कमल और मृणाल पृथक्-पृथक् हैं, इसलिए रस अधूरा है अर्थात् राधा के कुच जब कमल है तब तुम्हारा हाथ मृणाल है। ये दोनों जब परस्पर मिल जायँ तब तो रस में पूर्णता आवेगी ?"

(२४)

जहाँ जहाँ पद युग धरइ।
तँहि तँहि सरोरुह भरइ॥
जहाँ जहाँ झलकत अङ्ग।
तँहि तँहि बिजुरि-तरङ्ग॥
की हेरल अपरुब गोरि।
पैठल हिय माहा मोरि।
जहाँ जहाँ नयन विकाश।
तँहि तँहि कमल परकाश॥
जहाँ लहु हास सञ्चार।
तँहि तँहि असिय बिकार॥
जहाँ जहाँ कुटिल कटाख।
तँहि तँहि मदन शर लाख॥
हेरइते से धनि थोर।
अब तिन भुवन अगोर॥
पुन किये दरशन पाव।
अब मोहे इह दुख जाव॥
विद्यापति कह जानि।
तुय गुणे देयब आनि॥

"यह सुन्दरी जहाँ-जहाँ दोनों चरण रखती है, वहाँ मानो कमल में

फूल झर पड़ते हैं। जहाँ-जहाँ उसके अङ्ग झलकते हैं, वहाँ मानो बिजली चमक उठती है। मैं ने उस अनुपम सुन्दरी को देखा क्या, वह तो मेरे हृदय ही में प्रविष्ट हो गई। जहाँ-जहाँ वह आँख उठाकर देखती है, वहाँ-वहाँ मानो कमल खिल जाते हैं और जिस तरफ़ ज़रा-सा मुस्करा देती है, उस तरफ़ अमृत की वर्षा हो जाती है। जिस तरफ़ वह कुटिल कटाक्ष फेरती है उस तरफ़ काम के लाखों बाण छूटने लगते हैं। देखने में तो वह बाला छोटी है; किन्तु वह त्रिभुवन में व्याप्त है; अर्थात् जिस ओर भी मेरी दृष्टि जाती है उसी ओर उसकी मूर्ति मुझे दिखाई पड़ती है। मुझे इसी बात का दुःख है कि फिर उसे देख पाऊँगा या नहीं। विद्यापति कहते हैं कि तुममें भी ऐसे गुण हैं, जिनके कारण उसे तुम्हारे पास ला दूँगा।"

प्रेम वैचित्र्य

(१)

कि कहब ए सखि आजुक बात।
माणिक पड़ल कुबणिक हाथ॥
काच कांचन न जानय मूल।
गुंजा रतन करय समतूल॥
ये किछु कभु नहि कला-रस जान।
नीर खीर दुँहु करय समान॥
तँहि सों कँहा पीरित रसाल।
बानर-कण्ठे कि मोतिय माल॥
भनइ विद्यापति इह रस जान।
बानर-मुँहे कि शोभय पान॥

"हे सखी, आज की बात मैं क्या कहूँ? हीरा गँवार बनिये के हाथ में पड़ गया है। काच और कञ्चन का भेद उसे नहीं मालूम है। गुंजा और रत्न उसकी दृष्टि में एक ही वस्तु है। जिसने कला का रस नहीं

जाना और जो पानी और दूध को एक समझता है, उससे प्रीति करने से क्या लाभ है ? बन्दर के गले में भी भला कोई मोतियों की माला पहनाता है ? विद्यापति कहते हैं कि प्रीति तो उसी से करनी चाहिये, जिसे रस का ज्ञान हो। बन्दर के मुँह में भी कभी पान शोभा देता है ?"

(२)

आजुक लाज तोहे कि कहब माइ।
जल देइ धोइ यदि तबहु न जाइ॥
नाहइ उठलु हम कालिन्दी तीर।
अंगहि लागल पातल चीर॥
ताहे बेकत भेल सकल शरीर।
तहि उपनीत समुखे यदुबीर॥
बिपुल नितम्ब अति बेकत भेल।
पालटि तापर कुन्तल देल॥

"ऐ माँ, आज जैसी लज्जाजनक घटना हुई है, उसका मैं किस तरह वर्णन करूँ ? जल से धोकर भी तो मैं उस लज्जा को अपने शरीर से नहीं छुड़ा सकती। स्नान करके मैं कालिन्दी के तट पर चढ़ी। पतला वस्त्र भीगने के कारण शरीर से लिपट गया था और अंग-अंग झलक रहे थे। उसी समय यदुवीर सामने आ पहुँचे। मेरा विपुल नितम्ब तो झलक ही रहा था, उसके ऊपर उन्होंने पलटकर बालों को भी गिरा दिया।"

(३)

आओल ऋतुपति राजा बसन्त।
धाओल अलिकुल माधवी-पन्थ॥
दिनकर-किरण भेल पयगंड।
केशर-कुसुम धरल हेमदंड॥

नृप-आसन नव पाटल-पात।
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ॥
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय।
समुखहि कोकिल पञ्चम गाय॥
शिखिकुल नाचत अलिकुल यन्त्र।
आन द्विजकुल पढ़ु आशिस-मन्त्र॥
चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग।
मलय पवन सह भेल अनुराग॥
कुन्द बिल्व तरु धरल निशान।
पटल तूण अशोक-दल बाण॥
किंशुक लवंगलता एक संग।
हेरि शिशिर ऋतु आगे दिल भंग॥
सैन्य साजल मधुमक्षिका-कुल।
शिशिरक सबहु करल निरमूल॥
उधारल सरसिज पाओल प्राण।
निज नवदले करु आसन प्रदान॥
नव वृन्दावन-राज्ये विहार।
विद्यापति कह समयक सार॥

"ऋतुओं का स्वामी बसन्तराज आगया। भौंरे माधवी लता की ओर दौड़ पड़े। सूर्य की किरणें प्रचंड हुईं और केशर के कुसुमों ने सुवर्ण का दंड धारण किया। नई-नई ताम्रवर्ण की पत्तियाँ सिंहासन बनीं, पुष्पों ने मस्तक पर सुवर्ण का छत्र धारण किया, आम की कोंपलें बसन्तराज के मस्तक की मुकुट हुईं। उनके सम्मुख कोयल पञ्चम-स्वर से गान करने लगी। मोर नाचने और भौंरे गूँज-गूँजकर बाजा बजाने लगे। पक्षीगण कलरव करके आशीर्वाद सम्बन्धी मन्त्र पढ़ने लगे। चन्द्रमा की किरणों के लगने से पुष्पों के पराग उड़ते हैं, उनकी सुगन्धि वायु में

लीन होकर बहने लगी। कुन्द और बेले फूल-फूलकर पताका के रूप में परिणत हुये। पटल तूणीर और अशोक के दल बाण हुए हैं। सामने शिशिर ऋतु को देखकर टेसू और लवंग-लता ने पहले ही धावा बोल दिया। मधुमक्षिकायें सैनिक बनीं। इन सब ने मिलकर शिशिर को निर्मूल कर दिया। अब कमल में प्राण आगये, वह विकसित हुआ और अपने पत्र पर ऋतुपति को आसन दिया। सारे वृन्दावन में नये-नये आनन्द होने लगे।"

(४)

सजनि के कह आओब मधाइ।
विरह-पयोधि-पार किये पाओब मझु मने नहि पतियाइ॥
एखन तखन करि दिवस गमाओल दिवस दिवस करि मास।
मास मास करि बरष गमाओल छोड़लुँ जीवनक आश॥
बरष बरष करि समय गमाओल खोयलुँ तनुक आशे।
हिमकर-किरण नलिनी यदि जारब कि करब माधवी मासे॥
अङ्कुर तपन-तापे यदि जारब कि करब वारिद मेहे।
इह नव यौबन बिरहे गमाओब कि करब से पिया लेहे॥
भणइ विद्यापति शुन बर-युवती अब नहि होत निराश।
से ब्रज-नन्दन हृदय आनन्दन झटिते मिलब तुय पाश॥

"हे सजनी, यह बात किसने कही कि कृष्ण आनेवाले हैं। मेरा मन तो अब यह विश्वास नहीं करता कि मैं विरह-रूपी सागर को पार करके अब फिर उन्हें प्राप्त कर सकूँगी। आज-कल करते-करते महीना बीता और महीना-महीना करते-करते साल बीत गया। जीवन की आशा जाती रही। वर्ष बीतते-बीतते इतना समय निकल गया। अब रही-सही आशा भी जाती रही। चन्द्रमा की किरणों ही से कमल जब जल जायगा तब बसन्त ऋतु आकर ही क्या करेगा? सूर्य्य की गर्मी से जब अङ्कुर ही जल-जायँगे, तब उनमें वर्षा का पानी पड़ने पर भी पत्तियाँ कहाँ से

निकलेंगी ? विरह की व्यथा सहते-सहते जब यह चढ़ती हुई जवानी ढल जायगी तब फिर प्राणपति के आने ही से क्या लाभ होगा ? विद्यापति कहते हैं कि हे चन्द्रमुखी, अब निराश मत होओ। हृदय को आनन्द देनेवाले वृजनन्दन शीघ्र ही तुम्हारे पास आकर मिलेंगे।"

(९)

अनुखन माधव माधव सुमरइत सुन्दरी भेलि मधाइ।
ओ निज भाव सोभावहि बिसरल अपन गुण लुबधाइ॥
माधव अपरूप तोहारि सुलेह।
अपन बिरहे अपन तनु जरजर जीवइते भेलि सन्देह॥
भोरहि सहचरी कातर दिठि हेरि छल-छल लोचन पानी।
अनुखन राधा राधा रटतहि आधा आधा वाणी॥
राधा सजे यब पुने तहि माधव माधव सजे यव राधा।
दारुण प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त बिरहक बाधा॥
दुहुँ दिश दाव-दहने यैछे दगधई आकुल कीट-पराण।
ऐछन बल्लभ हेरि सुधामुखी कवि विद्यापति भाण॥

"निरन्तर कृष्ण का स्मरण करते-करते यह सुन्दरी पागल सी हो गई है। उनके गुणों पर मुग्ध होकर वह अपने तन-बदन तक की सुधि भूल गई है। कृष्ण की भी अद्भुत लीला है। उन्हीं के विरह में सुन्दरी (राधा) ने अपना शरीर जला डाला। जीवन में भी सन्देह होने लगा। प्रातःकाल जिस समय वह सहचरी की ओर कातर-दृष्टि से देखता है तब उसके नेत्रों में आँसू भरे रहते हैं। इधर कृष्ण भी आधी-आधी वाणी से निरन्तर राधा-राधा रटते रहते हैं। इस विरह के बाद जब कभी राधा और माधव का संयोग होता तब अपूर्व प्रेम बढ़ जाता और फिर कभी विरह होने की आशङ्का न रहती। दोनों दिशाओं में दावाग्नि लगी रहने से जैसे कीट-रूपी प्राण व्याकुल रहता है। विद्यापति कहते हैं कि अपने बल्लभ को न पाकर उसी तरह चन्द्रमुखी भी दुखी है।"

(६)

हिमकर-किरणे नलिनी यदि जारब कि करब माधवी मासे।
अङ्कुर-तपन तापे यदि जारब कि करब बारिद-मेहे।
इह नवयौवन बिरहे गोजायब कि करब से पिया लेहे॥
हरि हरि कि इह दैव दुराशा॥
सिन्धु-निकटे यदि कण्ठ शुकायब को दूर करब पियासा।
चन्दन-तरु यदि सौरभ छोड़ब शशधर बरखर आगि॥
चिन्तामणि निज गुण छोड़ब कि मोर करम अभागी।
शाङन माह घन बिन्दु न बरखर सुरतरु बाँझ कि छान्दे।
गिरिधर सेबि ठाम नाहि पायब विद्यापति रहु धन्दे॥

"चन्द्रमा की किरणें हेमन्त ऋतु ही में जब कमल को जला देंगी तब फिर वसन्त ऋतु की आवश्यकता ही क्या रह जायगी? सूर्य की प्रचण्ड किरणों से जब अङ्कुर जल जायँगे तब फिर वर्षा के जल से क्या लाभ होगा? यह नवीन यौवन यदि विरह का दुःख सहकर ही गँवाना पड़ा तो फिर पतिदेव को प्राप्त कर लेने ही में क्या लाभ है? हा ईश्वर, यह दुराशा भी कितनी बुरी बला है। समुद्र के तट पर रहकर जब गला सूख गया, तब भला और कहाँ अपनी पिपासा निवृत्त कर सकूँगी। चन्दन के वृक्ष ने सुगन्धि त्याग दिया, चन्द्रमा अग्नि की बर्षा करने लगा। मैं अभागिन अपने कर्म को क्या कहूँ? सावन के महीने में भी बूँदे न पड़ीं और कल्पतरु में भी बन्ध्यता आ गई। गिरिधर की शरण में रह कर भी आश्रय को जब चिन्ता करनी पड़ी, विद्यापति कहते हैं, तब फिर अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं मिल सकती।"

(७)

हातक दरपण माथक फूल।
नयनक अञ्जन मुखक ताम्बूल॥

हृदयक मृगमद गीमक हार ।
देहक सरबस गेहक सार ॥
पाखीक पाख मीनक पानी ।
जीवक जीवन हम तुहु जानि ॥
तुहु कैसे माधव कह तुहु मोय ।
विद्यापति कह दुहुँ दोहाँ होय ॥

"हे माधव, तुम्हें मैं हाथ का दर्पण, मस्तक का फूल, नेत्रों का अञ्जन और मुख का ताम्बूल समझती हूँ । तुम मेरे हृदय की कस्तूरी, गले के हार, शरीर के जीव और घर की निधि हो। पक्षी के लिये पंख और मछली के लिए जल अनिवार्य होता है, उसी तरह तुम मेरे लिए हो ; परन्तु तुम मुझे किस रूप में समझते हो ? विद्यापति कहते हैं कि वे दोनों ही परस्पर एक दूसरे की दृष्टि में वैसे ही हैं।"

(८)

सखि कि पुछसि अनुभव मोय ।
सोइ पीरिति अनुराग बाखानिते तिले-तिले नूतुन होय ॥
जनम अवधि हम रूप नेहारल नयन न तिरपित भेल ।
से हो मधुर बोल श्रवणहि शुनल श्रुतिपथे परश न गेल ॥
कत मधु-यामिनी रभसे गमाउल न बुझल कैसन केल ।
लाख-लाख युग हिय-हिय राखल तइओ हिया जुड़ल न गेल ॥
कत विदग्ध जन रस अनुमगन अनुभव काहु न पेख ।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत लाखे न मिलल एक ॥

"हे सखी, मुझसे अनुभव की बात क्या पूछती हो ? उसी प्रीति या अनुराग को उत्तम समझना चाहिए जो प्रतिक्षण नवीन होता जाय । जीवन भर मैं उनका (कृष्ण का) रूप देखती रही; किन्तु मेरे नेत्र तृप्त न हुए। अपने कानों से सदा ही उनका मधुर स्वर सुनती रही; किन्तु मेरे श्रुतिपथ को वे शब्द स्पर्श तक न कर सके। अर्थात् उनकी

बातें सुनने की आकांक्षा बनी ही रही। एकान्त स्थान में उनके साथ कितनी ही मधुर-रातें व्यतीत कीं। तो भी यह न समझ सकी कि केलि कौन-सी वस्तु है। लाख-लाख वर्ष तक हृदय में रखकर भी उन्हें अपने हृदय से तल्लीन नहीं कर सकी। कितने ही विदग्ध जनों ने उनके नाम-रस का अनुगमन किया; किन्तु कोई भी उनका अनुभव नहीं प्राप्त कर सका। विद्यापति कहते हैं कि उनका स्मरण करके लाखों व्यक्तियों ने अपने हृदय को शीतल किया; किन्तु उनमें कोई लीन न हो सका।"

गोविन्ददास

ये ज्ञानदास के समकालीन थे। इनकी जाति के सम्बन्ध में विद्वानों ने बड़ी आलोचना की है। श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त का कहना है कि ये मैथिल ब्राह्मण थे। कुछ बङ्गालियों का कहना है कि ये बङ्गाली थे। साहित्य-परिषद् के विद्वानों का कहना है कि सचमुच गोविन्ददास नाम के दो व्यक्ति थे। एक बङ्गाली, दूसरे मैथिल। दोनों ने भिन्न-भिन्न ढंग से पदों की रचना की, यही मत ठीक जँचता है।

श्री गोविन्ददास का जन्म चटगाँव ज़िले के देवग्राम नामक गाँव में हुआ था। ये अत्रिय गोत्र के कायस्थ थे। बचपन ही से धर्म में इनकी श्रद्धा थी। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। वेदान्त-शास्त्र का इन्होंने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया था।

इनका प्रधान ग्रन्थ 'विद्या-सुन्दर' है। यह ग्रन्थ १५९५ ई० में लिखा गया था। सम्भवतः 'विद्या-सुन्दर' के ये सबसे पुराने लेखक हैं। मालूम होता है 'विद्या-सुन्दर' में पहले कुछ फुटकर कविताएँ रची गई थीं और उनसे इनको कुछ उपकरण प्राप्त हुए थे। भविष्य-पुराण के ब्रह्मखण्ड में 'विद्या सुन्दर' की कथा का वर्णन धारावह संस्कृत पद्यों में

की गई है। आपके ग्रन्थ में वे सब अश्लीलताएँ नहीं पाई जाती हैं जो इस कथा के दूसरे-दूसरे ग्रन्थों में देखने में आती हैं।

आपने संस्कृत शब्दों का प्रयोग अत्यधिक परिमाण में किया है। इस कारण भाषा-शैली बहुत कठिन है, इसमें सरलता और स्पष्टता नहीं है। आपके विचार भी प्रायः गम्भीर और दार्शनिक हुआ करते थे।

गोविन्ददास के प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं:—

१—प्रेम-विलास

२—भक्ति-रत्नाकर

३—भक्तमाल

इस नाम के कई पदकर्त्ता हुए थे। चण्डीदास की प्रशंसा में एक वंदना बंगाली गोविन्दास की है। और विद्यापति की प्रशंसा में मैथिल गोविन्ददास की।

मैथिल कवि का अनुकरण बंगाली ने किया है। उसने चैतन्य की बन्दना लिखी है।

अभिसार

(१)

अम्बरे डम्बर भरु नव मेह।
बाहिरे तिमिर ना हेरि निज देह॥
अन्तरे उयल श्यामर इन्दु।
उछलल मनेहि मनोभव सिन्धु॥
अब यनि सजनि करह बिचार।
शुभ खने पहियार नील निचोल॥
कि फल बहिये कञ्चुक-भार।
दूरे कर मोतिय सौतिनी हार॥
तहु सखि देखह देहुरि लागि।
गुरुजन अबहुँ घुमये जागि॥

चलइते दिग-भरम जानिल होइ ।
गोविन्ददास संगे चले गोइ ॥

"आकाश में वर्षा का जल लाकर बादल उमड़े हुए हैं । बाहर के अँधेरे में अपना शरीर तक अपने आपको नहीं झलकता । अन्त:करण में श्याम रूपी चन्द्रमा उदित है । इस कारण मनमें मनोभव-रूपी सिन्धु भी उमड़ आया । हे सजनो, अब विचार मत करो । शुभक्षण में अब नीली साड़ी पहन लो । कञ्चुक भार बहन करने से क्या लाभ ? इस सौत-रूपी मोतियों के हार को भी उतारकर फेंक दो । हे सखी, वहाँ इस समय भी गुरुजन द्वार के पास ही लेटे हुए हैं, उनमें से कुछ सो गये हों और सम्भव है कि कुछ जागते भी हों । इसके अतिरिक्त चलने में दिशा का भी भ्रम होता है। गोविन्ददास छिपकर साथ-साथ चलते हैं।"

(२)

चलु गजगामिनी हरि अभिसार ।
गमन निरंकुश आरति बिचार ॥
पङ्क-पिछल पथ गुरुया नितम्ब ।
पडु कत बेरि नाहि अवलम्ब ॥
बिजुरी-ज्योति दरशायलि देह ।
उठइते चाहे जलधारक एह ॥
ऐछन मिलल नागर पाश ।
गोविन्ददास कहे पूरल आश ॥

"हे गजगामिनी, हरि के साथ एकान्त में मिलने के लिए चलो । मार्ग के क्लेशों का ज़रा भी विचार न करके निरङ्कुश भाव से चलो । कीचड़ के कारण रास्ते में पैर फिसलते हैं, नितम्ब में गुरुता है, कोई सहारा न होने कारण कई बार गिर पड़ी । बिजली को ज्योति से शरीर दिखाई पड़ा । उठकर देखा तो चारोंओर जल की धारा बहती हुई

दिखाई पड़ी। इतनी विपत्ति सहकर नागर (कृष्ण) के पास पहुँची। गोविन्ददास कहते हैं कि आशा पूरी हो गई।"

(३)

मिलन

माधव कि कहब दैव विपाक।
पथ-आगमन-कथा कत ना कहिब हे यदि हय मुख लाखे लाख॥
मन्दिर तेजि यब पदचारि आयनु निशि हेरि कम्पित अंग।
तिमिर दुरन्त पथ हेरइ ना पारिये पद युगे बेढ़ल भुजंग॥
एके कुलकामिनी ताहे कुहु-यामिनी घोर गहन अति दूर।
आर ताहे जलधर बरिखये झरझर हाम याओब कोन पुर॥
एके पद-पंकज पङ्के विभूषित कण्ट के जरजर भेल।
तुया दरशन-आशे कछु नाहि जाननु चिर दुख अब दूरे गेल॥
तोहारि मुरलि यब श्रवणे प्रवेशिल छोड़ल गृह-सुख-आश।
पन्थहुँ दुख तृण करि ना गणनु कहतहि गोविन्ददास॥

"हे माधव, दैव के विपाक को मैं क्या कहूँ? मार्ग में मैं किस तरह आई हूँ, इस कथा का वर्णन न करना ही अच्छा है! अपना घर छोड़कर जब मैं निकली और काँपता हुआ शरीर लेकर ऐसी अँधेरी रात में चल पड़ी, तब घोर अन्धकार में यह दुर्गम मार्ग मिलता ही न था। एक तो मैं कुलकामिनी ठहरी, तिसपर ऐसी अन्धकार-रूपी रात्रि में इतनी दूर का आना! ऊपर से झिमझिम पानी बरस रहा है। कमल-जैसे चरणों में कीचड़ लिपट गया, साथ ही यह काँटों से भी बिंध गया। तुम्हारे दर्शन की आशा से इन सब बातों की मैंने ज़रा भी परवा नहीं की, अब तुमसे मिलकर सारा दुख दूर हो गया। तुम्हारी बंशी की ध्वनि कान में पहुँचते ही (गोविन्ददास कहते हैं) गृह-सुख की आशा छोड़ दी और मार्ग के क्लेश को तृणवत् समझा।"

(४)

मान

दुरजन-वचन श्रवणे तुहु धारलि कोपेहि रोखलि मोय ।
तुया जिनु शयने स्वपने नाहि जानिये स्वरूपे कहल सब तोय ॥
मानिनि मोहे चाहि कर अवधान ।
दारुण शपथि कहिए तुया गोचरे याहे तुहुँ परतीत मान ॥
कुच युग-कलस महेश- सम जानिये तापर धरि हाम पाणि ।
नहे जानि धरम घटहुँ करि परिखइ उचित कहिये एइ वाणी ॥
मनमथ आनल अन्तर तहि उजलतहुँ जनु कांचन गोरी ।
आनले हेम साहसे उठायब साँचि जानब तब लोरि ॥
तोहारि लोमावली काल-भुजंगिनी हार तरंगिनी जानि ।
गोबिन्ददास भणि परश करह फणी नहे यनि डूबह पानी ॥

"हे मानिनी, दुर्जन की बातें सुनकर तुमने उन्हें सच समझ लिया और मुझसे रूठ गई हो। सोते-जागते किसी समय भी तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी को नहीं जानता, यह सब तुमसे कह चुका हूँ। अब तुम्हारे सामने बहुत कठिन शपथ करके कहता हूँ, जिससे तुम्हें विश्वास हो जाय। कलस के समान तुम्हारे कुचों को महादेवजी की प्रतिमा समझकर मैं उसपर हाथ रखता हूँ। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उससे यदि विपरीत हो तो मेरा पुण्य क्षीण हो जाय। हे सुन्दरी, मनमें मन्मथ अग्नि के समान जाग्रत है और तुम कञ्चन के समान हो। अग्नि के समक्ष कञ्चन को ले जाना बड़े साहस का काम है। अर्थात् सोने में यदि खरापन न हो तो उसे अग्नि के पास ले जाने का साहस नहीं होता, इसे सच मानना। तुम्हारी लोम-राशि को काल-भुजङ्ग और हार को नदी समझता हूँ।"

(२)

माथुर

झरझर जलधर-धार ।
झंजा-पवन विथार ॥
झलकत दामिनी माला ।
झामरि भै गेल बाला ॥
झुट कि कहव कानाइ ।
झुरत तुया विनु राइ ॥
झनझन वजर-निशाने ।
झापि रहत दुइ काणे ॥
झिंझिं झङ्कर राति ।
झङ्क सहने नाहि याति ॥
झुमरि दादुरि बोल ।
झुलत मदन-हिल्लोल ॥
झटकि चलत धनी-पाश ।
झगड़त गोविन्ददास ॥

"झरझर पानी की बूँदें पड़ती हैं । वायु के झकोरे चलते हैं, बिजली चमकती है, बाला उत्कण्ठित हो उठती है । हे कन्हाई, तुम्हें क्या कहूँ, तुम्हारे बिना कामिनी क्लेश पाती है । झन-झनाकर जब बिजली चमकती है तब वह दोनों कानों को ढक लेती है, रात में झिल्लियाँ झंकारती हैं, उनकी झंकार उससे नहीं सही जाती । मेढक उन्मत्त होकर बोलते हैं, काम के हिल्लोल से हृदय आन्दोलित हो उठता है । सुन्दरी झटककर चलती है, गोविन्ददास झगड़ते हैं ।"

(६)

बारहमासी

आघन मास रस-सायर नागर माथुर गेल ।
पुर-रंगिणी गण पूरल मनोरथ वृन्दावन भेल ॥
आओल पौष तुषार समीरण हिमकर-हिम अनिवार ।
नागरी कोरे भरि रहु नागर करब कोन परकार ॥
माघे निदाघ कङन पतियायब आतप-मन्द-विकाश ।
दिनमणि-ताप निशापति चोरल कानु बिनु सघन हुताश ॥
फागुने गुणि-नागर गुनमणि गुणिगण फागुया खेलत रङ्गे ।
विरह-पयोधि अवधि नाहि पाइ ए दृढ़तर मदन तरंग ॥
आओत चैत चित कत बारि ऋतुपति नब परबेश ।
दारुण मनमथ-फुल-शरे हानइ कानु रहल दूरदेश ॥
माधवी मास साध विहि बाधल पिक कुल पञ्चम गान ।
दारुण दक्षिण-पवन नाहि पाओत झुरि-झुरि ना रहे पराण ॥
जैठइ मिठ कहत सब रंगिणी चन्दन चान्दनी-राति ।
शीतल पवन मोहि नाहि लागत दारुण मनमथ साथी ॥
मास आषाढ़ गाढ़ विरहानल हेरि नव नीरद-पाँति ।
नीरद-मूरति नयने यब लागए निझरे झरये दिन राति ॥
शाङणे सघने घन गरजन उनमति दादुरी बोल ।
चमकित दामिनी जागये कामिनी जीवन-कण्ठ-बिलोल ॥
भादरे दरदर दारुण दुरदिन झाँपल दिनमणि चन्द ।
शीकर-निकरे थिर नह अन्तर दहइ मनोभव मन्द ॥
आश्विन मासे विकशित पदुमिनी सारस हंस निशान ।
निरमल अम्बर हेरि सुधाकर झुरि-झुरि ना रहे पराण ॥
कार्तिक मास निराश कयल बिधि लीलामय रसरास ।
निकरुण माधव कोन आयब कह तहि गोविन्ददास ॥

"अगहन का महीना रस का सागर है। नागर माथुर के लिए गया। वृन्दावन की सुन्दरियों का मनोरथ पूर्ण हुआ। पौष मास में वायु बहुत ही शीतल होता है। चन्द्रमा की किरणें भी अत्यधिक शीतलता बरसाती हैं। उस काल में नागरी नागर को गोद में लिये सुख से पड़ी रहती है। शीत का उससे कोई वश नहीं चलता। कौन विश्वास कर सकता है कि माघ का महीना भी निदाघ-काल है। उस समय धूप का ज़रा-ज़रा विकास होता है; परन्तु कृष्ण के बिना (विरहिणियों के लिए) सूर्य के ताप को चन्द्रमा ने चुरा लिया। फागुन में गुणी नागर जो रस आदि से अभिज्ञ हैं, आनन्द में मग्न होकर फाग खेलते हैं। यह मदन की दृढ़तर तरंग विरह-रूपी समुद्र को पार नहीं पाती। चैत का महीना आया। कितनी धूम से ऋतुपति का नव-प्रवेश हुआ। कृष्ण दूर देश में हैं। अतएव दारुण मन्मथ पुष्पशर से हृदय को बेधता है। बैसाख का महीना आया। कोकिल प्रसन्न होकर पंचम स्वर से गान करने लगा। दक्षिणी वायु अब फिर-फिराकर नहीं चलती, इससे हृदय को बड़ा क्लेश होता है। सब सुन्दरियाँ कहती हैं कि जेठ के महीने में चन्दन और चाँदनी रात बहुत ही आनन्ददायक होती है। दारुण मन्मथ मेरा साथी है, शीतल पवन नहीं लगता। असाढ़ का महीना है। बिरह-रूपी अग्नि प्रबल हो गई। नये-नये बादल आकाश में घिर आये। उस मेघमूर्ति की ओर जब दृष्टि जाती है, तब रात-दिन आसुओं की झड़ी लगी रह जाती है। सावन में बादल बड़े ज़ोरों से गरजते हैं, उन्मत्त होकर मेढक बोलते हैं, बिजली चमकती है और कामिनियों को चकित करके उत्कण्ठित कर देती है। भाद्रपद में मेघों से सूर्य और चन्द्रमा ढक गये। छोटी-छोटी बूँदें पड़ती हैं। मनोभव (विरहिणियों के) हृदय को मन्द-मन्द जलाता है। आश्विन मास में कमल विकसित हुआ। सारस और हंस प्रसन्न हुए। आकाश निर्मल हो गया। अब सुधाकर को देखकर हृदय स्थिर नहीं रहता। विधाता ने कार्तिक

माल में रस और रास को नष्ट करके निराश कर दिया। गोविन्ददास कहते हैं कि निष्ठुर माधव कब आवेंगे।[१३]

ज्ञानदास

ज्ञानदास का जन्म सोलहवीं शताब्दी (शाका १५००) में, वीरभूमि ज़िले के कन्द्रा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम आत्माराम दास था और आप वैद्य जाति के थे। आप गोविन्ददास और बलरामदास के समकाल-जीवी थे।

श्रीश्वेतरी के महोत्सव में जो १६०४ में मनाया गया था, वृन्दावनदास, बलरामदास और गोविन्ददास के साथ आप भी पधारे थे। यह महोत्सव संयासी नरोत्तमदास के चचेरे भाई श्री संञोवदत्त ने वैष्णव समाज के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता प्रकट करने के लिये किया था। आदि से अन्त तक यह महोत्सव सफल रहा। उस समय के कितने ही लेखकों ने उसका सविस्तर वर्णन किया है।

ज्ञानदास ने कई एक कविताएँ रची हैं। इन्होंने महाकवि चण्डीदास की कविता-शैली की नकल करने का प्रयत्न किया है और कुछ अंश तक सफल भी हुए हैं।

पद-कल्पतरु नाम की प्रसिद्ध पुस्तक में इनकी १८६ रचनाएँ हैं। आपके कुछ पद्य यहाँ दिए जाते हैं:—

(१)

आमार अङ्गेर वरण लागिया पीत वास परे श्याम।
प्राणेर अधिक करेर मुरली लइते आमार नाम॥
आमार अङ्गेर वरण-सौरभ यखन ये दिगे पाय।
वाहु पसारिया वाउल हइया तखने से दिगे धाय॥

लाख कामिनी भावे राति दिनि ये पद सेबिते चाय ।
ज्ञानदास कहे आहीर-नागरी पीरिते बान्धल ताय ॥

"मेरे शरीर का रङ्ग पीलापन लिये हुए है, इसलिए श्याम पीला वस्त्र (पीताम्बर) धारण करते हैं। मेरा नाम लेने के लिए हाथ की मुरली उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय है। मेरे शरीर का वर्ण-सौरभ उन्हें जिस ओर मिलता है, बाँह फैलाकर (आलिंगन के लिए) वे उसी ओर पागल की तरह दौड़ते हैं। जिसके चरणों को सेवा करने के लिए लाखों सुन्दरियाँ रात-दिन लालायित रहा करती हैं, ज्ञानदास कहते हैं कि उसी श्याम को चतुर गोपिका (राधा) ने अपनी प्रीति से बाँध लिया है।"

(२)

सुखेर लागिया ए घर बान्धिनु अनले पुड़िया गेल ।
अमिया सागरे सिनान करिते सकलि गरल भेल ॥
सखि हे कि मोर करमे लेखि ।
शीतल बलिया ओ चाँदे सेबिनु भानुर किरण देखि ॥
निचल छाड़िया उठिनु उठिते पड़िनु अगाध जले ।
लछमी चाहिते दारिद्रय बाढ़ल माणिक हारानु हेले ॥
पिथास लागिया जलद सेबिनु बजर पड़िया गेल ।
ज्ञानदास कहे कानुर पीरित मरण अधिक शेल ॥

"सुख के लिए मैंने यह घर छाया; किन्तु आग लगने से जल गया। अमृत के सागर में स्नान करने के लिए जब मैं प्रविष्ट हुई तब वह सारा का सारा विष हो गया। ऐ सखी, मेरे कर्म में क्या लिखा है? शीतल समझकर मैं चन्द्रमा की किरणों का सेवन करने चली; किन्तु अब देखती हूँ कि उनमें सूर्य की किरणों-की-सी प्रखरता आ गई है। कीचड़ छोड़कर मैं उठी; किन्तु उठते ही अगाध जल में गिर पड़ी।

लक्ष्मी की कामना करने पर दरिद्र बढ़ गया। मैंने अपना हीरा खो दिया। प्यास लगने पर मैंने मेघों की ओर ताका; किन्तु उनमें से जल के स्थान पर बिजली गिरी। ज्ञानदास कहते हैं कि कृष्ण की प्रीति मृत्यु से भी अधिक दुखदायी हुई। तात्पर्य यह है कि नवेली राधा ने जहाँ सुख की लालसा से कृष्ण से प्रीति की थी, वहाँ उसे विरह का क्लेश ही सहना पड़ा, और हृदय की रही-सही शान्ति भी जाती रही।"

(३)

खंडिता

गगने गरजे घन निशि आँधियारि।
कुंजहि शेष रचये बरनारी॥
मिलिब नागर-बर अभिलाषे।
अंगहि रचये बिभूषण बासे॥
ताम्बुल कर्पूर गन्ध अपार।
मृगमद चन्दन करु फुल-हार॥
मनहि मनोरथ कैल्य अनुमान।
चिन्तये काहे ना मिलल कान॥

"अँधेरी रात है, आकाश मेघ से आच्छादित है। बड़े ज़ोरों की गर्जना हो रही है। इधर नवेली नायिका कुंज में शय्या रच रही है। अपने चतुर और सुरसिक प्रेमी के मिलन की अभिलाषा से उसने अच्छे-अच्छे आभूषण और वस्त्र पहने; ताम्बूल खाया; कर्पूर, कस्तूरी, चन्दन तथा अन्यान्य सुगन्धित द्रव्यों को मिश्रित करके अंग-प्रत्यङ्ग में अंगराग लगाया; और गले में फूलों का हार पहना। इस प्रकार सुसज्जित होकर नायिका (राधा) अपनी अभिलाषा पूर्ण करने की चिन्ता करने लगी। वह इसी उधेड़-बुन में पड़ी थी, कि कृष्ण के इतनी देर तक न आने का क्या कारण है।"

(४)

ए घोर रजनी मेघ गरजिनी कमने आओब पियो ।
शेज बिछाइया रहिनु बसिया पथ-पाने निरखिया ॥
सइ कि करब कह मोर ।
एतहुँ विपद तरिया आइनु नव अनुराग-भरे ॥
ए हेन रजनी कैसने गोआब बधुर दरश बिने ।
विफल हइल मोर मनोरथ प्राण करे उचाटने ॥
दहये दामिनो घन भनूभनी पराण-माभारे हाने ॥
ज्ञानदास कहे शुनह सुन्दरि मिलाब बंधुर सने ॥

"हे प्रियतम, इस घोर रात में, जब कि मेघ गरज रहे हैं, मैं किस तरह आऊँ ? सेज बिछाकर मैं राह देखती उत्सुक भाव से बैठी रही। ऐ सखी, बताओ, अब मैं क्या करूँ ? इतनी विपत्ति सहकर नवीन अनुराग से हृदय को ओत-प्रोत किये हुए मैं आई। ऐसी सुन्दर रात प्रियतम के विना मैं किस तरह नष्ट कर दूँ ! मेरी तो अभिलाषा ही निरर्थक हुई। मेरा चित्त बहुत ही खिन्न हो रहा है। यह बादलों का गड़गड़ाना और बिजली का चमकना अन्तःकरण में आघात करता है और उसे जला देता है। ज्ञानदास कहते हैं, हे सुन्दरी, सुनो, तुम्हें तुम्हारे प्रियतम से मिला दूँगा।"

श्रीराधा का पूर्वराग

(१)

स्वपने देखिनु पराण-बंधुया बसिया सियर-पाशे ।
नासार बेसर परश करिया ईषत मधुर हासे ॥
रजनी शाङण घनघन देया गरजन रिमिझिमि शबदे वरिषे ।
पालङ्के शयन रङ्गे बिगलित चीर अङ्गे निन्दयाइ मनेर हरिषे ॥
शिखरे शिखंड रोल मत्त-मादुरि-बोल कोकिल कुहुरे कुतुहले ।
झिँ झिँ झिँ झिनिकि झाँजे डाहुकी से गरजे स्वपन देखिलु हेन काले ॥

सरमे पैठल लेइ हृदये लागल सेइ श्रवणे भरल सेइ बाणी ।
देखिया ताहार रीत ये करे दारुण चित्त धिक रहु कुलेर कामिनी ॥
रूपे गुणे रस-सिन्धु मुख-छटा जिनि इन्दु मालतीर माला गले दोले ।
बसि ओर पद-तले पाञ हात देइ छले आमा किन बिकाइलुँ बोले ॥
किबा से भुरुर भङ्ग भूषणे भूषित अङ्ग काम मोर नयनेर कोणे ।
हासि हासि कथा कय पराण काड़िया लय भुलाइते कत रंग जाने ॥
रसाबेशे हइ भोल मुखे ना निःसरे वोल अधरे अधर परशिल ।
अङ्ग अवश भेल लाज-भय-मान गेल ज्ञानदास भाबिते लागिल ॥

"स्वप्न में मैंने देखा कि मेरा प्राण-प्रिय सिरहाने पर बैठा है और नाक की बेसर का स्पर्श करके मधुर भाव से मन्द मन्द मुस्करा रहा है। सावन की रात थी। बादल गरज रहे थे। झिमझिमा कर पानी बरस रहा था। मैं पलंग पर आनन्द से लेटी हुई थी, शरीर से साड़ी खुल गई थी, अपने तन-बदन की सुध छोड़कर मैं सोई थी। झिल्लियाँ आनन्द में मग्न होकर झङ्कार रही थीं; डाहुक (एक जलचर पक्षी) उन्मत्त भाव से बोल रही थी; ठीक उसी समय मैंने यह स्वप्न देखा। ऐ सखी, वह प्रियतम हृदय में प्रवेश कर गया, उसने मेरा मन हर लिया और कानों में उसकी वाणी भर गई। उसका उस समय का व्यवहार देखकर चित्त में बड़ा उद्वेग होता है। उसके प्रेम से वञ्चित रहकर कुल-ललना बनकर रहने में धिक्कार है। रूप, गुण और रस का तो मानो वह सागर है। उसके मुख की सुन्दरता चन्द्रमा की सुन्दरता को भी पराजित कर देती है। गले में मालती की माला झूल रही है। मेरे पायताने के नीचे बैठकर उसने बहाने से मेरा अङ्ग-स्पर्श किया और मैं उसकी बातों से ही बिक गई। उसके भ्रू-भङ्ग तथा आभूषणों से भूषित अङ्ग की ओर दृष्टि जाते ही मेरे हृदय में काम का संचार हुआ है। अपनी ओर आकर्षित करने का उसे कितना ढङ्ग मालूम है! हँस-हँसकर वह बातें करता है और हृदय को हर लेता है। उसे देखते ही मैं रस के आवेश में आ गई। मुँह से कोई

बात नहीं निकली। उसके अधर से अधर मिला दिया। अब मेरा शरीर अवश हो गया। लज्जा, भय और मान आदि सब जाता रहा। ज्ञानदास चिन्ता करने लगे।"

(२)

सइ किवा से बंधुर प्रेम।
आखि पालटिले थिर नाहि माने येन दरिद्रेर हेम॥
हियाय हियाय लागिये बलिया चन्दन ना माखे अङ्गे।
गायेर छाया हाइ एर दोसर सदाइ फिरये सङ्गे॥
तिले कत बेरि मुख नेहारिया आचरे मोछये वाम।
कोरे थाकिते कत दूरे हेन मानये तेजि सदाइ लय नाम॥
जागिते घुमाइते आन नाहि चिते रसेर पसार काछे।
ज्ञानदास कहे एमन पीरिति आर कि जगते आछे॥

"हे सखी, बन्धु का प्रेम भी कैसा अनोखा होता है! जिस तरह दरिद्र को सोना मिल जाने पर उसकी आँख रात-दिन उसी पर लगी रहती है, उसी तरह बन्धु की ओर से दृष्टि हटाते ही हृदय में अधीरता आ जाती है। हृदय से हृदय मिलाने के लिये वह अङ्गों में चन्दन नहीं लगाती—जिससे कि चन्दन दोनों प्रेमियों के बीच में व्यवधान न बन सके। शरीर की द्वितीय छाया के समान वह सदा पीछे लगी रहती है। क्षण भर में ही कितनी बार मुँह ताककर अंचल से शरीर का पसीना पोंछती है। दृष्टि के सामने से प्रणयी के ज़रा-सा हटते ही वह कितना दुःखी होती है। इसलिये वह निरन्तर नाम का स्मरण करती रहती है। सोते-जागते, उसे कभी दूसरी बात सूझती ही नहीं। वह सदा नाम के ही रस में लीन रहती है। ज्ञानदास कहते हैं—क्या संसार में ऐसी प्रीति और भी कहीं देखने में आई है?"
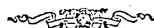
आधुनिक काल के प्रारम्भिक कवि

१—भारतचन्द्र
२—रामप्रसाद
३—मधुसूदनदत्त
४—हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय
५—नवीनचन्द्र सेन
६—द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

भारतचन्द्र ✓

भारतचन्द्र राय हुगली ज़िले के रहनेवाले थे। इनका जन्म १७२२ ई० में पेरीन वसन्तपुर के जमींदार के घर में हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नरेन्द्रनारायण था। ज़मींदारी के सम्बन्ध में इनकी बर्दवान के महाराज से लड़ाई होगई, जिससे इनकी ज़मींदारी छीन ली गई और घर छोड़कर सब चीज़ें ज़ब्त कर ली गईं। मुर्शिदाबाद के नवाव ने इनको राजा की उपाधि से भूषित किया था।

भारतचन्द्र का वचपन अपने मामा के घर पर नवपाड़ा में व्यतीत हुआ। वहाँ ये ताजपुर की संस्कृत-पाठशाला में अध्ययन करते थे। चौदह वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक नीच ब्राह्मण की लड़की से शादी कर ली।

यह विवाह माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध था। नाराज़ होकर इन लोगों ने नवविवाहित पुत्र और वधू को घर में नहीं प्रवेश करने दिया। तब निस्सहाय भारतचन्द्र देवानन्दपुर के धनी ज़मींदार कृष्णचन्द्र मुन्शी के दरबार में पहुँचे। इनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर उन्होंने इनको आश्रय प्रदान किया। यहाँ इन्होंने फ़ारसी पढ़ी और श्रीसत्यनारायण-कथा के अवसर पर एक छोटी-सी कविता सुनाकर जनता में ख्याति प्राप्त की।

कुछ दिनों के बाद पिता का भारतचन्द्र से मेल हो गया और ये अपने घर आये। लेकिन पत्नी को ससुराल ही में रखना पड़ा। बर्दवान-महाराज के साथ ज़मींदारी का झंझट साफ़ करने के लिए ये नियुक्त किये गये। महाराज ने किसी कारण से इनको कुछ महीनों के लिये जेल भेज दिया। जेल से छूटने पर इन्होंने श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के लिये पुरी को प्रस्थान किया। वहाँ के पंडों ने इनका हार्दिक स्वागत किया। वैष्णव-धर्म से प्रभावित होकर इन्होंने वृन्दावन में संन्यासी-जीवन बिताने का निश्चय किया। इसी इच्छा से इन्होंने वृन्दावन के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में ये अपनी स्त्री के एक नातेदार के द्वारा रोक लिये गये। वहाँ से ये अपनी स्त्री के पास शारदा आये और कुछ समय आनन्दपूर्वक गार्हस्थ्य-सुख का उपभोग किया।

उसके बाद ये फ़रासदंगा के ज़मींदार इन्द्रनारायण चौधरी के पास आये। यहाँ इनको आश्रय मिला और ज़मींदार के द्वारा इनका नवद्वीप के राजा श्रीकृष्णचन्द्र से परिचय हुआ। उक्त राजा साहब साहित्य के रसिक थे। भारतचन्द्र की असाधारण काव्य-प्रतिभा देखकर उन्होंने इनको ४० रु० महीने पर दरबार-कवि नियत कर लिया। उसी दिन से इनकी दरिद्रता का अन्त हुआ और अच्छे दिन फिरे। इसके सिवा राजा ने इनको १०५ रु० की जागीर दी और रायगुणाकर की उपाधि से विभूषित किया।

इनकी मृत्यु पलासी-युद्ध के तीन वर्ष बाद १७६० में हुई।

इनका प्रधान काव्य-ग्रन्थ 'अन्नदामंगल' है। इसमें 'विद्या-सुन्दर' की कथा का वर्णन है। यह १७५२ में लिखा गया था। यह ग्रन्थ बंगाल में बहुत लोकप्रिय हुआ और इनकी प्रसिद्धि चारोंओर फैल गई। यह ग्रन्थ तीन भागों में बँटा हुआ है। पहले भाग में शिव-पार्वती का वर्णन है, दूसरे में विद्या-सुन्दर की कथा और तीसरे में राजा प्रतापादित्य और बंगाल के तत्कालीन गवर्नर मानसिंह की लड़ाई का वर्णन है। इसके सिवा इनके अन्य ग्रन्थ ये हैं:—

(१) रस-मञ्जरी
(२) चण्डी-नाटक
(३) गानसंग्रह—इसमें अनेक विषयों पर छोटे-छोटे गान हैं।

इनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं।

दक्ष-यज्ञ में शिव

(अन्नदा-मङ्गल से)

महारुद्र रूपे महादेव साजे।
भभंभम् भभंभम् शिँगा घोर बाजे॥

लटापट् जटाजूट् संघट्ट गंगा।
छलच्छल् टलट्टल् कलक्कल् तरंगा॥

फनाफन् फनाफन् फनीफन्न गाजे।
दिनेश-प्रतापे निशानाथ साजे॥

धकध्धक् धकध्धक् जले बह्नि भाले।
बबंबम् बबंबम् महाशब्द गाले॥

दलंमल दलंमल गले मुण्डमाला।
कटीकट्ट सद्यो मरा हस्ति-छाला॥

पचा चर्म्म झुल्ली करे लोल झूले ।
महाघोर आभा पिनाके त्रिशूले ॥
धिया ताधिया ताधिया भूत नाचे ।
उलंगी उलंगे पिशाची पिशाचे ॥
सहस्रे सहस्रे चले भूत दाना ।
हुहुंकार हाँके उड़े सर्प-बाणा ॥
चले भैरवा भैरवी नन्दी भृङ्गी ।
महाकाल वेताल ताल त्रिशृंगी ॥
चले डाकिनी योगिनी घोर बेशे ।
चले शंखिनी प्रेतिनी मुक्त केशे ॥
गिया दक्ष यज्ञें सबे यज्ञ नाशे ।
कथा ना सरे दक्षराजे तरासे ॥
अदूरे महारुद्र डाके गभीरे ।
अरे रे अरे दक्ष दे रे सतीरे ॥
भुजंग प्रयाते कहे भारतीदे ।
सतीदे सतीदे सतीदे सतीदे ॥

"शिवजी ने महाभयङ्कर रौद्र-रूप धारण किया है। शिंग भभंभम्र् भभंभम् कर ज़ोर से बजने लगी। जटा से लपटी हुई गंगा छल्-छल् टल्-टल्कर प्रवाहित होने लगीं। बड़े-बड़े फणवाले सर्प ज़ोर से गरजने लगे। चन्द्रमा सूर्य के समान जलने लगा। कपाल में धन्न-धन्न कर अग्नि जलने लगी और मुँह से बम्-बम् की ध्वनि निकलने लगी। गले में डल्-मल् डल्-मल् मुण्डमाला है। कमर में तुरन्त मरे हुए हाथी का छाला है। बगल में सड़े हुये चमड़े की झोली झूल रही है। पिनाक और त्रिशूल चमक रहे हैं। महाभयङ्कर रूप है। धिन्ना ता धिन्ना की तालों पर भूत नाच रहे हैं। पिशाच, पिशाची सब नंगे हैं।

हज़ारों भूत-दानव जा रहे हैं। हुङ्कार करते हुये सर्प वाण के समान उड़ रहे हैं। भैरव-भैरवी, नन्दी-भृङ्गी, महाकाल, वैताल-ताल, त्रिश्रृङ्गी, घोर वेशिनी, डाकिनी, योगिनी, बालों को खोले हुए शंखिनी, प्रेतिनी सब जाकर दक्ष के यज्ञ को ध्वंस कर रहे हैं। समीप ही महारुद्र-रूपधारी शिवजी गम्भीर नाद से कह रहे हैं—अरे दक्ष, सती दे! सती दे! सती दे!"

व्यासकृत विष्णु-स्तोत्र

जय कृष्ण-केशव, राम-राघव केस-दानव-घातनं।
जय पद्म-लोचन नन्द-नन्दन कुञ्जकानन-रञ्जनं॥
जय केशि-मर्दन कैटभार्दन गोपिका-गण मोहनं।
जय गोप-बालक वत्स-पालक पूतना-बक-नाशनं॥
जय गोप-बल्लभ भक्त-सुलभ देव-दुर्लभ बन्दनं।
जय वेणु-वादक कुञ्ज-नाटक पद्म-नन्दक मंडनं॥
जय शान्त कालिय राधिका-प्रिय-नित्य-निष्क्रिय-मोचनं।
जय सत्य चिन्मय गोकुलालय द्रौपदी भय-भंजनं॥
जय देवकी-सुत माधवार्जुन शंकर-स्तुत बामनं।
जय सर्व्वतोजय सज्जनोदय भारताश्रय जीवनं॥

"कृष्ण, केशव, राम राघव, कंसदानव को मारने वाले की जय हो। कमल-लोचन, नन्द-नन्दन, कुञ्जबन को रञ्जित करनेवाले की जय हो! केशि और कैटभ को मारनेवाले, गोपिकागण के मोहनेवाले आपकी जय हो!—हे गोप-बालक, बछड़ों के चरानेवाले, पूतना और बक को मारनेवाले, आप की जय हो! हे ग्वालों के स्वामी, भक्त-सुलभ, देवताओं के दुर्लभ, आप की जय हो! मैं आपकी बन्दना करता हूँ। हे वंशी बजाने-वाले, कुञ्ज में क्रीड़ा करनेवाले, कमल के सूर्य्य, हे काले, राधिका के प्रियतम, पाप-मोचन, सच्चिदानन्द, गोकुल-वासी, द्रौपदी-भय-भञ्जन, देवकी-

पुत्र माधव, अच्युत, शङ्कर से वन्दित, वामन, सर्वजयी सज्जनों का अभ्युत्थान करनेवाले भारतचन्द्र के जीवन-धन, आपकी जय हो।''

विद्या-सुन्दर

अहे बिनोदराय धीरे धीरे याऊ हे
अधरे मधुर हासि बांशीटी बाजाऊ हे
नव जलधर तनु शिलिप-पुच्छ शक्रधनु
पीत धड़ा बिजलीते मयूर नाचाऊ हे
नयन-चकोर मोर देखिया हयेछे मोर
मुखे सुधाकर हाँसि सुधाय बाँचाऊ हे
नित्य तुमि खेल चाहा नित्य भाल नहे ताहा
आमि ये खेलिते कहि से खेला खेलाऊ हे।
तुमि ये चाहनी चाऊ से चाहनि कोथा पाऊ
भारत येमन चाहे सेइ मत चाऊ हे

''अहो, आनन्द-कन्द धीरे-धीरे चलो! ओठों पर मीठी हँसी ला कर ज़रा वंशी तो बजाओ। हे नये बादल के समान शरीरवाले, हे इन्द्र-धनुष के समान मयूर-पुच्छ-धारी, अपने पीताम्बर-रूपी बिजली में मोर को नचाओ। हे चन्द्रमुख, अपने हास्याधर से मेरे मन को, जो तुम्हें देख कर चकोर सा विभोर होगया है, बचाओ! तुम जो खेल नित्य खेलते हो, वह ठीक नहीं, मैं जो खेल खेलने को कहूँ वही खेलो! प्यारे, जिस चितवन से ताकते हो, वह चितवन तुम्हें कहाँ मिली? मैं जैसे देखता हूँ, तुम भी वैसे ही देखो न!''

सुन्दर के पकड़े जाने पर विद्या एवं अन्यान्य सभी का आक्षेप

प्रभात हइत बिभावरी बिद्यार कहिल सहचरी
सुन्दर पड़ेछे धरा शुनि बिद्या पड़े धरा
सखी बोले धराधरि करि

काँदे विद्या आकुल कुन्तले धरा तिते नयनेर जले
कपाले कंकण हाने, अधीर रुधिर बाने
कि हैल कि हैल घन बोले
हायरे बिधाता निदारुण कोन दोषे हइलि गुण
आगे दिया नाना दुःख मध्ये दिन कत सुख
शेषे दुःख वाड़ालि द्विगुण
रमणोर रमण प्राण ताहा बिना केबा आछे आन
से पराण छाड़ा हये ये रहे पराण लये
धिक् धिक् ताहार पराण

"रात बीती, सवेरा हुआ। विद्या से सहचरी ने कहा—सुन्दर पकड़े गये। सुनते ही विद्या भूमि पर गिर पड़ी। सखी उसे पकड़कर उठाती है। आकुल-कुन्तला विद्या रोती है, पृथ्वी उसके आँसू से भीग रही है। कंकण से मस्तक पीटती रक्तसे लथफथ होगई। तो भी जल्दी-जल्दी "क्या हुआ, क्या हुआ" कहती है। निष्ठुर विधाता! मेरे किस दोष से मुझ से रूठ गये। पहले बहुत दुःख देकर बीच में कुछ दिनों के लिये सुख दिया था, परन्तु उसे छीनकर तूने अन्त में मेरे दुःख को दूना कर दिया।

प्रेमी स्त्री का प्राण है। उसके अतिरिक्त संसार में उसके लिए और है ही कौन? सो उसके चले जाने पर भी जो स्त्री जीवित रहती है, उसे धिक्कार है।"

हाय-हाय कि कब विधिरे सम्पद घटाय धीरे-धीरे
शिरोमणि मस्तकेर मणिहार हृदयेर
दिया लय सखेर निधिरे
काँदे विद्या विनिया-विनिया श्वास बहे अनल जिनिया
इहा कब कार काछे एखनऊ पराण आछे
बँधुयार बन्धन शुनिया

प्रभु मोर गुणेर सागर रसमय रूपेर आगर
रसिकेर शिरोमणि विलास धनेर धनी
नृत्य गीत वाद्येर आकर

जननी डाकिनी हैल मोर मोर प्राणनाथे बले चोर
बाप अनर्थेर हेतु धूमकेतु धूमकेतु
विधातार हृदय कठोर

चोर धरा गेल शुनि रानी अन्तःपुरे करे काणाकाणि
देखिबारे धाय रड़े कोठार उपरे चड़े
काँदे देखि चोरेर मुखानि

"हाय-हाय, मैं विधाता को क्या कहूँ ! मेरे धन को धीरे-धीरे कम कर रहा है। मस्तक के शिरोमणि, हृदय की मणिमाला, मेरे सुख-समुद्र को (तूने) देकर ले लिया। विद्या हिचक-हिचककर रोती है, अग्नि से भी अधिक गर्म साँस लेती है। मैं किससे यह कहूँ ? आह ! मेरे प्राण सखा के बन्दी होने का समाचार पाकर भी अभी तक ठहरे हैं। मेरे पति गुण के सागर हैं, रसमय हैं, रूप के आगर, रसिकों के अग्रगण्य, विलास-धन के धनी एवं नाच-गान, वाद्य के मानो स्वरूप ही हैं। मेरी माँ डाकिनी हो गयी है। तब न मेरे प्राणनाथ को चोर कहती है ! पिताजी तो इस अनर्थ की जड़ हैं। धूमकेतु कोतवाल तो धूमकेतु ही हैं। विधाता का हृदय कठोर है। चोर पकड़ा गया, सुनकर रानी अन्तःपुर में कानाकानी करती देखने के लिये कोठे पर चढ़ी; किन्तु चोर के मुख की छवि को देखकर रोती है।"

रानी बले काहार बाछनि मरे याइ लइया निछनि
किबा अपरूप रूप मदन-मोहन कुप
धन्य-धन्य इहार जननी

कि कहिब विद्यार कपाल — पेये दिल मनोमत भाल
आपनार माथा खेये मोरे — ना कहिल मेये
तबे केन हइबे जञ्जाल
हाय-हाय हायरे गोसाञि — पेये छिनु सुन्दर जमाइ
राजार हयेछे क्रोध — ना मानिबे उपरोध
ए मरिले बिद्या जीबे नाइ
एइ रूपे पुर बधूगण — सुन्दरे बखाने जने जन
कोटाल सत्वर हये — चलिल दुजने लये
भेट दिते येखाने राजन
चोर लये कोतोयाल याय — देखिते सकल लोक धाय
बालक युवा जरा, काणा — खोंड़ा करे त्वरा
गवाक्षेते कुल-बधू चाय
केह बले ए चोर केमन — एखनि करिल चुरि मन
विद्यार के मन्द बोले — भारत कहिछे छले
पति निन्दे आपन-आपन

"रानी कहती हैं, किसका यह पुत्र है, मैं तो इसकी बलैया ले मरूँ ! क्या मदनमोहन अनुपम रूप है ! धन्य इसकी माँ है। विद्या के भाग्य को क्या कहूँ—मनोनुकूल सुन्दर पति पाया था। मुझे न जताकर उसने अपनी बुराई अपने आप की है। यदि वह मुझसे कहती तो यह विघ्न क्यों होता ? आह ! कैसा सुन्दर दामाद मिला था। राजा को क्रोध हुआ है, वह विनय नहीं सुनेगा। परन्तु इसके मरने से विद्या भी तो नहीं बचेगी। इसी प्रकार अन्तःपुर की स्त्रियाँ एक-एककर सुन्दर की प्रशंसा करतीं। कोतवाल सतर्क हो जल्दी से दोनों को लेकर राजा के पास चला। कोतवाल चोर ले जाता है और देखने को सब जाते हैं। बालक, युवा, वृद्ध, काना, लँगड़ा सभी जल्दी कर रहे हैं। कुल-बधुएँ कोठे से देखती हैं। कोई कहती—"यह कैसा चोर है, जो देखते ही मन हर लेता है।

विद्या को कौन बदनाम करता है। भारतचन्द्र कहते हैं, इसी प्रकार छत से सब स्त्रियाँ अपने-अपने पति की निन्दा करती हैं।"

रामप्रसाद

धार्मिक-गान के रचयिताओं में रामप्रसाद सेन का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके गान सरस, मधुर और लोक-प्रिय हैं। बङ्गाल में शायद ही ऐसा कोई स्थान होगा, जहाँ इनके सुललित गानों का प्रचार न हो। ये बङ्गाल के ग्राम्य कवि हैं।

इनका जन्म १७१८ ई० में ईस्ट बङ्गाल रेलवे के एक स्टेशन के समीप कुमारहट्टा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम रायराम सेन था। ये वैद्य जाति के थे। सम्बन्धियों की चालबाज़ी से इनके पिता पैतृक सम्पत्ति से हाथ धो बैठे थे। इसलिये इनका बाल्यकाल-ग़रीबी ही में व्यतीत हुआ। चौदह वर्ष की अवस्था में एक ज़मींदार के आफ़िस में ये मुन्शी का काम करने लगे। मनबहलाव के लिये ये बीच-बीच में कवितायें भी रचा करते थे। संयोगवश एक दिन मालिक ने इनकी कवितायें देखी। वे इनकी काव्य-शक्ति पर मुग्ध हो गये और ३०) मासिक पेंशन देकर इनको अपने ग्राम में भेज दिया। १७२८ ई० में राजा कृष्णचन्द्र ने भी इनको २०) मासिक पेंशन और १०० बीघा ज़मीन दिया। तब से ये अपने ग्राम ही में बराबर रहे और कुछ ही दिनों में बङ्गाल भर में विख्यात हो गये।

इनके गान बड़े ही मधुर और चित्ताकर्षक हैं और हृदय के सच्चे उद्गार हैं। इन गानों में इन्होंने ईश्वर के मातृत्व का अनुभव किया है और बालक के समान इन्होंने अपने सुख-दुख कालीमाता को सुनाये हैं। ये गान मालश्री रागिनी में हैं।

इनके कुछ पद्य यहाँ दिये जाते हैं।

गान

(१)

मा आमाय घुराबे कत ।
कलुर चोख-ढाका बलदेर मत ॥
भवेर गाछे युड़े दिये मा पाक दितेछे अबिरत ।
तुमि कि दोषे करिले आमाय छटा कलुर अनुगत ॥
मा शब्द ममतायुत काँदले कोले करे सुत ।
देखि ब्रह्माण्ड रइ एइ रीति मा आमि कि छाड़ा जगत ॥
दुर्गा दुर्गा दुर्गा बले तरे गेल पापी कत ।
एक बार खुले दे मा चोखेर ठुलि देखि श्रीपद मनेर मत ।

"माँ ! कोल्हू के बैल की तरह अब मुझे और कितना घुमाओगी ? संसार-रूपी वृक्ष में बाँधकर बराबर ऐंठन दे रही हो, जैसे लोग रस्सी में देते हैं । भला, मैंने क्या दोष किया कि तुमने मुझे ऐसे बन्धन का दास कर दिया है । "माँ" शब्द तो ममतापूर्ण है ! जब बालक रोता है तब माँ उसे गोद में बिठाती है । संसार की तो यही रीति है । सभी माताये ऐसा ही करती हैं । तो क्या मैं संसार भर से पृथक् हूँ कि तू माँ होकर भी मुझे प्यार नहीं करती ! माँ एक बार मेरी आँख पर से पट्टी हटा लो, ताकि मैं तुम्हारे श्रीचरणों का दर्शन करूँ।"

(२)

ए मा दितिस दिताम निताम खेताम
मजुरि करिये तोर ।
एबार मजुरि हलो ना मजुरी चाब कि
कि जोरे करिब जोर गो ॥

आछ तुमि कोथा आमि कोथा।
मिछामिछि करि सोर।
शुधु सोर करा सारा तोर ये कुधारा
मोर ये बिपद घोर गो॥
ए मा घोर महानिशा मन योगेयागे
कि काय तोर कठोर।
आमार ए कूल ओ कूल दुकूल गेल
सुधा ना पेले चकोर गो॥
ए मा आमि ठानि कूले मन प्रतिकूले।
दारुण करम डोर।
रामप्रसाद कहिछे पड़े दुटानाय
मरे मन भूँड़ा-चोर गो॥

"मेरी माँ देती थी तो लेता था, लेकर खाता था। तुम्हारी दी हुई मज़दूरी से सब कुछ करता था। इस बार तो मज़दूरी मिली नहीं, माँगू कैसे? कैसे ज़बर्दस्ती करूँ? तुम कहाँ हो और मैं कहाँ हूँ? दोनों एक दूसरे से दूर! फिर भी शोर-गुल मचाता रहता हूँ। मैं घोर विपत्ति में हूँ माँ। रात अँधेरी है; मैं विपत्ति में हूँ, और तुम कठोर हो। मैं तो कहीं का न रहा। मानों चकोर को सुधा मिली ही नहीं। मेरे भाग्य का बंधन ऐसा क्रूर है कि मैं करना कुछ चाहता हूँ, और कर बैठता हूँ कुछ। रामप्रसाद कहता है कि इस संघर्ष में पड़कर मन ख़ूब पागल हो रहा है।"

(३)

मा मा बले आर डाकबो ना।
ओमा दियेछ दितेछ कत यन्त्रणा॥
छिलेम गृहबासी बानाले संन्यासी।
आर कि क्षमता राख एलोकेशी॥

(ना हय) घरे घरे याब भिक्षा मेगे खाब ।
मा बले आर कोले याब ना ।
डाकि बारे बारे मा मा बलिये ।
मा कि रयेछ चक्षु कर्ण खेये ॥
मा विद्यमाने ए दुःख सन्ताने ।
मा मेले कि आर छेले बाँचे ना ॥
भणे रामप्रसाद मायेर कि एक सूत्र ।
मा हये हलि मा सन्तानेर शत्रु ॥
दिवा निशि भाबि आर कि करिबि ।
दिबि दिबि पुनः कठोर यन्त्रणा ॥

"माँ कहकर अब न पुकारूँगा। ओह, कितनी पीड़ा दे रही हो, माँ! मैं गृहस्थ था; तुमने संन्यासी बना दिया। माँ काली, और तुम में क्या-क्या गुण हैं? और कुछ न कर सका तो घर-घर जाकर भीख माँगूँगा; लेकिन फिर तुम्हारी गोद में न बैठूँगा। माँ के रहते हुए संतान को ऐसी पीड़ा! माँ के रहने पर भी कहीं बच्चा मरता है! माँ भी कहीं संतान की शत्रु हो सकती है! रात-दिन यही सोच रहा हूँ कि अब और कौन-सी कठोर यन्त्रणा दोगी!"

(४)

एमन दिन कि हबे तारा ।
यबे तारा तारा तारा बले ॥
तारा बये पड़बे धारा ॥
हृदि पद्म उठ्बे फुटे, मनेर आँधार याबे छुटे ,
तखन धरातले पड़्ब लुटे, तारा बले हब सारा ॥
त्याजिब सब भेदाभेद, घुचे याबे मनेर खेद,
ओरे शत शत सत्य वेद, तारा आमार निराकार ॥

श्रीरामप्रसाद रटे, मा विराजे सर्व्व घटे,
ओरे आखि अन्ध, देख माके, तिमिरे तिमिर-हरा ॥

"माँ तारा, माँ काली! क्या ऐसा दिन भी आयेगा जब तारा तारा पुकारते मेरी आँख से आँसू की धारा उमड़ पड़ेगी? जब हृदय-कमल खिल उठेगा, अँधेरा दूर होगा, जब धरती पर लोटकर तुम्हारे नाम को जपते-जपते धन्य हो जाऊँगा, जब सभी भेद-भाव को छोड़ दूँ; जब मन की खिन्नता मिट जायगी। वेद-पुराण सभी सुनो! मेरी मा, तारा, निराकार है। वह हर जगह विराजती है। ऐ अंधे, देखो न, माँ अंधकार को हटाती हुई अंधेरे ही में विराज रही है।"

माइकेल मधुसूदन दत्त

माइकेल मधुसूदन दत्त यशोहर ज़िले के रहनेवाले थे। इनका जन्म २९ जनवरी, १८२४ में सागरदाँड़ि नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता राजनारायण दत्त कलकत्ते में कारबार करते थे और प्रायः वहीं रहते थे। प्राइमरी शिक्षा घर पर समाप्त कर के ये अपने पिता के पास कलकत्ते गये और 'हिन्दू-कालेज' में पढ़ने लगे। विद्यार्थी-जीवन ही में इन्होंने बहुत-सी ख्याति प्राप्त कर ली। अँगरेज़ी के सिवा ग्रीक और लैटिन में भी इन्होंने पूरी योग्यता प्राप्त कर ली। १८४३ को नवीं फ़रवरी को ये हिन्दू-धर्म त्यागकर क्रिश्चियन हो गये।

१८४८ में ये मदरास गये और समाचार-पत्रों में लेख लिखने लगे। इसके सिवा इन्होंने संयुक्ता की कथा पर अंगरेज़ी भाषा में एक कविता रची। इस पुस्तक से इनका बहुत नाम हुआ। उसी समय इन्होंने मदरास-कालेज के प्रिंसिपल की लड़की से शादी कर ली। कुछ दिनों के बाद उसको तलाक़ दे दिया और हेनरिटा नामक एक दूसरी

लड़की से शादी की। १८४८ में ये सपत्नीक कलकत्ता लौटकर आये और पुलिसकोर्ट में किरानी का काम करने लगे। बाद को उसी कोर्ट में दुभाषिये के पद पर नियुक्त हुए।

१८५८ में इन्होंने अँगरेज़ी भाषा में रत्नावली का अनुवाद किया। इसके बाद ये मातृभाषा की सेवा में तन-मन से लगे। इनके लिखे हुए बहुत से नाटक और काव्य हैं। ये बंग-साहित्य के अमर लेखकों में से हैं।

इनकी रचनाओं में मेघनाद-काव्य, वीराङ्गना काव्य और व्रजाङ्गना-काव्य अधिक प्रसिद्ध हैं।

क़ानून पढ़ने के लिये ये १८६२ में स्त्री के साथ विलायत गये। धन की कमी के कारण इनको वहाँ बहुत कष्ट सहना पड़ा। लाचार होकर इन्होंने विद्यासागर से प्रार्थना की। उदारमना विद्यासागर ने इन्हें यथाशक्ति आर्थिक सहायता दी। इसी समय इन्होंने चतुर्दशपदी कवितावली रची। इसमें माइकेल ने विद्यासागर की सहायता का उल्लेख किया है।

१८६७ में बैरिस्टरी पास कर के ये कलकत्ता लौटे और वहीं प्रैक्टिस करने लगे। लेकिन इससे पूरी आमदनी नहीं होती थी। ये बहुत ख़र्चीले थे। इनका अन्तिम समय बहुत दुख के साथ व्यतीत हुआ। स्त्री की मृत्यु के बाद ये स्वयं रोग-ग्रस्त हुए। लेकिन रुपये-पैसे की कमी के कारण अच्छी तरह इनकी चिकित्सा नहीं हो सकी; भोजन मिलना भी कठिन हो गया। बहुत दुख सहने के बाद ये १८७३ की २९ जनवरी को अलीपुर अस्पताल में स्वर्गगामी हुए। १८८८ में श्रीयुत मनमोहन घोष के उद्योग से इनकी समाधि पर संगमरमर का स्मारक बनवाया गया है, जो बंग-वासियों का तीर्थ-सा हो गया है।

मधुसूदन दत्त बंग-कविता में विषम पद के पथ-प्रदर्शक हैं। पहले-पहल इन्हीं ने दिखाया कि बंगला में वीर-रसात्मक काव्य

रचा जा सकता है। वीर-रसात्मक काव्यों में इनका मेघनाद-वध काव्य सर्वश्रेष्ठ है।

इनकी कविता का कुछ अंश यहाँ दिया जाता है—

सीता और सरमा

("मेघनाद-वध काव्य" से।)

एतेक कहिया देवी काँदिला नीरवे !
काँदिला सरमा सती तिति अश्रुनीरे !
कतक्षणे चक्षुजल मुछि रक्षोबधू।
सरमा, कहिला सती सीतार चरणे।
"स्मरिले पूर्ब्बेर कथा व्यथा मने यदि।
पाओ, देवि, थाक् तबे, कि काज स्मरिया ?
हेरि तव अश्रुबारि इच्छि मरिवारे॥"
उत्तरिला प्रियंबदा; (कादम्बा येमति
मधुस्वरा)—"ए अभागी, हाय लो सुभगे,
यदि ना काँदिबे, तबे के आर काँदिबे
ए जगते ? कहि, शुन पूर्ब्बेर काहिनी।—
बरिषार काले, सखि, प्लावन-पीड़ने
कातर प्रबाह ढाले, तीर अतिक्रमि
बारिराशि दुइ पाशे, तेमति ये मनः
दुःखित, दुःखेर कथा कहे से अपरे।
तेंइ आमि कहि, तुमि शुन लो सरमे।
के आछे सीतार आर ए असुरपुरे ?
पञ्चबटी बने मोरा, गोदावरी-तटे
छिनु सुखे। हाय, सखि, केमने बर्णिब
से कान्तार-कान्ति आमि ? सतत स्वपने

शुनिताम बन-बीणा बनदेबी-करे !
सरसीर तीरे बसि देखिताम कभु
सौर कर राशि-बेशे सुरबालाकेलि
पद्मवने; कभु साध्वी ऋषिबंशबधू
सुहासिनी आसितेन दासीर कुटीरे,
सुधांशुर अंशु येन अन्धकारधामे।
अजिन रञ्जित आहा कत शत रङ्गे
पाति बसिताम कभु दीर्घ तरुमूले,
सखीभावे सम्भाषिया छायाय; कभु बा
कुरङ्गिणी सङ्गे रङ्गे नाचिताम बने,
गाइताम गीत, शुनि कोकिलेर ध्वनि;
कभु बा प्रभुर सह भ्रमिताम सुखे
नदी तटे, देखिताम तरल सलिले
नूतन गगने येन नव तारावलि,
नव निशाकान्त-कान्ति ! कभु बा उठिया
पर्ब्बत-उपरे, सखि, बसिताम आमि
नाथेर चरणतले, ब्रतती येमति
बिशाल-रसाल-मूले ! कत ये आदरे
तुषितेन प्रभु मोरे, बरषि बचन-
सुधा, हाय, कब कारे ! कब बा केमने ?
शुनेछि कैलासपुरे कैलास-निवासी
ब्योमकेश, स्वर्णासने बसि गौरीसने,
आगम, पुराण, वेद पञ्चतत्त्व कथा
पञ्चमुखे पञ्चमुख कहेन उमारे;
शुनिताम सेइ रूपे आमिओ, रूपसी,
नाना कथा ! एखनओ ए बिजन बने,

भाबि श्रामि शुनि येन से मधुर बाणी।
साङ्ग कि दासोर पत्ते हे निष्ठुर बिधि,
से सङ्गीत ? "नीरविला श्रायत-लोचना
बिषादे ! कहिला तबे सरमा सुन्दरी,—
"शुनिले तोमार कथा, राघव-रमणि
घृणा जन्मे राजभोगे ! इच्छा करे, त्यजि
राज्यसुख, याइ चलि हेन बनबासे !
किन्तु भेबे देखि यदि, भय हय मने !
रबिकर यबे, देवि, पशे बनस्थले
तमोमय, निजगुणे श्रालो करे बने
से किरण, निशि यबे याय कोन देशे,
मलिन बदन सबे तार समागमे !
यथा पदार्पण तुमि कर, मधुमति,
केन ना हइबे सुखी सर्ब्बजन तथा ?
जगत्-श्रानन्द तुमि, भुवनमोहिनी।
कह देखि, कि कौशले हरिल तोमारे
रक्षःपति ? शुनियाछे बीणाध्वनि, दासी,
पिकवर-रव नव पल्लव माझारे
सरस मधुर मासे, किन्तु नाहि शुनि
हेन मधुमाखा कथा कभु ए जगते !"

"इतना कहकर देवी नीरव भाव से रो पड़ीं। सती सरमा भी श्रश्रु-जल से भीगती हुई रो पड़ी। कुछ देर में श्राँसू पोंछकर राक्षस-बधू सरमा ने सती सीता के चरणों में निवेदन किया—"देवि, यदि पुरानी बातों को स्मरण कर व्यथा पाती हो तो रहने दें; उन्हें स्मरण करने का क्या प्रयोजन है ? तुम्हारा श्रश्रु-जल देखकर मर जाना चाहती हूँ।" प्रियम्बदा सीता ने मधुर स्वर में उत्तर दिया—"हाय सुभगे ! यदि यह श्रभागी न रोवे, तो

संसार में और कौन रोयेगा ? पूर्व्व-काल की कहानी कहती हूँ, सुनो। हे सखो, वर्षा के समय, तरङ्गों के आघात से जिस प्रकार जल का प्रवाह दोनों किनारों को अतिक्रम कर जल-राशि को ठेलता है, उसी प्रकार जो मन दु:खित है, वह अपने दुःख को कहानी दूसरे को सुनाता है। मैं भी उसी प्रकार कहती हूँ; तुम सुनो। हे सरमा, इस असुर-पुर में सीता का और कौन है? हम लोग गोदावरी के किनारे पञ्चवटी बन में सुखी थे। हाय सखी, मैं उस पठार की कान्ति का कैसे वर्णन करूँ ? वनदेवी के हाथों से झङ्कृत वीणा की ध्वनि सदा स्वप्न में सुना करती थी। कभी जलाशय के तट पर बैठकर सूर्य की किरणों के वेष में कमल-बन के भीतर सुर-बालाओं की क्रीड़ा देखती। कभी दासी के कुटीर पर साध्वी सुहासिनी ऋषिवधुयें अन्धकार में सुधांशु की किरणों की नाईं आतीं। अहा ! कभी कितने रङ्गों से रञ्जित मृग-चर्म्म डालकर दीर्घ तरु के नीचे छाया में सखी-भाव से सम्भाषण कर बैठा करतीं। कभी-कभी मृगी के साथ बन में नाचती, कोकिल की ध्वनि सुन गीत गाती। अथवा कभी सुख से प्रभु के साथ नदी-तट पर घूमा करती। तरल जल में, नये गगन में, नये ताराओं की नाईं, नव चन्द्र की कान्ति देखती। कभी पर्व्वत पर चढ़कर विशाल रसाल के नीचे लता के समान नाथ के चरणों के नीचे बैठती। कितने आदर के साथ प्रभु बचन-सुधा बरसाकर मुझे तुष्ट करते। हाय ! किसेकहूँ ? अथवा क्यों कहूँ ? सुना है कि कैलासपुर में कैलासवासी शिव स्वर्णासन पर गौरी के साथ बैठे हुये, पाँचो मुँह से उमा को आगम, पुराण वेद आदि की कथा सुनाया करते हैं। मैं भी उसी प्रकार नाना कथायें सुनती। अभी भी, इस विजन बन में, मैं सोचती हूँ, जैसे मैं वह मधुर वाणी सुन रही हूँ। हे निष्ठुर विधि, क्या वह सङ्गीत इस दासी के लिये समाप्त हो गया ?" यह कहकर आयत-नयना सीता विषाद से चुप हो गईं। तब सरमा सुन्दरी ने कहा—"हे सीता ! तुम्हारी बातें सुनकर राज्य-भोग से घृणा हो जाती है। जी चाहता है कि राज्य-सुख छोड़ दूँ, बन

चलो जाऊँ। किन्तु सोच कर देखती हूँ, तो मन में भय होता है। सूर्य्य की किरणें जब तमोमय बन में प्रवेश करती हैं, अपने गुण से बन को आलोकित कर देती हैं, तब मलिन-वदना रात्रि न जाने किस देश को चली जाती है। उसी प्रकार हे देवि, तुम जहाँ पदार्पण करो, वहाँ सभी क्यों न सुखी होंगे? हे भुवनमोहिनी, तुम संसार की आनन्द हो! कहो तो, किस कौशल से रावण ने तुमको हर लिया? दासी ने वीणा-ध्वनि सुना है; सरस मधु-मास में नवपल्लवों के भीतर कोकिल का गीत भी सुना है, पर इस संसार में मधुमिश्रित बातें अन्यत्र नहीं सुनी।"

हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय

हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय का जन्म १८३८ में हुगली ज़िले के गुलिटा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम कैलाशचन्द्र वन्द्योपाध्याय था। इनको प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव ही में मिली थी। बीस वर्ष की अवस्था में ये खिदिरपुर (कलकत्ता) आये और हिन्दू-कालेज में पढ़ने लगे। यही कालेज आगे चलकर प्रेसिडेन्सी कालेज के रूप में परिवर्तित हुआ। इनको प्रवेशिका परीक्षा में छात्र-वृत्ति भी मिली थी।

थोड़े दिनों के बाद पढ़ना छोड़कर इनको संसार में प्रवेश करना पड़ा। बाद को इन्होंने बी० ए० और वकालत की परीक्षा पास की। कुछ समय तक ये मुन्सिफ़ रहे। उसके बाद कलकत्ते में वकालत करते रहे। इनकी वकालत ख़ूब चली और आमदनी भी काफ़ी होती थी; लेकिन ये बहुत ख़र्चीले थे। दान में बहुत रुपये दिया करते थे। इस कारण ये कुछ भी रुपया नहीं बचा सकते थे। जीवन के अन्तिम भाग में इनको बहुत कष्ट झेलना पड़ा। रुपये-पैसे के लिये इन्हें बराबर दूसरों का मुँह ताकना पड़ता था। १९०४ में इनकी मृत्यु हुई।

हेमचन्द्र जात-कवि थे। माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद-वध काव्य' पर टीका और समालोचना लिखकर इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया था। कवि मधुसूदन की मृत्यु के बाद इन्होंने अपनी मधुर और सरस कविताओं से बंग-भाषियों के श्रवण को तृप्त किया था। माइकेल के बाद ये ही बंग-साहित्य की काव्य-गद्दी पर आसीन हुए थे। बंकिम बाबू जैसे सुयोग्य समालोचक ने इनको यह पद दिया था।

इनकी कविताओं के निम्नलिखित ग्रंथ उल्लेखनीय हैं:—

(१) चिन्ता-तरंगिणी (२) वृत्त-संहार काव्य (३) छायामयी (४) दश महाविद्या (५) वीरबाहुक काव्य (६) कवितावली।

इनके सिवा बहुत-से छोटे-छोटे गान हैं—

इनकी कुछ कवितायें यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

लज्जावती लता

(१)

छुँयोना छुँयोना, उटि लज्जावती लता
एकान्त संकोच करे एकधारे आछे सरे,
छुँयोना उहार देह, राख मोर कथा।
तरु-लता यत आर चेये देख चारि धार
घेरे आछे अहङ्कारे—उटि आछे कोथा!
आहा, ओइखाने थाक्, दिओना'क व्यथा।
छुँइले, नखेर कोणे विषम बाजिबे प्राणे
येओ ना उहार काछे, खाओ मोर माथा।
छुँयोना छुँयोना उटि लज्जावती लता!

"छुओ मत, छुओ मत, वह लज्जावती लता है, वह बहुत ही सङ्कोच करती है; देखो, खिसककर एक किनारे हो गई है। मेरी बात

मानो, उसका अंग-स्पर्श मत करो। ज़रा आँख खोलकर देखो, जितनी लतायें और वृक्ष हैं, वे सब अहङ्कार से चारों ओर खड़े हैं, वह बेचारी भी भला कहीं दिखाई पड़ रही है? अहा, उसे वहीं पड़ी रहने दो। उसे क्लेश मत दो। नाखून के कोने से भी यदि तुम स्पर्श करोगे तो उसे बड़ी पीड़ा होगी। तुम्हें मेरे सिर की सौगंध है, तुम उसके पास मत जाना। उसे मत छुओ, मत छुओ, वह लज्जावती लता है।"

(२)

लज्जावती लता उटि अति मनोहर।
यदिओ सुन्दर शोभा बहे तत मनोलोभा,
तबुओ मलिन बेश मरि कि सुन्दर!
याय ना काहारो पाशे, मान मर्य्यादार आशे,
थाके काङ्गालिर बेशे एका निरन्तर—
लज्जावती लता उटि मरि कि सुन्दर!
निश्वास लागिले गाय अमनि शुकाये याय,
ना जानि कतइ ओर कोमल अन्तर!—
एहेन लतार हाय, के जाने आदर?

"वह लज्जावती लता बहुत ही मनोहर है। यद्यपि वह इतनी मनोहर शोभा धारण करती है, तौ भी बेचारी अपने ऐसे अनुपम वेश को इस तरह मलिन बनाये रहती है, यह देखकर आश्चर्य होता है। मान-प्रतिष्ठा की आशा से वह कभी किसी के पास नहीं जाती, निरन्तर मलिन वेश धारण किये हुए एकान्त में पड़ी रहती है। अहा, लज्जावती लता कितनी सुन्दर है। उसके शरीर में यदि कभी मनुष्य का निःश्वास लग जाता है, तौ भी वह सूखने-सी लगती है। पता नहीं कि उसका हृदय कितना कोमल है? हाय, ऐसी लता का आदर करना कौन जानता है?"

(३)

हाय एइ भुमण्डले कत शत जन,
दण्डे दण्डे फूटे उठे अवनी-मण्डल लुटे,
शुनाय कतइ रूप यशेर कीर्त्तन;
किन्तु हेन म्रियमाण, सदा सङ्कुचित-प्राण,
रमणी, पुरुषगणे के करे यतन ?
स्वभाव मृदुल धीर, प्रकृतिटि सुगम्भीर,
बिरले मधुरभाषी मानस रञ्जन;
के जिज्ञासि ताहादेर करे सम्भाषण ?
समाजेर प्रान्तभागे, तापित अन्तरे जागे,
मेघे ढाका आभाहीन नक्षत्र येमन !
छुँयोना उहार देह करि निवारण,
लज्जावती लता उटि मानस-रञ्जन ।

"इस भूमण्डल पर क्षण-क्षण पर सैकड़ों आदमी ऐसे निकला करते हैं जो कि रूप और यश का कितना वर्णन करते हैं और सारी पृथिवी लूट लेते हैं । किन्तु इस तरह के म्रियमाण पुरुषों तथा रमणियों को, जो मन ही मन सङ्कुचित होकर बैठे रहते हैं, कौन परवा करता है । जो स्वभाव से ही धीर और गम्भीर होते हैं, साथ ही हृदय के भी कोमल होते हैं, बोलते कम हैं और जो बोलते हैं वह मधुर और प्रिय होता है, उन्हें कौन पूछता है, या उनसे कौन बातें करता है ? वे मेघ से ढके हुए तारे की भाँति मन ही मन दुखी होकर समाज के एक कोने में पड़े रहते हैं । (यही हाल लज्जावती लता का भी है ।) मैं रोकता हूँ, छुओ मत; छुओ मत; वह लज्जावती लता है, बहुत ही मनोहर है, बहुत ही मनोहर ।"

महादेव का विलाप

("दश महाविद्या" से उद्धृत ।)

[दीर्घ-भङ्ग त्रिपदी]

"रे सति रे सति," काँदिल पशुपति
पागल शिव प्रमथेश ।
योग-मगन हर तापस यत दिन
तत दिन ना छिल क्लेश ॥
शवहृदि आसन श्मशान विचरण
जगत-निरूपण ज्ञाने ।
भिक्षुक विषधर, तिरपित अन्तर,
आश्रमरति-निरबाणे ॥
"रे सति रे सति," काँदिल पशुपति,
विकलित क्षुब्ध पराणे ।
भिक्षुक बिषधर, तिरपित अन्तर,
आश्रमरति-निरबाणे ॥
जलनिधि बन्धने, अमृत उछालिल,
यत सुर बाँटिलि ताहे ।
अमम-भकत हर, हरषित अन्तर,
ग्रासिल गरल प्रबाहे ॥
"रे सति रे सति," काँदिल पशुपति,
बिकलित क्षुब्ध पराणे ।
भिक्षुक बिषधर हरषित अन्तर,
संसाररति निरबाणे ॥
कारण बारि'परे हरि कमलासन,
घृणा करि ये क्षण हेले ।

निर्घृण त्रिनयन, आह्लादे सेइ क्षण,
शव परि आसन मेले ॥
प्रीत कमलापति रतनवर पात्रे,
नर-भाले प्रीत गिरीश ।
पुष्पक बाहन बासव सुरपति,
वृषबर-बाहन ईश ॥
"रे सति रे सति," काँदिल पशुपति,
पागल शिव प्रमथेश ।
योग-मगन हर तापस यतदिन,
तत दिन ना छिल क्लेश ॥
भिक्षुक आछरम, घुचिल अतःपर,
तव सह मेलन शेष ।
हरष सुधा सम हृदय उचाटित,
दम्पती परणय बासे ।
कत सुखे यापन अहरह बत्सर,
दक्ष-दुहिता छिल पाशे ॥
योग धरमपर गृहस्थ धरमे
निगमन एखन शम्भु ।
पान पियास रत सबहि आगम
चारि बेद सागर अम्बु ।
"रे सति रे सति," काँदिल पशुपति
पागल प्रमथेश शम्भु ॥

"कामदेव के स्वामी पशुपति महादेव 'हे सती, हे सती' कहकर पागल की भाँति रोने लगे। जब तक तपस्वी महादेव योग में मग्न थे, तब तक उन्हें ज़रा भी क्लेश नहीं था। शव के ऊपर वे आसन लगाते हैं, श्मशान में विचरण करते हैं और ज्ञान ही से जगत् का निरूपण करते

हैं। वे भिक्षुक हैं, विषधर हैं और अपनी अन्तरात्मा में सदा तृप्त रहते हैं। निर्वाण अर्थात् संन्यास आश्रम में उनका अनुराग रहता है। वे महादेव विकल और क्षुब्ध हृदय से "हे सती, हे सती", कहकर रोने लगे। समुद्र का मन्थन करते समय अमृत निकला था, उसे सभी देवताओं ने मिलकर बाँट लिया। भस्म के प्रेमी महादेव ने मन ही मन प्रसन्न होकर उसमें से निकला हुआ विष ग्रहण कर लिया। हृदय में विकल और क्षुब्ध होकर वे पशुपति "हे सती, हे सती" कहकर रोने लगे। हरि और कमलासन (ब्रह्मा) ने जिस समय मानव शरीर के निर्जीव हो जाने पर घृणापूर्वक उसे त्याग दिया, उस समय घृणाहीन त्रिलोचन ने उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लिया और शव पर आसन लगाया। कमलापति जहाँ सुन्दर रत्नों के पात्र से प्रसन्न होते हैं, वहाँ गिरिजापति मनुष्य का मुण्ड पाकर प्रसन्न होते हैं। देवताओं के स्वामी इन्द्र पुष्पक विमान पर आरूढ़ होते हैं। इधर महादेवजी का बाहन बृषभ है। कामदेव के स्वामी पशुपति महादेव "हे सती, हे सती" कहकर रोये। तपस्वी महादेव जब तक योग में मग्न थे, तब तक उन्हें कोई क्लेश नहीं था। बाद को तुम्हारे (सती के) साथ जब मिलन हुआ तब भिक्षुक आश्रम का अन्त हो गया। अब दाम्पत्य-प्रणय का जीवन उनके उचटे हुए हृदय पर अमृत का काम कर रहा है और वे बहुत ही प्रसन्न हैं। दक्ष-सुता के साथ में उन्होंने कितने सुख से वर्षों एक दिन के समान बिता दिया। अब शम्भु संन्यास-धर्म के बाद गृहस्थ-धर्म का पालन कर रहे हैं। वे चारों वेद-रूपी सागर के जल-रूपी सभी शास्त्रों का तृषित भाव से पान कर रहे हैं। कामदेव के स्वामी शम्भु पागल की भाँति "हे सती, हे सती" कह कर रोये।"
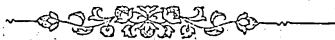
नवीनचन्द्र सेन

नवीनचन्द्र सेन चटग्राम ज़िला के रहनेवाले थे। इनका जन्म १८४४ ई० में नयापाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता गोपीमोहन सेन मुन्सिफ़ थे। बचपन में माता के अति लाड़-प्यार से ये उद्दण्ड बन गये थे। स्कूल में अपनी बदमाशी के लिये ये नामी थे और इन्होंने 'महादुष्ट' की उपाधि प्राप्त की थी।

१८६३ में चटग्राम हाई स्कूल से इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और दो वर्ष के बाद प्रेसिडेन्सी कालेज कलकत्ता से एफ़० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इस समय किसी कारण से इनके पिता ने रुपया भेजना बन्द कर दिया; लेकिन ये हताश नहीं हुए, प्राइवेट ट्यूशन से रुपया उपार्जन कर इन्होंने अपना अध्ययन जारी रक्खा। थोड़े दिनों के बाद ही इनके पिता की मृत्यु हुई। १८६८ में इन्होंने बी० ए० को डिग्री हासिल की। कुछ महीनों के बाद परीक्षा में सफल होने पर ये डिपुटी मजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये।

बचपन ही से ये काव्य-प्रिय थे। विद्यार्थी-जीवन में ये समय-समय पर कविताएँ लिखते थे और मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते थे। जब प्रेसिडेन्सी कालेज के प्रोफ़ेसर श्रीयुत प्यारीचरण सरकार 'एजुकेशन गज़ट' के सम्पादक थे, तब इनकी बहुत-सी कविताएँ उसमें प्रकाशित हुई थीं। १८६८ में 'अवकाश-रञ्जिनी' प्रकाशित हुई। इस काव्य में इन्होंने अपने जीवन के अनुभवों का वर्णन किया है। 'पलाशीर युद्ध' १८८२ में प्रकाशित हुआ और उस काव्य ने इनका नाम चारों ओर विस्तृत कर दिया। पीछे यह काव्य नाटक के रूप में लिखा गया और सफलतापूर्वक कई बार खेला गया। क्रमशः रङ्गमती, रैवतक, कुरुक्षेत्र और दूसरे ग्रन्थ प्रकाशित हुए। बङ्ग-साहित्य में इनका नाम अमर हो गया। इनके

दूसरे-दूसरे ग्रन्थों में प्रवासी-पथ, प्रभास, खृष्ट, भानुमती, और आत्मजीवनी उल्लेखनीय हैं। इनकी मृत्यु १९०९ में चटग्राम में हुई।

यहाँ इनकी कविता के कुछ अंश दिये जाते हैं:—

चिन्ता

सुशीतल सन्ध्यानिले जुड़ाते जीवन,
डुबाते दिवस-श्रम बिस्मृति-सलिले,
भ्रमिते भ्रमिते धीरे उठिलाम गिरिशिरे,
बासना, जुड़ाते स्रोतः-सम्भूत अनिले
कार्य्य-क्लान्त कलेवर सन्तापित मन।
रजनीर प्रतीक्षाय प्रकृति सुन्दरी
ललाटे सिन्दूर-बिन्दु परिल तखन,
रबि अस्तमित-प्राय, सुबर्णे मण्डित काय,
उजलिया गगनेर सुनील प्राङ्गण,
भासितेछे स्थाने-स्थाने रक्त कादम्बरी।
रञ्जित आकाशतले नील तरङ्गिणी,
देखाइछे प्रतिबिम्ब बिमल दर्पणे,
भासे ताहे मेघगण, काँपे तरु अगणन,
नाचिछे हिल्लोलमाला मन्द समीरणे,
बहितेछे गिरिमूल चुम्बिया तटिनी
मनेर आनन्दे गाय बिहङ्ग-निचय;
सुन्दर श्यामल माठे चरे गाभीगण;
निरुद्वेगे तरुतले, तटिनीर कलकले,
गाइछे राखाल-शिशु मधुर गायन,—
नाहि कोन चिन्ता, नाहि भविष्यत् भय।

ओइ देख तरुतले प्रफुल्ल-हृदय
गाइतेछे उच्चैःस्वरे, ना जाने कि गाय—
लतापाता जड़करि, कभु भाङ्गि कभु गड़ि,
हासिते-हासिते देख पड़िछे धराय;
हायरे, शैशवकाल सुखेर समय !
चिन्ता-काल-भुजङ्गिनी करे ना दंशन;
निराश प्रणय-दुःखे दहे न जीवन;
दुराकाङ्क्षा पारावार बिशाल लहरी तार
खेले ना हृदये आहा ! जाने ना एखन —
मानव-जनम तार दासत्व-जीवन।
हास हास हास शिशु ! नहे दिन दूर,
संसार-सागर-पारे बसिये यखन
बिषाद तरङ्ग-माला गणिते गणिते काला
डुबे प्रफुल्ल मुख, जानिते तखन,
निर्म्मल शैशव क्रीड़ा सुखेर स्वपन।
आमिओ इहार मत छिलाम निर्म्मल,
सतत छिलाम सुखे सुप्रसन्न मने,
आमार जीवन-कलि (दिते सुखे जलाञ्जलि)
के फुटाल, पोड़ाइते भीम हुताशने ?
के सुख-सागरे मम मिशाल गरल ?
केन वा फुटिल मम ज्ञानेर नयन,
केनइ बिबेकशक्ति हल बिकशित,
उथलिते अभागार शोकसिन्धु अनिवार,
निज हीन अवस्थाय करिते दुःखित,
केनइ भाङ्गिल मम शैशव स्वपन ?
"सुशीतल सन्ध्या की वायु में जीवन जुड़ाने के लिये, पिस्मृति-जल

में दिन के परिश्रम को डुबाने के लिये, धीरे-धीरे घूमता हुआ गिरि-शिखर पर चढ़ गया। स्रोतः-सम्भूत वायु में वासना, श्रम-क्लान्त कलेवर, सन्तप्त मन को जुड़ाने के लिये रजनी की प्रतीक्षा में प्रकृति सुन्दरी ने उस समय सिंदूर पहना। सूर्य्य अस्तप्राय है। रक्त कादम्बरी, सुवर्ण-मण्डित शरीर, गगन के नील प्राङ्गण को उज्ज्वल करती हुई भास रही है। रक्त आकाश में, विमल दर्पण में, नील तरङ्गिणी दीख पड़ती है। उसमें मेघ तैरते हैं, वृक्ष हिल रहे हैं, मन्द-समीर में तरङ्गें नाच रही हैं। गिरि-मूल को चूमती हुई नदी कहानी कह रही है। मन के आनन्द में विहग-समूह गा रहे हैं। सुन्दर श्यामल मैदान में गायें चर रही हैं। वृक्षों के नीचे नदी के कल-कल के साथ गोपालक शिशु निरुद्वेग गा रहे हैं। कोई चिन्ता नहीं है, भविष्यत् का कोई भय नहीं है। वह देखो, वृक्ष के नीचे उच्च स्वर से गा रहा है। जानता भी नहीं, क्या गाता है। लता-पत्रों को जोड़कर कभी तोड़ता है, कभी बनाता है, फिर हँसते-हँसते पृथ्वी पर लोट जाता है। हाय रे शैशव! सुख का समय! काल-सर्पिणी चिन्ता दंशन नहीं करती। जीवन निराश-प्रणय के दुःख से नहीं जलता। विशाल लहरों से युक्त दुराकांक्षा का समुद्र हृदय में नहीं खेलता। उस समय मानव-जीवन दासत्व के जीवन से परिचित नहीं रहता। शिशु, हँसो! हँसो! हँसा! वह दिन दूर नहीं है जब संसार-सागर के किनारे पर बैठकर विषाद की लहरें गिनते-गिनते तुम्हारा प्रफुल्ल मुख पीला पड़ जावेगा। तब जानोगे कि निर्म्मल शैशव की क्रीड़ा सुख का स्वप्न है। मैं भी इसी का-सा निर्म्मल था। सर्वदा मन सुख से प्रसन्न था। मेरी जीवन-कली (सुख को जलाञ्जलि देने के लिये), भयङ्कर अग्नि में जलाने के लिये किसने विकसित की? मेरे विशाल सुख-सागर में विष कौन था? मेरी ज्ञान की आँखें क्यों खुलीं? विचार की शक्ति क्यों विकसित हुई? अभागे के शोकसिन्धु उमड़ाने को, अपनी हीन अवस्था में दुखी करने को, शैशव का स्वप्न क्यों टूटा?"

पलासी का युद्ध

ब्रुटिशेर रणवाद्य बाजिल अमनि,
काँपाइया रणस्थल,
काँपाइया गङ्गाजल,
काँपाइया आम्रवन उठिल से ध्वनि !

नाचिल सैनिक-रक्त धमनी भितरे,
मातृकोले शिशुगण
करिलेक आस्फालन,
उत्साहे बसिल रोगी शय्यार उपरे।

निनादे समर रङ्गे नबाबेर ढोल,
भीमरवे दिगङ्गने
काँपाइया घने घने
उठिल अम्बर-पथे करि घोर रोल।

भीषण मिश्रित ध्वनि करिया श्रवण,
कृषक लाङ्गल करे,
द्विज कोषाकुषि धरे
दाँड़ाइल बज्राहत पथिक येमन।

अर्द्ध-निष्कोषित असि धरि योद्धगण,
बारेक गगन प्रति,
बारेक मा बसुमती
निरखिल, येन एइ जन्मेर मतन।

भागीरथी-उपासक आर्य्य-सुत गण,
भक्ति भरे किछु क्षण,
करि गङ्गा दरशन,
'गङ्गा माइ!' बले सर्बे डाकिल तखन।

इङ्गिते पलके मात्र सैनिक सकल,
बन्दुक सदर्प भरे,
तुलि निल अंसेपरे;
सङ्गिने कण्टकाकीर्ण हल रणस्थल।

बेगवती स्रोतस्वती भैरव गर्ज्जने,
सलिल सञ्चय करि,
धाय भीम बेग धरि,
प्रतिकूल शैल प्रति ताड़ित-गमने;

अथवा क्षुधार्त्त व्याघ्र, कुरङ्ग कानने
करे यदि दरशन,
दलि गुल्म-लता-बन,
तीरवत् छुटे बेगे मृग-आक्रमणे;

तेमति नवाब-सैन्य बीर अनुपम,
आम्रवन लक्ष्य करि,
एक स्रोते अस्त्र धरि,
छुटिल सकल येन कालान्तक यम।

अकस्मात् एकेबारे शतेक कामान,
करिल अनल बृष्टि,
भीषण संहार-दृष्टि!
कत श्वेत योद्धा ताहे हल तिरोधान।

अस्त्राघाते सुप्तोत्थित शार्दूलेर प्राय,
क्लाइभ निर्भय मन,
करि रश्मि आकर्षण,
आसिल तुरङ्गोपरे रक्षिते सेनाय!

"सम्मुखे !-सम्मुखे !"—बलि सरोषे गर्ज्जिया,
करे असि तीक्ष्ण-धार;
बृटिशेर पुनर्ब्बार
निर्बापित-प्राय वीर्य्य उठिल ज्वलिया।

इंराजेर बज्रनादी कामान सकल,
गम्भीर गर्ज्जन करि,
नाशिते सम्मुख अरि
मुहूर्त्तेके उगारिल कालान्त-अनल।

बिना मेघे बज्राघात चाषा मने गणि,
भये सशङ्कित प्राणे,
चाहिल आकाश पाने,
झरिल कामिनी-कत्त-कलसी अमनि।

पाखिगण सशङ्कित करि कलरव,
पशिल कुलाये डरे ;
गाभीगण छुटे रड़े—
बेगे गृहद्वारे गिये हाँफाल नीरव।

आबार, आबार, सेइ कामान गर्ज्जन!
उगारिल धूमराशि;
आँधारिल दश दिश;
बाजिल बृटिश-बाद्य जलद-निःस्वन।

आबार, आबार सेइ कामान गर्ज्जन!
काँपाइया धरातल,
बिदारिया रणस्थल,
उठिल से भीमरव, फाटिल गगन।

सेइ भीमरवे माति क्लाइभेर सेना,
बर्म्मे आवरित देह
केह अश्वे, पदे केह,
गले शत्रुमाझे, अस्त्रे बाजिल झन्झना।

खेलिछे बिद्युत् एकि धाँधिया नयन ?
शते शते तरवार
घुरितेछे अनिवार,
रबिकरे प्रतिबिम्ब करि प्रदर्शन।

छुटिल एकटि गोला रक्तिम बरण,
बिषम बाजिल पाये,
सेइ सांघातिक घाये
भूतले हइल मीरमदन पतन।

"हुर्रे, हुर्रे!"—करि गर्ज्जिल इंराज—
नबाबेर सैन्यगण
भये भङ्ग दिल रण;
पलाते लागिल सबे, नाहि सहे व्याज।

पद्यानुवाद

("मधुप" रचित पलासी के युद्ध से)

"बजा ब्रिटिश रण-वाद्य इसी क्षण करके घन-घन घोर।
कम्पित कर समर-स्थल को,
कम्पित कर गंगा-जल को,
कम्पित करके आम्र-विपिन को गूँजा रव सब ओर।

नाचा सुनकर उसे नसों में सैन्य जनों का रक्त ।
माँ की गोदी में बच्चे—
उछले सुनकर स्वर सच्चे,
उत्साहित होकर शय्या पर बैठे रुग्ण अशक्त ।

गरज उठा तब समर-रङ्ग से बज नवाब का ढोल ।
ऐसी गहरी गमक उठी,
जिससे धरती धमक उठी,
होने लगा वायु-मण्डल भी बारंबार विलोल ।

भीषण, मिली हुई, ध्वनि सुनकर चौंक-चौंक तत्काल ।
अरघा लिए हुए द्विजवर,
हल थामें किसान सत्वर,
ठिठके वज्राहत पन्थी ज्यों, हुआ हाल बेहाल ।

करके अहा अर्द्ध निष्कोषित तब अपनी तलवार,
एक बार पृथ्वी-तल को,
एक बार गगनस्थल को,
देखा सैनिक गण ने मानों यही आखिरी वार ।

भागीरथी-भक्त आर्य्यों ने भक्ति-भाव के साथ ।
क्षण भर पूर्ण दृष्टि भरके,
गङ्गा के दर्शन कर के,
नाद किया "जय गङ्गा माई" जोड़-जोड़कर हाथ ।

निमिष मात्र में सैन्य जनों ने इङ्गित के अनुसार
बन्दूकें निज कन्धों पर,
ले लीं दर्प-सहित तन कर,
सङ्गीनों से हुआ कण्टकित युद्धस्थल इस बार ।

वेगशालिनी सरिता जैसे करके भैरव घोर,
जाती है द्रुत हहराकर,
उमड़-उमड़कर, लहराकर,
करने को प्रतिकूल शैल पर तड़ित्-प्रहार कठोर।

अथवा देख मृगों को वन में क्षुधित व्याघ्र विकराल।
देर न करके वह पल भर,
पथ में गुल्म-लता दल कर,
करने को आक्रमण तीर-सा जाता है तत्काल।

वैसे ही तत्क्षण सिराज के सज्जित सैनिक-शूर।
आम्र-विपिन को लक्ष्य किये,
एक स्रोत से शस्त्र लिये,
दौड़े चण्ड दण्डधर यम-सम, रण के मद में चूर।

कोई सौ तोपों ने सहसा एक साथ रण ठान,
भीषण अनल वृष्टियाँ कीं,
शत संहार-सृष्टियाँ कीं,
तिरोधान होगये सैकड़ों वीर ब्रिटिश-सन्तान।

शराघात पाकर सुप्तोत्थित ज्यों शार्दूल दुरन्त।
हयारूढ़, निर्भीकमना,
खींचे हुए लगाम, तना,
सेना को सँभालने क्लाइव आया वहाँ तुरन्त।

"सम्मुख! सम्मुख!" गरज उठा वह दिखलाकर गाम्भीर्य।
कर की असि चमचमा उठी,
मुख-मुद्रा तमतमा उठी,
दीप्त हुआ फिर निर्वासित-सा ब्रिटिश-सैन्य बल-वीर्य।

करके तब उसकी तोपों ने वज्रनाद निस्सीम ।
मानो उत्तर देने को,
अथवा बदला लेने को,
उगली कालान्तक कृशानु की ज्वाला तत्क्षण भीम ।

समझ कृषक ने बिना मेघ के भीषण वज्राघात ।
देखा ऊपर को डर कर,
छाती काँप उठी थर थर,
हुआ चौंकने से सिर पर का कान्ता-कलश-निपात ।

घुसा कोटरों में कल-कल कर पक्षि-समूह सशङ्क ।
बाँ बाँ बाँ करके गायें,
भागीं झट दायें-बायें,
गृह-द्वार पर पहुँच हाँफने लगीं मौन सातङ्क ।

फिर भी, फिर भी उन तोपों का वही विकट हुङ्कार ।
किया धुँएँ ने अन्धेरा,
दशों दिशाओं को घेरा,
बजे बृटिश-रणवाद्य-भयङ्कर कर झर-भर भङ्कार ।

फिर भी फिर भी उन तोपों का वही विकट हुङ्कार ।
कम्पित करके भूतल को,
और विदीर्ण रणस्थल को,
उठा भीम रव, फटा गगन-सा, बरसे वज्राङ्गार ।

उसी भीम रव से प्रमत्त हो श्वेत शूर, सम-वेष,
धूम धूसरित देह तभी,
पैदल और सवार सभी
टूट पड़े अरिदल के ऊपर लोहा बजा विशेष ।

आँखें झुलसाकर क्या बिजली मचा रही यह धूम ?
शत शत असियाँ फिरती हैं,
शत्रु-सिरों पर गिरती हैं,
करके निज प्रतिबिम्ब निरीक्षण रवि-किरणों में घूम।

गोला एक अचानक छूटा लाल-लाल विकराल।
लगा पैर में वह आकर,
जिससे घनाघात पाकर,
पृथ्वी पर गिर पड़ा पेड़-सा मीर मदन तत्काल।

हुरें हुरें कहकर तत्क्षण गरज उठे अँगरेज़।
तब नवाब के सैनिक-गण,
भय से छोड़-छोड़कर रण,
भाग उठे पीछे को फिरकर सह न सके वह तेज।"

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

स्वर्गीय श्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर कवि-शिरोमणि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई थे। इनका जन्म १८४० में कलकत्ते में हुआ था और मृत्यु १९२६ में शान्ति-निकेतन में हुई। ये विद्या के प्रेमी और साहित्य के रसिक थे। मरण-काल तक इनका यह प्रेम और अनुराग एक-सा बना रहा। मृत्यु के दिन भी इन्होंने एक कविता लिखी थी।

बचपन में कृत्तिवासी रामायण और काशीरामदासी महाभारत को ये बड़े प्रेम-भाव से पढ़ते थे। बहुत छोटी अवस्था ही में इनकी साहित्यिक प्रवृत्ति मालूम होने लगी थी। जब ये सात वर्ष के थे, तभी ये अपने भावों को गद्य या पद्य में प्रकट किया करते थे।

ये पहले एक वर्नाक्यूलर स्कूल में भर्ती हुए। उसके बाद सेन्ट पाल स्कूल में चले गये। शुरू ही से इनका बँगला पढ़ने में जैसा चाव था वैसा अँगरेज़ी में नहीं था। लेकिन तो भी इन को अँगरेज़ी का अच्छा ज्ञान था। शेक्सपियर, बायरन और कीट्स के ये बड़े प्रेमी थे। इन्होंने अँगरेज़ी भाषा की कई दार्शनिक पुस्तकों का भी अध्ययन किया था।

इनके जीवन में कोई विशेष घटना नहीं हुई। ये प्रायः एकान्त ध्यान और अध्ययन में समय बिताया करते थे। जब ये साहित्यिक कार्य्य में लीन रहते, तब चिड़ियाँ और गिलहरियाँ इनके चारों ओर फुदकतीं, इन के शरीर पर भी चढ़ जातीं और निर्भय होकर खेलती थीं।

ये कहा करते थेः—

ब्रह्मानन्द यदे जाने सार,
भय नाइ आर किछुते तार।

इसी आनन्द की खोज में इन्होंने वृद्धावस्था व्यतीत की और जीवन के अन्तिम दिनों में इनको इसकी अनुभूति भी हुई। यह इनकी एक अन्तिम कविता 'द्विजी त्रिजल' से स्पष्ट है।

द्विजेन्द्रनाथ का मुख्य पद्यात्मक ग्रन्थ 'स्वप्न-प्रयाण' एक आध्यात्मिक काव्य है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपनी 'जीवन-स्मृति' में इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इनकी अन्यान्य काव्य-रचनाएँ ये हैंः—

१—ब्राह्म धर्म—अपने पिता (महर्षि देवेन्द्रनाथ) की इसी नाम की पुस्तक का यह छंदोबद्ध अनुवाद है।

२—मेघदूत—यह भी काव्य-रूपान्तर है और आरम्भ के प्रयास का फल है।

दार्शनिक होकर भी ये हास्य-रस के प्रेमी थे। इन की हास्य-रस की कविताओं में से, जिनमें कुछ मृत्यु के थोड़े ही वर्ष पहले रची गई थीं, 'गुम्फ-आक्रमण-काव्य' उल्लेखनीय है। इन्होंने अत्यन्त सादे तौर

से जोवन व्यतीत किया। यही अत्यधिक सादगी इनकी सब कविताओं में पाई जाती है।

इन के "स्वप्न-प्रयाण" नामक काव्य की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

कवि

कवि कहे—"काहारे दुषिबे केबा, सब पृथिवीर
एइ दशा निरखिया मन मोर हयेछे अधीर—
किछुते ना हय तृप्त! कि आछे ए छार भव-धामे?
आछे बटे प्रेम-रत्न! किन्तु कोथा! प्रेम शुधु नामे!
किन्तु कोथा हेन मन किछु याते नाहि फेर-फार?
कोथाय से मन, यार आछे बोध—हृदय सबार
एक छाँचे ढाला, केह नहे पर, एक बास-स्थान
सकल जग जनेर, क्षुधा-तृष्णा सबार समान॥"
सुसंग बलिल—"धन्य! सुखी तुमि दुःखेर ए धामे!
चिरजीवी हये थाक, धरणी पुरुक तव नामे!
चुड़ा हओ देशेर, कुलेर हओ उज्ज्वल माणिक।
धर्म्म-अर्थ-महत्त्वेर आलोके उजल' दिश दिक्।
शांति-देवी शियरे थाकुन जागि,' आशीर्वादमय
नयन-पंकज मेलि, निद्रा याव तुमि ये समय!
सुमंगल शांति आर हउन तोमार पार्श्व-चरी
शय्या-हते बाहिराओ येइ-काले निद्रा परिहरि॥
कवि तुमि—किसेर दुःख तोमार, व्यथा पेले प्राणे
फुटिया कहिते पार' वेदना, जगत-जन काने!
याहा शुनि' अशांत नितांत ये बालक—खेला त्यजि'
से-ओ बसे' शांत हये। से-ओ तार भाव-रसे मजि'॥

हले सुखी प्रभात डाकिया आन' आँधार निशीथे !
कोकिले डाकाय आर कुहु कुहु करुण-कणि शीते !
प्रकृतिरे एमनि करेछो बश, हृदयेर धन
डालि दिया, हेलाय करिते पार असाध्य-साधन !
चिरकाल तुमि, अरण्येर पारवी थाकिबे ओ तथा
चिरकाल ! बलितेछि आमि सेइ अरण्येर कथा।
ये अरण्य। बातासेर सने मुखामुखि कथा कय
डरे ना झड़े-झञ्झा दिगंत-प्राचीरे बद्ध नय।
आपने आपनि रहे बिस्तारिया सदानंद-शाखा।"
कवि कहे—"एतक्षण जड़-सड़ छिल मोर पाखा।
स्नेह-रूप अमृतेर छिटाय जड़ता हेल दूर !
चरण एखन देओ तृप्त-रस दियाछ प्रचुर।"

"कवि कहता है, कौन किसको दोष देगा ? सारी पृथिवी की यही दशा देखकर मन अधीर हो जाता है। किसी से तृप्ति नहीं होती। इस असार संसार में है हो क्या ? प्रेम-रत्न है, पर कहाँ ? प्रेम तो सिर्फ़ नाम का है। ऐसा मन कहाँ है, जिसमें फेरफार नहीं ? वह मन कहाँ है जो समझता है कि सभी का हृदय एक साँचे में ढला है। कोई पर नहीं है, सभी का एक वास-स्थान है, भूख-प्यास सभी को समान रूप से लगती है। सुसंग बोला—तुम धन्य हो ! तुम इस दुःख के धाम में सुखी हो। चिरजीवी बने रहो, संसार तुम्हारे यश से भर जाय। तुम देश के मस्तक बनो, कुल की ज्वलन्त मणि बनो, धर्म्म और अर्थ के महत्त्व से दशों दिशायें उज्ज्वल कर दो। जिस समय तुम सोओ, शान्तिदेवी आशीर्वादमय नयन-पङ्कज खोलकर तुम्हारे सिरहाने जागती रहें। जब तुम नींद छोड़ शय्या से बाहर आओ, सुमङ्गल शान्ति तुम्हारी पार्श्वचरी हो। तुम कवि हो। तुम्हें दुःख किसका है ? हृदय में व्यथा पाने पर वेदना को खुलकर संसार के कानों में व्यक्त कर सकते हो।

उसे सुनकर जो नितान्त चञ्चल बालक है, वह भी खेल छोड़कर शान्त हो बैठेगा। वह भी उसके भाव-रस में डूब जायगा। यदि तुम सुखी हो, अन्धकारमय निशीथ में प्रभात बुला लाओ ! ठण्डे शीत में कोकिल के कुहू-कुहू शब्द को बुला लाओ। हृदय का धन ढालकर तुमने प्रकृति को इस तरह अपने अधीन कर लिया कि तुम अनायास ही असाध्य को साध्य बना सकते हो। तुम सदा अरण्य के पक्षी हो। चिरकाल वैसे ही रहोगे भी। मैं उस अरण्य की बातें कहता हूँ जो हवा से आमने-सामने बात करता है। जो झड़-झपट को नहीं डरता और जो दिगन्त के प्राचीर से बँधा नहीं है। वह स्वयं अपनी आनन्द की शाखा फैलाये रहता है। कवि ने कहा—अब तक मेरे पंख जड़ थे। अब तुमने स्नेह-रूपी अमृत के छींटे दे उसकी जड़ता दूर कर दी। अब मुझे तुम अपने चरणों का आश्रय दो, तृप्ति-रस तो बहुत दिया।"

आधुनिक काल

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ का जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर था। कलकत्ते का जोड़ासाँको मुहल्ला इनका निवास-स्थान है। जोड़ासाँको के ठाकुर-घराने की भाँति प्रसिद्ध वंश केवल कलकत्ता या बङ्गाल ही क्या, प्रायः सारे देश में विरला ही कोई होगा। यदि हम इस घराने को लक्ष्मी और सरस्वती का संगम कहें तो अनुचित न होगा। बड़े घराने के लड़के होने पर भी रवीन्द्रनाथ को लड़कपन में बहुत सादे तौर से रहना पड़ता था। उस समय इनमें शौक़ीनी का नाम तक न था। इस सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं कहा है कि "हमारे भोजन में विलासिता का लेश तक न था। कपड़े भी साधारण पहनने पड़ते थे।" रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर अपनी विद्वत्ता, ज्ञान, सचाई तथा चरित्र के प्रभाव से मनुष्य-जाति के सिरताज थे। सबसे पहले उन्होंने ही ब्राह्म-समाज की स्थापना की थी। वे अपने समय के अद्वितीय पुरुष थे। उनके धार्मिक भाव ऊँचे थे। गुणी लोग उन्हें महर्षि कहने लगे थे। रवीन्द्रनाथ का लड़कपन का जीवन बड़ा ही

विचित्र था। घर से निकलने का रुकावट होने पर भी इनके हृदय में आनन्द का अभाव न था। पेड़-पौधे, फल-फूल, पक्षियों का गाना, मेघ तथा जल आदि देखकर इनका हृदय आनन्द में मग्न हो जाता था। ये सब मानों इनसे बातचीत करने लगते थे। जब ये कुछ बड़े हुए, तब स्कूल जाने लगे। परन्तु बन्धन होने के कारण इन्हें वह पढ़ाई ज़रा भी पसन्द न आई। स्कूल का शासन बड़ा बेढंगा था। अगर कोई विद्यार्थी अपना पाठ न सुना सकता तो वह बेंच पर खड़ा कर दिया जाता और उसके हाथ पर स्लेट के किनारे से बड़ी मार पड़ती। उसे दोपहरी की धूप में घंटों नंगे पैर खड़ा रहना पड़ता। मार-पीट तो बात-बात में होती।

रवीन्द्रनाथ केवल सात ही आठ वर्ष की अवस्था से कविता करने लग गये थे। लिखने के बाद जब तक कविता सुनाई न जाय, तब तक चित्त को शान्ति नहीं मिलती। इस विषय में रवीन्द्रनाथ भी उदासीन न थे। किसी न किसी को पकड़कर ये अपनी कविता सुनाने लगते। इनके बड़े भाई अपने छोटे भाई की कविता सुनकर बड़े ख़ुश हुए और वह एक-एक करके घर के सभी लोगों को सुना गये।

दोपहर के समय जब चारों ओर सन्नाटा हो जाता तब बाहर की ओर देख-देखकर रवीन्द्रनाथ कितनी ही कल्पनायें करते। मस्तक पर नीला आकाश था, सूर्य की किरणें चमचमा रही थीं, आकाश के कोने से बीच-बीच में चील का कर्कश स्वर उनके कानों में आ-आ पहुँचता, रास्ते से फेरीवाला "ले चूड़ी, ले खिलौना" पुकारता हुआ चला जाता। सिर के ऊपर का नीला आकाश, चमचमाती हुई सूर्य की किरणें, नारियल के वृक्षों की पत्तियाँ, पृथिवी, जल, दूर के घर आदि इकट्ठे होकर इनका मन बिलकुल उदास कर देते।

रास्ते से कुली चला आ रहा है, माता गोद में बच्चे को लेकर खड़ी है, एक गाय दूसरी गाय को चाट रही है, ये सब तो बहुत

साधारण बातें हैं, इन्हें हम लोग रात-दिन देखा करते हैं; परन्तु हमारा इनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं जाता। ये ही साधारण वस्तुयें रवीन्द्रनाथ के हृदय में ऐसा भाव जाग्रत कर देतीं कि उसका वर्णन करना असम्भव है। रवीन्द्रनाथ के हृदय के ये ही सुर विश्व-जगत् के मिलन के सुर हैं। इनके समस्त गीतों और कविताओं में ये सुर क्रमशः बजने लगे। जीवन के मार्ग में ये जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये, इनका यह सुर भी ऊँचा होकर ऊँचे परदे पर उठता गया। मिलन का सुर अलापना ही इनके समस्त जीवन की साधना है।

केवल इसी प्रकार के सुर अलापते-अलापते इनके जीवन के तीस वर्ष बीत गये। शेष जीवन भी कदाचित् इसी प्रकार बीत जाता; परन्तु इनके पिता देवेन्द्रनाथ ने उस समय इन पर ज़मींदारी की देख-रेख का भार छोड़ दिया। यह काम अपने हाथों में लेने में पहले रवीन्द्रनाथ को बड़ा डर मालूम पड़ता था; परन्तु करते क्या? पिता की आज्ञा थी; अतएव विवश होकर इन्हें अपनी ज़मींदारी स्यालदह को जाना ही पड़ा।

सन् १९१३ ई० में रवीन्द्र बाबू को 'नोबुल' पुरस्कार मिला। यह पुरस्कार संसार के सर्व-श्रेष्ठ विद्वानों को दिया जाता है। एशिया में पहले-पहल यह केवल इन्हीं को मिला था।

इसके बाद कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने भी आपको डी-लिट् (डाक्टर आफ़ लिटरेचर) अर्थात् साहित्याचार्य की उपाधि दी। इस उपाधि से रवीन्द्रनाथ के सम्मान में तो इतनी वृद्धि नहीं हुई, बल्कि विश्वविद्यालय स्वयं धन्य हो गया। गवर्नमेंट से भी इन्हें नाइट की उपाधि मिली थी; परंतु कुछ दिनों के बाद इन्होंने यह उपाधि लौटा दी।

केवल नोबुल-पुरस्कार ही के मिलने से रवीन्द्रनाथ की इतनी प्रतिष्ठा और यश नहीं बढ़ा। १९२० ई० में इन्होंने फिर योरप की यात्रा की थी। विदेशी साहित्य और सभ्यता से सहानुभूति रखते हुए भी ये

विदेशियों का अनुकरण करने के पक्षपाती नहीं हैं। पृथ्वी की अन्य जातियों की अपेक्षा हमारी सभ्यता बहुत पुरानी है, हम लोग किससे हीन हैं जो भिखारी की भाँति विदेशियों के पास याचना करने जायँगे? यदि हम उनसे लेंगे तो उसके बदले में उन्हें भी कुछ देंगे, इसी आदान-प्रदान के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ने इस यात्रा में विजय प्राप्त की थी।

इस बार योरप पहुँचने से बहुत पहले ही इनकी गीताञ्जलि का प्रचार वहाँ के कई देशों में हो गया था। उन देशों में गीताञ्जलि का बड़ा आदर हुआ। साहित्य के मर्मज्ञ बार-बार पढ़कर भी गीताञ्जलि से तृप्त न हो सके। इसके सम्बन्ध में वहाँ बड़ी-बड़ी आलोचनायें होने लगीं। एक बार फ्रांस के किसी पत्र में रवीन्द्र बाबू की बड़ी प्रशंसा छपी थी। प्रशंसा करनेवाला भी एक फ्रांसीसी था। उसने जो कुछ लिखा था, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"कवि के नाम का अर्थ है, रवि अर्थात् सूर्य के राजा का राजा और उनकी वंशगत उपाधि का अर्थ है देवता। जो लोग उनकी रचनाओं को पढ़ते हैं, जो लोग उनका दर्शन करते हैं, जो लोग उनकी वाणी को सुना करते हैं, वे ही इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि ऐसा महत्त्वपूर्ण नाम इनसे अधिक और किसी भी व्यक्ति को नहीं शोभा दे सकता।"

रवीन्द्रनाथ की अवस्था जब सत्तर वर्ष की पूरी हो गई, तब उनके बोलपुर के स्कूल के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने मिलकर उनका जन्मोत्सव मनाया और उन्हें श्रद्धा तथा प्रीति की पुष्पाञ्जलि अर्पण की। पीछे से कलकत्ते के बङ्गालियों ने मिलकर टाउनहाल में एक सभा का प्रबन्ध किया। फिर देश भर के प्रमुख स्थानों में ऐसा उत्सव मनाया गया। कवि का सम्मान तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करना ही ऐसे उत्सवों का उद्देश्य था। अपने इस जीवन में उन्होंने काव्यों, कविताओं वक्तृताओं तथा गीतों से बँगला-साहित्य में इतने भाव, इतनी नवीनता

और इतनी शक्ति उत्पन्न कर दी कि उसके प्रभाव से बंगाल का मुख उज्ज्वल हो गया। रवीन्द्रनाथ का सम्मान करने के लिए जैसी तैयारी हुई थी वैसी और कभी नहीं हुई। उस दिन सारा टाउनहाल खचाखच भर गया था। कहीं तिल रखने की भी जगह न थी। जो लोग ज़रा भी पिछड़ कर आये, उन्हें या तो रास्ते में खड़ा रहना पड़ा, या हताश होकर लौट जाना पड़ा। उस सभा में बंगाल के प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति इकट्ठे हुए थे। पहले-पहल कवि को चाँदी के पात्र में अर्घ्य दिया गया। तब उनके गले में सोने की एक जंज़ीर और फूलों की माला पहनाई गई। सोने के थाल में रखकर एक बहुत ही मूल्यवान् सोने का कमल और हाथी-दाँत पर टाँकी से खुदा हुआ अभिनन्दन-पत्र उपहार दिया गया। साथ ही समस्त बङ्गालियों की श्रद्धा, प्रीति तथा सम्मान भी दिया गया।

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा सचमुच अलौकिक है। वे केवल कवि ही नहीं, बल्कि वक्ता भी हैं, बहुत अच्छे नट हैं, समाज-सुधारक हैं, धर्म-प्रवर्तक हैं, देश-हितैषी हैं, या यों कहिए कि सभी कुछ हैं। रवीन्द्रनाथ को छोड़कर संसार में और किसी मनुष्य में इतने भावों का समावेश नहीं देखने में आया। उनकी प्रतिभा केवल बङ्गाल ही में नहीं क़ैद रही, बल्कि चारों ओर फैल गई है। यहाँ तक कि वह सात समुद्र पार इँग्लैंड तथा योरप के अन्य देशों में भी टकराने लगी है।

रवीन्द्रनाथ के प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं—

काव्य

कथा, कड़ि ओ कोमल, चित्रा, खेया, प्रभात-संगीत, सांध्य-संगीत, शिशु, सोनार तरी, मानसी, गीताञ्जलि, नैवेद्य, पूरबी, महुया।

गल्प और उपन्यास

गल्प-गुच्छ (पाँच भाग), नौका-डुबी, बौठाकुरानीर हाट, चोखेर

वालि, राजर्षि, गोरा, घरे-बाहिरे, योगायोग (हिन्दी—कुमुदिनी), शेषेर कविता ।

नाटक और प्रहसन आदि

गोलाय गलद, प्रकृतिर प्रतिशोध, मुकुट, राजा, राजा ओ रानी, विसर्ज्जन, चिरकुमार सभा, मालिनी, ऋतु-उत्सव, शारदोत्सव, मुक्तधारा, रक्त करबी, नटराज, तपती ।

रवीन्द्र बाबू को कुछ कवितायें यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

(१)

येते नाहि दिब

दुयारे प्रस्तुत गाड़ि; बेला द्विप्रहर;
हेमन्तेर रौद्र क्रमे हतेछे प्रखर ।
जनशून्य पल्लिपथे धुलि उड़े याय
मध्याह्न बातासे; स्निग्ध अशखेर छाय
क्लान्त वृद्ध भिखारिणी जीर्ण बस्त्र पाति
घुमाये पड़ेछे; येन रौद्रमयी राति
झाँ-झाँ करे चारि दिके निस्तब्ध निझुम;—
शुधु मोर घरे नाहि विश्रामेर घुम ।
गियेछे आश्विन । पूजार छुटिर शेषे
फिरे येते हबे आजि बहुदूर देशे
सेइ कर्म्मस्थाने । भृत्यगण व्यस्त ह'ये
बाँधिछे जिनिषपत्र दड़ादड़ि ल'ये,
हाँकाहाँकि डाकाडाकि एघर ओघरे ।
घरेर गृहिणी, चक्षु छलछल क' रे,
व्यथिछे बक्षे र काछे पाषाणेर भार,
तबु ओ समय तार नाहि काँदिबार

एक दण्ड तरे; बिदायेर आयोजने
ब्यस्त हये फिरे; यथेष्ट ना ह' ये मने
यत बाड़ बोझा। आमि बलि "ए कि काण्ड!
एत घट एत पट हाड़ि सरा भाण्ड
बोतल बिछाना बाक्स राज्येर बोझाइ
कि करिब लये किछु एर रेखे याइ
किछु लइ साथे।"

"द्वार पर गाड़ी तैयार है, दोपहर का समय है, हेमन्त की धूप क्रमशः कड़ी हुई जा रही है। निर्जन देहात की सड़क पर मध्याह्न-पवन के साथ धूल उड़ी जा रही है। अश्वत्थ वृक्ष की स्निग्ध छाया में थकी हुई बूढ़ी भिखारिन फटे चिथड़ों को बिछाकर सो गई है; जैसे रौद्रमयी रात्रि झाँ-झाँ कर रही हो। चारों ओर एकदम सुनसान है; केवल मेरे ही घर में विश्राम की नींद नहीं है। आश्विन बीत गया। पूजा की छुट्टी ख़तम हो चुकी, अब बहुत दूर के देश में काम पर फिर जाना होगा। नौकर सभी हलचल कर, रस्सी लेकर चीज़-वस्तु बाँध रहे हैं, इस कमरे से उस में दौड़-धूप हल्ला-गुल्ला मच रहा है। गृहिणी की आँखों में आँसू भरे हैं, पत्थर का सा बोझ उनके हृदय को व्यथित कर रहा है। तब भी उन्हें एक दण्ड भी रोने का समय नहीं है; बिदाई के आयोजन में व्यस्त हुई फिरती हैं और काफ़ी न समझकर बोझ बढ़ाये जाती हैं। मैं कहता हूँ "यह कैसा बखेड़ा है! इतना लोटा-थाली, हाँड़ी-पतकी, बोतल, बिछौना, बक्स सभी दुनिया भर का सामान ले जाकर क्या करूँगा? इसमें से कुछ रख जाता हूँ और कुछ साथ ले जाता हूँ।"

से कथाय कर्णपात
नाहि करे कोनो जन। "कि जानि दैवात्
एटा ओटा आवश्यक यदि हय शेषे

तखन कोथाय पाबे बिभुँइ बिदेशे !—
सोना-मुग सरु चाल सुपारि ओ पान;
ओ हाँड़िते ढाका आछे दुइ चारि खान
गुड़ेर पाटालि; किछु झुना नारिकेल;
दुइ भाण्ड भाल राइ-सरिषार तेल;
आमसत्व आमचुर; सेर दुइ दूध;
एइ सब शिशि कोटा ओषुध बिषुध।
मिष्टान्न रहिल किछु हाँड़िर भितरे,
माथा खाओ, भुलियो ना,खेयो मने क'रे।"
बुझिनु युक्तिर कथा बृथा बाक्यव्यय,
बोझाइब उँचु पर्व्वतेर न्याय।
ताकानु घड़िर पाने, तार परे फिरे
चाहिनु प्रियार मुखे; कहिलाम धीरे
"तबे आसि।" अमनि फिराये मुखखानि
नतशिरे चक्षुपरे बस्त्रांचल टानि,
अमङ्गल अश्रुजल करिल गोपन।
बाहिरे द्वारेर काछे बसि' अन्यमन
कन्या मोर चारि बछरेर; एतक्षण
अन्य दिने ह'ये येत स्नान समापन,
दुटि अन्न मुखे ना तुलिते आँखिपाता
मुदिया आसित घुमे; आजि ता'र माता
देखे नाइ ता'रे;एत बेला ह'ये याय
नाइ स्नानाहार। एतक्षण छायाप्राय
फिरिते छिल से मोर काछे काछे घेंसे
चाहिया देखित छिल मौन निर्निमेषे
बिदायेर आयोजन। श्रान्त देहे एबे

बाहिरेर द्वार प्रान्ते कि जानि कि भेबे
चुपिचापि बसेछिल । कहिनु यखन
"मागो, आसि" से कहिल बिषण्ण नयन
म्लान मुखे "येते आमि दिब ना तोमाय !"

येखाने आछिल ब'से रहिल सेथाय,
धरिल ना बाहु मोर, रुधिल ना द्वार,
शुधु निज हृदयेर स्नेह-अधिकार
प्रचारिल—"येते आमि दिव ना तोमाय" !

तबुओ समय ह'ल शेष, तबु हाय
येते दिते ह'ल ।

"उन बातों पर कोई कान ही नहीं करता । किसी दिन संयोग-वश इनकी भी ज़रूरत पड़ जाय । तब उस विदेश में इन्हें कहाँ पाओगे !—सोना-मूँग, महीन चावल, सुपारी और पान, दो-चार चक्के गुड़ उस हाँड़ी में ढँका हुआ है । कुछ नारियल, दो मटकी राई-सरसों का अच्छा तेल, आमचुर और अमावट, क़रीब दो सेर दूध; और इन सब शीशियों में कुछ दवा-दारू हैं । हाँड़ी में कुछ मिठाइयाँ हैं, तुम्हें मेरे सिर की क़सम, भूलना नहीं, ज़रूर खाना ।" सभी युक्ति की बातें समझ गया । अब कुछ कहना व्यर्थ है । पहाड़ की तरह ऊँची बोझाई हुई है । घड़ी की ओर देखकर प्रिया का मुख देखा; धीरे से कहा—"अच्छा तो अब चलता हूँ ।" वैसे ही उसने मुँह फिराकर सिर नीचा कर, आँखों पर आँचल खींचती हुई अमंगल आँसुओं को छिपा लिया । बाहर द्वार पर मेरी चार वर्ष की बच्ची अन्यमनस्क होकर बैठी थी । और दिन होता तो अब तक नहा चुकी होती ।" दो दाने मुँह में डाले बिना नींद से आँखें मुँद जाती थीं । आज उसकी माँ ने उसका ख़यालभी नहीं किया । इतना

समय होगया, अभी तक उसका स्नानाहार नहीं हुआ। अभी तक छाया की नाईं मेरे पीछे-पीछे वह फिरती रही और अनिमेष दृष्टि से बिदाई की तैयारी देख रही थी। थके-माँदे शरीर से न मालूम क्या सोचकर बाहर दरवाज़े पर आकर अब चुप-चाप बैठी थी। जब मैंने कहा—"बेटी, जाता हूँ" तब उसके नेत्र विषादमय हो गये। मलिनमुख होकर उसने कहा,—"तुम्हें मैं न जाने दूँगी।" वह जहाँ बैठो थी, वहीं बैठी रही; उसने मेरी बाँह नहीं पकड़ी, दरवाज़ा रोककर नहीं खड़ी हुई, केवल उसने अपने हृदय के स्नेह-अधिकार को प्रकाशित किया—"तुम्हें मैं जाने न दूँगी।" तब भी समय आ गया, तब भी हाय, जाने देना पड़ा।"

ओरे! मोर मूढ़ मेये,
के रे तुइ, कोथा ह'ते कि शकति पेये
कहिलि एमन कथा, एत स्पर्द्धा भरे—
"येते आमि दिब ना तोमाय!" चराचरे
काहारे राखिनि धरे दुटि छोटो हाते,
गरबिनि, संग्राम करिबि कार साथे
बसि गृहद्वार प्रान्ते श्रान्त क्षुद्र देह,
शुधु लाये ओइटुकु बुकभरा स्नेह?
व्यथित हृदय हते, बहु भये लाजे
मर्म्मेर प्रार्थना शुधु व्यक्त करा साजे
ए जगते,—शुधुबे'ले राखा, "येते दिते
इच्छा नाहि।" हेन कथा के पारे बलिते
"येते नाइ दिब!" शुनि तोर शिशुमुखे
स्नेहेर प्रबल गर्व्ववाणी, सकौतुके
हासिया संसार टेने निये गेल मोरे,
तुइ शुधु पराभूत चोखे जल भरे

दुयारे रहिलि बेसे छबिर मतन,
आमि देखे चले एनु मुछिया नयन।
चलिते चलिते पथे हेरि दुइ धारे
शरतेर शस्यक्षेत्र नत शस्यभारे
रौद्र पोहाइछे। तरुश्रेणी उदासीन
राजपथ पाशे, चेये आछे सारा दिन
आपन छायार पाने। बहे खरबेग
शरतेर भरा गंगा। शुभ्र खण्ड मेघ
मातृदुग्ध-परितृप्त सुखनिद्रारत
सद्योजात सुकुमार गोबत्सेर मतो
नीलाम्बरे शुये। दीप्त रौद्रे अनावृत
युगयुगान्तर क्लान्त दिगन्त बिस्तृत
धरणीर पाने चेये फेलिनु निःश्वास।
कि गभीर दुःखे मग्न समस्त आकाश
समस्त पृथिबी! चलितेछि यत दूर
शुनितेछि एकमात्र मर्म्मान्तिक सुर,
"येते आमि दिब ना तोमाय!" धरणीर
प्रान्त ह'ते नीलाभ्रेर सर्ब्बप्रान्ततीर
ध्वनितेछे चिरकाल अनाद्यन्त रवे
येते नाहि दिब! येते नाहि दिब सबे"
कहे "येते नाहि दिब!" तृण क्षुद्र अति
ता'रे ओ बाँधिया बक्षे माता बसुमती
कहिछेन प्राणपणे "येते नाहि दिब!"
आयुक्षीण दीपमुखे शिखा नि'ब—नि'ब
आँधारेर ग्रास ह'ते के टानिछ ता'रे
कहितेछे शतबार, "येते दिब ना रे!"

"अरी मेरी मूढ़ बच्ची, तू कौन है? कहाँ से कौन शक्ति पाकर इतनी स्पर्द्धा के साथ ऐसी बात तू बोली—"तुम्हें मैं न जाने दूँगी।" इस चराचर में तू किसे अपने नन्हे हाथों से पकड़ कर रखेगी? अरी भिखारिन (ग़रीबिन) किसके साथ संग्राम करेगी? तू अपना श्रान्त और क्षुद्र शरीर लेकर हृदय भर स्नेह लिये हुए गृह-द्वार पर बैठी रहती है। केवल व्यथित हृदय से निकली हुई प्रार्थना को भय और लाज से व्यक्त करना इस संसार में नहीं शोभा देता है। केवल इतना ही कहना ठीक है कि "जाने देने को जी नहीं चाहता।" किन्तु ऐसी बात कौन कह सकता है कि "तुम्हें न जाने दूँगा"। तुम्हारे नन्हें से मुख से यह स्नेहमय गर्व-वाणी सुनकर संसार कौतुक से साथ हँसकर मुझे खींच ले गया। तू केवल अपने नेत्रों में जल भरकर चित्र के समान द्वार पर ताकती बैठी रह गई। मैं भी देखकर आँखें पोंछता चला गया। रास्ता चलते-चलते देखता हूँ कि दोनों तरफ़ शरद् ऋतु के धान के पौधे दानों के भार से झुके हुए हैं। धूप खतम हो रही है। क़तार के क़तार वृक्ष सुनसान सड़क की बग़ल में अपनी छाया की ओर सारे दिन ताकते रहे हैं। शरत्काल की भरी गङ्गा तेज़ी से बहती जाती है। मेघ के उजले टुकड़े, माता का दूध पीकर अघाये हुए, सुख की नींद सोने वाले गाय के सुकुमार सद्यःजात बछड़े की नाईं नीलाकाश में सोये हुए हैं। तीखी धूप में खुली हुई, युगयुगान्तर की थकी हुई और दिगन्त में फैली हुई धरणी की ओर देखकर मैंने एक लम्बी साँस ली। किस गंभीर दुःख में समस्त आकाश और पृथिवी मग्न है। जितनी दूर जाता हूँ, केवल वही मर्मस्पर्शी-सुर सुनता हूँ—"तुम्हें मैं न जाने दूँगी।" धरणीप्रान्त से लेकर नीलाकाश के सभी प्रान्त-तीर तक अनादि अनन्त शब्द से प्रतिध्वनित हो रहा है—"जाने नहीं दूँगी, जाने नहीं दूँगी।" सभी कहते हैं—"जाने नहीं दूँगा।" तृण बहुत छोटी-सी वस्तु है। उसे भी अपनी छाती से आबद्ध करके मानो माता वसुमती प्राणपण से कह रही हैं,

"जाने नहीं दूँगी।" आयुहीन दीपक की बत्ती की शिखा बिलकुल बुझने पर है। अँधेरे की ओर से उसे खींच कर तुम कौन बार बार कह रहे हो—"जाने नहीं दूँगा, रे।"

(२)

जन्म-कथा

खोका माके शुधाय डेके—
"एलेम आमि कोथा थेके,
कोन् खाने तुइ कुड़िये पेलि आमारे।
मा शुने कय हेसे केँदे
खोकारे तारे बुके बेंधे,
"इच्छा ह'ये छिलि मनेर माझारे।
छिलि आमार पुतुल-खेलाय,
भोरे शिवपूजार बेलाय
तोरे आमि भेङेछि आर गड़ेछि।
तुइ आमार ठाकुरेर सने
छिलि पूजार सिंहासने,
ताँरि पूजाय तोमार पूजा करेछि।
आमार चिरकालेर आशाय,
आमार सकल भालोबासाय,
आमार मायेर दिदिमायेर पराणे—
पुराणो एइ मोदेर घरे
गृहदेवीर कोलेर परे
कतकाल ये लुकियेछिलि के जाने!
यौवनते यखन हिया
उठेछिलो प्रस्फुटिया
तुइ छिलि सौरभेर मतो मिलाये,

आमार तरुण अङ्गे अङ्गे
जड़िये छिलि सङ्गे सङ्गे
तोर लावण्य कोमलता बिलाये।
सब देवतार आदरेर धन,
नित्यकालेर तुइ पुरातन,
तुइ प्रभातेर आलोर समवयसी—
तुइ जगतेर स्वप्न ह'ते
एसेछिस् आनन्द स्रोते
नूतन हये आमार बुके बिलसि।
निर्निमेषे तोमाय हेरे
तोर रहस्य बुझिने रे
सबार छिलि आमार हलि केमने
ओइ देहे एइ देह चुमि
मायेर खोका ह'ये तुमि
मधुर हेसे देखा दिले भुवने।
हाराइ हाराइ भये गो ताइ
बूके चेपे राखते ये चाइ,
केँदे मरि एकटु स'रे दाँड़ाले।
जानिने कोन मायाय फेँदे
विश्वेर धन राखबो बेँधे
आमार ए क्षीण बाहु-दुटिर आड़ाले॥

बच्चा माँ को पुकार कर पूछता है—"मैं कहाँ से आया? तूने मुझे कहाँ पाकर उठा लिया?" माँ सुनकर हँस पड़ी। फिर रोती हुई बच्चे को छाती से लगाकर कहने लगी।

"मेरे मन में इच्छा होकर तू था, मेरी गुड़िया के खेल में तू था, भोर की शिवपूजा में तू था। तुझे मैंने तोड़ा है और गढ़ा है। तू मेरे

ठाकुरजी के साथ पूजा के सिँहासन पर था, उनकी पूजा में मैंने तेरी पूजा की है। मेरे चिरदिन की आशा में, मेरे सारे प्यार में, मेरी माँ और नानी के प्राणों में, मेरे इस पुराने घर में गृहदेवी की गोद से परे कौन जानता है, कितने काल से तू छिपा हुआ था। जवानी में जब हृदय प्रस्फुटित हो उठा था, तब तू सौरभ की नाईं मेरे तरुण अंग अंग में मिश्रित छिपा हुआ था। और साथ-साथ अपनी लावण्य-कोमलता को लुटाकर मुझ में जकड़ा हुआ था। तू सभी देवताओं के आदर का धन है, तू नित्य काल का पुरातन है, और तू है प्रभातालोक का समवयस्क। तू जगत के स्वप्न से आनन्द के स्रोत में नवीन होकर मेरी गोद में विलास करने आया है! मैं अपलक नयनों से भी तुझे देखकर तेरा रहस्य नहीं समझती। तू सब का था, मेरा किस तरह हुआ? उस देह से इस देह को चूमकर माँ का बच्चा होकर मीठी मुस्कान के साथ तूने भुवन में दर्शन दिया। खो जाने के भय से तुझे छाती से लकड़कर रखना चाहती हूँ। ज़रा भी अलग होने से रो-रोकर मरती हूँ। नहीं मालूम किस माया के जाल में विश्व के धन को बाँधकर अपनी इन दोनों पतली बाँहों के अन्तराल में रखूँगी।''

(२)

मरण

मरण रे,
तुँहुँ मम श्याम समान!
मेघ बरण तुझ, मेघ जटाजुट,
रक्त कमल कर, रक्त अधर पुट;
ताप बिमोचन करुण कोर तव,
मृत्यु अमृत करे दान!
तुँहुँ मम श्याम समान!

मरण रे,
श्याम तोँहारइ नाम ।
चिर बिसरल यब, निरदय माधव
तुँहुँ न भइबि मोय बाम !
आकुल राधा रिभ अति जरजर,
भरइ नयन दऊ अनुखन भरभर,
तुहुँ मम माधव, तुँहुँ मम दोसर,
तुँहुँ मम ताप घुचाओ
मरण तु आओ रे आओ ।

गगन सघन अब, तिमिर मगन भव,
तड़ित चकित अति, घोर मेघ रव,
शाल ताल तरु सभय-तवध सब
पन्थ बिजन अति घोर,
एकलि याओब तुझ अभिसारे,
याक पिया तुँहुँ कि भय ताहारे,
भय बाधा सब अभय मूरति धरि,
पन्थ देखाओब मोर ।
भानुसिंह कहे "छिये छिये राधा,
चञ्चल हृदय तोहारि,
माधव पहु मम, पिय समरणसे
अब तुँहुँ देख बिचारि ।"

"अरे मरण, तू मेरे श्याम के समान है। तू मेघ के रङ्ग का है, मेघ ही जैसी तेरी जटा है। लाल कमल जैसे हाथ हैं। लाल ही अधर-पल्लव है। तेरी करुण दृष्टि ताप हरनेवाली है। तू मृत्यु का अमृतदान करती है ! तू मेरे श्याम के समान है ! अरे मरण, श्याम तेरा ही नाम है। निष्ठुर

माधव जब सर्वदा के लिये बिसार देंगे तब तू मुझसे विमुख नहीं होगा ! आकुल राधा रीझकर जर्जरित हो रही है, दोनों नेत्रों से निरन्तर आँसुओं की झड़ी लगी रहती है। तुम्हीं मेरे माधव हो, तुम्ही मेरे दूसरे सहायक हो, तुम्ही मेरा ताप मिटाओ। अरे मरण ! तुम आओ। अब आकाश के घने अन्धकार में संसार डूबा है, बिजली चमक रही है, बादल घोर गर्जन कर रहे हैं, शाल और ताल के वृक्ष सभी भयभीत हैं, बाट एक दम निर्जन है, मैं अकेली तुमसे एकान्त में मिलन के लिये जाऊँगी, जिसके प्रणयी तुम हो, उसे कौन भय है ? भय-बाधायें सभी अभयमूर्ति धारणकर, मुझे रास्ता दिखलायँगी। भानुसिंह कहते हैं, "छिः छिः राधा, तुम्हारा हृदय चंचल है, अब तुम विचार कर देखो।"

को तुँहुँ

को तुँहुँ बोलबि मोय !
हृदय-माह मझु जागसि अनुखण,
आँख उपर तुँहुँ रचलहि आसन,
अरुण नयन तव मरम सङ्गे मम।
निमिख न अन्तर होय।
को तुँहुँ बोलबि मोय।

हृदय कमल, तव चरणे ढलमल
नयन युगल मम उछले छलछल,
प्रेमपूर्ण तनु पुलके टलटल
चाहे मिलाइते तोय !
को तुँहुँ बोलबि मोय !

बाँशरि ध्वनि तुह अमिय गरल रे,
हृदय बिदारयि हृदय हरल रे,
आकुल काकलि भुवन भरल रे,
उतल प्राण उतरोय।

को तुँहुँ बोलबि मोय !

हेरि हासि तव मधुऋतु धाओल,
शुनयि बाँशि तव पिककुल गाओल,
बिकल भ्रमरसम त्रिभुवन आओल,
चरण-कमल युग छोंय ।
को तुँहुँ बोलबि मोय !

गोप-बधूजन बिकशित यौवन,
पुलकित यमुना, मुकुलित उपबन,
नील तीर पर धीर समीरण,
पलके प्राण मने खोय ।
को तुहुँ बोलबि मोय !

तृषित आँखि, तव मुखपर बिहरइ,
मधुर परश तव, राधा शिहरइ,
प्रेम-यतन भरि हृदय प्राण लइ,
पदतले आपना थोय ।
को तुँहुँ बोलबि मोय !

को तुँहुँ को तुँहुँ सबजन पुछयि,
अनुदिन सघन नयन जल मुछयि,
याचे भानु, सब संशय घुचयि
जनम चरण पर गोँय ।
को तुहुँ बोलबि मोय ।

"तुम कौन हो ? मुझे बतला दो । अनुक्षण तुम मेरे हृदय के बीच में जागते रहते हो । आँखों के ऊपर तुमने आसन जमा लिया है । मेरे मर्म के साथ तुम्हारा अरुण नयन एक क्षण के लिये भी ओझल नहीं होता है । तुम कौन हो, मुझे बतला दो ! मेरा हृदय-कमल तुम्हारे चरणों पर लोट रहा है । मेरे युगल नयन भर आते हैं । प्रेम-पूर्ण शरीर

पुलकित हो रहा है और तुम में विलीन हो जाना चाहता है। तुम कौन हो? मुझे बतलादो! तुम्हारी बाँसुरी की ध्वनि अमिय हलाहल भरी है। हृदय को विदीर्ण और हरण करती है। आकुल-काकलि से भुवन गूँज उठा है। उतावले प्राण और भी उतावले हो रहे हैं। तुम कौन हो? मुझे बतला दो! तुम्हारी हँसी देख कर मधुऋतु (बसन्त) दौड़ आया। तुम्हारी बंशी सुनकर कोयल गा उठी। विकल भौंरे की नाईं तीनों भुवन आकर तुम्हारे दोनों चरण कमलों को छूते हैं। तुम कौन हो? मुझे बतला दो!

खिले हुए यौवन वाली गोपियाँ, पुलकित यमुना, मुकुलित झाड़ियाँ, नील जल की मन्द-मन्द हवा, पल ही भर में मन प्राण खो बैठती हैं। तुम कौन हो? मुझे बतला दो! प्यासी आँखें तुम्हारे मुख पर विहार करती हैं, तुम्हारे मधुर स्पर्श से राधा सिहर उठती है, प्यार और यत्न से हृदय और प्राण लेकर स्वयं ही पदतल पर थाती रख देती है। तुम कौन हो? मुझे बतला दो! तुम कौन हो—तुम कौन हो? सभी लोग पूछते हैं और प्रतिदिन गाढ़े नयन-जल को पोंछते हैं। 'भानु कवि' यही चाहते हैं कि तुम मेरे सभी संशय मिटा दो और जन्म चरणों में गँवा देने दो। तुम कौन हो? मुझे बतला दो।"

(५)

पुरातन भृत्य

(१)

भूतेर मतन चेहरा येमन, निर्ब्बोध अति घोर।
या किछु हाराय, गिन्नी बलेन, "केष्टा बेटाइ चोर।"
उठिते बसिते करि बापान्त, शुनेओ शोने ना काने।
यत पाय बेत ना पाय बेतन तबु ना चेतन माने॥
बड़ प्रयोजन, डाकि प्राणपण चीत्कार करि, "केष्टा,"—
यत करि ताड़ा, नाहि पाइ साड़ा, खुँजे फिरि सारा देशटा॥

एकखाना दिले निमेष फेलिते तिनखाना करे आने,
तिनखाना दिले एक एकखाना राखे, बाकि कोथा नाहि जाने ॥
येखाने सेखाने दिवसे दुपुरे निद्राटि आछे साधा।
महाकलरव गालि देइ यवे "पाजि हतभाग्य गाधा॥"
दरजार पाशे दाँड़िये से हासे देखे ज्वले याय पित्त।
तबु माया तार त्याग करा भार—बड़ पुरातन भृत्य॥

"जिस तरह भूत की तरह का चेहरा है उसी तरह वह बिलकुल गँवार है। जो कोई चीज़ खो जाती है, तो मालकिन कहती हैं, "कि किशुनवा ही चोर है"। उठते-बैठते सदा ही मैं उसको कोसा करता हूँ, वह कानों से सुनकर भी अनसुनी किये रहता है। जितने बेंत लगते हैं उतना ही वेतन कटता है, तब भी वह ध्यान नहीं देता। ज़रूरत के समय ख़ूब चिल्लाकर पुकारता हूँ, "किशुनवा"। जितना ही आवाज़ देता हूँ, उतना ही उसका पता नहीं चलता और मैं चारोंओर खोजता फिरता हूँ। एक चीज़ लाने को कही जाती है तो क्षण भर में ही तीन ले आता और रखने के लिये तीन चीज़ें दी जाती हैं तो वह एक रखता है और बाक़ी को ला पता कर देता है। जहाँ कहीं दिन को,—दोपहर को मौका पाता है नींद सीधी कर लेता है। घोर चीत्कार के साथ जब मैं गाली देता हूँ—'पाजी, अभागा, तब-उदास भाव से दरवाजे के पास खड़ा होकर वह हँसता रहता है। देखकर जी जल उठता है। तब भी उसकी माया त्याग करना कठिन हो जाता है; क्योंकि वह बड़ा ही पुराना नौकर ठहरा।"

(२)

घरेर कर्त्री रुक्ष मूर्ति, बले," आर पारि नाको,
रहिल तोमार ए घर दुयार केष्टारे लये थाको॥
ना माने शासन, बसन बासन अशन आसन यत,
कोथाय की गेलो, शुधु टाकागुलो येतेछे जलेर मतो॥

गेले से बाजार, सारादिने आर देखा पाओया तार भार,—
करिले चेष्टा केष्टा छाड़ा कि भृत्य मेले ना आर ?'
शुने महारेगे छुटे याइ बेगे, आनि तार टिकि ध'रे,—
बलि तारे "पाजि, बेरो तुइ आजइ, दूर करे दिनु तोरे ॥"
धीरे चले याय, भावि गेल दाय;—परदिन उठे देखि
हुँकाटि बाड़ाये रयेछे दाड़ाये बेटा बुद्धिर ढेंकि ॥
प्रसन्न मुख, नाहि कोनो दुख, अति अकातर चित्त,
छाड़ाले ना छाड़े, की करिब तारे, मोर पुरातन भृत्य ॥

"गृहणी रूखी होकर कहती हैं,—"अब मुझसे नहीं सहा जाता। लो अपना घर-द्वार, किशुनवा को लेकर रहो। रोब-दाब मानता ही नहीं। बर्त्तन-बासन, कपड़ा-लत्ता, खाना-पीना, पीढ़ा-चौकी, सब कहाँ क्या है, कुछ ठिकाना नहीं। खाली रुपया पानी की तरह खर्च हो रहा है। जहाँ बाज़ार गया, सारा दिन उससे भेंट होना मुश्किल है। चेष्टा करने से क्या किशुनवा के सिवा दूसरा नौकर नहीं मिलेगा ?" सुनते ही रंज होकर तेज़ी से दौड़ पड़ता हूँ और उसकी चोटी पकड़कर घसीट लाता हूँ और कहताहूँ—"पाजी, आज ही यहाँ से निकल जा। मैंने तुझे बरख़ास्त कर दिया। वह धीरे से चला जाता है। मैं समझता हूँ कि चलो, बोझा टला। दूसरे दिन उठकर देखता हूँ कि हुक्का बढ़ाये हुए खड़ा है। बदमाश बुद्धि का ख़ज़ाना है। वैसे ही उसके मुख पर प्रसन्नता रहती है, ज़रा भी दुखी नहीं होता, वैसे ही निर्भय होकर वह रहता है, छुड़ाने पर भी नहीं छोड़ता। उसे क्या करूँ ? पुराना नौकर ठहरा।"

(२)

से बछरे फाँका पेनु किछु टाका करिया दालाल-गिरि
करिलाम मन श्रीवृन्दावन बारेक आसिब फिरि ॥

परिवार ताय साथे येते चाय,—बुझाये बलिनु तारे—
पतिर पुण्ये सतीर पुण्य;—नहिले खरच बाड़े ॥
ल'ये रशारशि करि कशाकशि पोँट्ला पुँटलि बाँधि,
बलय बाजाये बाक्स साजाये गृहिणी कहिल काँदि,—
"परदेशे गिये केष्टारे निये कष्ट अनेक पाबे।"
आमि कहिलाम, "आरे राम राम, निवारण साथे याबे ॥
रेलगाड़ी धाय;—हेरिलाम हाय नामिया वर्द्धमाने—
कृष्णकान्त अति प्रशान्त तामाक साजि आने ॥
स्पर्द्धा ताहार हेन मते आर कत ना सहिब नित्य।
यत तारे दूषि तबु ह'नु खुसि हेरि पुरातन भृत्य ॥

"उस वर्ष सुभीता देखकर कुछ रुपये दलालगिरी में कमा लिये थे। इच्छा हुई कि एक बार श्रीवृन्दाबन हो आऊँ। पत्नी भी साथ जाना चाहती थीं। समझाकर कहा कि पति के पुण्य से सती को भी पुण्य होता है, नहीं तो व्यर्थ का खर्च बढ़ जायगा। रस्सी लेकर गठरी मोटरी कस-कसकर बाँध ली। तब तक बक्स सजाकर गृहिणी कङ्कण बजाती हुई रोकर बोलीं—"परदेश में किशुनवा को ले जाने से बड़ा ही कष्ट पावोगे।" मैं ने कहा—"अरे राम राम, निवारण साथ जायगा।" रेलगाड़ी दौड़ती जाती थी। बर्दवान में उतरकर देखा कि कृष्णकान्त अति प्रशान्त-भाव से तम्बाकू चढ़ाकर ले आये हैं। उसकी ऐसी स्पर्द्धा अब कहाँ तक रोज़ बर्दाश्त कर सकता हूँ। मैं कितना ही उसे दुतकारता हूँ, तब भी पुराने नौकर को देखकर ख़ुशी हुई।"

(४)

नामिनु श्रीधामे; दक्षिणे बामे पिछने समुखे यत
लागिल पाण्डा, निमेषे प्राणटा करिल कण्ठागत ॥
जन छय साथे मिलि, एक साथे परम बन्धुभावे
करिलाम बासा, मने ह'लो आशा आरामे दिवस याबे ॥

कोथा ब्रजबाला, कोथा बनमाला, कोथा बनमाली हरि ।
कोथा हा हन्त, चिरबसन्त, आमि बसन्ते मरि ॥
बन्धु ये यत स्वप्नेर मतो बासा छेड़े दिल भङ्ग ।
आमि एका घरे, व्याधि-खरशरे भरिल सकल अङ्ग ॥
डाकि निशिदिन सकरुण चीण—"केष्टा आय रे काछे ।
एतदिने शेषे आसिया विदेशे प्राण बुभि नाइ बाँचे ॥"
हेरि तार मुख भरे ओठे बुक, से येन परम वित्त ।
निशिदिन धरे दाड़ाये शियरे मोर पुरातन भृत्य ॥

"श्रीधाम में उतरा, दायें-बाँये, आगे-पीछे पण्डे लग गये । उन लोगों ने नाक में दम कर दिया । छः-सात आदमी मिलकर एक ही साथ परमबन्धु भाव से डेरा किया । मन में आशा हुई कि आराम से दिन कटेंगे । ब्रज-बाला कहाँ हैं ? कहाँ वनमाला है ? कहाँ वनमाली हरि हैं ? हा हन्त ! चिरवसन्त कहाँ है ? मैं बसन्त में ही मर रहा हूँ । सभी बन्धु डेरा छोड़कर टूटे हुए स्वप्न की तरह चल पड़े । केवल मैं ही अकेला घर में रह गया हूँ । रोग के तीखे बाण से सभी अंग भर गये । रात-दिन करुणाजनक चीण स्वर से पुकारता हूँ—"किशुन, नज़दीक आ । इतने दिन पर विदेश में आकर तेरे बिना प्राण जो नहीं बचेंगे ।" उसका मुँह ताकता हूँ, छाती भर आती है । वही मेरा परम धन है । रात-दिन मेरा पुराना नौकर सिरहाने के पास खड़ा रहता है ।"

(४)

मुखे देय जल, शुधाय कुशल, शिरे देय मोर हात;
दाँड़ाये निझुम, चोखे नाइ घुम, मुखे नाइ तार भात ।
बले बार-बार, "कर्त्ता, तोमार कोनो भय नाइ, शुन,
याबे देशे फिरे, मा—ठाकुरणीरे देखिते पाइबे पुन ॥"
लभिया आराम आमि उठिलाम; ताहार धरिल ज्वरे;
निल से आमार काल व्याधिभार आपनार देह परे ॥

ह'ये ज्ञानहीन काटिल दुदिन बन्ध हइल नाड़ी ।
एतबार तारे गेन छाड़ावारे, एतदिने गेल छाड़ि ॥
बहुदिन प आपनार घरे फिरिनु सायिरा तीर्थ ।
आज साथे नेइ चिरसाथी सेइ मोर पुरातन भृत्य ॥

"प्यास लगने पर मेरे मुँह में जल डाल देता है, कुशल पूछता है, मेरे माथे पर हाथ रखता है, और सदा मेरे पास खड़ा रहता है। रात-दिन में एक मिनट भी न तो सोता है और न कुछ खाता है। बार-बार कहता है—"मालिक, तुम्हें कोई डर नहीं। सुनो, देश लौटकर जावोगे और फिर मालकिन माई को देख पावोगे।" आराम होकर मैं खड़ा हुआ। उसे ज्वर हुआ; अपने देह पर उसने मेरी काल-व्याधि का भार ले लिया! बेहोश होकर दो दिन उसने बिताया। नाड़ी बन्द हो गयी। कितनी बार उसे छुड़ाने का प्रयत्न किया था; किन्तु इतने दिनों बाद वह अपने आप छूट गया। बहुत दिन के बाद तीर्थयात्रा कर घर लौटा; किन्तु आज वह मेरा चिर-साथी—पुराना नौकर मेरे साथ नहीं है।"

(६)

बिष्टि पड़े टापुर टुपुर नदे'य एल बान ।
दिनेर आलो निबे एल, सूर्य्य डोबे-डोबे ।
आकाश घिरे मेघ जुटेछे चाँदेर लोभे-लोभे ।
मेघेर उपर मेघ करेछे, रङेर उपर रङ ।
मन्दिरेते काँसर घण्टा बाजल ठं ठं ।
ओ पारेते बिष्टि एल, झापसा गाछपोला ।
ए पारेते मेघेर माथाय एक श माणिक ज्वाला ।
बादला हावाय मने पड़े छेले बेलार गान—
"बिष्टि पड़े टापुर टुपुर नदे'य एल बान ।"
आकाश जुड़े मेघेर खेला, कोथाय बा सीमाना
देशे-देशे खेले बेड़ार केउ करे ना माना ।

कत नतुन फुलेर बने बिष्टि दिये याय ।
पले-पले नतुन खेला कोथाय मेवे पाय
मेघेर खेला देखे कत खेला पड़े मने---
कत दिनेर लुकाचुरि कत घरेर कोणे !
तारि सङ्गे मने पड़े छेले वेलार गान---
"बिष्ट पड़े टापुर टुपुर नदे'य एल बान ।"
मने पड़े घरटि आलो मायेर हासि मुख,
मने पड़े मेवेर डाके गुरु-गुरु बुक ।
बिछानाटिर एकटि पाशे घुमिये आछे खोका,
मायेर परे दौरात्मि से ना याय लेखा योका !
घरेते दुरन्त छेले करे दापादापि,
बाइरेते मेघ डेके सृष्टि ओठे काँपि ।
मने पड़े मायेर मुखे शुनेछिलेम गान---
"बिष्टि पड़े टापुर टुपुर नदे' य एल वान ।"
मने पड़े सुयोराणी दुयोराणीर कथा,
मने पड़े अभिमानी कङ्कावतीर व्यथा ।
मने पड़े घरेर कोणे मिटि-मिटि आलो,
चारि दिकेर देयालेते छाया कालो-कालो ।
बाइरे केवल जलेर शब्द झुप झुप झुप—
दस्यि छेले गल्प शुने एकबारे चुप ।
तारि सङ्गे मने पड़े मेघ्ला दिनेर गान—
"बिष्ट पड़े टापुर टुपुर नदे'य एल बान ।"
कबे बिष्ट पड़ेछिल, वान एल से कोथा ?
शिवठाकुरेर बिये ह'ल कबेकार से कथा ?
से दिनो कि एम्नितर मेघेर घटाखाना ?
थेके-थेके बाज विजुलि दिच्छिल कि हाना ?

तिन कन्ये बिये क'रे कि हल तार शेषे ?
ना जानि कोन् नदीर धारे, ना जानि कोन् देशे,
कोन्-छेलेरे घुम पाड़ाते के गाहिल गान—
"बिष्ट पड़े टापुर टुपुर नदे'य एल बान।"

"दिन की रोशनी बुझ चली, सूर्य्य डूबने जा रहा है। आकाश को घेरकर मेघ चाँद के लोभ से जुट आये हैं। बादल के ऊपर बादल चढ़ आये हैं। रङ्ग के ऊपर रङ्ग जम गया है। मन्दिर में कांसे का घड़ी-घण्टा टनटन बज उठा। उस पार में वृष्टि आने से पेड़-पौधे धुँधले हो गये। इस पार में मेघ के माथे पर एक सौ माणिक जल उठे। इसी तरह बादल घिर आने पर हवा चलते समय छुटपन में जो गीत गाता था वह याद आगया। गीत का भाव यह है—"टपाटप वृष्टि पड़ती है और नदी में ज्वार आ गया है।"

"आकाश भर में मेघों के खेल की कोई सीमा नहीं। देश-देशान्तर में उनका खेल होता रहता है, उन्हें कोई मना नहीं करता। कितने नये फूलों के वनों में वे पानी बरसा जाते हैं। पल-पल में नया-नया खेल वे कहाँ से सोच निकालते हैं ? मेघ का खेल देखकर कितने खेल याद आ जाते हैं। कितने घरों में कितने दिनों की आँखमिचौनी और उसी के साथ लड़कपन का गाना याद पड़ जाता है—"टपाटप वृष्टि पड़ती है और नदी में ज्वार आ गया है।"

"उजियाला घर और माँ का हँसता हुआ मुख याद पड़ता है। मेघ के गर्जन से धड़-धड़ करती हुई छाती याद पड़ती है। बिछौने के एक कोने में बच्चा सोया हुआ है। माँ के साथ उसकी शरारत का कुछ ठिकाना नहीं। घर में दूर के लड़के खेल-कूद रहे हैं। बाहर मेघ गरज उठने से सृष्टि काँप उठती है। याद पड़ता है कि माँ के मुँह से यह गाना सुना था—"टपाटप वृष्टि पड़ती है और नदी में ज्वार आ गया है।"

दुयोरानी सुयोरानी की कहानी याद पड़ती है। अभिमानी कनकावती

की व्यथा भी याद आती है। घर के कोने में की टिमटिमाती हुई रोशनी और चारों ओर दीवार पर की काली-काली छाया भी याद पड़ती है। बाहर केवल जल का झपाझप शब्द सुनाई पड़ रहा है। दुष्ट लड़का कहानी सुनकर एकदम चुप हो गया है। उसी के साथ बदली के दिन का गान याद आता है—"टपाटप वृष्टि पड़ती है और नदी में ज्वारआया है।"

"कब वृष्टि पड़ी थी और कहाँ ज्वार आया? न जाने किस देश में लड़कों को सुलाने के लिए किसने यह गीत गाया था। शिवजी का विवाह हुआ था वह कब की बात है? उस दिन भी क्या इसी तरह मेघ की घटा थी? रह-रहकर क्या बिजली इसी तरह चोट पहुँचा रही थी? तीन कन्याओं के विवाह कर अन्त में क्या हुआ? न मालूम किस देश में किस नदीतट पर किस लड़के को सुलाने के लिये किसने यह गान गाया था—"टपाटप वृष्टि पड़ती है और नदी में ज्वार आया है।"

(७)

विदाय

तबे आमि याइ गो तबे याइ,
भोरेर बेला शून्य कोले
डाक्बि यखन खोका ब'ले
बल्बो आमि नाइ से खोका नाइ;
मा गो याइ।
हाओयाय सङ्गे हाओया ह'ये
याबो मा तोर बुके बेये
धर्ते आमाय पार्बिने तो हाते।
जलेर मध्ये हबो मा ढेउ
जान्ते आमाय पार्बे ना केउ,
स्नानेर बेला खेल्बो तोमार साथे।
बादला यखन प'ड़बे झ'रे

राते शुये भावबि मोरे,
झर्झरानि गान गाबो ऐ बने।
जानूला दिये मेघेर थेके
चमक् मेरे याबो देखे,
आमार हासि प'ड़्बे कि तोर मने ?
खोकार लागि तुमि मागो
अनेक राते यदि जागो
तारा ह'ये बेलबो तोमाय "घूमो",
तुइ घुमिये पड़्ले परे
ज्योत्स्ना ह'ये ढुक्बो घरे,
चोखे तोमा खेये जाबो चुमो॥
स्वपन ह'ये आँखिर फाँके,
देख्ले आमि आस्बो माके,
याबो तोमार घुमेर मध्यिखाने।
जेगे तुमि मिथ्ये आशे
हात बुलिये देखबे पाशे,
मिलिये याबो कोथाय के तो जाने॥
पूजार समय यत छेले
आङिनाय बेड़ावे खेले,
ब'लबे—खोका नेइ ये घरेर माझे।
आमि तखन बाँशीर सुरे
आकाश बेये घुरे घुरे
तोमार साथे फिर्बो सकल काजे॥
पूजोर कापड़ हाते क'रे
मासो यदि शुधाय तोरे,
"खोका तोमार कोथाय गेल च'ले ?"

बलिस, खोका से कि हाराय;
आछे आमार चोखेर ताराय
मिलिये आछे आमार बुके कोले ॥

"तब मैं जाता हूँ, अरी माँ, तब मैं जाता हूँ; भोर के समय अपनी गोद सूनी देखकर 'बबुआ' कहकर पुकारोगी तब मैं कहूँगा कि अब मैं वह बच्चा नहीं हूँ; अरी माँ, अब मैं जाता हूँ। हवा के साथ मिलकर तुम्हारी गोदी से होकर बहता जाऊँगा; किन्तु हाथों से पकड़ नहीं पावोगी। जल में मैं लहर होकर रहूँगा, कोई मुझे पहचान नहीं सकेगा, स्नान के समय मैं तुम्हारे साथ खेलूँगा। जिस समय मेघ झर-झर गिरेंगे, रात में लेटी हुई जब तुम मुझे स्मरण करती रहोगी, तब उसी बन में मैं झर-झर गान गाऊँगा। मेघ की खिड़कियों से चमककर तुम्हें देख जाऊँगा। मेरी हँसी क्यों तुम्हें याद आयेगी? ऐ माँ, बच्चे के लिये तुम अगणित रातें जागी रहोगी तो तारा होकर मैं तुम्हें सोने के लिए अनुरोध करूँगा।" तुम्हारे सो जाने पर मैं चाँदनी होकर घर में घुसूँगा, और तुम्हारी आँखों को चूम जाऊँगा। स्वप्न होकर आँखों की ओट में, माँ को देखने आऊँगा, तुम्हारी नींद के बीच में जाऊँगा, तुम जागकर मिथ्या आशान्वित होकर बगल में हाथों से टटोलोगी, मैं कहाँ विलीन हो जाऊँगा, यह कौन जानता है? पूजा के समय सभी लड़के जब आँगन में खेल मचायेंगे, तुम कहोगी—बबुआ घर पर नहीं है। मैं उस समय बाँसुरी के सुर में आकाश में घूम-घूम कर तुम्हारे साथ सभी कामों में घूमूँगा। पूजा के नये कपड़ों को हाथ में लेकर मौसी यदि तुम से पूछे—"तुम्हारा बबुआ कहाँ चला गया?" तो कहना बबुआ क्या खो जा सकता है; वह मेरी आँखों की पुतलियों में है; मेरी छाती की गोद में विलीन है।"

(८)

शृण्वन्तु विश्वे

एकदा ए भारतेर कोन् बनतले
के तुमि महान् प्राण, आनन्द बले
उच्चारि उठिले उच्चे,—शोनो विश्वजन,
शोनो अमृतेर पुत्र यत देवगण
दिव्यधामबासी, आमि जेनेछि ताँहारे,
महान्त पुरुष यिनि आँधारेर पारे
ज्योतिर्म्मय; तारे जेने, ताँर पाने चाहि,
मृत्युरे लङ्घिते पारो, अन्य पथ नाहि।"
आर बार ए भारते के दिबे गो आनि,
से महा आनन्दमन्त्र, से उदात्त वाणी
सञ्जीवनी, स्वर्गे मर्त्ये सेइ मृत्युञ्जय
परम घोषणा सेइ एकान्त निर्भय
अनन्त अमृत वार्त्ता
रे मृत भारत,
शुधु सेइ एक आछे, नाहि अन्य पथ।

"तुम कौन महाप्राण पुरुष हो जो एक समय इस भारत के किसी वन-तल में किसी आनन्द के साथ उच्च स्वर से पुकार उठे थे—सुनो संसार-वासी लोगो, दिव्य-धाम-वासी देवताओं के अमर पुत्रो, सुनो, मैं ने उस अंधकार से परे रहनेवाले ज्योतिर्मय महापुरुष को जान लिया है। उसे जानकर और उसकी ओर ताककर मृत्यु को तुम पार कर सकते हो अर्थात् अमर हो सकते हो। इसके लिए दूसरा पथ नहीं है। अब इस भारत में उस परम आनन्दमय मन्त्र को कौन लावेगा? वह सञ्जीवनी रूपी उदात्त वाणी, स्वर्ग-मर्त्य में वह मृत्यु पर जय पाने वाली परम घोषणा, वह बिलकुल निर्भय अनन्त अमृत-

वार्त्ता कौन लावेगा ? अरे मृत भारत, वही केवल एक पथ है, दूस
नहीं है।"

(६)

सोनार तरी

गगने गरजे मेघ, घन बरषा।
कूले एका बसे आछि, नाहि भरसा।
राशि राशि भारा भारा धान काटा हाल सारा,
भरा नदी क्षुर-धारा खर परशा।
काटिते काटिते धान एल बरषा।

एकखानि छोट खेत आमि एकेला,
चारि दिके बाँका जल करिछे खेला।
परपारे देखि आँका तरुछायामसोमाखा
ग्राम खानि मेघे ढाका प्रभात बेला।
ए पारेते छोट खेत आमि एकेला।

गान गेये तरी बेये के आसे पारे !
देखे येन मने हय चिनि उहारे।
भरा-पाले च'ले याय कोनो दिके नाहि चाय,
ढेउगुलि निरुपाय भाङे दुधारे,
देखे येन मने हय चिनि उहारे।

ओगो तुमि कोथा याओ कोन् बिदेशे !
बारेक भिड़ाओ तरी कूलेते एसे।
येउ येथा येते चाओ, यारे खुसि तारे दाओ,
शुधु तुमि निये याओ क्षणिक हेसे
आमार सोनार धान कूलेते एसे।

यत चाओ तत लओ तरणी परे।
आर आछे ?— आर नाइ, दियेछि भरे।

एतकाल नदीकूले याहा लेये छिनु सुले
सकलि दिलाम तुले थरे विथरे,
एखन आमारे लह करुणा करे।

ठाँइ नाइ, ठाँइ नाइ ! छोट से तरी
आमारि सोनार धाने गियेछे भरि !
श्रावण-गगन घिरे घन मेघ घुरे फिरे
शून्य नदीर तीरे रहिनु पड़ि,
याहा छिल निये गेल सोनार तरी !

"आकाश में बादल गरज रहे हैं। झमाझम वर्षा हो रही है। मैं किनारे पर अकेला बैठा हूँ, कोई भरोसा नहीं। बोझ का बोझ, पुलिये का पुलिया धान काटना ख़तम हो गया। भरी नदी है, तेज़ धारा है। धान काटते-काटते वर्षा आ गयी। एक छोटा सा खेत है, मैं अकेला हूँ, चारों ओर टेढ़ा-मेढ़ा जल खेल कर रहा है। उस पार एक गाँव वृक्षों की छाया-रूपी स्याही से पुता हुआ चित्र-सा दिखाई पड़ता है, प्रातःकाल में मेघ से ढका है। इस पार में एक छोटा-सा खेत है और अकेला मैं हूँ। उस पार से गीत गाता हुआ नाव खेकर कौन आ रहा है? देखकर मालूम होता है, जैसे उसे मैं पहचानता हूँ। पाल ताने हुए चला आता है, किसी तरफ़ नहीं देखता है, लहरें निरुपाय हो दोनों ओर टक्कर खाती हैं। देखकर मालूम होता है, मैं उसे पहचानता हूँ। अजी तुम कहाँ किस विदेश में जाते हो? एक बार इस किनारे पर लाकर नाव लगावो तो, फिर जहाँ चाहना जाना, जिसे ख़ुशी हो दे देना। केवल तुम क्षणभर तट पर आकर हँसकर मेरे सोने के धान को लेते जाओ। जितनो चाहो, नाव पर ले लो। और कहाँ है?—अब नहीं है, भर दिया है। इतनी देर तक नदी के तट पर जिसे लिये हुए भूला हुआ था, सभी उठाकर दे दिया है, अब मुझे कृपा कर के ले लो। जगह नहीं है, जगह नहीं है! वह छोटी-सी नाव मेरे ही सोने के धान से भर गई।

वने मेघ ने घूम-फिर कर श्रावण के गगन को घेर लिया, मैं सुनसान नदी-तट पर पड़ा रहा, मेरे पास जो कुछ था, उसे तो सोने की नाव लेती गयी।"

(१०)

वर्षा मंगल

कोथा तोरा अयि तरुणी पथिक ललना
जनपद-बधु तड़ित-चकित-नयना,
मालती मालिनी कोथा प्रिय-परिचारिका,
कोथा तोरा अभिसारिका !
घनबनतले एस घननीलवसना,
ललित नृत्ये बाजुक स्वर्णरसना,
आनो वीणा मनोहारिका !
कोथा बिरहिणी, कोथा तोरा अभिसारिका ?
आनो मृदंग, मुरज, मुरली, मधुरा,
बाजाओ शंख, हुलुरव कर बधुरा,
एसेछे बरषा, ओगो नव अनुरागिणी,
ओ गो प्रियसुखभागिनी !
कुंजकुटीरे, अयि भावाकुल-लोचना,
भूर्ज्ज-पाताय नव गीत कर रचना
मेघमल्लार-रागिणी !
एसेछे बरषा, ओ गो नव अनुरागिणी !
स्निग्धसजल मेघकज्जल दिवसे
बिबश प्रहर अचल अलस आवेशे;
शशितारा हीना अन्धतामसी यामिनी;
कोथा तोरा पुरकामिनी !
आजि के दुयार रुद्ध भवने भवने
जन हीन पथ काँदिछे क्षुब्ध पवने,
चमके दीप्त दामिनी;

शून्यशयने कोथा जाग पुरकामिनी !
दुलिछे पवने सनसन वन-वीथिका
गीतमय तरु-लतिका !
शतेक युगेर कबिदले मिलि आकाशे
ध्वनिया तुलिछे मत्तमदिर बातासे ।
शतेक युगेर गीतिका !

"ऐ तरुणी, पथिक-ललनाओ, तुम लोग कहाँ हो? बिजली की चमक से जिनकी आँखें चकाचौंध होगई हैं और जिनके गले में मालती की माला पड़ी है, वे अपने प्रेमपात्र की परिचारिका अभिसारिकायें कहाँ हैं? गहरे नीले रंग की साड़ी पहनकर सब लोग मेघ की काली-काली घटाओं के नीचे आ जाओ, और अपने सोने के घुँघुरू बजा-बजाकर नाचो और साथ में अपनी मनोरम वीणा भी लेती आओ। ऐ विरहिणियो, तुम लोग कहाँ हो? ऐ अभिसारिकाओ, तुम लोग इस समय क्यों नहीं आतीं? तुम लोग अपना मृदंग, मुरज, मुरली आदि व मधुर-स्वर से बजनेवाले बाजे लेती आओ, शंख-ध्वनि करो, बधूगण उल्लास-ध्वनि करें। ऐ प्रेम की पिपासिता नागरीगण, ऐ अपने प्रियतम के प्रेम का उपभोग करनेवाली, वर्षा आ गई है। ऐ भावाकुललोचना, कुञ्ज-कुटीर में बैठकर मेघ और मल्लार रागिणी के नये-नये गीत भोजपत्र पर रचना करो। ऐ नव अनुरागिणी, अब वर्षा आगई है। आज-कल के दिन ऐसे हैं, जब कि सदा वर्षा होती रहती है और कज्जल-से बादल घिरे रहते हैं, मनुष्य विवश होकर सदा आलसी बना बैठा रहता है। अँधेरी रात में कहीं चन्द्रमा या तारों आदि का पता तक नहीं चलता। ऐ पुरकामिनियो, इस रात में, जब कि घर-घर दरवाज़े बन्द हैं, मार्ग जन-हीन है, पवन क्षुब्ध होकर रो रहा है, बिजली चमचमा रही है, तुम लोग कहाँ हो? सूनी सेज पर तुम सब कहाँ जाग रही हो? वायु के सन-सन में बन-बीथिकायें हिल रही हैं, वृक्ष और लतिकायें

सङ्गीतमय हैं। सैकड़ों युग के कवि-समूह आकाश-मण्डल में मिलकर उन्मत्त वायु में सैकड़ों युग के गीत प्रतिध्वनित कर रहे हैं।"

(११)

कालिदास के प्रति

आज तुमि कबि शुधु, नह आर केह—
कोथा तव राजसभा, कोथा तव गेह,
कोथा सेइ उज्जयिनी, कोथा गेल आज
प्रभु तव, कालिदास,—राज-अधिराज।
कोनो चिन्ह नाइ का रो आज मने हय
छिले तुमि चिरदिन चिरानन्दमय
अलकार अधिबासी। सन्ध्याभ्रशिखरे
ध्यान भाङ्गि' उमापति भूमानन्द-भरे
नृत्य करितेन यबे, जलद सजल
गर्जित मृदङ्गरवे, तड़ित् चपल
छन्दे छन्दे दित ताल, तुमि सेइ क्षणे
गाहिते बन्दना गान,—गीतिसमापने
कर्ण ह'ते बर्ह खुलि' स्नेह हास्य भरे
पराये दितेन गौरी तव चूड़ापरे।

"हे कालिदास, आज तुम केवल कवि ही हो; और कोई नहीं। तुम्हारी राजसभा क्या हुई? और तुम्हारा घर क्या हुआ? वह उज्जयिनी क्या हुई? आज तुम्हारा प्रभु राजाधिराज कहाँ गया? किसी का भी कोई चिन्ह नहीं है। आज मालूम होता है कि तुम चिरकाल चिरानन्दमय अलकापुरी के अधिवासी थे। सन्ध्याकाश की चोटी पर ध्यान तोड़कर उमापति जब नाचते थे और सजल बादल घहरते हुये मृदंग-रव से चञ्चल चपला के साथ प्रत्येक छन्द पर ताल देता था, उसी समय तुम बन्दना के

गीत गाते थे और गान समाप्त होने पर गौरी स्नेह से मुस्कुराती हुई अपने कान से वह (एक प्रकार का आभूषण) निकालकर तुम्हारी चूड़ा पर पहना देतीं थीं।"

(१२)

वङ्गमाता

पुण्य-पापे दुःखे सुखे पतने उत्थाने
मानुष हइते दाओ तोमार सन्ताने
हे स्नेहार्त्त बङ्गभूमि, तव गृहक्रोड़े
चिर शिशु क'रे आर राखियो ना ध'रे।
देशदेशान्तर माझे यार येथा स्थान
खुँजिया लइते दाओ करिया सन्धान।
पदे पदे छोटो छोटे निषेधेर डोरे
बेँधे बेँधे राखियो ना भालो छेले क'रे।
प्राण दिये, दुःख स'ये आपनार हाते
संग्राम करिते दाओ भालो मन्दे साथे।
शीर्ण शान्त साधु तव पुत्रदेर ध'रे
दाओ सबे गृहछाड़ा लक्ष्मीछाड़ा क'रे।
सात कोटि सन्तानेरे, हे मुग्ध जननी,
रेखेछो बाङ्गाली करे, मानुष करो नि।

"हे स्नेहमयी बङ्गभूमि, पाप-पुण्य, सुख-दुःख तथा उत्थान-पतन में अपनी सन्तान को मनुष्य होने दो, अपने घर रूपी गोद में उन्हें सर्वदा के लिये नन्हा-सा बच्चा बनाकर न रखो। देशदेशान्तर में जहाँ जिस का स्थान हो अनुसन्धान कर खोज लेने दो। पग-पग पर छोटी-छोटी रुकावटों के धागे में बाँधकर उन्हें भोला बालक बनाकर न रखो। प्राण गँवाकर, दुःख झेलकर अपने हाथों से उन्हें भले-बुरे के साथ

घमासान लड़ाई करने दो। अपने शीर्ण शान्त भोले बच्चों को पकड़कर गृहहीन, श्रीहीन बनाकर छोड़ो। हे मुग्ध जननी, सात करोड़ सन्तानों को, तुमने बंगाली बनाकर रखा है, मनुष्य नहीं बनाया।"

(१२)

मुक्ति

बैराग्य साधने मुक्ति, से आमार नय।
असंख्य बन्धन-माझे महानन्दमय
लभिब मुक्तिर स्वाद। एइ बसुधार
मृत्तिकार पात्र खानि भरि बारम्बार
तोमार अमृत ढालि दिबे अबिरत
नाना वर्णगन्धमय। प्रदीपेर मतो
समस्त संसार मोर लक्ष बर्त्तिकाय
ज्वालाये तुलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर माझे। इंद्रियेर द्वार
रुद्ध करि योगासन, से नहे आमार।
या किछु आनन्द आछे दृश्ये गन्धे गाने
तोमार आनन्द रबे ता'र माझखाने।
मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया।

"वैराग्य-साधन से मुक्ति होती है, वह मुझे नहीं चाहिए। मैं तो असंख्य-बन्धन के बीच में पड़ा हुआ महानन्दमय मुक्ति का स्वाद पाऊँगा। इस बसुधा की मिट्टी के बने हुए प्याले में नाना वर्ण और गन्धमय अपना अमृत बराबर (लगातार) ढाल दोगे। प्रदीप की नाईं मेरे इसी संसार को लाखों बत्तियों की रोशनी से अपने मन्दिर में अपनी ही शिखा पर तुम जगमगा छोड़ोगे। इंद्रिय के द्वार यदि योगासन करने

से रुद्ध होते हैं, तो मुझे दरकार नहीं। दृश्य, गन्ध, गान में जो कुछ भी आनन्द है, उनके बीच तुम्हारा ही आनन्द रहेगा। मेरा मोह मुक्तिरूप से जल उठेगा, मेरा प्रेम भक्तिरूप से फली-भूत होगा।"

(१४)

निशार स्वपन छुट्लो रे, ओइ
छुट्लो रे।
टुट्लो बाँधन टुट्लो रे।
रइलो ना आर आड़ाल प्राणे,
बेरिये एलाम जगत पाने,
हृदय-शतदलेर सकल
दलगुलि ओइ फुट्लो रे, ओइ
फुट्लो रे।
दुयार आमार भेङे शेषे
दाँड़ाले येइ आपनि एसे
नयन-जले भेसे हृदय
चरण-तले लुट्लो रे।
आकाश हते प्रभात-आलो
आमार पाने हात बाड़ालो,
भाङा-कारार द्वारे आमार,
जयध्वनि उठ्लो रे, ओइ
उठ्लो रे।
जननी, तोमार करुण चरण खानि
हेरिनु आजि ए अरुण-किरण-रूपे।
जननी, तोमार मरण हरण बाणी
नीरव गगने भरि उठे चुपे-चुपे।

तोमारे नमि हे सकल भुवन माझे,
तोमारे नमि हे सकल जीवन काजे;
तनु मन धन करि निवेदन आजि
भक्ति पावन तोमार पूजार धूपे ।
जननी, तोमार करुण चरण खानि
हेरिनु आजि ए अरुण-किरण-रूपे ।

"रात का सपना टूट गया, जी टूट गया । बन्धन कट गया, जी कट गया । प्राणों में अब छिपकर नहीं रहा, संसार की ओर मैं निकल आया, हृदय-शतदल के सभी दल खिल उठे, हाँ खिल उठे । अन्त में मेरे दरवाज़े तोड़कर स्वयं आकर जब वह खड़ा हुआ, मेरा हृदय नयनजल से प्लावित होकर चरणों के नीचे लोट पड़ा । आकाश से प्रभात आलोक ने मेरी ओर हाथ बढ़ाया । मेरे टूटे हुए कारावास के द्वार पर जय-ध्वनि उठ पड़ी, हाँ उठ पड़ी । जननी, तुम्हारे करुणामय चरणों को आज अरुण-किरण-रूप में देखता हूँ । जननी, तुम्हारी मृत्यु का अपहरण करनेवाली वाणी नीरव आकाश में चुपचाप गूँज उठती है । समूची दुनिया में मैं तुम्हीं को नमस्कार करता हूँ, जीवन के सभी कामों में तुम्हीं को नमस्कार करता हूँ; तन, मन, धन सभी अर्पण करता हूँ । आज तुम्हारी भक्ति पावन पूजा की धूप में जननी, तुम्हारे करुणामय चरणों को आज अरुण किरण-रूप में देखता हूँ ।"

(१५)

यात्री आमि ओरे ।
पारबे ना केउ राखते आमाय ध'रे ।
दुःखसुखेर बाँधन सबइ मिछे
बाँधा एघर रइबे कोथाय पिछे,
बिषय बोझा टाने आमाय नीचे,
छिन्न हये छड़िये याबे प'ड़े ।

यात्री आमि ओरे।
चलते पथे गान गाहि प्राण भ'रे।
देह-दुर्गे खुल्बे सकल द्वार,
छिन्न हबे शिकल बासनार,
भालोमन्द काटिये हबो पार
चलते रबो लोके लोकान्तरे।
यात्री आमि ओरे।
या—किछु भार यावे सकल सरे।
आकाश आमाय डाके दूरेर पाने,
भाषाविहीन अजानितेर गान
सकाल साँझे पराण मम टाने
काहार बाँशि एमन गभीर स्वरे।
यात्री आमि ओरे—
बाहिर ह'लेम ना जानि कोन भोरे
तखन कोथाओ गायनि कोनो पाखी,
कि जानि रात कतइ छिल बाकि,
निमेष-हारा शुधु एकटि आँखि
जेगेछिलो अन्धकारेर परे।

"अरे, मैं यात्री हूँ। मुझे कोई बाँधकर नहीं रख सकता। सुख-दुःख के सभी बन्धन झूठे हैं। इस घर में फिर बाँधकर कौन रख सकता है? विषय के बोझ मुझे नीचे दबाते हैं; किन्तु वे छिन्न-भिन्न होकर बिखर जायँगे। अरे, मैं यात्री हूँ। रास्ता चलते जी खोलकर गाता हूँ। देह-रूपी दुर्ग के सभी द्वार खुल पड़ेंगे। वासना की ज़ंजीर टूट जायगी। अच्छे-बुरे को काटकर पार निकल जाऊँगा। इस लोक में और लोकान्तर में चलता ही रहूँगा। अरे, मैं यात्री हूँ। जो कुछ भी भार हैं, सभी आपसे आप खिसक जायँगे। आकाश मुझे दूर की ओर बुलाता

है। सुबह-शाम भाषा-विहीन अजाने का गान न जाने किसकी बाँसुरी के ऐसे गंभीर स्वर से मेरे प्राणों को खींचता रहता है, अरे मैं यात्री हूँ। न जाने किस भोर को बाहर निकला था। उस समय किसी भी पक्षी का कल-गान नहीं सुन पड़ता था। न मालूम रात कितनी बाकी थी। निर्निमेष हो केवल एक आँख जगी थी—उस अँधकार के आगे।"

(१६)

हिमाद्रि

हे निस्तब्ध गिरिराज, अभ्रभेदी तोमार संगीत
तरङ्गिया चलियाछे अनुदात्त उदात्त स्वरित
प्रभाते द्वार ह'ते सन्ध्यार पश्चिम नीड़ पाने
दुर्गम दुरूह पथे कि जानि की वाणीर सन्धाने।
दुःसाध्य उच्छ्वास तव शेष प्रान्ते उठि' आपनार
सहसा मुहूर्त्ते येन हाराये फेलेछे कण्ठ तार,
भुलिया गियाछे सब सुर,—सामगीत शब्दहारा
नियत चाहिया शून्ये बरषिछे निर्झरिणी-धारा
हे गिरि, यौवन तव ये दुर्द्दम अग्नितापवेगे
आपनारे उत्सारिया मरिते चाहियाछिल मेघे—
से ताप हाराये गेछे, से प्रचण्ड गति अवसान,
निरुद्देश चेष्टा तव हये प्राचीन पाषाण।
पेयेछो आपन सीमा, ताइ आजि मौन शान्त हिया
सीमाविहीनेर माझे आपनारे दियेछो सपिया।

"हे निस्तब्ध गिरिराज, तुम्हारा अभ्रभेदी संगीत तरंगित होकर अनुदात्त, उदात्त एवं स्वरित प्रभात के द्वार से निकलकर सन्ध्या की पश्चिमी गोद की ओर दुर्गम दुरूह पथ से होकर न मालूम किस वाणी की खोज में चला है। तुम्हारा दुःसाध्य उच्छ्वास अपने शेष प्रान्त से

उठकर पल भर में सहसा जैसे अपना कण्ठ खो बैठा हो, सभी सुर जैसे भूल गया हो, शब्द-विहीन सामगीत नित्य शून्य के प्रति देखता हुआ निर्झर-धारा में बरस रहा हो। हे गिरि, तुम्हारे यौवन ने दुर्दम अग्नि-ताप-वेग से स्वयं मेघ में अपने को उत्सर्ग कर मरना चाहा था—वह ताप खो गया, उस प्रचण्ड गति का अवसान हो चुका, तुम्हारी चेष्टा निरुद्देश हो गई। हे प्राचीन पाषाण, तुम अपनी सीमा पा चुके हो। इसीलिये आज मौन शान्त-हृदय होकर अपने को असीम के हाथों में सौंप दिया है।"

(१७)

तपोमूर्त्ति

तुमि आछ हिमाचल भारतेर अनन्तसञ्चित
तपस्यार मतो। स्तब्ध भूमानन्द येन रोमाञ्चित
निविड़ निगूढ़ भावे पथशून्य तोमार निर्ज्जने,
निष्कलङ्क नीहारेर अभ्रभेदी आत्मबिसर्ज्जने।
तोमार सहस्र शृङ्ग बाहु तुलि कहिछे नीरवे
ऋषिर आश्वासवाणी—"शुन शुन विश्वजन सबे,
जेनेछि, जेनेछि आमि "ये ओङ्कार आनन्द आलोते
उठेछिलो भारतेर विराट् गभीर वक्ष ह'ते
आदि-अन्तबिहीनेर अखण्ड अमृत लोक पाने,
से आजि उठिछे बाजि', गिरि तव बिपुल पाषाणे!
एक दिन ए भारते बने बने होमाग्नि आहुति
भाषाहारा महावार्त्ता प्रकाशिते करिछे आकूति,
सेइ बह्नि-वाणी आजि अचल प्रस्तर शिखारूपे
शृङ्गे शृङ्गे कोन् मन्त्र उच्छ्वासिछे मेघधूम्रस्तूपे!

"हे हिमाचल, तुम भारत की अनन्त संचित तपस्या की नाईं हो। स्तब्ध-भूमानन्द निबिड़ निगूढ़ भाव से तुम्हारे सुनसान निर्जन पथ

पर कलंक-रहित नीहार के अभ्रभेदी आत्म-विसर्जन से मानो रोमांचित है। तुम्हारी हज़ारों चोटियाँ बाँह उठाकर ऋषियों की आश्वासन-वाणी चुपचाप कह रही हैं—"सुनो-सुनो, संसारवासी सभी! जान गया, मैं जान गया।" जो ओङ्कार-ध्वनि भारत के विराट गभीर वक्षस्थल से निकलकर आनन्दालोक में अनादि अनन्त के अखण्ड-अमर-लोक की ओर चली थी, वही आज भी, हे गिरि, तेरे विपुल पाषाण में गूँज रही है। एक दिन इसी भारत के वन-वन में होमाग्नि की आहुति भाषा-विहीन महावार्त्ता प्रगट करने के लिये आतुर रहती थी, वही अग्नि-वाणी आज अचल पत्थर की चोटी का रूप धारण कर मेघ-धूम्रस्तूप में चोटी-चोटी पर कौन-सा मन्त्र उच्छ्वसित कर रही है?"

(१८)

पागल

आँधार राते एकला पागल याय केँदे।
बले शुधु, बुझिये दे, बुझिये दे, बुझिये दे॥
आमि ये तोर आलोर छेले,
आमार सामने दिलि आँधार मेले;
मुख लुकालि, मरि आमि सेई खेदे,
बुझिये दे, बुझिये दे, बुझिये दे॥
अन्धकारे अस्त-रबिर लिपि लेखा,
आमारे ता'र अर्थ शेखा।
तोर प्राणेर बाँशीर तान से नाना,
सेइ आमारइ छिल जाना,
आज मरण बीणार अजाना सुर नेबो सेधे;
बुझिये दे, बुझिये दे, बुझिये दे॥

"अँधेरी रात में अकेला पागल रोता जाता है। केवल यही कहता है—समझा दो, समझा दो, समझा दो! मैं तो तुम्हारे आलोक का

पुत्र हूँ। मेरे सामने अँधेरा कर दिया, मुँह छिपा लिया, इसी खेद से मैं मरता हूँ, समझा दो—इत्यादि। अन्धकार में अस्त सूर्य्य की लिपि-लेखा का अर्थ मुझे सिखा दो। तेरे हृदय की वाँसुरी के तरह-तरह के तान ही मुझे मालूम थे, आज मरण-वीणा के अज्ञात सुर को साध लूँगा। समझा दो—इत्यादि।"

(१९)

एकाल ओ सेकाल

वर्षा एलायेछे ता'र मेघमय वेणी।
गाढ़ छाया सारा दिन,
मध्याह्न तपनहीन,
देखाय श्यामलतर श्याम वनश्रेणी।
आजिके एमन दिने शुधु पड़े मने
सेइ दिवा-अभिसार
पागलिनी राधिकार,
ना जानि से कबेकार दूर वृन्दाबने।
से दिन ओ एमनि बायु रहिया रहिया
एमनि अश्रान्त वृष्टि,
तड़ित-चकित दृष्टि,
एमनि कातर हाय रमणीर हिया
बिरहिणी मर्म्मे मरा मेघमन्द्र स्वरे,
नयने निमेष नाहि,
गगने रहित चाहि',
आँकित प्राणेर आशा जलदेर स्तरे।
चाहित पथिकबधु शून्य पथपाने।
मल्लार गाहित का'रा,
भरित बरषाधारा,

नितान्त वाजित गिया कातर पराणे।
यक्षनारी बीणा कोले भूमिते बिलीन,
बक्षे पड़े रुक्ष केश
अयत्न-शिथिल बेश;
से—दिनओ एमनितर अन्धकार दिन।
सेइ कदम्बेर मूल, यमुनार तीर,
सेइ से शिखिर नृत्य
एखनो हरिछे चित्त,
फेलिछे विरहछाया श्रावण-तिमिर
आज ओ आछे बृन्दावन मानवेर मने।
शरतेर पूर्णिमाय
श्रविणेर बरिषाय
उठे बिरहेर गाथा बने उपबने।
एखनो से बाँशि बाजे यमुनार तीरे।
एखनो प्रेमेर खेला,
सारादिन, साराबेला
एखनो काँदिछे राधा हृदय-कुटीरे।

"वर्षा ने अपनी मेघमय वेणी फैला दी है। सारा दिन गाढ़ी छाया छायी रहती है, मध्याह्न सूर्य्य-हीन हो जाता है, श्याम वन-श्रेणी श्यामल-तर दीख पड़ती है! आज के ऐसे दिन में न मालूम कब का दूर बृन्दावन में बावली राधिका का दिवा-अभिसार केवल याद पड़ता है। उस दिन भी इसी तरह रह-रहकर हवा चलती थी, इसी तरह अश्रान्त वृष्टि थी, इसी तरह बिजली से दृष्टि चकाचौंध हो जाती थी और इसी तरह रमणी का हृदय कातर हो उठता था। विरहिणी मेघ-स्वर सेमर्म ही मर्म में मर जाती थी। नयनों के पलक नहीं गिरते, आकाश की ओर ताकती रहती और प्राणों की आशा बादल पर खींचती। बटोही की

बधू सुनसान रास्ते की तरफ़ ताकती। मलार कौन गाता था, जिससे वर्षा-धारा गूँज उठती थी, जो नितान्त कातर प्राणों में बज उठता था। यक्ष-नारी वीणा को गोद में लिये भूमि पर लोट पड़ती, वक्षस्थल पर रूखे केश आ पड़ते, यत्न बिना वेश शिथिल हो जाता; वह दिन भी ऐसा ही अन्धकारमय था। वह कदम्ब की जड़, यमुना का तट और वह मोर का नृत्य इस समय भी चित्त को हरता है। श्रावण-अन्धकार विरह की छाया फेंक रहा है। आज भी वह वृन्दावन मनुष्यों के मन में बसता है। शरत् की पूर्णिमा में, श्रावण की वारिधारा में, वन-उपवन में विरह की गाथा बज उठती है। अभी भी वह वंशी यमुना के तीर पर बजती है। अभी भी सारा दिन निरन्तर प्रेम का खेल होता है। इस समय भी राधा हृदय-कुटीर में रो रही है।"

(२०)

पागल

पागल हइया बने-बने फिरि
आपन गन्धे मम
कस्तूरी-मृग-सम।
फाल्गुन-राते दक्षिण-बाये
कोथा दिशा खूँजे पाइ ना,
याहा चाइ ताहा भुल करे चाइ,
याहा पाइ ताहा चाइ ना।
वक्ष हइते बाहिर हइया
आपन बासना मम
फिरे मरीचिका सम।
बाहु मेलि ताहे वक्ष लइते
वक्षे फिरिया पाइ ना।

(२५०)

याहा चाइ ताहा भुल क'रे चाइ
याहा पाइ ताहा चाइ ना।
निजेर गानेरे बाँधियाधिरते
चाहे येन बाँशी मम,
उतला पागल सम।
यबे बाँधि ध'रे, तार माझे आर
रागिणी खूँजिया पाइ ना।
याहा चाइ ताहा भुल क'रे चाइ
याहा पाइ ताहा चाइ ना।

"पागल होकर अपने ही गन्ध में भटकनेवाले कस्तूरी-मृग की नाईं बन-बन में भटकता फिरता हूँ। फागुन की रात में दक्षिण-पवन में दिशा का ज्ञान खो बैठता हूँ, जो चाहता हूँ वह ग़लत चाहता हूँ। जो पाता हूँ, वह नहीं चाहता। मेरे अन्तःकरण से मेरी बासना निकलकर मरीचिका की तरह घूमती फिरती है। फिर भी उसे बस में लाने के लिये बाँह फैलाता हूँ; लेकिन उसे बस में नहीं पाता हूँ। जो चाहता हूँ, वह ग़लत चाहता हूँ। जो पाता हूँ, वह नहीं चाहता। अपने ही गान को बाँधकर रखने के लिये मेरी बाँसुरी उतावले पागल की नाईं चाहती है। जब उसे बाँधकर रखता हूँ, उसमें रागिणी का पता खोजकर भी नहीं पाता हूँ। जो चाहता हूँ, वह ग़लत चाहता हूँ। जो पाता हूँ, वह नहीं चाहता।"

(२१)

आजि गन्धबिधुर समीरणे
कार सन्धाने फिरि बने बने?
आजि क्षुब्ध नीलाम्बर माझे
ए कि चञ्चल क्रन्दन बाजे।

(२५१)

सुदूर दिगन्तेर सकरुण संगीत
लागे मोर चिन्ताय काजे—
आमि खूँजि कारे अन्तरे मने
गन्धबिधुर समीरणे
ओ गो जानि ना की नन्दन रागे
सुखे उत्सुक यौवन जागे।
आजि आम्रमुकुल-सौगन्ध्ये,
नव—पल्लव—मर्म्मर छन्दे,
चन्द्र—किरण—सुधा—सिञ्चित अम्बरे
अश्रु-सरस महानन्दे
आमि पुलकित कार परशने
गन्धबिधुर समीरणे॥

"समीर सुगन्ध से आतुर है, आज मैं किस की खोज में बन-बन में भटकता हूँ? क्षुब्ध नीलाकाश में आज यह कैसी चंचल रुलाई गूँज रही है! दूर का करुण-गान मेरी चिंता को बढ़ाता है। मैं बाहर और भीतर किसे ढूँढ़ रहा हूँ? जब समीर गंध से कातर है।

अजी, मुझे क्या मालूम कि किस आनन्ददायी राग से सुखी होकर उत्सुक यौवन जाग्रत होता है। आज, जब कि आम की मञ्जरी से दिशायें सुगन्धित हो रही हैं, नई-नई पत्तियों की मर्मर ध्वनि सुनाई पड़ रही है, चन्द्रमा की किरणों के अमृत से आकाश सिञ्चित है और वायु गन्ध से कातर है, मैं किसके स्पर्श से पुलकित हूं।"

(२२)

आषाढ़ सन्ध्या घनिये एलो,
गेलो रे दिन र'ये।
बाँधनहारा वृष्टि-धारा
झ'रछे र'ये र'ये

एकला घ'से घरेर कोणे
की भावि ये आपन मने,
सजल हाओया यूथीर बने
की कथा याय क'ये।
बाँधनहारा वृष्टि-धारा
झ'रछे र'ये र'ये।
हृदय आज टेउ दियेछे
खूँजे ना पाइ कूल;
सौरभे प्राण काँदिये तुले
भिजे वनेर फुल।
आँधार राते प्रहरगुलि
कोन सुरे आज भरिये तुलि,
कोन भुले आज सकल भुलि'
आछि आकुल ह'ये।
बाँधनहारा वृष्टिधारा
झ'रछे र'ये र'ये॥

"आषाढ़ की सन्ध्या घनीभूत हो आयी, दिन पड़ा ही रहा। बाँध तोड़कर वृष्टिधारा रह-रहकर झर रही है। घर के कोने में अकेला बैठकर अपने मन से न मालूम क्या-क्या सोचता हूँ, सजल पवन जूही की झाड़ियों में कौन-सी बात कह जाता है। बाँध तोड़कर वृष्टिधारा रह-रहकर झर रही है। हृदय में आज लहरें उठी हैं। खोजने पर भी किनारे का पता नहीं चलता; सौरभ से प्राणों को बन के भींगे हुए फूल रुला देते हैं। अँधेरी रात के पहरों को किस सुर से आज भर दूँ, किस भूल-भुलैया में आज सभी कुछ भूलकर व्याकुल हूँ। बाँध तोड़ कर वृष्टिधारा रह-रहकर झर रही है।"

(२३)

लेगेछे अमल धवल पाले
मन्द मधुर हाओया।
देखि नाइ कभु देखि नाइ
एमन तरणी बाओया।
कोन् सागरेर पार ह'ते आने
कोन् सुदूरेर धन।
भेसे येते चाय मन,
फेले येते चाय एइ किनाराय
सब चाओया सब पाओया।
पिछने झरिछे झर झर जल
गुरु गुरु देया डाके,
मुखे एसे पड़े अरुण किरण
छिन्न मेघेर फाँके।
ओगो काण्डारी, के गो तुमि कार
हासि कान्नार धन।
भेवे मरे मोर मन,
कोन् सुरे आज बाँधिबे यन्त्र
की मन्त्र हबे गाओया।

"स्वच्छ सफ़ेद पाल में मन्द-मधुर हवा लगती है। आज तक कभी मैंने इस तरह नाव का चलना नहीं देखा था। किस सुदूर देश का धन किस सागर के पार से ले आता है? मेरा मन यहीं गोते लगाना चाहता है। सभी माँग और दान इसी किनारे पर फेंक जाने की इच्छा होती है। पीछे मूसलाधार वृष्टि हो रही है और बादल गम्भीर भाव से गरज रहे हैं। सामने मुँह पर छिन्न मेघ के बीच से अरुण किरणें नाच रही हैं।

ऐ कर्णधार, तुम कौन हो ? किसके हास्य-क्रन्दन के धन हो ? मेरा मन यही सोचकर मर रहा है कि किस सुर से आज तुम यन्त्र कसोगे और कौन-सा मन्त्र गाओगे ?''

(२४)

सुन्दर, तुमि एसेछिले आज प्राते
अरुण बरण पारिजात ल'ये हाते
निद्रित पुरी, पथिक छिल ना पथे,
एका चलि' गेले तोमार सोनार रथे,
बारेक थामिया, मोर वातायन पाने
चेये छिले तब करुण नयन पाते।
सुन्दर, तुमि एसे छिले आज प्राते।
स्वपन आमार भेरे छिलो कोन् गन्धे,
घरेर आँधार कँपेछिलो की आनन्दे,
धूलाय लुटानो नीरव आमार बीणा
बेजे उठेछिलो अनाहत की आघाते॥
कतबार आमि भेबेछिनु उठि-उठि
आलस त्यजिया पथे बाहिराइ छुटि,'
उठिनु यखन तखन गियेछो चले
देखा बुझि आर ह'लो ना तोमार साथे
सुन्दर, तुमि एसेछिले आज प्राते॥

''सुन्दर, तुम आज प्रातःकाल हाथों में लाल रंग का पारिजात-पुष्प लेकर आये थे। नगरी सोई थी, मार्ग में राही न थे, अकेले अपने सोने के रथ पर चले गये। एक बार रुककर मेरे झरोखे की ओर अपने करुणनयनों से तुमने देखा था। सुन्दर, तुम आज प्रातःकाल आये थे। मेरा सपना किस गन्ध से आतुर हुआ था ? घर का अँधेरा किस आनन्द से काँप उठा था ? धूल में पड़ी हुई मेरी नीरव वीणा अनहद के

आघात से बज उठी थी। कितनी बार मैंने सोचा था कि अब उठ पड़ूँ, आलस्य त्यागकर रास्ते पर बाहर दौड़ निकलूँ; किन्तु जब उठा तो देखा कि तुम चले गये थे। शायद अब तुमसे भेंट नहीं होगी। सुन्दर, तुम आज प्रातःकाल आये थे।"

(२५)

से ये पाशे एसे ब'से छिलो
तबु जागि नि।
की घुम तोरे पेयेछिलो
हतभागिनी।
एसे छिलो नीरव राते
वीणा खानि छिल हाते,
स्वपन माझे वाजिये गेलो
गभीर रागिणी।
जेगे देखि दखिन हाओया
पागल करिया
गन्ध ताहार भेसे बेड़ाय
आँधार भरिया।
केन आमार रजनीयाय
काछे पेये काछे ना पाय,
केन गो ताहार मालार परश
बुके लागे नि॥

"वह तो बग़ल ही में आकर बैठा था, तब भी नहीं जागी। ऐ हतभागिनी! कौन-सी नींद तुम्हें लगी थी। स्तब्ध रात में आया था, वीणा हाथ ही में थी, सपने में गंभीर रागिणी बजा गया! जागकर देखती हूँ कि दक्षिण पवन बावली बनाकर अपनी सुगन्ध लुटाता चलता है।

क़िस वजह से मेरी रात नष्ट होती जा रही है। उसे नज़दीक पाकर भी नहीं प्राप्त किया ? अजी, उसकी माला का स्पर्श कलेजे से क्यों नहीं छू गया ?"

(२६)

कथा छिल एक-तरीते केवल तुमि आमि
याबो अकारणे भेसे केवल भेसे
त्रिभुवने जानबे ना केउ आमरा तीर्थगामी
कोथाय येतेछि कोन् देशे से कोन् देशे ।
कूलहारा सेइ समुद्र माझखाने
शोनाबो गान एकला तोमार काने,
टेउयेरमतन भाषा-बाँधन-हारा
आमार सेइ रागिणी शुनबे नीरव हेसे ।
आजो समय हयनि कि तारि, काज कि आछे बाकि ।
ओगो ऐ ये सन्ध्या नामे सागरतीरे ।
मलिन आलोय पाखा मेले सिन्धु पारेर पाखी
आपन कुलायमाझे सबाइ एलो फिरे ।
कखन् तुमि आसबे घाटेर परे
बाँधनटुकु केटे देवार तरे
अस्त रबिर शेष आलोटिर मतो
तरी।निशीथमाझे याबे निरुद्देशे ॥

"बात यह ठहरी कि एक ही नाव में केवल तुम और मैं निरुद्देश भाव से बहता जाऊँगा । त्रिलोक में भी कोई नहीं जानेगा कि हम लोग तीर्थयात्री हैं, कहाँ और किस देश में जाते हैं। उस अकूल समुद्र के बीच में मैं अकेले तुम्हारे कानों में गीत सुनाऊँगा। लहरों जैसी भाषा में मेरी वह अटूट रागिणी तुम चुपचाप हँसते हुये सुनोगे।

आज भी क्या उसका समय नहीं हुआ है ? काम क्या अभी बाकी पड़ा है ? अजी, सन्ध्या तो सागर-तट पर उतर आती है । धुँधली रोशनी में डैने फटकारती हुई समुद्र पार की पक्षियाँ सभी अपने-अपने घोंसले को लौट आयीं । तुम घाट पर कब आओगे ? और बन्धन खोल दोगे ? डूबते हुए सूरज की आखिरी रोशनी की नांई नाव निशीथ में निरुद्देश्य भाव से सरकती जायेगी ।"

(२७)

कतो अजानारे जानाइले तुमि,
कतो घरे दिले ठाँइ,
दूर के करिले निकट, बन्धु,
परके करिले भाइ ।
पुरानो आवास छेड़े याइ यबे
मने भेबे मरि कि जानि की हबे,
नूतनेर माझे तुमि पुरातन,
से-कथा ये भूले याइ ।
दूरके करिले निकट, बन्धु,
परके करिले भाइ ।

जीवने मरणे निखिल भुवने
यखनि येखाने लबे,
चिर जनमेर परिचित ओहे
तुमिइ चिनाबे सबे ।
तोमार जानिले नाहि केह पर
नाहि कोनो माना, नाहि कोनो डर,
सबारे मिलाये तुमि जागिते छो
देखा येन सदा पाइ ।

दूर के करिले निकट बन्धु,
परके करिले भाइ ॥

'हे बन्धु, कितने अनजान को तुमने जगाया, कितने घरों में तुमने जगह बनाई, दूर को निकट किया, दूसरे को भाई बनाया। पुराने घर को जब छोड़ जाता हूँ तब मन ही मन में सोच कर मरता हूँ कि न मालूम क्या होगा? नूतन के मध्य में भी तुम पुरातन हो, यह बात तब मैं भूल जाता हूँ। दूर को निकट किया, दूसरे को भाई बनाया। जीवन-मरण निखिल भुवन में तुम जब जहाँ रहोगे, तुम चिर जन्म के परिचित हो। तुम ही पहचान आओगे। तुम्हें जिसने जान लिया उसके लिये पराया कोई नहीं है, न उसे कोई मना है, न कोई डर; सभों को सुला (डुबा) कर तुम्हीं एक जागते हो; सदा जिसमें तुम्हें देख पाउँ। बन्धु, दूर को निकट किया, पराये को भाई बनाया।"

(२८)

ओरे माझि ओरे आमार
मानवजन्मतरीर माझि,
शुनते कि पास् दूरेर थेके
पारेर बाँशि उठ्छे बाजि'।

तरीर कि तोर दिनेर शेषे
ठेक्बे एबार घाटे एसे?
सेथाय सन्ध्या अन्धकारे
देय कि देखा प्रदीपराजि?

येन आमार लाग्छे मने,
मन्द मधुर एइ पवने
सिन्धुपारेर हासिटि कार
आँधार वेये आसछे आजि।

(२५६)

आसार बेलाय कुसुमगुलि
किछु एनेछिलेम तुलि',
येगुलि तारे'र नवीन आछे
एइ बेला ने साजिये साजि ॥

"अजी माँझी, मेरी मानव-जन्मरूपी नौका के माँझी! क्या तुम दूर से उस पार जो बाँसुरी बज उठती है, उसे सुन पाते हो? तुम्हारी नाव क्या दिनान्त में अब घाट पर जा भिड़ेगी? यहाँ क्या सन्ध्या के अन्धकार में दीपमाला दीख पड़ती है? मेरे मन में ऐसा मालूम होता है कि इस मन्द-मधुर पवन में न मालूम सिन्धु पार से किसकी हँसी आज यह अँधेरा होकर आती है! आने के समय जो कुछ फूल चुन कर लाया था, उनमें से जो नवीन हैं, उनसे इस समय साज सजा लो।"

(२६)

ओगो मौन, ना यदि कओ
ना-इ कहिले कथा,
वक्ष भरि' बइबो आमि
तोमार नीरवता।

स्तब्ध ह'ये रइबो प'ड़े,
रजनी रय येमन क'रे
ज्वालिये तारा निमेष हारा
धैर्य्य अबनता।

हबे हबे प्रभाते हबे
आँधार याबे केटे।
तोमार बाणी सोनार धारा
पड़्बे आकाश फेटे।

(२६०)

तखन आमार पाखीर बासाय
जाग्वे कि गान तोमार भाषाय ?
तोमार ताने फोटाबे फुल
आमार बनलता ?

"अजी मौन ! यदि बातें न करोगे तो न करो। तुम्हारी नीरवता से हृदय को ओतप्रोत करके मैं उसका भार वहन करूँगा। जिस तरह रात्रि ताराओं को जलाकर निद्राहीन धैर्य्य से अवनत हुई रहती है उसी तरह चुपचाप मैं पड़ा रहूँगा। होगा और ज़रूर प्रभात होगा। अँधेरा साफ़ हो जायेगा। तुम्हारी वाणी सोने की धारा होकर आकाश फाड़कर बाहर निकलेगी। तब मेरी चिड़िया के घोंसले में तुम्हारी भाषा से कौन-सी सङ्गीत-लहरी निकलेगी ? तुम्हारी तान से क्या मेरी बनलता में फूल खिलेंगे ?"

(३०)

उड़िये ध्वजा अभ्रभेदी रथे
ऐ ये तिनि, ऐ ये बाहिर पथे।
आयरे छुटे, टानते हबे रसि,
घरेर कोणे रहलि कोथाय बसि' ?
भिड़ेर मध्ये झाँपिये प'ड़े गिये
ठाँइ क'रे तुइ ने रे कोनोमते।
कोथाय की तोर आछे घरेर काज,
से सब कथा भुल्ते हबे आज।
टान्रे दिये सकल चित्तकाया
टान्रे छेड़े तुच्छ प्राणेर माया,
चल्रे टेने आलोय अन्धकारे
नगर ग्रामे अरण्ये पर्व्वते।

(३६१)

ऐ ये चाका घुरछे झनूझनि',
बुकेर माझे शुनूछो कि सेइ ध्वनि ?
रक्ते तोमार दुलूछे ना कि प्राण ?
गाइछे ना मन मरणजयी गान ?
आकाङ्क्षा तोर बन्याबेगेर मतो।
छुटूछे ना कि बिपुल भविष्यते ?

"रथ पर अभ्रभेदी झंडे फहराये। वही तो हैं, वही बाहर के रास्ते पर। अरे, दौड़कर आओ, रस्सी खींचनी होगी। घर के कोने में कहाँ बैठे हो ? इसी भीड़ में डुबकी मारकर तुम किसी तरह अपने लिये जगह बना लो ? कहाँ तेरा घर, कौन-सा काम है, वह सभी बातें आज भूल जानी होंगी। खींच, तन्मय होकर खींच, तुच्छ प्राणों की ममता छोड़ दे, उजियाले-अँधेरे, नगर-गाँव, जंगल-पहाड़ों पर से होकर खींचता चला जा। क्या तुझे अपने झमझम शब्द करके जो पहिये घूम रहे हैं उनकी ध्वनि हृदय में सुनाई पड़ रही है ? रक्त के आवेग से तेरे प्राण शायद हिल उठते हैं ? तेरा मन क्या मरणजयी गान नहीं गा रहा है ? तेरी सारी आकांक्षायें बन्या के प्रबल वेग की नाईं क्या विपुल भविष्य की ओर दौड़ती नहीं जा रही हैं ?"

(३१)

जगत् जुड़े उदार सुरे
आनन्द[illegible] न बाजे
से गान कबे गभीर रवे
बाजिबे हिया माझे
बाताल जल आकाश आलो
सबारे कबे बासिबो भालो,
हृदय सभा जुड़िया ता'रा
बसिबे नाना साजे

नयन दु'टि मेलिले कबे
पराण हबे खुसि,
ये पथ दिया चलिया याबो
सबारे याबो तुषि'।
र'येछो तुमि ए—कथा कबे
जीवन माझे सहज हबे,
आपनि कबे तोमारि नाम
ध्वनिबे सब काजे॥

"संसार-व्यापी होकर उदार सुर से आनन्द गीत ध्वनित हो रही है। यह गीत गंभीर रव से मेरे हृदय में कब प्रतिध्वनित होगी। जल, वायु आकाश और तेज आदि सभी को प्यार करने की शक्ति मुझमें कब आयेगी और ये सब तरह-तरह के श्रृङ्गार करके मेरे हृदय में सभा लगायेंगे। दोनों आँखों को बन्द करने पर कब मेरे प्राण खुश होंगे और कौन-सा ऐसा पथ है जिससे चले जाने पर सभों को खुश करता जाऊँगा। तुम तो हो ही, इस बात का अनुभव जीवन में कब आसानी से कर सकूँगा और तुम्हारा नाम सभी कामों में अपने आपही कब से प्रतिध्वनित होगा?"

(३२)

मेघेर परे मेघ ज'मेछे,
आधार क'रे आसे,
आमाय केन बसिय राखे
एका द्वारेर पाशे।
काजेर दिने नाना काजे
थाकि नाना लोकेर माझे,
आज आमि ये ब'से आछि
तोमारि आश्वासे।

आमाय केन बसिये राखो
एका द्वारेर पाशे ॥
तुमि यदि ना देखा दाओ
करो आमाय हेला,
केमन क'रे काटे आमार
एमन बादल बेला।
दूरेर पाने मेले आँखि
केवल आमि चेये थाकि,
पराण आमार केँदे बेड़ाय
दुरन्त बातासे।
आमाय केन बसिये राखो
एका द्वारेर पाशे ॥

"बादल पर बादल घिरकर अँधेरा किये आ रहे हैं। मुझे अकेले क्यों दरवाजे पर बैठा रक्खे हो? काम के दिनोंमें बहुत से कामों में अनेक लोगों की भीड़ में रहता हूँ; किन्तु आज तो तुम्हारी ही प्रतीक्षा में मैं बैठा हूँ। मुझे क्यों अकेले दरवाज़े पर बैठा रक्खे हो? तुम यदि मुझे दर्शन नहीं दोगे और मुझे ठुकराओगे तो किस तरह मेरे ये मेघ के दिन (मेरी यह बरसात) कटेंगे? मैं आँखें बिछाये हुए केवल दूर की ओर ताकता रहता हूँ और मेरे प्राण सुदूर-पवन में क्रन्दन करते फिरते हैं। मुझे क्यों दरवाज़े पर अकेले बैठा रक्खे हो?"

(३३)

तोरा शुनिस् नि कि शुनिस् नि ता'र पायेर ध्वनि,
ऐ ये आसे, आसे, आसे।
युगे युगे पले पले दिन-रजनी
से ये आसे, आसे, आसे।

गेयेछि गान यखन यतो
आपन मने क्यापार मतो
सकल सुरे बेजेछे तार
आगमनी—
से ये आसे, आसे, आसे।
कतो कालेर फागुन दिने बनेर पथे
से ये आसे, आसे, आसे।
कतो श्रावण अन्धकारे मेघेर रथे
से ये आसे, आसे, आसे।
दुखेर परे परम दुखे,
तारि चरण बाजे बुके,
सुखे कखन बुलिये से देय
परशमणि
से ये आसे, आसे, आसे॥

वह जो आया करता है, युग-युग में पल-पल पर और रात-दिन में जो सदा आया करता है, उसके पैरों की आहट क्या तुम लोगों ने नहीं सुनी? अपने आप पागल की भाँति मैंने जब जितने गीत गाये हैं, उन सब के सब में उसी के आगमन की ध्वनि प्रतिध्वनित हुई है। कितने समय फागुन के दिन में सावन की कितनी अँधेरी रातों में मेघ के रथ पर समारूढ़ होकर वह आता है। कठिन से कठिन दुख में भी हृदय में उसके पैरों की आहट मिलती है। सुख के समय भी वह कभी कभी एक विचित्र ही पुलक का सञ्चार करता है।"

(३४)

मनके, आमार कायाके,
आमि एकबारे मिलिये दिते,
चाइ, ए कालो छाया के।

(२६९)

ए आगुने ज्वलिये दिते
ए सागरे तलिये दिते,
ए चरणे गलिये दिते,
दलिये दिते माया के,
मनके आमार कायाके।
येखाने याइ सेथाइ ए-के,
आसन जुड़े ब'सते देखे
लाजे मरि, लओगो हरि
एइ सुनिबिड़ छाया के।
मनके आमार काया के।
तुमि आमार अनुभावे
कोथाओ नाहि बाधा पावे,
पूर्ण एका देवे देखा
सरिये दिये माया के
मनके आमार काया के॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस काली छाया को एकदम मिटा देना चाहता हूँ। अपने मन और शरीर को उस आग में जला देना चाहता हूँ, उस सागर में डुबो देना चाहता हूँ, उन चरणों में लीन कर देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं जहाँ जाता हूँ वहीं इन्हें आसन लगाकर बैठे हुए देखकर लाज से मर जाता हूँ। ए हरि, इस प्रगाढ़ छाया, मेरे मन और शरीर को तुम लो। मेरी शक्ति से तुम्हें कहीं भी बाधा न पड़ेगी। मेरी माया को हटाकर तुम मेरे मन को और मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो।"

(२९)

आमार माथा नत करे दाओ हे तोमार
चरण-धूलार तले।

सकल अहङ्कार हे आमार
डुबाओ चोखेर जले।
निजेरे करिते गौरव दान,
निजेरे केवलि करि अपमान,
आपनारे शुधु घेरिया घेरिया
घुरे मरि पले पले।
सकल अहङ्कार हे आमार
डुबाओ चोखेर जले।
आमारे येन ना करि प्रचार
आमार आपन काजे;
तोमारि इच्छा करो हे पूर्ण
आमार जीवन माझे।
याचि हे तोमार चरम शान्ति,
पराणे तोमार परम कान्ति,
आमारे आड़ाल करिया दाँड़ाओ
हृदय-पद्म-दले।
सकल अहंकार हे आमार
डुबाओ चोखेर जले॥

"प्रभो, अपने चरणों की धूल के नीचे मेरा मस्तक नत कर दो। मेरे सारे अहङ्कारों को आँसू में डुबा दो। जब मैं अपने को गौरवान्वित करने का प्रयत्न करता हूँ तो यथार्थ में अपना अपमान करता हूँ। अपने आप को घेरकर, चारों ओर घूम-घूमकर मैं मर रहा हूँ। प्रभो! मेरे आँसुओं में मेरे सभी अहंकार डुबा दो। ऐसा करो कि मैं अपने कामों में अपना प्रचार न करूँ। मेरे जीवन में तुम्हारी ही इच्छा परिपूर्ण हो। मैं तुम्हारी परम शांति की याचना करता हूँ। मेरी अभिलाषा है कि मेरे अन्तःकरण में तुम्हारी कान्ति बनी रहे। मेरे अन्तराल में, मेरे हृदय-पद्म

दल के ऊपर खिल उठो। प्रभो ! मेरे सभी अहंकार आँसुओं में डुबा दो।"

(३६)

प्रभु तोमा लागि' आँखि जागे;
देखा नाइ पाइ,
पथ चाइ,
सेओ मने भालो लागे।
धुलाते बसिया द्वारे
भिखारी हृदय हारे
तोमारि करुणा मागे।
कृपा नाइ पाइ
सेओ मने भालो लागे।
आजि ए जगत् माझे
कतो सुखे कतो काजे
चले गेलो सबे आगे।
साथी नाइ पाइ
तोमाय चाइ
सेओ मने भालो लागे।
चारि दिके सुधा भरा
व्याकुल श्यामल धरा
काँदाय रे अनुरागे।
देखा नाइ पाइ
व्यथा पाइ
सेओ मने भालो लागे॥

"प्रभो, तुम्हारे ही लिए आँखें जाग रही हैं; किन्तु भेंट नहीं होती। बाट जोहता रहता हूँ, वह भी मेरे मन को अच्छा ही लगता है। भिखारी

के रूप में धूल में द्वार पर बैठकर हृदय खो बैठता हूँ। तुम्हारी करुणा रूपी भिक्षा माँगता हूँ। कृपा नहीं होती है। वह भी मेरे मन को अच्छा लगता है। आज इस जगत के बीच में कितने सुख और काम में सभी आगे बढ़ गये। साथी मुझे कोई नहीं मिलता। मैं तुम्हें चाहता हूँ। वह इस तरह की निराशा भी मेरे मन को भाती है। चारोंओर मधुमयी व्याकुल श्यामला धरा अनुराग से रुला देती है। दर्शन नहीं होते, व्यथा होती है। वह भी मन को अच्छा लगता है।"

(३७)

सभा यखन भाङ्बे तखन
शेषेर गान कि यावो गेये
हय तो तखन कण्ठ हारा
मुखेर पाने रवो चेये।
एखनो ये सुर लागे नि
बाज्बे कि आर सेइ रागिणी
प्रेमेर व्यथा सोनार ताने
सन्ध्यागगन फेल्बे छेये
एतो दिन ये सेधेछि सुर
दिने राते आपन मने
भाग्ये यदि सेइ साधना
समाप्त हय एइ जीवने—
ए जनमेर पूर्ण वाणी
मानस-वनेर पद्मखानि
भासानो शेष सागर पाने
विश्वगानेर धारा वेये।

"सभा जब भंग होगी तो क्या अन्तिम गान गाता जाऊँगा? हो सकता है कि मैं उस समय कंठ-विहीन मूक की नाईं तुम्हारा मुँह ताकता

ही रह जाऊँ। जो सुर तक अभी ठीक साध न सका वह रागिणी क्या फिर बजेगी ? सोने के तार में क्या प्रेम की व्यथा सन्ध्याकाश में छा जायेगी ? इतने दिनों तक जिस सुर को अपने मन में रात-दिन मैंने साधा है, भाग्य ही से वह साधना इस जीवन में समाप्त होगी। मानस-बन के कमलरूपी इस जन्म की पूर्ण वाणी को शेष-सागर की ओर बहती हुई विश्व-गान की धारा के साथ बहा दूँगा।"

(३८)

वर्ष शेष

इशानेर पुञ्जमेघ अन्धवेगे धेये च'ले आसे
बाधाबन्ध हारा,
ग्रामान्तेर वेणुकुञ्जे नीलाञ्जन छाया सञ्चारिया,
हानि' दीर्घधारा।
वर्ष ह'ये आसे शेष, दिन ह'ये एलो समापन,
चैत्र अवसान;
गाहिते चाहिछे हिया पुरातन क्लान्त वरषेर
सर्व्व शेष गान॥
धूसर-पांशुल माठ, धेनुगण धाय ऊर्द्ध्वमुखे
छुटे चले चाषी
त्वराय नामाय पाल नदीपथे त्रस्त तरी यत
तीर प्रान्ते आसि।
पश्चिमे विच्छिन्न मेघे सायाह्नेर पिङ्गल आभास
राङाइछे आँखि—
विद्युत्-विदीर्ण शून्य झाँके झाँके उड़े चले याय
उत्कण्ठित पाखी॥
बीणातन्त्रे हानो हानो खरतर झङ्कार झञ्झना,
तोलो उच्चसुर।

हृदय निर्दय वाते झर्झरिया झरिया पड़ुक
प्रबल प्रचुर ।
गाओ गान प्राणभरा झड़ेर मतन ऊर्द्ध्ववेगे
अनन्त आकाशे ।
उड़े याक् दूरे याक् बिवर्ण विशीर्ण जीर्ण पाता
बिपुल निःश्वासे ॥

"ईशान कोण का पुञ्जीभूत मेघ अंधे की नाईं बाँध तोड़कर गाँव के किनारेवाले वेणुकुञ्ज में नीले आँजन की छाया बिछाता हुआ दौड़ता चला आ रहा है। वर्ष शेष होता आ रहा है। दिन समाप्त हो चला। चैत्र का अवसान हो चला; हृदय पुराने थके-माँदे वर्ष का अन्तिम गीत गाना चाहता है।

खेत धूलि से बिलकुल ढक गये हैं। गायें ऊर्द्ध्वमुख से दौड़ पड़ीं। किसान दौड़कर चल रहे हैं। नदी में त्रस्त नौकायें पाल गिराकर तीर की ओर द्रुतवेग से चलीं। पश्चिम दिशा में विच्छिन्न मेघों के भीतर से सायाह्न का पीला आभास लाल-लाल आँखें दिखा रहा है। विद्युत्-विदीर्ण शून्य आकाश में झुंड के झुंड पक्षी उत्कण्ठित भाव से चले जा रही हैं।

वीणा की ताँतों में खरा झंकार झनझनाओ और गले का स्वर और ऊँचा करो। हृदय निर्दय धातु से घिस-घिसकर प्रबल प्रचुर रूप में झर-झरकर गिरे। प्राण खोलकर अन्धड़ की नाईं ऊर्द्ध्ववेग से अनन्त आकाश में गीत गाओ। रूखे-सूखे पत्ते विपुल निःश्वास से उड़ जाँय, दूर हो जाँय।"

आनन्दे आतङ्के मिशि क्रन्दने उल्लासे गरजिया
मत्त हाहारवे।
झञ्झार मञ्जीर बाँधि उन्मादिनी काल बैशाखीर
नृत्य होक् तवे।
छन्दे छन्दे पदे-पदे अञ्चलेर आवर्त्त-आघाते
उड़े होक् क्षय।

धूलिसम तृणसम पुरातन बत्सरेर थत
निष्फल सञ्चय ॥
हे नूतन, एसो तुमि सम्पूर्ण गगन पूर्ण करि
पुञ्ज पुञ्ज रूपे,
व्याप्त करि' लुप्त करि' स्तरे स्तरे स्तवके स्तवके
घनघोर स्तूपे ।
कोथा ह'ते आचम्बिते मुहूर्त्तके दिक् दिगन्तर
करि अन्तराल ।
स्निग्ध कृष्ण भयङ्कर तोमार सघन अन्धकारे
रह क्षणकाल ॥
तोमार इङ्गित येन घन गूढ़ भ्रूकुटिर तले
बिद्युते प्रकाशे—
तोमार सङ्गीत येन गगनेर शत छिद्रमुखे
बायु गर्ज्जे आसे,
तोमार बर्षण येन पिपासारे तीव्र तीक्ष्ण बेगे
बिद्ध करि हाने,
तोमार प्रशान्ति येन सुप्त श्याम व्याप्त सुगम्भीर
स्तब्ध रात्रि आने ॥

"आनन्द और आतङ्क से मिली हुई रुलाई में, मत्त हाहाकार में, उल्लास से गरज कर, झाँझ-मँजीरे बाँधकर उन्मादिनी काल बैशाखी का तब नृत्य हो । छन्द-छन्द पर, पद-पद पर, पुराने वर्ष का जो कुछ भी निष्फल-संचय है, धूल और खर की नाईं (काल बैशाखी के) आँचल के लपेट की चोट से उड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाय ।

हे नवीन, तुम सारे आकाश को आच्छादित करके आओ, पुंज-पुंज रूप में, सतह-सतह को, पर्दे-पर्दे को व्याप्त कर उसमें लुप्त हो, घनघोर स्तूप में, अचानक मुहूर्त्त ही में किस तरह दिग्दिगन्तर की आड़

में अपने काले, चिकने, भयावने एवं घने अन्धकार में क्षणभर के लिये छिप रहते हैं।

तुम्हारे इशारे मानों बादल से भरी भौंहों के नीचे बिजली प्रकाशित करते हैं—तुम्हारा संगीत-वायु मानों आकाश के सैकड़ों छिद्रमुख से होकर गरजता है, तुम्हारा वर्षण मानों प्यास को तीव्र तीक्ष्ण वेग से बिद्धकर चोट पहुँचाता है, तुम्हारी प्रशान्ति मानों सोयी हुई, साँवली, फैली हुई, गहरी और सुनसान रात ले आती है।"

एबार आसोनि तुमि बसन्तेर आवेश-हिल्लोले
पुष्पदल चुमि',
एबार आसोनि तुमि मर्म्मरित कूजने गुञ्जने,—
धन्य धन्य तुमि।
रथचक्र घर्घरिया एसेछो बिजयी राजसम
गर्व्वित निर्भय,—
बज्रमन्त्रे की घोषिले बुझिलाम, नाहि बुझिलाम,—
जय तव जय॥
हे दुर्दम, हे निश्चित, हे नूतन निष्ठुर नूतन,
सहज प्रबल।
जीर्ण पुष्पदल यथा ध्वंस भ्रंस करि' चतुर्दिके
बाहिराय फल—
पुरातन-पर्णपुट दीर्ण करि' बिकीर्ण करिया
अपूर्व्व आकारे
तेमनि सबले तुमि परिपूर्ण हयेछो प्रकाश,—
प्रणमि तोमारे॥
तोमारे प्रणमि आमि, हे भीषण, सुस्निग्ध श्यामल,
अक्लान्त अम्लान।

सद्योजात महाबीर, की एनेछो करिया वहन
किछु नाहि जानो।
उड़ेछे तोमार ध्वजा मेघरन्ध्रच्युत तपनेर
ज्वलदर्चि-रेखा;
करजोड़े चेये आछि ऊर्द्ध्वमुखे, पड़िते जानि ना
की ताहाते लेखा॥

"इस बार वसन्त के आवेश हिल्लोल में फूल के गुच्छों को चूमते हुए तुम नहीं आये, इस बार मर्मरित कुहुक में, गुंजार में तुम नहीं आये,—तुम धन्य हो, धन्य। रथ के पहियों को घरघराते हुये विजयी राजा के समान गर्व के साथ निडर होकर आये हो,—वज्रमन्त्र से क्या घोषणा की? समझा और नहीं समझा—तुम्हारी जय हो, जय।

हे दुर्दम, हे निश्चित, हे नवीन, निष्ठुर नवीन, हे सहज, हे प्रबल! जीर्ण फूल के गुच्छों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ चारों ओर जिस तरह फल बाहर निकलता है उसी तरह पुराने पर्ण के पर्दे को चीर-फाड़ कर छीटते हुये अपूर्व आकार में सबल हो परिपूर्ण रूप से प्रकाशित हुये हो,—तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे भीषण, सुस्निग्ध, श्यामल, अक्लान्त, अम्लान, तुरन्त ही प्रादुर्भूत होनेवाले महाबीर बली, क्या ढोकर लाये हो! कुछ नहीं जानते हो। मेघरन्ध्र से निकलने वाली सूर्य्य की जलती हुई किरण-रेखा जो तुम्हारी ध्वजा है, फहरा चुकी है। हाथ जोड़े ऊपर मुँह किये हूँ। पढ़ना नहीं जानता जिससे पढ़कर जान लूँ कि उसमें क्या लिखा है।

हे कुमार, हास्यमुखे धनुके दाओ टान
झनन रनन,
बक्षेर पञ्जर भेदि अन्तरेते हऊक कम्पित
सुतीब्र स्वनन।

हे किशोर तुले तोमार उदार जयभेरी,
करह आह्वान ।
आमरा दाँड़ाओ उठि', आमरा छुटिया बाहिरिब ।
अर्पिब पराण ॥
चावो ना पश्चाते मोरा, मानिब ना बन्धन क्रन्दन,
हेरिब ना दिक,
गणिब ना दिनक्षण, करिब ना बितर्क बिचार,
उद्दाम पथिक ।
मुहुर्त्ते करिब पान मृत्युर फेनिल उन्मत्त
उपकण्ठ भरि',—
खिन्न शीर्ण जीवनेर शत लक्ष धिक्कार लाञ्छना
उतसर्जन करि' ॥
शुधु दिन-यापनेर शुधु प्राण-धारणेर ग्लानि,
सरमेर डालि,
निशि निशि रुद्ध घरे क्षुद्रशिखा स्तिमित दीपेर
धूमाङ्कित कालो,
लाभ क्षति टानाटानी, अति सूक्ष्म भग्न अंश भाग,
कलह संशय,
सहे ना सहे आर जीवनेर खण्ड खण्ड करि'
दण्डे दण्डे क्षय ।

"हे कुमार, हँसते हुये मुखड़े से धनुष को झनझना कर चढ़ा दो। उसका सुतीव्र-स्वर-झंकार छाती के पंजड़ों को छेदकर अन्तःकरण में काँप उठे। हे किशोर, अपनी सुन्दर जयभेरी को उठाकर सभी को हाँक दो। हम लोग खड़े हो जायँगे, दौड़कर बाहर निकलेंगे। और प्राण अर्पण कर देंगे। पीछे फिर कर नहीं देखेंगे, बन्धन क्रन्दन कुछ नहीं मानेंगे। दिशायें न देखेंगे। दिन का घटना न गिनेंगे। तर्क-विचार

न करेंगे। हम लोग उद्दाम पथिक हैं। मुहूर्त्त भर में मृत्यु को फेनिल-उन्मत्तता कण्ठ भर कर पान करेंगे—केवल दिन यापन की ग्लानि, प्राण-धारण की ग्लानि; शर्म की डाली, प्रत्येक रात को बन्द घर में छोटी बत्ती वाले टिमटिमाते हुए चिराग़ का धुँआ जैसी कालिमा, नक़ा हों की खींचातानी, कलह संशय इत्यादि जीवन का खण्ड खण्ड करके पल-पल क्षय अब सहा नहीं जाता।"

ये पथे अनन्त लोक चलियाछे भीषण नीरवे
से पथ प्रान्तेर
एक पार्श्वे राखो मोरे, निरखिब बिराट् स्वरूप
युग-युगान्तर।
श्येनसम अकस्मात छिन्न करे ऊर्द्ध्वे ल'ये याओ
पङ्क-कुण्ड ह'ते,
महान् मृत्युर साथे मुखामुखि करे दाओ मोरे
बज्रेर आलोते॥
तार परे फेले दाओ, चूर्ण करो याहा इच्छा तव,
भग्न करो पाखा।
येखाने निक्षेप करो हतपत्र, च्युत पुष्प-दल,
छिन्न-भिन्न शाखा,
क्षणिक खेलना तव, दयाहीन तव दस्युतार
लुण्ठनावशेष,
सेथा मोरे फेले दियो अनन्त-तमिस्र सेइ
विस्मृतिर देश॥
नवाङ्कुर इक्षुबने एखने झरिते वृष्टि धारा
विश्राम विहीन;
मेघेर अन्तर पथे अन्धकार ह'ते अन्धकारे
चले गेल दिन।

(३७६)

शान्त झड़े, झिल्लीरवे, धरणीर स्निग्ध गन्धोच्छ्वासे,
मुक्त वातायने
वत्सरेर शेष गान साङ्ग कोर' दिनु अञ्जलिया
निशीथ गगने ॥

"जिस पथ से असंख्य लोग बहुत ही चुपचाप चले हैं उसी पथ के किनारे एक बगल मुझे रखो, तुम्हारा विराट् स्वरूप युग-युगान्तर तक देखूँगा। अकस्मात पंककुण्ड से छिन्न कर ऊपर की ओर ले जाओ, महा मृत्यु के साथ वज्रालोक के दर्शन करा दो। उसके बाद चूर्ण कर जैसी तुम्हारी इच्छा हो फेंक दो, पंखे तोड़ दो। जहाँ तुम हृदयपत्र फेंक देते हो, गिरे हुये फूल टूटी-फूटी शाखायें तुम्हारे क्षण भर के खिलौने हैं, तुम्हारी दयाहीन डकैती में लूट की बची-खुची चीज़ हैं, वहीं मुझे फेंक देना। हे अनन्त, उसी विस्मृति के देश में नये अंकुर वाले ईख के वनों में अभी भी विश्रामहीन वृष्टिधारा झर रही है। मेघ के भीतरी रास्ते पर अन्धकार से भी अन्धकार में दिन चला गया। शान्त अन्धड़ में, झींगुर की आवाज़ में, पृथ्वी के स्निग्ध गन्धोच्छ्वास में निशीथ गगन के प्रति अञ्जलि देकर खुली खिड़की पर बैठकर वर्ष का अन्तिम गान शेष कर दिया।

(३९)

ताजमहल

ए कथा जानिते तुमि, भारत-ईश्वर सा-जाहान,
कालस्रोते भेसे याय जीवन यौवन धनमान।
शुधु तव अन्तर वेदना
चिरन्तन ह'ये थाक सम्राटेर छिल ए साधना।
राजशक्ति वज्र सुकठिन
सन्ध्यार करागसम तन्द्रातले हय होक लीन,
केवल एकटि दीर्घश्वास

नित्य उच्छ्वसित हये सकरुण करुक आकाश
एइ तव मने छिल आश।
हीरा मुक्तामाणिक्येर घटा
येन शून्य दिगन्तेर इन्द्रजाल इन्द्र धनुच्छटा
याय यदि लुप्त ह'ये याक
शुधु थाक
एकबिन्दु नयनेर जल
कालेर कपोलतले शुभ्र समुज्ज्वल
ए ताजमहल
हायरे मानव हृदय
बार बार
कारो पाने फिरे चाहिबार
नाइ ये समय
नाइ नाइ !

"हे भारत के ईश्वर शाहजहाँ, यह बात तुम जानते थे कि कालस्रोत में जीवन, यौवन, धन और मान सभी बह जाते हैं। केवल तुम्हारी अन्तर्वेदना चिरकालीन होकर रहे, (सम्राट्) यही तुम्हारी साधना थी। वज्रवत् सुकठिन राजशक्ति सन्ध्या की लालिमा की नाईं तन्द्रातल में यदि विलीन हो तो हो, पर केवल एक दीर्घ श्वास नित्य उच्छ्वसित होकर आकाश को सकरुण करे, यही तुम्हारे मन में आशा थी।

हीरा, मोती, माणिक्य की घटा सूने दिगन्त में इन्द्रजाल की नाईं इन्द्रधनुष की छटा जैसी है। यदि यह भी लुप्त हो जाय तो हो। केवल एक बिन्दु शुभ्र समुज्ज्वल नयन-जल काल के कपोलतल पर रहे, यह वही ताजमहल है। हाय रे मानव हृदय, बारबार किसी के प्रति फिर फिरकर ताकने का समय बिल्कुल ही नहीं है।"

जीवनेर खरस्रोते भासिछे सदाइ
भुवनेर घाटे घाटे:—
एक हाटे लश्रो बोझा, शून्य करे दाश्रो अन्य हाटे।
हाय रे हृदय
तोमार संचय
दिनान्ते निशान्ते पथप्रान्ते फेले येते हय।
नाइ नाइ, नाइ ये समय !
हे सम्राट्, ताइ तव शङ्कित हृदय
चेयेछिले करिवारे समयेर हृदय हरण
सौन्दर्य्ये भुलाये।
कण्ठे तार कि माला दुलाये
करिल बरण
रूपहीन मरणेर मृत्युहीन अपरूप साजे ?
रहे ना ये
बिलापर अवकाश
बारो मास
ताइ तव अशान्त क्रन्दने
चिरमौन जाल दिये बेंधे दिले कठिन बन्धने
ज्योत्स्नाराते निभृत मन्दिरे
प्रेयसीरे
ये नामे डाकिते धीरे
सेइ काने-काने डाका रेखे गेले एइ खाने
अनन्तेर काने।
प्रेमेर करुण कोमलता
फुटिलता

सौन्दर्य्येर पुष्प पुञ्जे प्रशान्त पाषाणे,
हे सम्राट कवि
एइ तव हृदयेर छवि
एइ तव नव मेघदूत,
अपूर्व अद्भुत
छन्दे गाने
उठियाछे अलक्ष्येर पाने
येथा तव विरहिणी प्रिया
रयेछे मिशिया
प्रभातेर अरुण--आभासे
क्लान्त-संध्या दिगन्तेर करुण निश्वासे
पूर्णिमाय देहहीन चामेलिर लावण्य-विलासे
भाषार अतीत तीरे
काङाल नयन येथा द्वार ह'ते आसे फिरे फिरे।
तोमार सौन्दर्य्यदूत युग युग धरि'
एड़ाइया कालेर प्रहरी
चलियाछे वाक्यहारा एइ बार्त्ता निया
"भुलि नाइ, भुलि नाइ, भुलि प्रिया॥"
चले गेछ तुमि आज,
महाराज;
राज्य तव स्वप्नसम गेछे छुटे
सिंहासन गेछे टुटे;
तव शैन्यदल
यादेर चरण भरे धरणी करित टलमल
ताहादेर स्मृति आज वायु भरे
उड़े याय दिल्लिर पथेर धूलि परे

बन्दीरा गाहे ना गान;
यमुना कल्लोल साथे नहबन मिलाय ना तान;
तव पुर सुन्दरीर नूपुर निक्कण
भग्न प्रसादेर कोणे
मरे' गिये झिल्लिस्वने
काँदाय रे निशाय गगन।
तबु ओ तोमार दूत अमलिन
श्रान्ति क्लान्तिहीन,
तुच्छ करि राज्य भाङा-गड़ा,
तुच्छ करि जीवनमृत्युर ओठा-पड़ा,
युगे युगान्तर
कहितेछे एकस्वरे
चिरबिरहीर बाणी निया
"भुलि नाइ, भुलि नाइ, भुलि नाइ प्रिया।"

"जीवन का प्रबल स्रोत भुवन के घाट घाट पर सदा ही बह रहा है। एक बाज़ार में बोझा उठाते हो (लादते हो) और दूसरे में उतार देते हो। हाय रे हृदय, तू जो कुछ सञ्चित करता है, उसे साँझ को या सवेरे रास्ते के बग़ल में फेंक जाना पड़ता है, उसके लिए कोई समय नहीं है। हे सम्राट्, इसीलिये तुम्हारा हृदय शङ्कित था। तुमने सौन्दर्य को खोकर समय का हृदय हर लेना चाहा था। उसके कण्ठ में कौन-सी माला पहनाकर (डाल कर) मृत्युहीन अपरूपसाज में रूपहीन मरण को वरण किया? बारहों मास विलाप का अवकाश नहीं रहता। इसोलिये अपने अशान्त क्रन्दन का चिरमौनजाल बुन कर उस चाँदनी रात में इस निभृत-मन्दिर में कठिन बन्धन से बाँध दिया। प्रेयसी को जिस नाम से धीरे-धीरे पुकारते थे वही कानोंकान वाली पुकार यहाँ अनन्त के कानों में रख गये हो।

प्रेम की करुण कोमलता इस प्रशान्त पाषाण में सौन्दर्य्य के फूल के गुच्छों में प्रस्फुटित हो उठी है। हे सम्राट् कवि, यही तुम्हारे हृदय की तस्वीर है, यही तुम्हारा नवीन मेघदूत है। अपूर्व और अद्भुत छन्द तथा गीत में होकर यह उस आलस्य की ओर को चढ़ने लगा है, जिसमें तुम्हारी विरहिणी प्रिया विलीन हो गयी है। प्रातःकाल के अरुण आभास में, क्लान्त-सन्ध्या-दिगन्त के करुण निश्वास में, पूर्णिमा की देहहीन चमेली के लावण्य-विलास में, भाषा के अतीत तीर पर जिस द्वार से कंगाल नयन फिर फिर कर चले आते हैं। तुम्हारा सौन्दर्य्यदूत युगयुगान्तर तक जय पाकर यह वाक्यविहीन वार्त्ता लेकर चला है—मैं भूला नहीं हूँ, भूला नहीं हूँ, भूला नहीं हूँ प्रिया !

महाराज, आज तुम चले गये, तुम्हारा राज्य स्वप्न जैसा भंग हो गया, सिंहासन नष्ट हो गया, तुम्हारे सैन्यदल, जिसके पैरों के नीचे पृथ्वी डगमगा उठती थी, उसकी भी स्मृति आज दिल्ली के रास्तों में वायु-द्वारा उड़कर मिल गयी है, वन्दीगण गान नहीं गाते, यमुना की लहरों के साथ नौबतख़ाने की शहनाई अब तान नहीं मिलाती; तुम्हारी राजनगरी की सुन्दरियों की नूपुरध्वनि ढहे प्रासाद के कोने में मरकर झींगुर के झाँझाँ स्वर में रात में आकाश को रुलाती है। तब भी तुम्हारा दूत अमलिन भ्रान्ति क्लान्तिहीन, राज्य के भंग होने और गढ़ने को तथा जीवन-मृत्यु के उत्थान-पतन को तुच्छ करता हुआ युगयुग में एक स्वर से चिरविरही की वाणी लेकर कह रहा है—"भूला नहीं हूँ, भूला नहीं हूँ, भूला नहीं हूँ प्रिये।"

(४०)

उर्वशी

नह माता, नह कन्या, नह वधू, सुन्दरी रूपसि,
हे नन्दनवासिनी ऊर्वशी !

गोष्ठे यबे सन्ध्या नामे श्रान्त देहे स्वर्णाञ्चल टानि,
तुमि कोनो गृह प्रान्ते नाहि ज्वाल सन्ध्यादीप खानि;
द्विधाय जड़ित पदे, कम्पबक्षे नम्र नेत्रपाते
स्मितहास्ये नाहि चल सलज्जित बासरशय्याते
स्तब्ध अर्धराते ।
ऊषार उदय सम अनवगुण्ठिता
तुमि अकुण्ठिता ।

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि बिकशि
कबे तुमि फुटिले ऊर्बशि !
आदिम बसन्त प्राते उठेछिले मन्थित सागरे,
डानहाते सुधापात्र, विषभाण्ड लये बाम करे
तरंगित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजंगेर मत
पड़ेछिल पदप्रान्ते उच्छ्वसित फणा लक्ष शत
करि अवनत ।

कुन्दशुभ्र नग्नकान्ति सुरेन्द्रबन्दिता
तुमि अनिन्दिता ।
कोनोकाले छिले नाकि मुकुलिका बालिका-बयसी
हे अनन्तयौवना ऊर्बशि !

आँधार पाथार तले कार घरे बसिया एकेला
माणिक मुकुता लये करे छिले शैशवेर खेला,
मणिदीप-दीप्त कक्षे समुद्रेर कल्लोल-सङ्गीते
अकलंक हास्यमुखे प्रवाले—पालङ्के घुमाइते
कार अङ्कटिते ?

यखनि जागिले विश्वे यौवने गठिता
पूर्ण प्रस्फुटिता ।

युगयुगान्तर हते तुमि शुधु विश्वेर प्रेयसी
हे अपूर्व शोभना ऊर्व्वशि !
मुनिगण ध्यान भाङि देय पदे तपस्यार फल,
तोमारि कटाक्षपाते त्रिभुवन यौवन चंचल
तोमार मदिर-गन्ध अन्धबायु बहे चारिभिते,
मधुमत्त भृङ्गसम मुग्ध करि फिरे लुब्धचिते
उद्दाम संगीते ।
नूपुर गुंजरि याओ आकुल-अंचला
बिद्युत-चंचला ।
सुरसभातले यबे नृत्य कर पुलके उल्लसि
हे विलोल-हिल्लोल ऊर्वशि !
छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धुमाझे तरंगेर दल,
शस्यशीर्षे शिहरिया काँपि उठे धरार अंचल,
तव स्तनहार हते नभस्थले खसि पड़े तारा,
अकस्मात पुरुषेर वक्षमाझे चित्त आत्महारा,
नाचे रक्तधारा
दिगन्ते मेखला तव टुटे आचम्बिते
अयि असम्वृते !
स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे ऊषसी,
हे भुवनमोहिनी ऊर्वशि ।
जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदिरक्ते आँका तव चरणशोणिमा,
मुक्त वेणी बिवसने, विकशित विश्व-बासनार
अरविन्द माझखाने पादपद्म रेखेछे तोमार
अति लघुभार ।

अखिल मानस स्वर्गे अनन्त रागिणी,
हे स्वप्नसंगिनी !
ओइ शुन दिशे दिशे तोमा लागि काँदिछे क्रन्दसी—
हे निष्ठुर बधिरा ऊर्बशि !
आदियुग पुरातन ए जगते फिरबे कि आर,—
अतल अकूल हते सिक्तकेशे उठिबे आबार ?
प्रथम से तनुखानि देखा दिबे प्रथम प्रभाते,
सर्व्वाङ्ग काँदिबे तव निखिलेर नयन आघाते
बारि बिन्दुपाते ।
अकस्मात महाम्बुधि अपूर्व्व संगीते
रवे तरंगिते ।
फिरिबे ना फिरबे ना—अस्त गेछे से गौरवशशी,
अस्ताचलवासिनी-उर्बशी ।
ताइ आजि धरातले बसन्तेर आनन्द-उच्छ्वासे
कार चिरबिरहेर दीर्घश्वास मिशे बहे आसे,
पूर्णिमा निशीथे यबे दशदिके परिपूर्ण हासि,
दूरस्मृति कोथा हते बाजाय व्याकुल-करा बाँशि,
झरे अश्रुराशि।
तबु आशा जेगे थाके प्राणेर क्रन्दने
अयि अबन्धने

"हे नन्दनवासिनी ! ऊर्बशी ! परम सुन्दरी तुम न माता हो, न कन्या, न बधू हो। जब सन्ध्या उतर आती है तब तुम सोने का आँचल ओढ़कर किसी घर में सन्ध्यादीप नहीं जलाती। हिचकते पैरों से, कम्पित हृदय से से, नम्र दृष्टि से ताकती हुई, मीठी मुस्कान के साथ लजाती हुई तुम स्तब्धरात्रि में कोहवर घर (पुष्पशय्या) में नहीं जाती हो। ऊषा के उदय के समान तुम बिना अवगुण्ठन के अकुण्ठित हो।

'आपसे आप विकसित होने वाले वृन्त-हीन पुष्प के समान तुम कब अस्फुटित हो उठी थी, उर्वशी ! आदिम बसन्त के प्रभात में मथे हुए सागर में दाहिने हाथ में सुधापात्र और बाँयें में विषभाण्ड लिए हुए तुम उदय हुई थी। लहराता हुआ महासागर मन्त्र-श्रान्त भुजंग की नाँईं लक्षशत उच्छ्वसित फणों को अवनत कर तुम्हारे पदतल में अवनत हो पड़ा था। कुन्द-जैसी शुभ्र कान्ति की नंगी तस्वीर, इन्द्र द्वारा वन्दित होने वाली, तुम अनिन्दित हो।

'हे अनन्तयौवना उर्वशी ! किसी काल में क्या तू भी अविकसित यौवना बालिका की अवस्था की थी ? अंधेरे पंखे के नीचे किसके घर में अकेली बैठी हुई माणिक मोती लेकर लड़कपन के खेल खेलती थी, मणिदीप से उजियाले घर में समुद्र के कल्लोल-संगीत द्वारा निष्कलुष हँसते हुए मुखड़े से मूँगों के पलंग पर किसकी गोद में सोती थी ? जब तुम विश्व में जगी थी, तुम्हारा यौवन पूर्णरूप से विकसित हो उठा था।

युगों से तुम विश्व की प्रेयसी रही हो। हे अपूर्वशोभना उर्वशी ! मुनिगण ध्यान तोड़कर तुम्हारे पैरों पर तपस्या का फल अर्पण कर देते हैं, तुम्हारे कटाक्ष से त्रिभुवन का यौवन चंचल हो जाता है, तुम्हारे मद की सुगन्ध को अन्धी हवा चारों ओर बहा ले जाती है, और लुभाये हुए चित्त को उद्दाम संगीत में मधुमत्त भँवरों की तरह मोहती चलती है। हे आकुल अंचला विद्युत-चंचला ! नूपुर को गुञ्जायमान करती हुई जाओ।

'हे विलोल-हिल्लोल उर्वशी ! देवताओं की सभा में जब तुम पुलकित और उल्लसित होकर नाचती हो तब छन्द-छन्द से सिन्धु के बीच में लहरें नाच उठती हैं; पृथ्वी के अञ्चल शस्य की फुनगी पर सिहर कर काँप उठते हैं; तुम्हारे स्तनभार से आकाशपटल पर तारे खिसक पड़ते हैं। अकस्मात् पुरुष के वक्षस्थल में चित्त अपने को खो बैठता है। और रक्तधारा नाचने लगती है। दिगन्त में तुम्हारी मेखला अचानक खुल जाती है। अरी असम्वृत्ता (जिसका वस्त्र सम्हला हुआ नहीं है) !

हे भुवनमोहिनी उर्वशी ! स्वर्ग के उदयाचल की तुम मूर्तिमती उषा हो, जगत् की अश्रु-धारा से धुली हुई तुम्हारी देह का पतलापन है। त्रिभुवन के हृदयरक्त से अंकित तुम्हारे चरणों की लाली है। हे मुक्त-केशी, वस्त्र-हीना, अखिल मानस स्वर्ग की अनन्त-रागिणी ! हे स्वप्नमयी ! विश्व-वासना के विकसित कमल पर तुम्हारे चरणकमलों का बहुत ही हलका भार धरा है।

'हे निष्ठुरा ! बहरी उर्वशी ! वह सुनो, दिशा-दिशा में तुम्हारे लिये रोने वाले रो रहे हैं। क्या इस जगत में वह आदि युग फिर लौटकर आवेगा ? अतल अकूल से क्या भीगे बाल लेकर तुम फिर निकलोगी ? पहले ही वह देह प्रथम प्रभात को नज़र आयेगी। तुम्हारा सर्वाङ्ग संसार के नयनों के आघात से और आँसू की बूँदों के गिरने से रो उठेगा। अचानक महासागर अपूर्व सङ्गीत से लहरा उठेगा।

वह न लौटेगी, न लौटेगी—वह गौरवचन्द्र डूब गया, उर्वशी अस्ता-चल-वासिनी हो गयी। इसीलिये पृथ्वीतल पर वसन्त के आनन्दोच्छ्-वास में किसी के चिरविरह का दीर्घश्वास मिला हुआ बहता आता है। पूर्णिमा के निशीथ में जब दशों दिशायें हँसी से परिपूर्ण रहती हैं, उस समय कहाँ से व्याकुल करने वाली बाँसुरी पुरानी स्मृति बजा देती है, आँसू झरने लगते हैं। अरी बन्धन-रहिता ! तब भी प्राणों के क्रन्दन में आशा जगी रहती है !'

आधुनिक कवि

द्विजेन्द्रलाल राय

द्विजेन्द्रलाल राय बंगाली-काव्य और नाट्य-जगत् के अमर जीवों में से एक हैं। इनका जन्म १८६४ ई० में कृष्णनगर के एक प्रतिभा-सम्पन्न उच्च कुल में हुआ था। बाल्यकाल ही में उन्होंने गान और पद्य-रचना की शक्ति का परिचय दिया था। इनका स्वास्थ्य बचपन में अच्छा नहीं था और कई बार ये कठिन रोगों से पीड़ित हो गये थे।

१८७८ में कृष्णनगर विद्यालय से इन्होंने प्रवेशिका-परीक्षा पास की। अपनी वाक्शक्ति और इंग्लिश भाषा में अद्भुत अधिकार के द्वारा आपने स्कूल के विद्यार्थी-जीवन ही में नाम प्राप्त कर लिया था। १८८४ ई० में कृष्णनगर कालेज से एफ० ए० की परीक्षा पास कर बी० ए० पढ़ने के लिये ये हुगली आए। एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कुछ दिनों के बाद ये छपरा ज़िले के रावेलगंज स्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर सुशोभित हुए। इसके कुछ ही महीनों के बाद इंग्लैंड में कृषि-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिये इनको राजकीय छात्र-वृत्ति मिली। लगभग तीन वर्ष तक इंग्लैंण्ड में रहकर ये एफ० आर० ए० एस०, एम० आर० ए० एस०, और एम० आर० एस० ए० ई० की उपाधियाँ प्राप्त कर देश लौट आये। इनके माता-पिता का देहान्त इनके घर लौटने के पूर्व ही हो चुका था। इसकी चोट इनके हृदय पर बहुत दिनों तक बनी रही।

द्विजेन्द्रलाल राय का गार्हस्थ जीवन उस समय से आरम्भ होता है जब ये डिपुटी-मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुए। १८८७ में इनका विवाह हुआ। तदुपरान्त ये कुछ दिनों तक कृषि-विभाग और लैंड-रेकार्ड्स के असिस्टैन्ट डाइरेक्टर और एक्साइज़ इन्सपेक्टर के पद पर रहे। इन पदों पर रहने से इनको बहुत भ्रमण करना पड़ता था। गया और मुँगेर में भी ये कुछ समय तक रहे थे।

१९०३ में इनकी स्त्री का देहावसान हो गया। इस वियोग का दुःख जीवन भर इनके हृदय पर बना रहा। स्त्री-वियोग से ये इतना विह्वल हुए कि इनको छुट्टी के लिये दरख़्वास्त देनी पड़ी थी; लेकिन छुट्टी नहीं मिली। इस पर एक्साइज़ विभाग को छोड़कर इन्होंने फिर डिपुटी-मजिस्ट्रेट के पद को ग्रहण किया और कलकत्ते में रहने लगे।

इस समय इनके बन्धु-बान्धवों ने दूसरी शादी करने के लिये बहुत आग्रह किया; लेकिन ये अपने व्रत से नहीं डिगे। एक बार एक मित्र के पूछने पर कि आपके भावी जीवन का उद्देश्य क्या है? इन्होंने कहा—'साहित्य-सेवा'। और यथार्थतः मृत्यु पर्यन्त आप साहित्य-सेवा ही में लगे रहे।

जब ये कलकत्ते में रहते थे तो इन्होंने 'पूर्णिमा-मिलन' नामक साहित्य-परिषद् स्थापित किया था। इसकी बैठक प्रत्येक पौर्णमासी को होती थी। इसी समय स्वदेशी आन्दोलन ख़ूब जोरों से उठा। द्विजेन्द्र बाबू भी इस आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए; लेकिन क्रियात्मक रूप से ये इसमें भाग नहीं ले सके। इस आन्दोलन से प्रेरित होकर इन्होंने बहुत से गान बनाये थे, लेकिन बाद को उन्हें नष्ट कर डाला। सम्भवतः वे गान इनके अमर गान 'जन्मभूमि' और 'आमार देश' से कम नहीं थे।

कुछ दिनों के बाद आप कलकत्ते से खुलना भेज दिये गये और तब से बराबर भिन्न-भिन्न स्थानों में इनको बदली होती रही। इनके स्वास्थ्य पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और इन्होंने छुट्टी के लिये दरख़्वास्त दो। लेकिन छुट्टी मंजूर करने के बदले ये गया भेज दिये गये। आपका स्वास्थ्य पहले ही से खराब हो चला था, गया में रहने से स्वास्थ्य दिनोंदिन बिगड़ता ही गया। यह सब कुछ होते हुए भी गया में इनको सर जगदीश, लोकन पण्डित जैसे व्यक्तियों से परिचित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। गया ही में इनके अमर गान 'आमार देश', 'मेवार पहाड़' 'भेंड़े गेछे मोर स्वप्नेर घोर' रचे गये थे।

गया में ये तीन वर्ष तक रहे। उसके बाद आपने डेढ़ वर्ष की छुट्टी ली। गया में ये बहुत लोकप्रिय थे, इनके स्मारक-स्वरूप आपके नाम की 'द्विजेन्द्र लाल राय लाइब्रेरी' की स्थापना की गई थी।

इसके बाद ये कलकत्ता चले आये और अपनी मृत पत्नी सुर-बाला के नाम पर 'सुरधाम' नामक महल बनवाया। इनके कलकत्ता लौटने पर इनके मित्रगण फिर इकट्ठे होने लगे और साहित्यिक मजलिस जमने लगी। फिर सब मित्रों से मिलन हुआ, लेकिन खेद की बात है कि जीवनपर्य्यन्त इनके और श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टैगोर के बीच मनोमालिन्य बना ही रहा। यह इस प्रकार हुआ—एक बार इन्होंने रवीन्द्र बाबू की रचनाओं में कुछ दोष निर्देश किया। इस पर रवीन्द्र बाबू के मित्रों ने उनको इनके विरुद्ध उत्तेजित किया। यह मनमुटाव सर्वदा के लिये ही बनी रही।

यह समय इनकी प्रतिभा के चरमोत्कर्ष का समय था। इसी समय में आपके प्रसिद्ध नाटक लिखे गये थे। उनके सिवा इन्होंने कितने ही लेख, गान और कवितायें रचीं।

इनके प्रधान ग्रन्थ ये हैं:—

(१) आर्य्य-गाथा, (२) प्रायश्चित्त, (३) हासिरगान, (४) आषाढ़े, (५) पाषाणी, (६) सीता, (७) ताराबाई, (८) प्रतापसिंह, (९) दुर्गादास, (१०) मेवाड़-पतन, (११) शाहजहाँ, (१२) भीष्म, (१३) चन्द्रगुप्त, (१४) सिंहलविजय, (१५) परपारे, (१६) बंगनारी।

इन्होंने कुछ प्रहसन और 'Lyrics of Ind' इंग्लिश भाषा में भी लिखे थे।

बंगीय-साहित्य-परिषद् के उद्घाटन के अवसर पर इनसे एक गान लिखने का अनुरोध किया गया था। लोक प्रसिद्ध गान 'आजि गो तोमर चरणे जननी आनिया अर्घ्य करि नमा-दान' इस अनुरोध का फल था।

प्रमुख बंगाली-मासिक-पत्र 'भारतवर्ष' की स्थापना आप ने ही की थी; किन्तु अभाग्यवश इस पत्र के प्रथम अंक के प्रकाशित होने के पहले ही इनका देहावसान हो गया। "ये दिन सुनल जलधि हइते उठिले

जननि भारतवर्ष" नामक गान इस पत्र के प्रथम अंक के लिये ही रचा गया था।

हाँ, तो छुट्टी समाप्त होने पर ये चौबीस परगना भेज दिये गये। इस प्रकार लगातार ये चार वर्षों तक कलकत्ते में रहे। तदनन्तर इनकी बदली बाँकुड़ा को हुई और वहाँ से फिर मुंगेर को। लेकिन इनके स्वास्थ्य की हालत बड़ी खराब हो चली थी, इस कारण मेडिकल सार्टिफ़िकेट पेश कर ये नौकरी से अलग हो गये; परन्तु डाक्टरों की सलाह पर कुछ ध्यान न देकर आप साहित्यिक एवं सामाजिक कार्य्य में अन्त तक लगे रहे। इनकी मृत्यु १७ मई १९१३ ईस्वी को कलकत्ते में हुई।

ये प्रहसन-लेखक, नाटककार एवं प्रतिभाशाली कवि थे। इनकी कविता में ओज, तेज और गम्भीर स्वर-माधुरी है। इनके देशभक्ति के और हास्यरस के गान बहुत ही लोक-प्रिय हैं।

इनके कुछ पद्य यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१)

सोनार स्वप्न

से गेछे, आमार मर्म्मपटे छायार मतन भेसे,
से गेछे, आमार हृदय-तटे ढेउयेर मत एसे,
तारे नयन भरे देखेछिलाम,
प्राणेर भितर रेखेछिलाम
रक्त दिये घिरे—

घुमेर सिंहासने बसियेछिलाम सोनार स्वप्नटिरे।
यखन मग्न आछि सुखेर नीड़े स्वप्न गेल टुटे;
हठात बीणार तारटि छिँड़े गेल आर्त्तनादे उठे।

एखन सन्ध्यार गभीर गाने,
बीणार स्वरे, कविर ताने
चेये निरवधि—
सेइ स्वप्न आमार-युगेर घुमे एकवार आसे यदि ।

"वह मेरे कलेजे से छाया की तरह निकल गया । हृदय में प्रहार की तरह आकर चला गया । मैंने अपनी आँखों से देखा था । अन्तस्तल में रक्त से घेरकर रक्खा था । स्वप्न के सिंहासन पर मैंने उसे बैठाया था । जब मैं सुख की गोद में मग्न थी, एकाएक नींद टूटी । वीणा के तार झनझना उठे । इस समय सन्ध्या के गंभीर में गान, वोणा के स्वर में, कविता की तान में, बराबर उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ । इसी आशा से कि वह स्वप्न एक बार फिर लौट आये ।"

(२)

अभिमान

हासिर तुफान तुले दिते पारे से,
फोटाये हृदे कुसुम शत शत;
नेमे आसे अश्रुवृष्टि-धारे से,
गर्ज्जे कभु वज्रध्वनिर मत;
रविर आलो मेघेर अङ्गे खेलाये,
मेघेर कोले इन्द्रधनु साजाय;
असिखानि समीवृक्षे हेलाये,
उदास प्राणे मुरलीटि बाजाय
आर त कै से मुरलीटि बाजे ना !
एमनि कि ! किसेर दुःख हेन !
आर त सन्ध्या तेमन करे साजे ना !
ताहार से दोष; आमार दुःख केन !

आमार से कै त भालबासे ना,
आमार उपर किसेर ताहार दावी !
से त—कै से आमार जन्य आसे ना,
आमि केन ताहार जन्य भाबि !
—ना ना—तबु बहुदिनेर बासना,
बहुदिनेर स्मृति जेगे आछे;
—ओ गो तुमि केन आमार आस ना,
एस तुमि, एस आमार काछे !
बड़ रोषे बड़ अभिमाने गो,
हयेछे क्षणिक छाड़ाछाड़ि;
सकल व्यथा गेले गेछे प्राणे गो
एस आमार—एस तोमार बाड़ि ।
हासिब तुफान आबार देओ गो उठाये,
अश्रुजले भासिये देओ गो गुखी !
आबार कुसुम प्राणे दाओ गो फुटाये,
आवार तोमार गभीर शुबि ।
अरुणवर्ण मेघेर सङ्गे मिशाये,
खेलाओ आबार इन्द्रधनु हासि ।
छेदि' आमार गभीर अमानिशा ए
—एस, आबार बाजाओ तोमार बाँशि ।

"वह हँसी की आँधी उठा सकता है । हृदय की कली खिला सकता है । वह अश्रुधारा बहा सकता है । बज्र के समान कठोर ध्वनि कर सकता है । मेघ के ऊपर सूर्य्य की किरणों को खेलाकर मेघ की गोद में इन्द्रधनुष सजाता है । वह शमी वृक्ष को डुलाता, उदास प्राणों में मुरली की टेर लगाता है । अगर अब उस तरह मुरली की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती तो मेरा क्या

शोष ? अब तो सन्ध्या में वह सजावट नहीं, मुझ में उसका अनुराग नहीं, वह मेरे लिये नहीं आता, तो मेरा क्या बिगड़ता है ? मगर नहीं, मेरी वासना तो पुरानी है। इसलिये आओ, मेरे समीप आओ। अभिमान और रोष में कुछ देर की छेड़ा-छाड़ी भी हुई है। मेरा घर तो तुम्हारा है। आओ, आओ, फिर आकर हँसी का तूफ़ान उठाओ, आँसू की धारा बहा दो, जीवन की कली खिला दो, फिर भी विषाद की घटा में हास्य का इन्द्रधनुष उदित कर दो, मेरे जीवन की अमावस्या की रात्रि भेदकर अपनी वंशी की टेर सुना दो।''

(२)

आमार देश

धन धान्य पुष्प-भरा आमादेर एइ वसुन्धरा;
ताहार माझे आछे देश एक—सकल देशेर सेराः—
ओ से, स्वप्न दिये तैरी से देश, स्मृति दिये घेरा,
एमन देशटी कोथाय खुँजे पावे नाक तुमि
सकल देशेर रानी से ये—आमार जन्मभूमि
चन्द्र-सूर्य-ग्रह-तारा, कोथाय उजल एमन धारा !
कोथाय एमन खले तड़ित एमन कालो मेघे !
तार पाखीर डाके घुमिये उठि, पाखीर डाके जेगे;
एत स्निग्ध नदी काहार, कोथाय एमन धूम्र पाहाड़ !
कोथाय एमन हरित् क्षेत्र आकाश तले मिशे !
एमन धानेर उपर ढेउ खेले जाय बातास काहार देशे !

एमन······

पुष्पे पुष्पे भरा शाखी; कुञ्जे कुञ्जे गाहे पाखी;
गुंजरिया आसे अलि पुंजे पुंजे धेये—
तारा, फुलेर उपर घुमिये पड़े फुलेर मधु खेये;

एमन······

भायेर भायेर एत स्नेह कोथाय गेले पावे केह !
ओमा तोमार चरण दूती बक्षे आमार धरि'
आमार एइ देशेते जन्म—येन एइ देशेते मरि—

एमन······

"धन-धान्य से भरी हमारी यह पृथ्वी है। उसी में सब देशों का सिरताज हमारा देश है। वह स्वप्न से बना हुआ और स्मृति से घिरा हुआ है। संसार में आख़िर ऐसा देश कहाँ मिलेगा? और कहाँ ऐसे उज्ज्वल चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे हैं? मेघ में ऐसी बिजली कहाँ खेलती है? कहाँ चिड़ियाँ अपने मधुर स्वर से लोगों को सुलाती और जगाती भी हैं? ऐसी स्निग्ध नदियाँ, ऐसे ऊँचे पहाड़, लहलहाते खेत और कहाँ हैं? कहाँ हरे धान के ऊपर हवा इस तरह अठखेलियाँ करती है। कहाँ फूल से भरे पौधों के ऊपर इस तरह भौंरे गुञ्जार करते हैं और उसीमें सोते हैं। माँ और भाई का ऐसा प्रेम कहाँ है? हे माता, मेरी कामना है कि तुम्हारे चरण अपनी छाती पर रख लूँ। जिस तरह यहाँ मेरा जन्म हुआ है, उसी तरह यहीं मरूँ भी।"

(४)

समुद्र के प्रति

तुमि गर्व्वी, तुमि अन्ध; तुमि वीर्य्य-मत्त; तुमि भीम;
किन्तु तुमि शान्त; प्रेमी; तुमि स्निग्ध; निर्म्मल; असीम;
अगाध; अस्थिर प्रेमे आसो तुमि बक्षे धरणीर,
बिपुल उच्छ्वासे, मत्त वेगे, दैत्य सम तुमि वीर।
चाह बक्षे चापिते ताहारे घन गाढ़ आलिङ्गने;
बुझ ना से क्षीण एहा ओ तो प्रेम साहिबे केमने।
किंवा तुमि बुझि कोनो योगिवर, दूरे एकमना
बिपुल ब्रह्माण्डे; कोनो महायोग करिछो साधना;

धरो तप विशाल हृदये आकाशेर गाढ़तम
घननील छाया राशि योगिचित्ते मोक्ष आशा सम;
कभु तुमि ध्यान रत, मुद्रित नयन, स्थिर, प्रभु!
समुत्थित मुखे तव मेघ चन्द्रे वेदगान कभु।
दाउ अकातरे निज पुण्य-राशि याहा बाष्पाकारे,
प्रार्थनाय, उठि नीलाकाशे, पुनः पड़े शतधारे,
देवतार वरसम, प्लावि' नदनदी ह्रद-हृदि,
जागाइया बसुधार शस्य पुष्प राजत्व, बारिधि!
तुमि कभु वज्रभाषी, तुमि कभु शान्त, मौन, स्थिर,
अतल; अपरिमेय; दिव्य; सौम्य; उदार; गम्भीर!
कल्लोलिया जाउ सिन्धु! चूर्ण कर क्षुद्रतार दम्भ;
धौत कर पदप्रान्तेर भूधरेर महत्त्वेर स्तम्भ;
सृष्टिर से प्रेमान्ध सङ्गीत तुमि युगे युगे गाउ;
याउ चिरकाल समभावे, वीर, कल्लोलिया याउ।

"तुम में अभिमान है; तुम अन्धे, वीर्य्यवान, भयङ्कर हो; पर साथ ही साथ शान्त, निर्म्मल और असीम हो। तुम मानो विशाल तरङ्गों से पृथ्वी को प्रेम से आलिङ्गन करना चाहते हो। परन्तु यह नहीं सोचते हो कि कहाँ तुम विशाल हो और वह क्षीण है! नहीं, नहीं, शायद तुम कोई पहुँचे हुये सिद्ध हो; मोक्ष की आशा से आकाश की काली घनी मेघ छाया को तपस्या के समान अपने हृदय में धारण किये हुये हो। कभी तुम ध्यानरत रहते हो; आँखें बन्द किये रहते हो और कभी मुख उठाकर ऊँचे स्वर से मानो वेद-गान करते हो।

तुम्हारा ही जल वाष्प-रूप से ऊपर उठकर फिर सैकड़ों धाराओं में बरसता है। देवता के पवित्र वर के समान वह पृथ्वी को हरे फूल-पौधों से परिपूर्ण करता तथा नदो और झीलों को जलमय करता है।

तुम कभी वज्रभाषी हो जाते हो, कभी शान्त, मौन और स्थिर हो जाते हो। तुम अगाध, अपरिमेय, दिव्य, उदार, और सुन्दर हो।

हे सिन्धु, तुम अपने कल्लोल से क्षुद्रता का नाश करो। पहाड़ों के निम्न चट्टानों को धोकर परिष्कृत करो। तुम युग-युग में सृष्टि के अनुरागमय सङ्गीत को अपनी ध्वनि से गा-गाकर दुनिया को सुनाओ।"

(९)

आहा —
यदि कोनो मन्त्र बले सुन्दर धरणी
हइत आबद्ध एक स्वरे;
यदि अप्सरार सम्मिलित गीत ध्वनि
ह'त सत्य; नैश नीलाम्बरे
प्रत्येक नक्षत्र यदि प्राणोन्मादी सुर
हइत ; अथवा यदि हेम
सन्ध्याकाश अकस्मात् एकटि दिगन्तव्यापी हइत झङ्कार
हइत आश्चर्य्य ताहा ;
किन्तु हइत ना अर्द्धेक मधुरस सङ्गीत तार,
येमति मधुर
स्वप्नमय कुहुमय "प्रेम"

"यदि किसी मन्त्र के प्रभाव से सारी पृथ्वी एक स्वर में आबद्ध होती, अप्सराओं की सम्मिलित गीत-ध्वनि सत्य होती, रात्रि के आकाश का प्रत्येक नक्षत्र एक पागल कर देनेवाला सुर होता, सुनहली सन्ध्या से सारी दिशाओं में फैलने वाली झंकार निकलती, तो उससे अचरज होता। लेकिन उस गीत-ध्वनि में उसकी आधी मधुरता भी नहीं, जो मधुरता स्वप्नमय प्रेम में मिलती है।"

(६)

पतितोद्धारिणि गंगे !
श्यामविटपिघन तट विप्लाविनी, धूसर तरंग भंगे !
कत नग नगरी तीर्थ हइल तव चुम्बि चरण-युग माई,
कत नरनारी धन्य हइल मा तव सलिले अवगाहि,
बहिछ जननी ए भारतवर्ष—कत शत युग युग बाह,
करि सुश्यामल कत मरु-प्रान्तर शीतल पुण्य-तरंगे ।
अम्बर हइते सम शतधार ज्योतिः प्रपात तिमिरे,
नामि' धराय हिमाचलमूले–मिशिले सागर संगे ।
बरिष शांति मम शंकित प्राणे, बरिष अमृत मम अंगे ।
मा भागीरथि । जाह्नवी ! सुरधुनि ! कलकल्लोलिनि गंगे !

"गंगे, तुम पतितों का उद्धार करनेवाली हो ! काले वृक्षों से आच्छादित तटों का तुम प्लावन करती हो । हे, तरंगों की चोट से धूसर गंगे ! माँ, तुम्हारे चरणों को चूमकर (अर्थात् तेरे किनारे पर होने के कारण) कितने ही नगर तीर्थ-स्थान हो गए ! तुम्हारे जल में स्नान कर कितने ही लोग धन्य हुए ! माँ, अपनी पवित्र और शीतल तरंगों से बहुतेरे मरुप्रदेशों को श्यामल करती हुई तुम न जाने कितने युगों से इस भारत-भूमि पर बह रही हो । आकाश में शतधार की तरह, अंधकार में प्रकाश-स्रोत की तरह, हिमालय के नीचे तुम उतरी और सागर के साथ मिली । माँ, जब संसार के सब दुःखों को छोड़कर अंतिम शय्या (चिता) पर शयित हो जाऊँ तो तुम मेरे शंका-पूर्ण हृदय में शांति बरसाना, अंगों में अमृत बरसाना । हे भागीरथी, जाह्नवी, देवि ! हे सुरों की खान, हे कलकल्लोलिनी गंगे !"

चित्तरञ्जनदास

बँगालियों की एक जाति का नाम वैद्य-जाति है। यह ब्राह्मण और कायस्थों के बीच की जाति समझी जाती है। इसी जाति में चित्तरञ्जनदास का जन्म ५ नवम्बर सन् १८७० ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीभुवनमोहनदास और माता का नाम श्रीमती निस्तारिणी देवी था।

बालक चित्तरञ्जन की शिक्षा भवानीपुर (कलकत्ता) महल्ले के मिशनरी स्कूल में आरम्भ हुई। यहीं इन्होंने इन्ट्रेन्स पास किया। बाद को प्रेसिडेन्सी कॉलेज में भरती हुए और इसी कॉलेजे से किसी तरह इन्होंने बी० ए० पास किया। छात्रावस्था में ये अच्छे विद्यार्थी नहीं थे। कोर्स की किताबों को पढ़ने के बदले ये कोर्स से बाहर की किताबें पढ़ा करते थे। तर्क-वितर्क में इन्हें बड़ा आनन्द आता था। फैशन के भी ये पक्के गुलाम थे। लोग इन्हें फैशनेबुल जेन्टिल मैन कहा करते थे। इस समय बैरिस्टरी करने की इनकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। इस पेशे को ये बुरा समझते थे।

बी० ए० पास करने के बाद ये विलायत गये। समुद्र के वक्षस्थल पर यात्रा करते समय इनके हृदय में बहुतेरे सुन्दर भाव उत्पन्न हुए। इन भावों को इन्होंने छन्दों में बाँधना चाहा। फल-स्वरूप बहुत-सी कवितायें इन्होंने जहाज़ पर रच डालीं। ये कवितायें "सागर संगीत" के नाम से प्रकाशित हुईं। इस पुस्तक का बड़ा आदर हुआ। इसी से इनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा का आरम्भ हो गया।

विलायत-प्रवास के समय इन्होंने स्व० दादाभाई नौरोजी की बड़ी सहायता की। दादाभाई पार्लिमेंट के सदस्य होना चाहते थे। चित्तरञ्जनदास ने उनकी ओर से जगह-जगह पर व्याख्यान दिये। इन

व्याख्यानों के तैयार करने में चित्तरञ्जनदास को बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। और उन्होंने यह परिश्रम सानन्द किया।

स्वदेश लौटकर सन् १८९४ ई० से इन्होंने कलकत्ते में बैरिस्टरी शुरू कर दी। पहले-पहल इनको इस पेशे में सफलता नहीं मिली। इनके पिता बहुत ऋणी थे और आमदनी कुछ भी नहीं थी। परन्तु इससे चित्तरञ्जन तनिक भी विचलित नहीं हुए। धैर्य्य का साथ नहीं छोड़ा।

१८९७ में इन्होंने श्री वसन्तीदेवी का पाणि-ग्रहण किया।

१९०९ में अलीपुर के बम वाले मुक़दमे की पैरवी इन्होंने मुफ़्त की। इसी मुक़दमे के बन्दी अरविन्द घोष थे। बन्दी रिहा हुए। बैरिष्टर चित्तरञ्जन का नाम हुआ। ऐसा हुआ कि कुछ ही दिनों बाद महीने में इनकी आमदनी बीस, तीस हजार हो जाती थी।

१९२१ में इन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। इसके बाद उनकी जीवनी जातीय सम्पत्ति हो जाती है। उन्होंने कवि का हृदय पाया था। राजाओं की तरह दान देते थे। ये सचमुच एक महापुरुष थे।

इनके सम्बन्ध में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्होंने साहित्य-सेवा कभी नहीं छोड़ी। वर्षों तक "नारायण" नामक मासिक-पत्र का सम्पादन करते रहे। असहयोग आन्दोलन के समय भी 'फ़ार्वर्ड' नामक अँग्रेज़ी पत्र का सम्पादन-भार अपने ऊपर ही लिया और उसे अपूर्व योग्यता के साथ निबाहा।

इनकी कविताओं के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं:—

स्वर्ग का स्वप्न

हे सुन्दरि! सेइ दिन बसन्त प्रभाते
मन-प्राण-अन्ध-करा सुबासित राते

झलसिले आँखि मोर परशिले मन !
अवाक अन्तर तोमा करिल बरन !—
भालो करे देखे नाइ, करेनि जिज्ञासा
प्रेमातुर प्राणे, दिया सर्व्व भालवासा,
सेइ दिन, सर्व्व काजे चित्त आनमना,
करेछे करेछे शुधु तोमारि अर्च्चना ।
आर सेइ, सेइ दिन बसन्त बातास,
आपन आवेगे पूर्ण निशीथ आकाश
चन्द्रालोके आलोकित सकल भुवन,
स्वप्नालोके आलोकित आमार ए मन—
अर्द्ध-निमीलित नेत्रे मने ह'ल मोर
स्वर्ग-हते नेमे एले ! जगतेर घोर
ढाकिले स्वर्गेर करे ! गरबी पराण
करिल पूजार लागि पुष्प-अर्घ दान !
सब मने नाइ, शुधु मने आछे मोर,
उज्वल अधर तव अवाक विभोर
चरणे परशि येन अजानित देश !—
नूतन राज्येर माझे आश्चर्य्य अशेष
रहस्य मधुर हासि ! कौतुके अपार
परिपूर्ण दुइ नेत्र ! प्रति पत्रे तार
विस्तारित स्वर्ग-छाया स्वरगेर सुख !
नितान्तइ स्वरगेर भाविनु से मुख !
तारपर गेछे दिवा गेछे निशा कत ।
गियाछे स्वपन प्राय आशा शतशत—
प्रभातेर मुक्त वायु, श्रान्त रजनीर
अलस अञ्चल-गन्ध सुरभि समीर,

ए मोर पराण परे ! सुखे दुखे शोके,
परिम्लान धरणी मलिन आलोके,
सम्पूर्ण आँधारे कभु, ए मोर जीवन
कत दीर्घ दिवानिशि करेछे यापन !
हे मोर प्रभात-पुष्प, हे अपरिचिता !
हे आमार यौवनेर पूर्ण प्रस्फुटिता !
हे मोर मानस स्वर्ग ! हे स्वप्न अञ्चला !
हे आनन्द निखिलेर ! हे शान्त रङ्गिणि !
हे आमार यौवनेर स्वपन-सङ्गिनी !
हे आमार आपनार ! हे आमार पर !
हे बाहिरेर ! हे मोर अन्तर—
हे आमार—हे आमार चिर-मर्म्ममय !
आज पाइयाछि तव सत्य परिचय !
आछिले गोपने मोर मन-अन्तःपुरे
आमारि वासना, आमारि पञ्जर जुड़े !
येमनि बाजानु बाँशि सलाज चरणे—
बाहिरिले-दाँड़ाइले-अपूर्व्व चरणे,
चरणे प्रस्फुट पुष्प, मस्तके गगन !
आमि अन्ध देखे छिनु स्वर्गेर स्वपन !

"हे सुन्दरी ! उस दिन बसन्त के प्रभात में, हृदय और प्राण को अन्धा करनेवाली सुवासमय रात्रि में, तुमने मेरी आँखें चमत्कृत कर दीं, मेरे हृदय को स्पर्श किया। मेरे नीरव अन्तःकरण ने तुम्हें वरण किया। प्रेम-विह्वल प्राण ने तुम्हें भलीभाँति देखा भी नहीं, कोई जिज्ञासा भी न की। उसी दिन सारा प्रेम तुम्हें देकर सब कामों में अन्यमनस्क हो, मेरे प्राण ने केवल तुम्हारी अर्चना की है। तुम्हारी

पूजा की है। और उस दिन बसन्त की वायु, अपने ही आवेग से पूर्ण निशीथ-कालीन आकाश, चन्द्रालोक से आलोकित सारा भूभाग, स्वप्नालोक से आलोकित मेरा यह मन! अर्ध-निमीलित नेत्रों से मुझे जान पड़ा कि मानो तुम स्वर्ग से उतर आई हो। पृथ्वी के छोर को मानो स्वर्ग की किरणों से आवृत्त कर डाला। मेरे अभिमानी प्राण ने पूजा के लिये मानो फूलों का अर्घ्य दान किया। सब तो याद नहीं, मुझे केवल तुम्हारा नीरव, विभोर, उज्ज्वल अधर याद है। जान पड़ता था, चरणों ने किसी अज्ञात प्रदेश का स्पर्श किया। मानो नये राज्य में अनन्त आश्चर्य! रहस्य-मधुर मुसुकान! अमित कौतूहल से लबालब दोनों नेत्र! उसके प्रत्येक पत्र में मानो स्वर्ग की छाया, स्वर्ग का सुख विस्तारित हो रहा है। उस सुख को नितान्त स्वर्गीय समझा था। उसके बाद कितने दिन बीते, कितनी रातें गईं। शत-शत स्वप्न-प्राय आशायें बीतीं। मेरे प्राणों के ऊपर कितनी प्रभात की मुक्त वायु, श्रान्त रजनी के अलस अञ्चल के गन्ध से सौरभमय कितने ही समीर चले गये। मेरे इस जीवन ने सुख में, दुख में और शोक में, परिम्लान पृथ्वी पर, मलिन आलोक में, कभी-कभी सम्पूर्ण अन्धकार में भी कितने लम्बे दिन-रात बिता डाले। हे मेरे प्रभात के कुसुम, हे अपरिचित, हे मेरे यौवन की पूर्ण-प्रस्फुटिता, हे मेरे हृदय-स्वर्ग, हे स्वप्न अञ्चला, हे निखिल के आनन्द, हे शान्त-रंगिणि, हे मेरे यौवन के स्वप्नों की रागिनी, हे मेरी आत्मीया, हे मेरी परकीया, हे बाहर की, हे मेरा अन्तर, हे मेरी, हे मेरी चिर मर्ममय, मैंने आज तुम्हारा सच्चा परिचय पाया है। हे मेरी वासना, तुम मेरे मन के अन्तःपुर में छिपी थी, मेरे पञ्जर से लग्न थी। ज्यों ही मैंने बाँसुरी बजाई, सलज्ज चरणों से तुम बाहर आईं, अपूर्व रूप में आ खड़ी हुई। चरणों पर फूल खिले थे, शिर पर आकाश था। मैं अन्ध, स्वर्ग का स्वप्न देख रहा था।"

प्रेम सत्य

ज्ञान-चक्षु दिये
तोमारे देखिनि प्रिये !
तोमारे देखेछि शुधु—
हृदि-नेत्र दिये !
ताइ मोर एत भालबासा !
विचार। करिने, तुमि
शुभ्र कि काल,
विचार करिने, तुमि
मन्द कि भाल !
काननेर पुष्प सम
ओ गो पुष्प मम !
ये मुहूर्त्ते देखियाछि
बासियाछि भाल
ताइ मोर, एत भालबासा।
अनन्त सरल नित्य
सत्य ये प्रकार
एकबारे मन प्राण
करे अधिकार—
तुमि ओ तेमनि करे
मन प्राण भोरे
तव प्रेम सत्य राज्य
करेछे बिस्तार,
ताइ एत, मोर भालबासा !

ज्ञान-चक्षु दिये
तोमारे देखिनि प्रिये !
तोमारे देखेछि शुधु—
हृदि-नेत्र दिये !
ताइ मोर, एत भालबासा !

"प्रिये ! मैंने तुम्हें ज्ञाननेत्र से नहीं देखा। तुम्हें केवल हृदय के नेत्रों ही से देखा है। यही कारण है कि मेरा प्रेम इतना गंभीर है। मैंने कभी सोचा भी नहीं कि तुम गोरी या काली हो। मैंने कभी सोचा भी नहीं कि तुम भली अथवा बुरी हो। ओ मेरे पुष्प ! वन-कुसुम की नाईं जिसी क्षण मैंने तुम्हें देखा, उसी क्षण से तुम्हें प्यार करने लगा। यही कारण है कि मेरा प्रेम इतना गंभीर है। जिस प्रकार अनन्त, सरल एवं नित्य सत्य एकाएक हृदय और प्राण पर अधिकार कर लेता है, उसी प्रकार तुमने भी हृदय और प्राण को पूर्णकर सत्य प्रेम से राज्य-विस्तार कर लिया। यही कारण है कि मेरा प्रेम इतना गंभीर है। प्रिये ! मैंने तुम्हें ज्ञान-चक्षु से कभी नहीं देखा। तुम्हें तो केवल हृदय ही के नेत्रों से देखा। यही कारण है कि मेरा प्रेम इतना गंभीर है।"

रजनीकान्त सेन

रजनीकान्त का जन्म सन् १८६५ ई० में, सिराजगंज ज़िले के भाँगाबाड़ी नामक ग्राम में हुआ था। बाल्यावस्था में इनका शरीर पुष्ट और ख़ूब सुन्दर था।

१८८२ में इन्ट्रेन्स-परीक्षा में इनको १०) रु० मासिक की छात्रवृत्ति मिली। १८८८ में बी० ए० और १८९१ में बी० एल० परीक्षा में ये सफल हुये। इसके बाद ही सारे परिवार के भरण-पोषण का भार इनके ऊपर आ पड़ा। फिर भी इनकी संगीत-चर्चा क़ायम रही; कविता लिखना बन्द न हुआ।

पहले-पहल इनकी रचना "उत्साह" नाम की एक मासिक पत्रिका में निकली। इन्होंने स्वयं अपने रचे हुए गानों को कई स्थानों में गाया। फिर तो शीघ्र ही इनके सुकंठ की ख्याति चारोंओर फैली और ये "कलकंठ-कोकिल" के नाम से विख्यात हुए।

१९०२ में इनकी पहली पुस्तक "वाणी" प्रकाशित हुई। १९०६ में इनकी दूसरी पुस्तक "कल्याणी" निकली।

स्वदेशी आन्दोलन के युग में इन्होंने कई सुन्दर गान लिखे थे। उन गानों में से एक तो आज तक भी ख़ूब प्रसिद्ध है।

इस गान की प्रथम पंक्ति यह है:—

"मायेर देवा मोटा कापड़ माथाय तुलेने रे भाइ।"

अर्थात्—भाई, माँ का दिया हुआ मोटा कपड़ा भी आदर के साथ पहन लो।

इस गीत ने रजनीकान्त को बंग-माता का एक प्यारा कवि बना दिया। इनकी कीर्त्ति ख़ूब फैली। लेकिन उसी समय इनके गले में कैन्सर नामक सांघातिक रोग होगया। यह बात १९१० की है। डाक्टरों ने इनके कंठ की नली को बाहर निकालकर उसकी जगह एक कृत्रिम नली

बिठाया। इसका भी फल कुछ न हुआ। एक वर्ष के अन्दर ही कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में इनकी मृत्यु हो गई।

अस्पताल में इनके दिन असीम यंत्रणा ही में व्यतीत हुये थे। इन्होंने अपनी यंत्रणा का भी अमृत के रूप में पान किया था। रोगी होते हुए भी इन्होंने अस्पताल ही में "अमृत", "आनन्दमयी" और "अभया" ये तीन काव्य-ग्रंथ लिखे।

ईश्वर में इनकी श्रद्धा सदा एक-सी बनी रही। यह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है। ये पंक्तियाँ रुग्णावस्था ही में लिखी गई थीं।

आमाय सकल रकमे काङाल करेछ
गर्ब करिते चूर,
यशः ओ अर्थ, मान ओ स्वास्थ्य,
सकलि करेछ दूर।
ए गुलो सब मायामय रूपे,
फेलेछिल मोरे अहमिका-कूपे,
ताइ सब बाधा सराये दयाल
करेछे दीन आतुर;
आमाय सकल रकमे काङाल करिया
गर्ब करिते चूर।

इनकी कविताओं के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं:—

(१)

तुमि, निर्म्मल कर, मङ्गल-करे
मलिन मर्म्म मुछाये;
तव, पुण्यकिरण दिये याक्, मोर
मोह-कालिमा घुचाये।

लक्ष्य-शून्य लच वासना
छुटिछे गभीर आँधारे,
जानिना कखन डुबे यात्रे कोन्
अकुल गरल पाथारे!
प्रभु, विश्व-विपद्-हन्ता
तुमि, दाँड़ाओ रुधिया पन्था,
तव श्रीचरण-तले निये एस, मोर
मत्त वासना गुछाये।
आछ, अनल-अनिले, चिरनभोनीले,
भूधर-सलिले, गहने,
आछ, विटपि-लताय, जलदेर गाय,
शशि तारकाय तपने,
आमि नयने बसन बाँधिया,
ब'से, आँधारे मरिगो काँदिया;
आमि देखि नाइ किछु, बुझि नाइ किछु,
दाओ हे देखाये बुझाये।

"हे प्रभो! मेरे मलिन अंतःकरण को धोकर साफ़ कर दो। तुम्हारे प्रकाश से मेरा मोहतम दूर हो जाय। मेरी लाखों वासनायें निरुद्देश हो इधर-उधर दौड़ रही हैं, न जाने वे किस अपरिमेय गरल-राशि में डूब जायँगी। हे संसार के दुःख-नाशक! तुम उन्हें अपने चरणों में आश्रय दो। तुम सर्वव्यापी हो। वायु में, अग्नि में, आकाश में, जङ्गल में, जल में, वृक्ष में, लता में, मेघ में, चन्द्रमा में, सूर्य्य में, तारे में, सर्वत्र तुम्हारी अखण्ड सत्ता विराजमान है। मेरी आँखों पर पट्टी बँधी हुई है। मैं अंधकार में रो-रोकर मर जाऊँगा। मैं न तो कुछ देखता हूँ और न समझता हूँ। तुम्हीं मुझे दिखला दो, समझा दो।"

(२)

ओरा मन्थन करि हृदय-सिन्धु
तुलिया नियेछे, प्रेम-इन्दु,
ज्ञान-अमृत, प्रीति-लक्ष्मी,
सद्गुणी-पारिजात।

"आरो कत धन रयेछे निहित",
चिर-मन्थन भावि' बिहित,
बक्षे करिछे शत्रु मित्र,
कठिन दण्डाघात।

अति मन्थने उठिछे गरल,
विश्वनाशी, तीव्र, तरल,
त्रस्त मथनकारि-सकल,
हेरि' गरलपात;

भग्न बक्षे सँचर कर
रुग्ने रक्ष; शंकर! हर!
सम्बर अति दारुण बिष,
ईश! विश्वनाथ!

"उन्होंने हृदय-सिन्धु को मथकर प्रेम-रूपी चन्द्रमा, ज्ञान-रूपी अमृत, प्रीति-रूपी लक्ष्मी, सद्गुण-रूपी पारिजात निकाल लिये। इसमें और भी कितने रत्न छिपे पड़े हैं। इसी विश्वास से कितने शत्रु और मित्र दिन-प्रति-दिन आघात कर रहे हैं; किन्तु अब उससे भयंकर विष निकलता है। सभी मथने वाले व्यक्ति भयभीत हो गये हैं। हे शंकर, इस विदीर्ण वक्षस्थल को जोड़कर इस रोग से मेरी रक्षा करो। हे ईश! हे विश्वनाथ!! इस दारुण विष के प्रभाव को रोको।"

(३)

तबे केन शोक ?

यदि रे आनन्दमय, पुण्य परलोक ?
ये देश गियाछे भाइ, से देशे विषाद नाइ;
चिदानन्द सुख स्रोते, चिरामृत योग
भगवत भक्तगणे भक्ति भरे हृष्टमने,
हरिगुण अलापने, हरे सदा काल;
जनम मरण तथा, अलीक स्वपन कथा,
नाहि अश्रु जल, प्रिय-सुहृद-वियोग।
एड़ाये भव-जंजाल गियेछ करेछ भाल,
संसारेर दुःख ज्वाला, पाबे ना तोमाय
अमादेर अश्रु जले, येन मन नाहि टले
चिर शांत माझे कर, नित्य सुख भोग
कर, सखा, आशीर्वाद, घुचे भव परमाद
तब पुण्य-पथ बहि, येन च'ले याइ
जीवने कर्तव्य याहा, संपादन करि ताहा
हरिनाम महामंत्रे, नाशे भव-रोग

"यदि परलोक पवित्र और आनन्दमय है तो फिर शोक कैसा ? उस देश में विषाद नहीं, सतत् ईश्वर के आनन्द का अमृत है। भगवान् की भक्ति में सारा समय व्यतीत होता है। वहाँ जन्म और मृत्यु की झूठी लीला नहीं होती। वहाँ न आँसू और न प्रेमी का वियोग। तुमने संसार के बंधन से मुक्ति पायी है। वह दुःख की आग तुम्हें छू नहीं सकती। हम तो आँखों से सदा आँसू बहाते हैं, मगर तुम शांत-भाव से सुख का उपभोग करो। हे मित्र, आशीर्वाद दो कि हमारी भ्रान्ति दूर हो जाय। तुम्हारे पुण्यमार्ग में बहते हुये हम संसार में अपने

कर्त्तव्यों का पालन करें और भगवान् के नाम-रूपी महामंत्र से भव-बाधाओं का नाश करें।"

(४)

ओरा चाहिते जाने ना दयामय
चाहे धन, जन, आयु, आरोग्य, विजय !
करुणा सिन्धुर-कूले वसिया, मनेर भूले
एक विन्दु वारि तुले, मुखे नाहि लय;
तीरे करि छुटाछुटि, धूल बाँधे मुठि मुठि,
पियासे आकुल हिया, आरो क्लिष्ट हय।
कि छाइ मागिये निये, कि छाइ करे ता दिये।
दुदिनेर मोह, भेंगे चूरमार हय;
तथापि निलाज हिया, महाव्यस्त ताइ निया,
भाँगिते गड़िते, हये पड़े असमय।
आहा ! ओरा ना त करुणानिर्झरनाथ,
ना चाहिते निरन्तर झरझर वय;
चिर तृप्ति आछे याहे, ता यदि गो नाहि चाहे
ताइ दिओ, याते पिपासा ना रय।

"हे दयामय, उन्हें माँगना नहीं आता। वे तुम से धन, जन, आयु, आरोग्य और विजय की कामना करते हैं। परन्तु भ्रमवश करुणा के समुद्र के किनारे रहकर भी वे एक बूँद जल उठाकर अपने मुँह में नहीं रखते। वे मुट्ठी में धूल बाँधकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं और प्यास से और भी व्याकुल होते हैं। उन चीज़ों के माँगने से क्या लाभ है? वे तो दो दिन की हैं। किन्तु तो भी यह लज्जाहीन मन उन्हीं को लेकर व्यस्त है। अफ़सोस, उसे मालूम नहीं कि ईश्वर तो करुणा के निर्झर की तरह बराबर आप से आप बहते रहते हैं। इसलिये हे ईश्वर ! यदि हम नहीं भी माँगें, तो भी हमें वही करुणा दो, जिससे मेरी प्यास बुझे।"

सत्येन्द्रनाथ दत्त

कई वर्ष पहले, सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु करीब २७ वर्ष की अवस्था में हो गई। इनकी मृत्यु के बाद लोगों ने कहा कि यदि वे जीते रहते तो वे अँग्रेज़ी कवि कीट्स से बढ़कर निकलते। स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर को इनके मरने का बड़ा शोक हुआ।

कवि सत्येन्द्रनाथ उत्साही युवक थे। इनकी कविताओं में यौवन का उच्छ्वास है। उनमें है स्वर-विलोड़ित संगीत-ध्वनि। बँगला काव्य-साहित्य में कवि सत्येन्द्रनाथ का स्थान ऊँचा है। इसलिये है कि इन्होंने बहुतेरे नवीन छन्दों का प्रयोग किया है, बहुतेरे सुरों की सरिता बहा दी है।

आधुनिक कवि नज़रुलइस्लाम की कविताओं में भी वही 'छन्द-हिल्लोल' पाया जाता है, जिसका प्रयोग सत्येन्द्रनाथ ने अपनी कृति में किया है। सत्येन्द्रनाथ की ये पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—वेणु ओ वीणा, स्वर लहरी, नीलपाखी।

यहाँ कवि सत्येन्द्रनाथ की कुछ कविताओं के उदाहरण दिए जाते हैं:—

झर्णा

झर्णा! झर्णा! सुन्दरि झर्णा!
तरलित चन्द्रिका! चन्दन-वर्णा!
अञ्चल सिञ्चित गैरिक स्वर्णे,
गिरिमल्लिका दोले कुन्तले कर्णे,
तनु भरि' यौवन, तापसी अपर्णा!
झर्णा!

पाषाणेर स्नेहधारा ! तुषारेर बिन्दु !
डाके तोर चित्तलोल उतरोल सिन्धु ।
मेघ आने जुही फुली वृष्टि ओ-अङ्गे,
चुमा चमूकीर हारे चाँद घोर रङ्गे,
धूरा-भरा देय धरा तोर लागि धर्णी !

झर्णा !

एस तृष्णार देशे एस कलहास्ये—
गिरि-दरी-विहारिणीर हरिणीर लास्ये,
धूसरेर ऊषरेर कर तुमि अन्त,
श्यामलिया ओ-परशे कर गो श्रीमन्त;
भरा घट एस निये भरसाय भर्णी;

झर्णा !

शैलेर पैठाय एस तनुगात्री !
पाहाड़ेर बुक-चेरा एस प्रेमदात्री !
पान्नार अञ्जलि दिते-दिते आय गो,
हरिचरण-च्युता गङ्गार प्राय गो,
स्वर्गेर सुधा आनो मर्त्यें सुपर्णी !

झर्णा !

मञ्जुल ओ-हासिर बेलोयारि आवाजे
ओलो चञ्चला ! तोर पथ ह'ल छावा ये !
मोतिया मतिर कुँड़ि मूरछे ओ-अलके;
मेघलाय, मरि-मरि, रामधनु झलके !
तुमि स्वप्नेर सखी विद्युत्पर्णी ।

झर्णा

"हे झरना ! झरना ! सुन्दरी झरना ! तरलित चाँद की किरणों,
चन्दन के रङ्ग-जैसे वर्णवाली ! गेरुए और सुनहले रङ्गों से तुम्हारा

अञ्चल आर्द्र है। तुम्हारे केश में, तुम्हारे कर्णों में गिरिमल्लिका झूमती है। हे यौवनपूर्ण शरीरवाली, अपर्णा तपस्विनी ! हे पत्थरों की स्नेह-धारा, हे तुषार की विन्दु ! तुम्हारी चञ्चल पुकारों से समुद्र उतावला हो उठता है। मेघ जूही के फूलों की-सी वर्षा की बूँदें तुम्हारे अङ्गों पर डालता है। हे झरना ! धूलि-धूसरित पृथ्वी तुम्हारे लिये धरना दिये रहती है। प्यास के देश में आओ, कलहास्य के साथ आओ। हे गिरि-गह्वरों में विहार करनेवाली ! हरिणी के हावभाव के साथ आओ। धूलिपूर्ण और अनुर्व्वर का अन्त कर दो। अपने स्पर्श से सब कुछ श्यामल बना दो। हे झरना ! भरोसे से भरा घड़ा लेती आओ। आओ, हे तन्वङ्गी, पर्व्वत के पीठ पर से आओ। हे प्रेमदात्री, पर्व्वत के हृदय को विदीर्ण करनेवाली, आओ। पन्ने की अञ्जलि देती-देती आओ। विष्णु के चरणों से निकलनेवाली गङ्गा के समान आओ। हे सुपर्णे, हे झरने, स्वर्ग की सुधा को मर्त्य में लाओ। उस मञ्जुल हँसी की आवाज़ से हे चञ्चले, तुम्हारा मार्ग छाया हुआ है। मोतिया और सोता के मुकुलों से तुम्हारा केश छाया हुआ है। वर्षा-निविड़ केशों में इन्द्रधनुष चमकता है। हे विद्युत्पर्णे ! झरने ! तुम मेरे स्वप्न की सखी हो।"

जन्माष्टमी

एले कि आनन्दरूप ! पुलकिया सुस नीपवन—
फणीफणा—छत्रशिरे शान्त शिशु आनन्दे निर्भय !
राखालेर कोल दिते आचारीर नाशिते पारण
एस तुमि दर्पहारी ! एस प्रेमी ! एस सर्व्वजय
एस आलो-करा कालो ! एस फिरे कालिन्दीर कूले,
बाजाओ मुरली तव,-यमुना उजान याहे बय,
एस रास-नृत्ये फिरे दोले दुल झुलनाय झुले

दे
को
झू
तुम
नहृ
भा
आ

एस तुमि हे किशोर ! रिक्त शाखे एस किशलय ।
एस इन्द्र-अर्घ्य-हारी ! नव वेद कर उच्चारण !
नियम-दारुण देशे, होक फिरे तारुण्येर जय;
भय-पाण्डु पाण्डवेर एस बन्धु ! एस जनार्दन !
एस पाञ्चजन्य-धारी कंसेर वंसेर चिर भय ।
वर्षे-वर्षे युगे-युगे जागे देश तव प्रतीक्षाय,
तव जन्मतिथि दिने कीर्त्तने तोमार कीर्त्ति-कथा;
एल कि विचित्र-कर्म्मा ! पुनराय एले कि धराय ?
जराभरा भारतेर चित्तवासी चिर-तरुणता !

"आये हो क्या, आनन्द रूप? सुप्त नीपवन को पुलकित करते हुए, मस्तक पर सर्प के फण का छत्र लगा, शान्त, निर्भय, शिशु-रूप में किस आनन्द के साथ आये हो । हे दर्पहारी, हे प्रेमी, हे सर्व्वविजयी ! आओ, चरवाहों को गोद देने के लिये, आचारी के पारण को नाश करने के लिये आओ ! आओ, आओ, आलोक फैलानेवाले श्याम ! यमुना के किनारे लौट आओ, अपनी मुरली फिर से बजा जाओ । हे किशोर ! रास-नृत्य में फिर से झूमते आओ, झूलने पर फिर से आकर झूलो । सूनी डाली पर किसलय बनते आओ । आओ, इन्द्र के अर्घ्य को छीननेवाले ! नये वेद का उच्चारण करो । नियम-दारुण देश में पुनः यौवन की विजय हो । भय से पीले पाण्डवों के बन्धु, आओ ! आओ, जनार्दन ! कंसकुल के चिर भय, पाञ्चजन्यधारी आओ ! तुम्हारे जन्म-दिवस को तुम्हारी कीर्त्ति की कहानी गाने के लिये वर्ष-वर्ष युग-युग देश तुम्हारी प्रतीक्षा में जाग उठता है । क्या आये हो, विचित्र कर्म्मा ! क्या फिर पृथ्वी पर आये हो ? जरा-पूर्ण भारत के हृदय में निवास करनेवाले चिरयौवन, क्या फिर आये हो ?"

छन्द हिन्दोल

मेघ्ला खम्खम्, सूर्य्य-इन्दु
डुब्ल बादलाय दुलल सिन्धु

हेम कदम्बे तृण-स्तम्बे
फुट्ल हर्षेर अश्रुबिन्दु !
झरेछे झर्झर, झरेछे झम्झम् ;
बज्र गर्ज्जाय, झञ्झा गम्गम् ,
लिख्छे विद्युत्-मन्त्र अद्भुत,
बल्छे तिन लोक "बम् बबम् बम् !"
सान्द्र वर्षण हर्ष-कल्लोल !
झिल्ली गुञ्जन मञ्जु हिल्लोल !
मूर्च्छे बीण् आर मूर्च्छे बीण्कार—
मूर्च्छे बर्षार छन्द-हिन्दोल !

"घना बादल ! सूरज और चाँद बादल में छिप गये। समुद्र हिल उठा। सुनहले कदम्ब पर, घास में हर्ष की अश्रुबिन्दु छलछला आई। वर्षा झर्रर, झम्झम् कर झड़ रही है। बज्र कड़क उठता है। झंझा सन-सना उठती है। बिजली विचित्र मन्त्र लिख देती है। तीनों लोक बोल रहा है—'बम् बबम् बम्'। सुहावनी वर्षा होती है। हर्ष का फौव्वारा छूटता है। झिल्ली का गुंजन सुन्दर सिहरनें फैला देती है। वीणा का स्वर मूर्च्छित हो पड़ता है। वर्षा का छन्द-हिन्दोल मूर्छित हो जाता है।"

रूप और प्रेम

(१)

रूप त हातेर लेखा प्रेम से रचना;
रूपहीना नहे प्रेमहीना।
लेखार ए दोषे शुधु, स्पर्शि बेना-काव्य मधु ?
प्रेम व्यर्थ हबे रूप-बिना ?

(२)

कवि होते श्रेष्ठ कि गो केरानी मुहुरी ?
प्रेम होते रूपेर माधुरी ?
कुरूपे नयन बिना कहे त करेना घृणा,
प्रेम यार हृदय ये तारि।

(३)

तबे फिराओ ना आँखि कुरूप बलिया,
येओना गो चरणे दलिया,
निशिर स्नेहेर गेहे देखो, रूपहीन देहे,
प्रेमे रूप ओठे उथलिया।

१—"रूप केवल हाथ की लिपि है; प्रेम है लेख। जो रूप से रहित है, वह प्रेम से रहित नहीं है। क्या सिर्फ़ लिखावट के दोष से कविता की मदिरा कम मादक होगी? क्या रूप के बिना प्रेम व्यर्थ होगा?

२—क्या कवि से ऊँचा नक़लनवीस या किरानी है? क्या प्रेम से बढ़कर रूप-माधुर्य है? अन्धा तो कुरूपा से घृणा नहीं करता। जिसे प्रेम है उसे हृदय भी है।

३—फिर कुरूप होने ही के कारण मुझे रौंदकर न चले जावो, अपनी आँखें मुझसे दूर न हटाओ। देखो न, निशा तुल्य मेरे शरीर में, रूपहीन देह में, प्रेम का निजी रूप खिल रहा है।"

अन्धा बालक

शीर्ण देह शुष्क तार मुख,
दृष्टिहीन—शिशु एतटुक;
जन्मेछे से भिखारीर घरे,
जीवन बहिछे अनादरे।
पिता-माता केह नाइ—केह नाइ तार,
से एखन अपरेर सहाय भिखार।

अन्धेर दुःखेर नाइ शेष
ग्रीष्मे शीते एकी तार बेश
एकी भावे सकाल बिकाल,
पथे बसि काटाय से काल;
केह बा दलिया चाय; केह बले "आहा"
व्यथितेर दुःख, हाय, के बुझिबे ताहा !

"उसका सूखा मुँह, दुबला-पतला शरीर, अंधा एक छोटा-सा बालक। भिखारी के घर में उसका जन्म हुआ है और जीवन बिना प्यार का। न उसकी मा है, न उसके बाप हैं; उसका कोई भी नहीं है। दूसरों की भिक्षा ही उसका सहारा है। अंधे के दुःख का पारावार नहीं। उसका भेस बराबर एक-सा रहता है। जैसा गर्मी में वैसा ही जाड़े में भी। एक ही ढंग से वह बैठता है, सुबह-शाम वह समान हो भाव से बिताता है। कोई उसे रौंदकर चला जाता है। कोई कहता है—"हाय !" लेकिन कोई भी दुखी अंधे की व्यथा को नहीं समझ सकता।"

अक्षयकुमार बड़ाल

कलकत्ते में चोरबागान नामक एक मुहल्ला है। इस मुहल्ले में श्रीनाथ राय नामकी एक गली है। इसी गली के एक मकान में अक्षयकुमार बड़ाल का जन्म १८६० ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम कालीचरण बड़ाल था। यद्यपि इन्होंने उच्च शिक्षा न पाई तथापि इन्होंने अपने को सुशिक्षित बनाया। पढ़ने-लिखने का चाव इनमें बराबर बना रहा। बचपन हो से ये कविवर बिहारीलाल के शिष्य रहे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी इन्हीं बिहारीलाल के शिष्य थे। बहुत दिनों

तक एकाउन्टेन्ट की हैसियत से इन्होंने कई महकमों में काम किया था। फिर एक बीमा कम्पनी में नौकर हुए। इनकी कविताओं का सम्मान ख़ूब हुआ है। अपने ढंग के ये एक ही कवि हैं। सरल और शोकपूर्ण भावों को व्यक्त करने में अपना सानी नहीं रखते।

इनके पद्यों के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं:—

(१)

आह्वान

हेर प्रिया, एइ धरा तरु-लता-पुष्प-भरा
गिरि-नदी-सागर-शोभना—
नग्न देहे, मुक्त प्राणे चाहिया आकाश-पाने—
नाहि लज्जा, नाहिक छलना।
हेर ओइ महाकाश— ल'ये मेघ राश राश
लइया आलोक अन्धकार—
कि गाढ़ गभीर सुखे पड़िया धरार बुके
नाहि घृणा, नाहि अहङ्कार।
शिरे शून्ये पदे भूमि मध्ये आछि आमि तुमि—
कल्प कल्प आकाश-बारता!
आछे देह, आछे क्षुधा, आछे हृदि-खुँजि सुधा।
आछे मृत्यु चाहि अमरता!
आछे दुःख आछे भ्रान्ति, आछे सुख आछे श्रान्ति,
आछे त्याग आछे आहरण;
तुमि सागरेर प्राय पारिबे कि स्फटिकाय;
उठिते पड़िते आजीवन?
आजि करे कर दिया बुझिछ आमार प्रिया?
बुझिछ कि मनः प्राण सब?

नहे मृत्, नहे शून्य, नहे पाप नहे पुण्य
आत्माय आत्मार अनुभव !
बुझिछ कि ए आनन्द एत आलो, एत छन्द,
एत गन्ध, एत गीतिगान !
कत जन्म मृत्यु दिया, कत स्वर्ग-मर्त्य निया
करि आज तोमारे आह्वान !
आसे सन्ध्या मृदुगति आकाश कोमल अति,
जल स्थल निष्पन्द निर्व्वाक;
पशु पक्षी गेछे फिरे फुटे तारा धीरे धीरे
श्रान्त धरा—श्लथ वाहु-पाक।
एस, ए हृदये मम, अस्फुट चन्द्रिका सम,
प्रेमे स्निग्ध, स्तब्ध करुणाय !
ढेके दाओ सब व्यथा, असमता, अक्षमता,
जड़ाये—छड़ाये आपनाय !
ल'ये प्रेम-सुधाराशि एस देवी, एस दासी,
एस सखी, एस प्राणप्रिया !
एस, सुख-दुख-दूरे, जन्म मृत्यु भेङ्गे-चूरे,
सृष्टि-स्थिति-प्रलय व्यापिया !

"मेरी प्रिया ! देख, वृक्ष, पुष्प, लतादि से भरी पृथ्वी को, शोभित पर्वत, नदी तथा समुद्र को देख। नग्न देह और मुक्त प्राण से आकाश की खिड़की को खोल, बिना किसी लज्जा और प्रवञ्चना के देख। देख उस अनन्त महाकाश को। वह राशि-राशि मेघों को धारण किए एवं आलोक तथा अन्धकार को लेकर किस प्रगाढ़ गम्भीर सुख से बिना किसी घृणा, बिना किसी प्रकार की अहंमन्यता के, मेदिनी के वक्षस्थल पर पड़ा है ? सिर के ऊपर महाशून्य है, पैरों के तले विस्तृत धरा है और बीच में हम तुम दोनों हैं। शरीर है, क्षुधा है।

हृदय है, अमृत ढूँढ़ रहा हूँ। मृत्यु है, अमरत्व को खोज रहा हूँ। दुःख है, श्रान्ति सुख और श्रान्ति है। त्याग और आहरण है। क्या तुम समुद्र की नाईं झटिका में आजीवन उठती-गिरती रह सकती हो? मेरी प्यारी, आज हाथों में हाथ देकर क्या तुमने समझा है? मन, प्राण सब कुछ समझ लिया है? आत्मा का आत्मा के साथ अनुभव, मृत्यु नहीं, शून्य नहीं, पाप या पुण्य नहीं है। समझती हो इस आनन्द को, इस प्रकाश को, इस छन्द को, इस गन्ध को, तथा इस गीति-गान को। कितने जन्म-जन्मान्तर से मैं तुम्हारा आह्वान कर रहा हूँ। सन्ध्या मृदु-मन्द गति से आती है। आकाश बहुत ही कोमल है। सारा संसार, जल, स्थल, स्पन्दनहीन तथा निस्तब्ध है। पशु, पक्षी सब अपने-अपने वास-स्थान को फिर गये। धीरे-धीरे तारे निकल रहे हैं। बेचारी पृथ्वी मानों बिलकुल थक-सी गई है। आ, आ, मेरी प्राण, अस्फुट चन्द्रिका की जैसी, स्निग्ध-प्रेम की जैसी, स्तब्ध करुणा की जैसी। हमारी सब अन्तर्वेदनाओं को ढक दो और हमारी असमता, अक्षमता को ढक दो। प्रेम की सुधा-राशि को ले आ। आ मेरी देवी, मेरी दासी, मेरी सखी, मेरी प्राण-प्रिया। आ, आ, सुख-दुःख को दूर कर, जन्म-मृत्यु को चूर्ण कर तथा सृष्टि की स्थिति में प्रलय के समान व्याप्त होकर आ।"

(२)

गृह तले आले बसि' पुत्र-कन्यागण करिया मण्डल;
नव वस्त्र-परिहित, वाक्य-हीन, सङ्कुचित, म्लान मुख, रुक्ष केश,
नेत्र छल् छल्।
मध्ये बसि क्षुद्र शिशु, किन्तु नाहि बोझे—केन ये एमन।
देखे वस्त्र आपनार, देखे मुख सबाकार, देखे द्वार पाने चाहि—
कातर नयन।

ए घरे ओ घरे घुरे काँदे बिड़ालीटि—कि दीस क्रन्दन !
अति विश्रृङ्खल घर, बहे गेछे महा झड़, आसे याय प्रतिवेशी
निःशब्द चरण ।

ज्वले दीप क्षीणप्रभ, म्रियमाण शिखा काँपे घन घन
प्राचीरे पड़िछे छाया—येन तार स्नेह-माया एखनो घुरिछे घरे—
एखनो-एखनो

रयेछि जानाला दिया शून्य पाने चाहि' अति शून्य मन ।
स्तब्ध क्षुब्ध अन्ध तमः—भीषण दैत्येर सम घुमाय—
छड़ाये देह—भरिया गगन ।

"घर में पुत्र-पुत्रियाँ मण्डल बाँधकर नये कपड़े पहने, नीरव, सकुचाई हुई, म्लान मुख बैठी हैं। उनके बाल बिखरे हैं, आँखों में आँसू भरे हुये हैं। बीच में नन्हा-सा बच्चा बैठा है। लोगों का उस समय का मनोभाव उसकी समझ में ज़रा भी न आया। कभी वह अपने कपड़े को देखता है, कभी कातर आँखों से सबके चेहरे को देखता है और कभी दरवाज़े की ओर ताकता है। बिल्ली इस घर से उस घर में घूमती हुई करुण रोदन कर रही है। घर भी बिल्कुल विश्रृङ्खल है। जैसे भीषण तूफ़ान बह गया हो। पड़ोसी निःशब्द पैरों से आते और चले जाते हैं। दीपक का प्रकाश क्षीण है। बुझती हुई दीपशिखा तीव्र वेग से काँप रही है। दीवारों पर उसकी छाया पड़ रही है। इस समय भी जैसे उसकी माया घर में घूम रही है। खिड़कीसे शून्य-मन होकर शून्य की ओर ताक रहा हूँ। नीरव क्षुब्ध अन्धकार, देह फैलाकर भीषण दैत्य की नाईं सारे आकाश को भरता हुआ सो रहा है।

(३)

एक बार चीत्कारि—चीत्कारि,
देखि ओइ गगन विदारि,
कोथा से आमार !

पशु पत्ती कीट अगणन
सकलेरि रयेछे जीवन,
सुधु—नाइ तार !

गेल कि—गेल कि एकेबारे ?
मरिले ओ पाब ना ताहारे ?
फुराल सकल ?

प्राण तबे नय—किछु नय ?
देहे जन्मि' देहे हय लय—
पुष्पे परिमल ?

वीणे यथा सुर-अलापन,
संयोजने ताड़ित—स्फुरण,
तेमनि कि प्राण—

सुधु-सुधु-रसायन-क्रिया ?
पञ्चभूत पञ्चभूते गिया
लागिछे निर्व्वाण ?

"सहसा मैं चीत्कार कर उठता, आकाश को फाड़कर देखता—मेरी वह कहाँ है ! पशु-पत्ती, असंख्य कीड़े-मकोड़े सभी का जीवन रह गया, केवल उसी का नहीं रहा। क्या वह चली गई ? क्या वह सदा के लिये चली गई? मरने पर भी क्या उसे न पा सकूँगा ? सब शेष होगयो ? क्या तब प्राण नहीं है—कुछ भी नहीं है ? प्राण क्या केवल शरीर में जन्म लेता और मिट जाता है, फूल में गन्ध के समान ? क्या प्राण भी है केवल वीणा में सुर के आलाप के समान या संयोग होने पर बिजली की चमक के ही समान है ? केवल रासायनिक क्रिया भर है ? पञ्चभूत पञ्चभूत में मिलकर निर्वाण पा गया है, क्या ?"

(४)

येते छिलो जीवन बहिया—
निज क्षुद्र सुख दुःख निया
सरल विश्वासे
आचम्बिते सिन्धुशैले ठेकि'
मरणे प्रत्यक्ष आज देखि !
जागि सर्व्वनाशे !
आशा शुष्क, वासना निःशेष
भुलेछि से युक्ति, उपदेश,
से आत्म-प्रत्यय;
शिक्षा, दीक्षा, सब मिथ्या भ्रम,
अविश्वास-संशय विषम
विह्वल-हृदय !

जीवनेर ए शोक-विस्वाद—
सुधु कि जीवेर अपराध,
जीवेर नियति ?
एक दिन—केह एक बार
करिबे ना तोमार विचार,
हे अन्ध-शकति !

"जीवन अपने ही छोटे-छोटे सुख-दुःख लेकर सरल विश्वास में बह रहा था ! अचानक सिन्धु-शैल से टकरा गया। आज मृत्यु को प्रत्यक्ष देखता हूँ। सर्वनाश में जाग रहा हूँ। आशा सूखी है। वासना मिट गई। वह सारी युक्ति, सारा उपदेश भूल गया। वह आत्मविश्वास, वह शिक्षा-दीक्षा सब केवल मिथ्या भ्रम हैं। विषम अविश्वास और सन्देह से हृदय व्याकुल हो रहा है। जीवन का यह कड़ुवा शोक क्या केवल जीव का ही अपराध है, जीव की नियति है ? हे अन्ध शक्ति ! क्या एक बार भी कोई तुम्हारा विचार न करेगा ?"

(५)

जीवने चाहि ना किछु आर
सुधु तारे देखि एक बार
एक बार तार सुख खानि !

ज्वलुक—यतइ ज्वले प्राण,
करिब ना कोन अभिमान,
सुखी हब, 'सुखे आछे' जानि ।

जीवने से पाय नाइ सुख
दुखे कभु भावे नाइ दुख
रोगे शोके हय नि चञ्चल;

सरल अन्तरे, हासिमुखे,
सकलि सहियाछिल बुके;
काँदिले ये हबे अमङ्गल ।

बलेछि अनेक रूढ़ कथा,
दियेछि अनेक बुके व्यथा,
सकलि सयेछे भालोबासि',

अनादरे फाटियाछे बुक,
तबु फुटे नाइ कभु मुख,
हासिते ढेकेछे अश्रु-राशि

छाया सम फिरि' निरन्तर
कखन दिब ना अपसर
बुझिते से प्रेमेर महिमा

मर्मे-मर्मे बुझितेछि आज
तार प्रति दिवसेर काज,
चला, बला, चाहनि, भङ्गिमा ।

रोगे जागि द्विपहर राते
शियरे बसिया पाखा हाते
नाहि निद्रा, निमेष नयने;

स्वप्ने यदि कभु काँदियाछि,
बलियाछे—"एइ काछे आछि"
दैछे धर्म्म मुछाये यतने।
घर द्वार जगत् संसार
सकलि—सकलि छिल तार !
आमि नित्य अतिथि, नूतन;
दिले पाइ, निले तुष्ट हइ,
गृह पाने कभु चेये रइ,
अनायास दिवस केमन।
बोलिनि, बोलिते छिलो कत
लुकाइते छिलाम विव्रत
लये अभिमान राशि-राशि;
मन खुले'—प्राण खुले' तारे
बलि नाइ केन बारे बारे,
"भालो बासि—बड़ भालो बासि।"
लये तुच्छ वाद-बिसंवाद
फुराइल जीवनेर साध।
अप्रकाश रहिल सकलि।
जीवने सहज छिल याहा
मरणे आज दुर्लभ ताहा !
के थमिबे ? से गियाछे चलि' !

"केवल एक बार उसका मुख देखने के सिवा जीवन में मैं और कुछ नहीं चाहती। जले, जितना भी हृदय जले, मैं कुछ भी अभिमान न करूँगी। मैं सुखी होऊँगी, यह जानकर कि वह सुखी है। जीवन में मैंने कभी सुख न जाना। दुःख में दुःख के आवेग को जाना ही नहीं। रोग या शोक में कभी भी चंचल न हुई। सरल हृदय से तथा मुख पर

हँसी के साथ हृदय ने सब कुछ सहा था। इसलिए कि रोने से अमंगल होता है, मैंने बहुत-सी रूढ़-कथायें कही हैं। हृदय को भी अनेक दुःख दिया है। सभी कुछ मैंने अच्छी तरह सहा। अनादर से हृदय मानों विदीर्ण हो रहा है। तब भी मुँह नहीं खुलता। हास्य में ही अश्रु-राशि छिपी रहती। मैं छाया की भाँति निरन्तर फिरा करती थी। पर कभी भी उसे यह जानने के लिये अवसर न दिया कि प्रेम की महिमा क्या है। पर आज मैं हृदय में उसके चलने, बोलने, आदि का अनुभव कर रही हूँ। रुग्नावस्था में आधी रात तक जगा करती—सिरहाने बैठकर हाथ में पंखा लिये नींद भी न आती थी। पलक भी न झुकते थे। सपने में यदि मैं कभी चिल्ला उठती तो वे बोल उठते—मैं पास ही हूँ। घर, द्वार, जगत सब उन्हीं का था। मैं तो एक नित्य के नूतन अतिथि के समान थी। देने से मैं पाती थी। लेने से संतुष्ट होती थी। गृह-वातायन से देखा करती थी—यह दिन कैसा है! बोली भी नहीं—कहने को बहुत कुछ था। बहुत ही अभिमान के साथ छिपने में अभ्यस्त थी। मन खुलते थे—प्राण भी। पर मैं बोलती क्यों न थी? मैं प्यार करता हूँ—बहुत—अत्यधिक! तुच्छ वाद-विवाद में जीवन के साथ मिट गये। सब कुछ अँधेरे में रह गया। जीवनकाल में जो सहज था वह अब अत्यन्त दुर्लभ हो गया। अब दया कौन करेगा! वह तो चला गया!"

(६)

सती,
मरणे भावि ना आर भयङ्कर अति।
तुमि याहे देख पद—
से ये फुल्ल कोकनद!
से नहे श्मशान-चुल्ली-भीषण मूरति।

मृत्यु यदि नाहि हय
प्रेम हते मधुमय,
दिवेन कन्यारे मृत्यु केन विश्वपति !
तुमि चोखे मुखे हेसे
उड़ाये आँचल केशे,
चले गेले निज देशे अति हृष्ट मति ।
मानिले ना कोनो माना
आमि केन भावि नाना !
चाय ना देखिते बापे कोन स्नेहता ।
कोन दिके, कोन पथे—
चड़िया पुष्पक-रथे
कखन चलिया गेले तुमि द्रुतगति !
चिता-धूम अन्धकार,
विषम शोकाश्रु भारे
तखन देखिनि चेये छिनु छिन्नमति ।
आज देखि मुछि' अश्रुभारे
तोमारे बरिया द्वारे
ल'ये यान आगुसारे देवी अरुन्धती !
देवबाला बेछे-बेछे,
चरणे विछाये देछे
मल्लिका यूथिका बेला शेफालि मालती ।
शुभ समारोह हेन,
तबु येन—तबु येन—
तोमार सप्रेम-दृष्टि खुँजिछे जगती !
आमि—रोगे दुखे शोके
गोधूलिर क्षीणालोके,
कर-योड़े करितेछि सरण-मिनति

"हे सती, अब मैं मृत्यु को भयानक नहीं समझता। जिस पर तुमने पैर रखा, वह खिला हुआ कमल है। वह भीषण मूर्त्तिवाला नहीं; श्मशान नहीं। यदि मृत्यु प्रेम से भी मीठी न होती तो विश्वपति अपनी कन्या को मृत्यु क्यों देते? तुम तो आँखों में, मुख पर हँसी लिये हुए, केश प्रान्त में अञ्चल उड़ाती हुई आनन्दपूर्वक अपने देश को चली गयी हो। कोई निषेध नहीं माना! फिर मैं क्यों सोच रहा हूँ? बाप का घर देखना कौन नहीं चाहता? तुम तीव्रवेग से पुष्पक पर चढ़कर किस ओर, किस मार्ग से, कब चली गईं? चिता के धूयें के अन्धकार में, विषम शोक के आँसू से भरा हुआ मैंने उस समय तुम्हें न देख पाया--मैं हतबुद्धि था। आज अश्रु-भार पोंछकर देखता हूँ—दरवाजे पर देवी अरुन्धती तुम्हारा स्वागत करने आई हैं। देवबालायें चुन-चुनकर तुम्हारे पैरों पर मल्लिका, यूथिका, बेला, शेफालिका और मालती बिछा रही हैं! ऐसा सुन्दर समारोह है। फिर भी जैसे तुम्हारी सप्रेम दृष्टि संसार को ढूँढ़ रही है। मैं रोग और शोक के संसार में, गोधूलि के क्षीण प्रकाश में, हाथ जोड़कर मृत्यु का आह्वान कर रहा हूँ।"

(७)

एखनो काँपिछे तरु, मने नाहि पड़े ठिक,
एसेछिले-बसेछिले-डेकेछिले हेथा पिक!
एखनो काँपिछे नद, भाबितेछे बार-बार,
ढलिया कि पड़ेछिल मेघखानि बुके तार!
एखनो श्वसिछे वायु, मने येन हय-हय,
छिल तरु-लता-कुञ्ज-तृण-गुल्म फुलमय!
एखनो भाबिछे धरा, नहे बहुदिन-कथा,
आकाशे नीलिमा छिल, भूमितले श्यामलता!

ए रुद्ध कुटीरे मोर एसेछिल कोन् जना ?
एखनो आँधारे येन भासे तार रूप-कणा !
मूरछिया पड़े देह, आकुलिया उठे मन,
शथने तैजसे बासे काँपे तार परशन !
एसछिल कत साधे, मने येन पड़े-पड़े,
पूरे नाइ साध तार, फिरे गेछे अनादरे !
कातर नयन चेये-कोथा गेल नाहि जानि,
मरुर उपर दिया नव-नील मेघ खानि !
कि भाबिछे आमार से, कोथा बसे अभिमाने !
आगे केन बुझि नाइ, से ओ व्यथा दिते जाने !
भाङ्गिया गियाछे घुम, केन गो स्वपन आर—
कुयासा-आँधार भावे शारद पूर्णिमा तार !

"इस समय भी तो पेड़ काँप रहा है। उसके मन में विश्राम नहीं। 'हाँ, हाँ, यहीं आई थी, यहीं बैठी थी, यहीं—यहीं वह कोकिला कूक उठी थी। अभी-अभी नदी चञ्चला है। वह मनमें बारम्बार सोच रही है—क्या मेघ ने अपने हृदय को यहीं उड़ेला था ! वायु अब भी उच्छ्वसित हो रही है—उसके मनमें बार-बार यही उठता है कि हाँ, हाँ, तरु, लता कुंजादि सभी पुष्पमय थे ? अभी भी पृथ्वी मनमें सोच रही है—यह बहुत दिन की बात नहीं कि आकाश में नीलिमा थी और पृथ्वी तल पर मृदु-श्यामलता। इस रुद्ध कुटीर में कौन आया था, अन्धकार में भी जिसका रूप देदीप्यमान हो रहा है। देह संज्ञा-शून्य हो जाती है और मन व्याकुल हो जाता है। उसके स्पर्श-मात्र से शरीर काँपने लगता है। कितनी हसरतों के साथ आया था। पर उमंगें अधूरी ही रह गईं—वह निरादर के साथ लौट गया। कातर दृष्टि से देखता हुआ वह न जाने कहाँ चला गया। वह हमारी नींद को तोड़ गया।"

मोहितलाल मजुमदार

मोहितलाल मजुमदार का जन्म १८८८ ई० में कलकत्ता से लगभग तीस मील की दूरी पर काँचड़ापाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। यह पुराना स्थान साहित्यिक और धार्म्मिक स्मृतियों से पूर्ण है। पुराने सम्प्रदाय के अन्तिम महाकवि ईश्वरचन्द्र गुप्त का भी जन्म-स्थान यही है। इस जगह से थोड़ी ही दूरी पर विश्रुत कवि भरतचन्द्र के समकाल-जीवी कविवर रामप्रसाद सेन रहते थे। इनकी धार्म्मिक कविताएँ आज भी नवीन और लोकप्रिय हैं।

इनका बाल्यकाल घर ही पर व्यतीत हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर बारह वर्ष की अवस्था में ये हाई स्कूल में भर्त्ती हुए। १९०४ में इन्होंने प्रवेशिका परीक्षा पास की और चार वर्ष के बाद बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। यथाशक्ति कोशिश करने पर भी इनको मनोनुरूप जीविका नहीं मिल सकी। कुछ समय तक ये कोई गम्भीर कार्य्य करने में असमर्थ थे। अतएव लाचार होकर इन्होंने शिक्षक-वृत्ति ही स्वीकार कर ली। बीच में ये दो वर्ष के लिये (१९-१४-१६ में) ज़िला-सर्वेआफ़िस में सवार्डिनेट आफ़िसर के पद पर नियुक्त हुए। यह समय इनके लिये बहुत ही लाभप्रद हुआ। बङ्गाल के घने जङ्गलों, उपवनों में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ। कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, ग्राम्य-प्रकृति तथा अर्ध ग्रामीण समाज के प्रगाढ़ अनुभव प्राप्त हुए। इससे इनकी सोई हुई साहित्यिक प्रवृत्ति जागृत हो उठी। सच पूछिये तो यह समय साहित्यिक दृष्टि से इनके लिये अमूल्य सुअवसर था।

इनके जीवन का श्रेष्ठ और अधिकांश भाग कलकत्ते ही में व्यतीत हुआ है। उन दिनों वहाँ के मानसिक और भावोत्पादक

वातावरण से इनके साहित्यिक जीवन पर बहुत ही बड़ा प्रभाव पड़ा। साहित्यिक प्रकृति को परिपक्व करने के लिये इनको अलभ्य सुअवसर प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाल्यकाल सुदूर ग्राम में प्रकृति की गोद में बीता। युवाकाल कलकत्ते के साहित्यिक वातावरण में समाप्त हुआ। पीछे प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवन का अनुभव करने का सुअवसर हाथ लगा।

१९२८ में ये ढाका-विश्वविद्यालय में आधुनिक बंग-साहित्य के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुये और अभी तक उसी पद पर हैं। इन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं। इनके सिवा इन्होंने समय-समय पर बंग-भाषा के मासिक पत्रों में कतिपय विषयों पर लेख भी लिखे हैं। इनमें से 'साहित्यिक समालोचना के नियम', 'कविता क्या है', 'आधुनिक बंग-साहित्य की प्रधान धाराएँ' आदि उल्लेखनीय हैं। आशा है, ये सब लेख दो-तीन खण्डों में पुस्तक-रूप में प्रकाशित होंगे। ये कविता का तीसरा खण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित करने का विचार कर रहे हैं। दो खण्ड पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों के नाम ये हैं:—

१—विस्मरणी

२—स्वप्नपसारी

आधुनिक कवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी सुंदर कविताओं के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

अमृतस्य पुत्राः

नीरव ज्योत्स्ना रात्रि, ग्राम पथ दिया
गेये चले पान्थ एका आपनार मने;
बनेर प्राचीर येन आछे दाँड़ाइया
दुइ धारे, खोला छाद! पड़िछे नयने
ऊर्द्धाकाश, आलोकित चन्द्रतारागणे।
नाहि केह, कोथा नाइ निश्चे प्रसारिया

गेछे पथ कत दूरे ! आज तार हिया
जानिवारे नाहि चाय, आर कत क्षणे
पहुँचिबे घरे; चलियाछे निरुद्देशे
ऊर्ध्वमुखे गेये गान, प्राण मुक्त करि,
कर्म्म-क्लान्त-दिवसेर रौद्रताप शेषे,
प्राण तार गान ह'ये पशे कोन् देशे !
"अमृतेर पुत्र तोरा !"—ऋषिमन्त्र स्मरि'
आनन्दे-विषादे मोर आँखि एल भरि'!

"चाँदनी रात थी। चारोंओर शान्ति थी। ग्रामीण-पथ पर अकेला एक पथिक अपने ही मन में गाता चला जा रहा है। मानों दोनों ओर बन ही बन हैं। ऊपर चाँद और ताराओं से पूर्ण आकाश है। कहीं भी कोई नहीं दिखाई पड़ता !—कौन जाने पथिक कितनी दूर तक चला गया है। आज तो पथिक यह भी जानना नहीं चाहता कि वह घर कब पहुँचेगा। वह तो आज सामने की ओर, बिना किसी उद्देश्य के गीत गाता हुआ दिल खोलकर चला जा रहा है। दिन भर को थकावट के बाद, कड़ी धूप के मिटने के बाद, उसके प्राण गीत होकर न जानें कौन-से विचित्र देश में प्रवेश कर रहे हैं। "तुम सभी अमृत के पुत्र हो" इस ऋषि-मन्त्र के स्मरण-मात्र से मेरी आँखें हर्ष से, विषाद से भर आती हैं।"

आरती

यत व्यथा पाइ तत गान गाइ, गाँथि ये सुरेर माला;
ओ गो सुन्दर ! नयने आमार नील-काजलेर ज्वाला !
एइ अवनीर वेदना-निबिड़ सबुज अन्धकारे
पन्थ भुलि बारे-बारे,
कण्टके फोटे रक्त-कुसुम बासना-सुरभि-ढाला !
यत दिन याय, आँखि ना जुड़ाय—अश्रुर पारावार

पूर्ण प्राणेर पूर्णिमा-राते उथलिछे अनिवार !
ओइ गगनेर निशीथ-नीरव नीलिमार कूले-कूले
दीप ओठे दुले' दुले'—
तारि पाने चे'ये सोना मने हय मृण्मय संसार !
हाहा करे हावा, दीप निबे याय, साथी-हीन अमा राति
बाहिरे बिजने हास्ता हेनाय उथलिछे जोनाकि—पाँति ।
से महाशून्य भरि' ओठे मोर निराशार उल्लासे
—के"दे ओठे कल हासे !
आँधार नयने चमकिया ओठे मेरु-दामिनीर भाति !

"जितनी ही व्यथा पाता हूँ उतना ही अधिक गीत गाता हूँ; सुरों का हार गूँथता हूँ ! ऐ मेरे सुन्दर ! ऐ मेरी आँखों में नील काजल की ज्वाला ! इस धरा के व्यथा-विभोर अन्धकार में अपना पथ मैं बार-बार भूल जाता हूँ । काँटों में वासनामय लाल फूल खिल उठता है ।

दिन बीतते हैं, पर आँखें मेरी तृप्त नहीं होतीं। मेरे हृदय के पूर्ण उमङ्गों में, मेरे प्राणों की पूर्णिमा में, आँसू की धारा रुकती ही नहीं। रात के समय, सुदूर नीलाकाश की शांत, निःशङ्क नीलिमा-उदधि के किनारे दीपक थिरक उठते हैं। उन्हें देखकर ज्ञात होता है कि यह संसार सोने से भरा है।

दीपक मर मिटते। हवा रो उठती। निःसंग अमावस्या की रात आती। बाहर निर्जन-प्रान्त में, हास्ता हेना के पौधों के बीच जुगुनुओं की दीप-मालिका चमक उठती।"

मानस-लक्ष्मी

(१)

आमार मनेर गहन बने
पा टिपे बेड़ाय कोन् उदासिनी

नारी-अप्सरी सङ्गोपने !
फुलेरि छायाय बसे तार दुइ चरण मेलि'
विजन-निभृते माथा ह'ते देय घोमटा फेलि',
शुधु एकबार हेसे चाय कभु
नयन-कोणे,
आमार मनेर गहन बने ।

(२)

सेथा सुख नाइ, दुख नाइ सेथा
—दिवा कि निशा,
अस्त चाँदेर पाण्डुर किरण
देखाय दिशा ।
निश्वासे यदि एकबार तार बुकटि दोले,
कत फुल-कलि अमनि माटेते मुखटि तोले;
भुले-यावा कोन् व्यथार सलिले
मिटाय तृषा,
सेथा सुख नाइ, दुख नाइ सेथा
—दिवा कि निशा !

(३)

कतबार तार भस्म भासाये दियेछि जले,
कभु से आमारि चिताय बसेछे चरण-तले,—
अजाना—आँधारे यतने ज्वालाये
बासर-राति !
छिल एकदा एइ भुवनेइ
जीवन साथी ?

(४)

आर कि कखनो एइ बाहुपाशे
दिबे ना धरा ?

हृदय-सायरे हये गेछे तार
कलस भरा ?
ए आलोके यबे ना हेरि ताहारे, पराण काँदे—
मनो-बातायने गोधूलि-बेलाय बेणी से बाँधे !
गानेरि आड़ाले साड़ा देय शुधु
से अप्सरा,
बाहिर-भुवने एइ बाहुपाशे
दिबेना धरा ।

१—'मेरे मन के गहन बन में चुपचाप एक उदासिनी धीमी गति से विचरती रहती है--वह अप्सरा है; नारी है । फूलों की छाया के नीचे बैठकर, अपने चरणों को समेट कर, निर्जनता में, वह घूँघट हटा देती है । बस, एक बार वह कभी मुझे हँसकर सिर्फ़ देखभर लेती है—मेरे मन के गहन बन में ।

२—वहाँ न सुख है, न दुख है, न रात है और न दिन । डूबे चाँद की फीकी रेखा दिशायें दिखा देती है । यदि कभी एक बार भी दीर्घ निःश्वास से उसकी छाती हिल उठती है तो यों ही धरा पर बन के फूलों की अनेक कलियाँ खिल जाते हैं । किसी भी व्यथा के सलिल में वह अपनी प्यास मिटाती है । न वहाँ सुख है, न दुख है, न रात है और न दिन ।

३—कितनी बार उसकी चिता की भस्म को जल में बहा दिया है ! कभी सोहाग की रात को मेरे चरणों के निकट अनजान अन्धकार में यत्न से जलाकर वह मेरी चिता के पास बैठ चुकी है । क्या वह इस धरा पर एक दिन मेरे जीवन की संगिनी थी ?

४—क्या वह फिर कभी मेरे आलिङ्गन में बँधेगी । क्या हृदय-समुद्र में उसका मंगल-घट भर चुका ?

जब उसे इस आलोक में नहीं देख पाता हूँ, तो मेरे प्राण रो उठते हैं। मेरे मन के वातायन के निकट बैठकर गोधूलि के समय वह अप्सरा अपने केश सँभालकर बाँधती है !

सिर्फ़ गानों के भीतर ही उस अप्सरा का पता चलता है। बाहर के जगत् में, वह मेरे आलिङ्गन से कभी न बँधेगी।"

स्पर्श-रसिक

आमारे करेछे अन्ध गन्ध-धूमे देह-धूपाधार,
मादक सौरभे तार चेतना हाराय !
विष-रस पान करि' स्वाद पाइ स्वरग-सुधार
—चिर बन्दी आछि ताइ स्वपन-काराय !
अन्ध आमि, देह ताइ स्पर्शे हाहा करे,
धरार धूलाय ताइ फूल रेणु झरे !
आलो-से ये उष्ण शुधु, जानि कत शीतल आँधार—
सर्ब्ब अङ्ग स्नान करे चुम्बन-धाराय
अन्ध आमि—जागि ताइ सारा रात परश-पियाशे
शयन-शियरे मोर ज्वले ना प्रदीप,
हेरि नाइ मुख तार, बुक शुधु बाँधि बाहुपाशे,
अङ्गे-अङ्गे शिहरिया फोटे लक्ष नीप
मिलन-रजनी मोर आँधार श्रावण—
दूइदेह—तटे से कि दुरन्त प्लावन !
अन्ध हय अन्धकार ! अन्ध आँखि विद्युत् बिकाशे !
से मुहूर्त्ते आमि ये गो मरण—अधिक !
स्नायु शिरा-शततन्त्री झङ्कारिछे प्राणेर हरषे,
दीप-हीन चित्ते मोर दीपक-उल्लास !
मिटाते चाहि ना तृषा निस्तरङ्ग अमृत-सरसे,
चाइ मृत्यु, चाइ नव-जनम—आश्वास !

दृष्टिपथे सृष्टि आरो हय ये सुदूर !
—देह करे आलिङ्गन, तबे। से मधुर !
आँखि ताइ मुदे आसे—तृप्त यबे प्रियेर परशे,
—मिले यबे बाहुपाशे निःश्वासे निःश्वास !
देही आमि, मन्दिरे मन्दिरे ताइ परश-भिखारी,
देवतार स्पर्श करि' करि ये प्रणाम !
धरणीर स्पर्श-मणि-मर्म्मे आछे परश ताहारि,
से परशे जड़े-चिते भुलेछे संग्राम।
परश-रसिक आमि, अन्ध आँखि तारा,
आमार आकाश ताइ शशी सूर्य्य-हारा !
पदतले पृथ्वी आछे आलिङ्गन चौदिके बिथारि'
आलो नाइ, आछे शुधु प्राणेर आराम।

"उसके शरीर के गन्ध-धूम्र ने मुझे व्याकुल बना दिया है। उसकी नशीली सुरभि मुझे बेहोश कर देती है ? मुझे विष में भी स्वर्गीय सुधा का स्वाद मिलता है। मैं उस स्वप्न-कारागार का बन्दी हूँ ! मैं व्याकुल हूँ। मेरा शरीर उसके स्पर्श से रोमाञ्चित हो उठता है। पृथ्वी पर फूलों की रेणुका झर पड़ती है ! प्रकाश—वह भी केवल उष्ण है; न जाने शीतल अन्धकार में मेरा सर्वाङ्ग चुम्बन की धारा में कितना स्नान करता है। इसीलिए मैं स्पर्श की आकांक्षा में व्याकुल हूँ। सारी रात जागता रहता हूँ। मेरी सेज काँपती है, प्रदीप जलता नहीं। इसीलिये मैं उसका मुख नहीं देखता। केवल उसे बाहुपाश में बाँधकर कलेजे से लगाये रहता हूँ। मेरा अंग-प्रत्यङ्ग रोमाञ्चित हो उठता है। लाखों कलियाँ खिल उठती हैं। मेरी मिलन-रात्रि अन्धकारमय है। श्रावण ने दो प्रेमी हृदय में कितनी प्लावनकारी भावनाएँ भर दी हैं। अन्धकार विकल होता है ! आँखें बिजली की चमक से चकाचौंध हो जाती हैं। आह ! वह समय मुझे मृत्यु से भी अधिक भयावह मालूम होता है।

मेरे प्राण के उल्लास से स्नायु शिरा की शतशः तन्त्रियाँ झंकृत हो उठती हैं; मेरे अंधकार-पूर्ण हृदय में प्रकाश फूट पड़ता है। मैं इस प्यास को अमृत से भी बुझाना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ मृत्यु; चाहता हूँ, नये जन्म का आश्वास! मेरी निगाह से यह सृष्टि और दूर होती जा रही है; पर जब वह मेरा शरीर आलिङ्गन करती है तब मधुर मालूम पड़ती है। प्रिया के स्पर्श से तृप्त होकर जब बाहुपाश के बीच में साँस से साँस मिलती है, तब आँखें मुँद जाती हैं। मैं देहधारी हूँ। मन्दिर-मन्दिर में मैं उसी स्पर्श का भिखारी हूँ। देवताओं को स्पर्श कर प्रणाम करता हूँ! पृथ्वी के स्पर्श के बीच में उसी का स्पर्श छिपा हुआ है, जिसके वशीभूत हो जड़-जन्तु भी पारस्परिक संग्राम को भूल गये हैं। मैं स्पर्श-रसिक हूँ, मेरी आँखों का तारा (पुतली) मुग्ध है। इसीलिए मेरा आकाश चाँद और सूरज से विहीन है। चरणों के नीचे पृथ्वी है और आलिङ्गन बिखरा हुआ है। प्रकाश नहीं है, केवल हृदय का उल्लास है।"

विस्मरण

आमारे तोमरा भुले येयो भाइ!
एसछिनु पथ भूले'
पान करिवारे जाह्नवी-बारि
कीर्त्तिनाशार कूले!
बहुजनमेर व्यर्थ पिपासा
एबार पूरिबे मने छिल आशा
भाङ्गा मन्दिरे बेंध्येछिनु बासा
पुरानो बटेर मूले;—
प्लावनेर मुखे भेसे गेल सब
कीर्त्तिनाशार कूले।

❀ ❀ ❀

तारार आखरे के लिखिछे लिपि
धरार ललाट-पटे !—
भेबेछिनु आमि पड़िब ताहारे
द्विधाहीन अकपटे ।
ये काहिनी कहे निशीथ-गगन,
यार अभिनये दिवस मगन,
धरिबारे चाइ से लिपि-लिखन
बसुधार बालुतटे—
तारार आखरे ये लिपि बिहरे
नभोनीलिमार पटे !
तोमादेर तरे रयेछे समुखे
धरार अरुणोदय,
आमि तिमिरेर तीर्थ—पथिक,
तारकार गाहि जय !
ये आलो काँदिछे उर्द्ध भुवने—
तरल तुहिने काँपिछे पवने,
तारि एक कणा मनेर भवने—
करियाछि सञ्चय,
तारि हासि हेसे रजनीर देशे
करिनु अरुणोदय !
सुप्ति-सागरे फेन-तरङ्ग
स्फुरिछे ज्योतिर्म्मय !
मनो-मृदङ्गे ध्वनि अनाहत
निवारिछे संशय !
काने जागे रूप, सुर बाजे चोखे !—

बेड़ाइ अतीत अनागत शोके,
समुखे पिछने—सुदूरेर थोके
भूलि निकटेर भय,
ये सुख स्वपन ताहारि रभसे
जगत् ज्योतिर्म्मय !

होथा अस्फुट ऊषार किरीटे
शोभिछे हीरक दुल्—
जानि से आलोक-शिखार सकाशे
दुलिबे ना मोर फूल !

चाँदेर सोना ये रूपा हये आसे !
तारारा पलाय आगुनेर त्रासे !

रथ-घर्घर ओइ ये आकाशे
अरुणेर—नाहि भूल !
होथा से आलोक-शिखार सकाशे
फुटिबे ना मोर फूल ।
आमि धरेछिनु निशीथेर गान
तोमादेर शेष-राते—

ज्योत्स्ना यखन मिलाइया याय
गोधूलि धूसर प्राते ।
गान शेष करे' चले' गेल सबे'
आलोगुलि सब निबितेछे नभे
दिबाओ आसे नि' निशा नाइ यबे—

बाँशि खानि लये हाते,
आमि बाहिरिनु बन-पथे एका,
गोधूलि–धूसर प्राते ।

आमारे तोमरा भूले येयो भाई !
एसेछिनु पथ भूले'—
नयने भरिते निशार निदालि
आतप-उत्स-कूले !
ये-गान हेथाय ह'ल नाक सारा,
सुरखानि ता'र ह'वे ना ये हारा,
आरेक भुवने सन्ध्यार तारा
लइबे ताहारे तुले'—
नव जागरणी गाइबे सेथाय
बिस्मरणीर कूले ।

"अरे रे भाई ! मुझे तुम लोग भूल जाना, मैं तो पथ भूलकर जाह्नवी-जल पीने की अभिलाषा से कर्मनाशा के तट पर आ गया था। आशा थी कि अनेक जन्मों की पिपासा इस बार बुझेगी। पुराने वट-वृक्ष के नीचे, भग्न मंदिर में डेरा डाला था—परन्तु बाढ़ में वह सब कर्मनाशा के तट पर बह गया !

ताराओं के अक्षर से धरा के ललाट-पट पर किसने यह लिपि लिखी है। मैंने समझा था कि उसे खूब स्पष्ट रूप से पढ़ लूँगा। निशीथ-गगन उस कहानी को कहता है जिसके अभिनय में दिवस तल्लीन रहता है। मैं उस लिपि को, जो नभ के नीले पट पर तारा के अक्षरों में लिखी हुई है, वसुधा के बालू तट पर लिखकर रखना चाहता हूँ।

तुम लोगों के सम्मुख सर्वदा पृथ्वी का अरुणोदय रहता है। मैं तो तिमिर-तीर्थ का यात्री हूँ। तारकाओं की जय मनाता हूँ जो प्रकाश ऊर्द्ध्व संसार में रोता है, जो तरल तुहिन में हवा से काँप उठता है, उसीके एक कण को मैंने अपने मन में संचय कर रखा है, उसी की हँसी से रजनी के देश में प्रकाश फैलाता हूँ।

सुषुप्ति सागर की तरंगें ज्योतिमय होकर स्फुरित होती हैं। मानो अपनी मधुर ध्वनि से संसार के संशय को दूर करती हैं। कानों में उसी का स्वर गूँजता है, आँखों में उसी की छवि नाचती है। सुदूर के शोक से व्याकुल होकर, निकट का भय भूलकर, अतीत अनागत लोक में आगे-पीछे, इधर-उधर घूम रहा हूँ।

वहाँ ऊषा के मुकुट में हीरे की झुलनी शोभित हो रही है। जानता हूँ, उस आलोक-शिखा के स्पर्श से मेरा फूल नहीं खिलेगा। चाँद की आभा मलिन पड़ती जो रही है। तारागण भागे जा रहे हैं, आग सूर्योदय के भय से थर्रा रही है। उसी आकाश के अरुण का (परन्तु) उस आलोक-शिखा के स्पर्श से मेरा फूल न खिलेगा! तुम लोगों की शेष रात्रि में, जब चाँदनी गोधूलि और धूसर प्रभात को एक साथ मिला देती है मैं निशीथ का गीत गाता हूँ। गाना समाप्त कर|सभी लोग चले गये। आकाश के प्रदीप भी बुझने लगे। अभी दिन नहीं हुआ है; पर रात भी नहीं है। ऐसे समय में हाथ में बंशी लेकर मैं बिजन पथ में प्रभात की गोधूलि में अकेला खड़ा हूँ।

अरे भाई! मुझे तुम सब भूल जाना। मैं तो पथ भूलकर आ गया था। जो गीत यहाँ समाप्त नहीं हुआ है उसके लय की भी समाप्ति न होगी। एक दूसरे संसार की सन्ध्या उसे अपनायेगी और विस्मरणी के तट पर नव जागृति का गीत गावेगी।"

यतीन्द्रमोहन बागची

यतीन्द्रमोहन बागची का जन्म १८७८ ई० में नदिया ज़िले के जमशीपुर नामक ग्राम में हुआ था। ये उस ग्राम के एक कुलीन परिवार में उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था ही से इनको साहित्य से बड़ा प्रेम

था। चौदह वर्ष की अवस्था में इन्होंने कीर्तिबास के रामायण, काशीदास के महाभारत, माइकेल और बंकिमचन्द्र के ग्रन्थों को पढ़ डाला। ये इन ग्रन्थों को विशेषतया ध्वनि और गीतिराग के कारण पढ़ते थे। धीरे-धीरे ये श्रीयुत यतीन्द्रनाथ की कविता के बड़े प्रेमी हो गये। बाद को वे ही इनके आदर्श बने। इस समय इन्होंने स्वयं कविता रचना आरम्भ कर दिया। जब ये कलकत्ता के स्कूल में पाँचवी कक्षा में पढ़ते थे, उसी समय इनकी पहली कविता प्रकाशित हुई। प्रवेशिका परीक्षा पास करने के बाद ये कलकत्ता के प्रसिद्ध मासिकपत्र साहित्य भारती और राजशाही के उत्साह आदि पत्रों में बराबर लेख लिखने लगे।

१९०२ ईसवी में इन्होंने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद तन-मन से मातृभाषा की सेवा में तत्पर हुए। गद्य और पद्य दोनों में इन्होंने लिखना शुरू किया।

इनके प्रधान ग्रन्थ ये हैं:—

(१) पल्ली कथा, (२) लेखा-रेखा, (३) अपराजिता, (४) जागरणी (५) वन्धुर गान, (६) नीहारिका, (७) पथेर साथी।

इनके सिवाय इन्होंने बंगाली मासिक पत्रों में बहुत से लेख लिखे हैं।

ये पाँच वर्ष तक मानसी के सम्पादक थे। कुछ दिनों तक ये यमुना के भी सम्पादक थे। इनके लिखे हुए कई एक सम्पादकीय लेख हैं।

हाल ही में इनका पचासवाँ वर्ष पूरा हुआ है। इस अवसर पर जनता ने इनकी सम्बर्द्धना की है और उपासना का आश्विन-अङ्क इन्हीं के नाम पर प्रकाशित हुआ। इस अङ्क में रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द, प्रमोद चौधरी, जलधरसेन आदि लेखकों के लेख हैं।

यहाँ बागची महोदय की कुछ कवितायें उद्धृत कर रहे हैं—

(१)

अन्धकार

अन्धकार, ओ गो अन्धकार !
असीमेर राजपाटे एकेश्वरी वन्धक्कार,
निबिड़ निकष तव घनकृष्ण चिकुरेर तले,
निखिल—उदासकरा कालो चोखे सें माणिक ज्वले—
निशीथ बिरले,
कोनो दिन कारो काछे मिलल ना सन्धान ताहार
व्यर्थ बसुधार,
अयि अन्धकार !

हे निःसङ्ग, तबु भाबि मने—
तोमार ओ ईप्सित बुझि आछे केह सुदूर भुवने !
विरहवेदना यार धूम्राङ्कित वासनार धूपे
छापिया हृदय तव चिररात्रि ज्वले कालो रूपे
तमिस्रार स्तूपे;
एकबेणीधरा तुमि जागो नित्य निशीथ शयने
विनिद्र नयने !

हे व्यथिता, हे अपरिचिता,
तव रूक्ष कटाक्षेते निबे' याय दिवसेर चिता;
सखी रात्रि एका यात्री तोमार गहन कुञ्जबने—
अपराजिताय घेरा, कोकिलेर मौन आलापने
जागे तव सने;
तोमार बाञ्छित सङ्गी मृत्युञ्जय सर्व्वभयहारा
योगे आत्महारा।

हे शङ्करि, हे प्रलयङ्करि,
तबु वर देह देवि, ए जीवने तोमारेइ वरि।

जीवनेर पूर्व्वपारे तुमि छाड़ा के छिल मा आर,
माझे दु' दिनेर सेतु, आछे तुमि घेरि परपार,
हे चिर आँधार;
तोमार अनन्त रूप चिनिवारे ए मर जीवने
दीप्ति हे नयने।
ओ गो माता, ओ गो अन्धकार !
आलोकेर अन्ध शिशु—अन्तमेर लह नमस्कार;
कि भावे तोमारे डाकि, श्यामा श्यामा ताइ गड़ि मने,
तोमार अरूप रूप बाँधिवार सीमार बन्धने
चाहि प्राणपणे।
अतुल से कालरूपे. छायाच्छबि तव प्रतिमार,
नमि बारम्बार,
अयि अन्धकार !

"अन्धकार, हे अन्धकार ! असीम के राज्य की एकेश्वरी, बन्द दरवाज़े पर तुम्हारे निबिड़-घनकृष्ण चिकुर के नोचे निखिल को उदास करने वाली काली आँखों में, विरल निशीथ में, वह माणिक जलता है। कभी भी उसकी व्यर्थ वसुधा का सन्धान किसी के पास न मिला। निःसङ्ग ! तौ भी मन में सोचता हूँ, कि सुदूर भुवन में तुम्हारा भी कोई वांछित है। जिसकी विरह-वेदना धूमाङ्कित बासना के धूप में तुम्हारे हृदय को छापकर काले रूप में तमिस्रा के स्तूप के आकार में सारी रात जगा करती है। एक वेणीधारिणी तुम नित्य विनिद्रनयना हो निशीथ की शय्या पर जागती रहती हो। हे व्यथिता ! हे अपरिचिता ! तुम्हारे सूक्ष्म कटाक्ष से दिन की चिता बुझ जाती है। अकेली यात्री तुम्हारी सखी रात अपराजिता से घिरे गहन कुञ्ज में, कोकिल के आलाप में तुम्हारे साथ जागती रहती है। मृत्युञ्जय, सर्व्व भयशून्य, योग में आत्मविस्मृत तुम्हारा वाञ्छित सङ्गी है।

हे शङ्करि ! हे प्रलयङ्करि ! हे देवि ! तो भी वर दो कि इस जीवन में तुम्हें ही वरूँ। मा, जीवन के पूर्व्व तुम्हें छोड़ और कौन था? बीच में दो दिन का सेतु है। हे चिरान्धकार तुम उस पर भी घेरे पड़े हो। अपने अनन्त रूप को पहचानने के लिये इस मर्त्य जीवन में मेरी आँखें दीप्त कर दो।

ओ माँ, ओ अन्धकार ! आलोक के अन्धे बच्चे का, इस असमर्थ का प्रणाम ग्रहण करो। किस प्रकार तुम्हें पुकारूँ? समझता हूँ, श्यामा-श्यामा कहकर प्राण-पण से तुम्हारे अरूप रूप को सीमा के बन्धन से बाँधने को इच्छा करता हूँ। अतुल काल-रूप को, तुम्हारी प्रतिमा की छायाच्छवि को, बार बार प्रणाम करता हूँ।"

(२)

केयाफूल

फुल चाइ-चाइ केयाफुल ! —
सहसा पथेर परे
आमार ए भाङा घरे
कण्ठ कार ध्वनिल आकुल।

तखनो श्रावण-सन्ध्या
निःशेष हयनि बन्ध्या
थेके-थेके झरितेछे जल;

पवन उठिछे जेगे,
बिजली झलिछे बेगे—
मेघे-मेघे बाजिछे मादल।

जनहीन क्षुब्ध पथ
जागिछे दुःस्वप्नवत् —
बुके चापि' आर्त्त अन्धकार;

'कोनमते काजसारि'

ये यार फिरेछे बाड़ी,

घरे-घरे बन्ध यत द्वार ।

सङ्गीहीन शून्य घरे

हिया घुमरिया मरे

स्मरि यत जीवनेर भुल;

अकस्मात तारि माझे

ध्वनि कार काने बाजे

चाइ फुल—चाइ केयाफुल !

पागल ! आजि ए राते

ए दुर्योग अभिघाते—

वृष्टिपाते विलुप्त मेदिनी

तार माझे केबा आछे,

केतकी सौरभ याचे !

कोथाय बा हबे विकिकिनि ?

पवन उठिछे माति !

किछु क्षण कान पाति'

मने हेल गियाछे बालाइ;

सहसा आमारि द्वारे,

डाक एल एकबारे—

फुल चाइ—केयाफुल चाइ !

भाबिलाम मने मने—

हयत बा ए जीवने

कोनो दिन किनेछिनु फूल;

सेइ कथा मने करे

आजो बा आशाय घोरे;

किम्बा कारे करियाछे भूल !

ताड़ाताड़ि आलो तुलि'
बाहिरिनु द्वार खुलि,
सविस्मये देखिलाम चेये--
माथाय बृहत् डाला
दाँड़ाये पसारी-बाला
श्रावण झरिछे अङ्ग बेये !
कहिलाम, ए कि काण्ड !
तोमार पसरभाण्ड
आज राते कि किनिबे आर ?
ए प्रलये कारो काछे
किछु कि प्रत्याशा आछे—
केन मिछ बहिछे ए भार !
आर्द्र देहे।आर्द्रबासे
से कहिल मृदु हासे,
शिरे वायु सुगन्ध छड़ाय—
ये फुल बेसाति करि,
बादल ये शिरे धरि,—
कपाले लिखिल बिधि ताइ !
बहिया दुःखेर ऋण
ये कष्ट काटाइ दिन
ए दुर्दिन किबा तार काछे ?
ओ गो तुमि नेबे किछु ?
नयन हइल नीचु--
सेथा ओ बा मेघ नामियाछे ।
खोला दरजार पाशे
वायु गरजिया आसे

फुलबासे भरि देहमन;
झर-झर झरे जल,
आँखि करे छलछल
छनाइया प्राणेर श्रावण
बादलेर विह्वलता—
बुझि हाय ! लागिल ता'
नयने बचने सर्व्व देहे;
सहसा चाहिया आड़
रमणी फिराल धाड़
उर्द्धे येन कि देखिबे चेये !
ना कहिया कोन वाणी
पसरा लइनु टानि'—
मूल्य तार हाते दिनु यबे,
उजाड़ करिते डाला
काँदिया फेलिल बाला—
ओ मा ए कि-एत केन हबे ?
कहिनु—या' किनिलाम,
ए नहे ताहारि दाम—
प्रतिदिन दिते हबे मोरे;
एक पण दुइ पण
येदिन येमन मन,
ताहारि आगाम दिन तोरे !
कतक बुझे' ना-बुझे'
हृदयेर भाषा खूँजे'
बहुकष्टे जानाइया ताइ,
पुष्प गन्धे मोरे घिरे'

अन्धकारे धीरे-धीरे

पसारिनी लइल बिदाय।

फिरिनु एकला-घरे—

बादल तखनो झरे,

पुष्पगन्धे पूर्ण गृहतल;

शय्या लइलाम पाति,

निबाये दिलाम बाति —

आबार आसिल बेगे जल !

रुद्ध जानलार फाँके

बातास काहारे डाके

बिजली चमकि' कारे चाय !

कोन अन्ध अनुरागे

त्रियामा यामिनी जागे

श्रावण-व्याकुल-व्यर्थताय !

सङ्गीहीन शून्य घरे

हिया गुमरिया मरे—

स्मरिया ए जीवनेर भुल;

सेइ साथे थेके-थेके

मने हल-गेल डेके

काननेर यत केयाफुल !

"फूल चाहिए, केयाफूल चाहिए" सहसा पथ के उस पार से मेरे इस भग्न-गृह में किसकी बिकल स्वर-लहरी ध्वनित हो उठी ? उस समय भी श्रावण की सन्ध्या एकदम बाँझ नहीं थी, रह-रहकर बूँदें झरने लगती थीं। पवन जाग्रत हो उठता है। दामिनी त्वरित गति से चमकने लगती है। मेघों में मृदंग की जैसी ध्वनि हो रही है। जन-हीन क्षुब्ध पथ हृदय में अन्धकार-रूपी दुःख को रखता हुआ जाग उठा। मानो तुरा

स्वप्न देखा हो। कहने का तात्पर्य्य यह है कि पानी के पड़ने से शान्त, निर्जन पथ शब्दमय हो गया, क्षुब्ध हो गया—जैसे कोई व्यक्ति बुरा स्वप्न देखने के बाद हो जाता है। किसो तरह कार्य्य को सम्पन्न कर सब अपने-अपने घर फिर गए। घर-घर के सभी द्वार बन्द थे। उस जनहीन, शून्य गृह में मेरा हृदय जीवन की ग़लतियों का स्मरण कर तड़प-तड़प कर मरता है।

सहसा उसीके बीच में यह किसकी ध्वनि बज उठी—फूल चाहिए—केयाफूल चाहिए। पगली! आज इस दुर्योगपूर्ण रात में जब कि वृष्टिपात से पृथिवी विलुप्त हो गयी है, ऐसा कौन है जो इस फूल के सौरभ का गाहक हो? और कोई गाहक हो भी तो ख़रीद-बिक्री कहाँ होगी? हवा मतवाली हो उठती है। कुछ क्षणों तक कान लगाकर सुनता रहा, फिर सोचा कि एक बला टली। उसी समय एकाएक मेरे द्वार पर एक पुकार आई—"फूल चाहिए? केयाफूल चाहिए?" मैंने अपने मन में सोचा कि शायद मैंने इस जीवन में किसी दिन इससे फूल ख़रीदा था। उसी दिन की बात याद करके आज भी मेरे फूल खरीदने की आशा से वह चक्कर लगा रही है।

उसी समय मैं जल्दी से दीपक लिये हुए बाहर द्वार खोलकर आया और विस्मय-विस्फारित नेत्र से देखा कि माथे पर एक बृहत् डाली रक्खे पंसारी बाला खड़ी है। श्रावण का पानी उसके अंगों को भिगो रहा था।

मैं बोला कि यह क्या? यह कैसी बात है? तुम्हारी डाली से इस समय कौन खरीदेगा? इस प्रलय में भी किसीसे कुछ आशा है? फिर व्यर्थ ही यह बोझा क्यों ढोती फिरती हो? वह भीगे शरीर और भीगे वस्त्र वाली सिर पर के फूलों से सुगन्ध बिखराती हुई मृदु हास्य के साथ बोली—'इन फूलों को शिर पर रखकर इस पानी में

बेंचती हूँ। ब्रह्मा ने हमारे भाग्य में यही लिखा है। दुःख के भार को वहन करती हुई जिस कष्ट से ये दिन यापन करती हूँ, उसके सामने यह दुर्दिन क्या ? वह फिर बोली—क्या तुम कुछ खरीदोगे ? उसकी आँखें झुक गईं। आँखों में मेघ उमड़ आए।

खुले द्वार के पास से हवा सनसनाती हुई घुस पड़ती है। फूल की सुगन्ध से समस्त तन-मन सुवासित हो जाता है। इस प्राण के श्रावण को घनीभूत करती हुई बूँदें झर-झर झरने लगती हैं। आँखें भर आती हैं। हाय ! बादल की विह्वलता नयन, बचन, देह सब जगह लग गई। उसने बग़ल में देखती हुई ऊपर की तरफ गर्दन को फिराया, मानो कुछ ऊपर देखेगी। बिना कुछ बोले ही मैंने उसका हाथ खींच लिया। और मैंने उसका मूल्य जैसे ही उसके हाथों में रखा, वैसे ही उसने डाली को उलट दिया और रोकर झेंपती हुई बोली—यह क्या ? इतना कैसे होगा ? मैं बोला—मैंने इसे खरीदा है। यह इसी का दाम है। तुमको प्रतिदिन फूल देना होगा। जिस दिन जैसा होगा, उस दिन उतना ही अग्रिम दूँगा—एक रुपया, या दो रुपया।

वह हमारी बात कुछ समझ रही थी और कुछ नहीं भी। मैंने बड़े कष्ट से उसको समझाया। मुझको पुष्प-गंध से घेरकर उस निविड़ अन्धकार में उस पंसारिनी ने धीरे-धीरे मुझसे बिदा ली। मैं अकेला ही घर आया। बादल उस समय भी बरस रहे थे। पुष्प-गन्ध से मेरा घर परिपूर्ण था। मैं दीपक को बुझाकर शय्या पर जा रहा था। फिर इस बार पूर्ण वेग से पानी बरसने लगा। बन्द वातायन की फाँकों से हवा किसको पुकार रही है ? बिजली चमक कर किसको खोज रही है ? कौन अन्ध अनुराग में श्रावण की रात के तीसरे पहर तक जाग रहा था ? सङ्गीहीन, शून्य घर में जीवन की इस भूल का स्मरण कर मन तड़प-तड़पकर मर रहा है। उसी समय रह-रहकर मालूम होता था कि जितने केयाफूल थे वे सब मानो मुझे पुकार रहे हैं।"

(३)

दु:खे गाँथा एइ जीवनेर माला, तबु एरे भालो लागे—
कालो आकाशेर बुकेर आँधार रञ्जित ऊषारागे !
गन्ध बिलाये झरे पड़े फूल संध्यार किनाराय
निशि ना पोहाते मरे' याय हावा दखिनेर जानालाय
जननीर कोले शिशु हासे शुने' घुमपाड़ानिया गान,
सकाले से घुम भाँगेनाक, शुधु केंदे जागे मा'र प्राण—
एइत जीवन, तबु एरे हाय, भालो लागे भालो लागे,
कोन् से कामना राँगा हये फुटे बक्षेर गुल-बागे !
वर्षार जल नामिया गियाछे, जागिया उठेछे चर,
काँचा रोदखानि बालुकार बुके चिक्कण भास्वर;
नूतन-गजानो बाबलार बने बासा बाँधितेछे पाखी,
चखाचखीदेर चरणचिह्न तले केबा दिल आँकि' !
बुनो झापदेर बुकेर झुरिते झुरे' मरे खोला हावा—
किधन खुँजिते घुरे मरे येन दिवसे निशिते पावा !
दूरे-दूरे माठ भरिया उठेछे श्यामल शस्य भारे,
कृषाणेर वधू थाला लये हाते हेसे उठे हेरि का'रे !
कोन् अजानार अचेना चरणे जानाते मिनति तार
जेलेर युवती जालेर सङ्गे बुनितेछे गीतिहार !
आज ए प्रभाते जागियाछे प्राण, जीवन आमार धन्य—
बुझियाछि आज जीवनेर काज नहे से निजेर जन्य !
कालो आकाशेर बुकेर आँधार दिवालोके लभे दीप्ति,
यदि से बक्षे भरि' उठे प्रेम—सबार सेवार तृप्ति;
घर करि' पर-पर करि' घर हाराये आपन लक्ष्य
आकाश पेयेछे उदार चक्षु सागर अपार वक्ष;
तारि पाने चेये आजि ए पराण लभिल कि आजि मुक्ति;

पाँचजने डेके पँचमे आजि काँदे ए पाँच जन्य—
सब ये आमार, आमि ये सबार—धन्य जीवन धन्य।

"इस जीवन की माला दुःख से ग्रथित है, तो भी यही अच्छा लगता है— ऊषा के राग से रंजित काले आकाश के हृदय के अन्धकार में। फूल गन्ध खोकर सन्ध्या के किनारे झड़जाते हैं। रात बीतते न बीतते वातायन में दक्षिणी हवा विलीन हो जाती है। सुलानेवाले गान को सुन-सुन बच्चा मा की गोद में हँसता है; सबेरे उसकी नींद टूटती नहीं, केवल मा का प्राण रोकर जाग उठता है। यही तो जीवन है। तब भी हाय यही अच्छा लगता है। हृदय के उद्यान में वह कौन-सी कामना रँगी हुई खिला करती है? वर्षा का जल घट गया है। पुलिन निकल आये। चिकने, चमकते बालू के ऊपर कच्ची धूप पड़ रही है। नये खिलते हुए बबूल के बन में पक्षी घोंसला बना रहे हैं। झाऊ के हृदय में झर-झर करती हुई खुली हवा विलीन हो जाती है--जैसे रात में पाये किसी धन को दिन में खोजती फिरती है।

मैदान दूर-दूर तक श्यामल शस्य के भार से भर उठा है। किसानों की स्त्रियाँ हाथ में थाल ले किसीको देख हँस उठती हैं। किस अज्ञात के अपरिचित चरणों में अपना आग्रह जनाने के लिये मछुए की युवती जाल के साथ गीतों का हार बुन रही है। आज इस प्रभात में प्राण जाग उठे, मेरा जीवन धन्य हो गया। आज समझा कि जीवन की आवश्यकता अपने लिये नहीं है! काले आकाश के हृदय का अन्धकार दिन के आलोक में दीप्ति पाता है। यदि उस बक्ष में प्रेम भर उठता, सभी की सेवा की तृप्ति हो जाती। घर को पराया और पराये को घर बनाकर अपना लक्ष्य खो देने पर आकाश ने उदार दृष्टि पाई है और समुद्र ने अपार बक्ष पाया है। उन्हीं की ओर देखकर क्या प्राण ने आज मुक्ति पाई है? पाँच आदमी को पञ्चम स्वर में पुकारकर आज यह

पाञ्चजन्य काँप उठता है। सभी मेरे हैं, मैं सभी का हूँ—जीवन है, धन्य।"

(४)

अन्ध वधू

पायेर तलाय नरम ठेकूल कि।
आस्ते एकटु चल्ना ठाकुर-झि---
ओमा, ए ये झरा-बकुल ! नय ?
ताइत' बलि, बसे' दोरेर पाशे,
रात्तिरे काल---मधुमदिर बासे
आकाश-पाताल---कतइ मने हय !
ज्येष्ठ आसते क' दिन देरी भाइ—
आमेर गाये बरण देखा याय ?
अनेक देरी ? केमन करे' हबे !
कोकिल-डाका शुनेछि सेइ कबे,
दखिण हाओया---बन्ध कबे भाइ;
दीघिर घाटे नतुन सिँड़ि जागे—
शेओला-पिछल---एमनि शङ्का लागे,
पा पिछलिये तलिये यदि याइ !
मन्द नेहात् हय ना किन्तु ताय—
अन्ध चोखेर द्वन्द्व घुचे याय !
दुःख नाइक सत्यि कथा शोन् ,
अन्ध गेले कि आर हबे, कोन् ?
बाँचबि तोरा—दादा त तीर आगे;
एइ आषाढ़ेइ आबार बिये हबे,
बाड़ी आसार पथ खुँजे ना पाबे—
देखबि तखन प्रबास केमन लागे !

धन्य

कि बलिल भाइ, काँदबे सन्ध्या-सकाल ?
हा अदृष्ट, हायरे आमार कपाल !
कत लोकेइ याय त' परबासे—
काल-बोशेखे के ना बाड़ी आसे ?
चैतालि काज, कबे ये सेइ शेष ।
पाड़ार मानुष फिरल सबाइ घर,
तोमार भायेर सबइ स्वतन्तर—
फिरे आसार नाइ कोन उद्देश !
ये हेथाय बरेर काँटा आछे—
फिरे आसते हबे त' तार काछे !
एइ खावेने एकटु धरिस् भाइ
पिछल भारि—फस्के यदि याइ—
ए अक्षमार रक्षा कि आर आछे !
आसुन् फिरे—अनेक दिनेर आशा,
थाकुन घरे, ना थाक् भालबासा—
तबु दुदिन अभागिनीर काछे !
जन्मशोधरे विदाय निये फिरे'
से दिन तखन आसब दीघिर तीरे ।
'चोख गेल' ऐ चेंचिये हल सारा !
आच्छा दिदि, कि करबे भाइ तारा—
जन्म लागि' गियेछे यार चोख !
काँदार सुख ये बारण ताहार, छाइ !
काँदते पेले बाँचत से ये भाइ,
कतक तबु व मृत ये तार शोक !
'चोख गेल'—तार भरसा तबु आछे,
चक्षुहीनार कि कथा तार काछे !

टानिस् केन ? किसेर ताड़ाताड़ि--
सेइ त फिरे' याब आबार बाड़ी,
एक्ला-थाका सेइ त गृह कोण—
तार चेये एइ स्निग्ध-शीतल जले
दुटो येन प्राणेर कथा बले
दरद-भरा दुखेर आलापन;
परश ताहार मायेर स्नेहेर मत
भुलाय खानिक मनेर व्यथा यत
एबार एले, हातटि दिये गाये,
अन्ध आँखि बुलिये खानिक पाये
बन्द चोखेर अश्रु रुधि'पाताय,
जन्म-दुखीर दीर्घ आयु दिये
चिरबिदाय भिक्षा याब निये,
सकल बालाइ बहि आपन माथाय !—
देखिस् तखन, कारार जन्य आर
कष्ट किछु हय ना येन ताँर ।
तार परे एइ शेओला-दीघिर धार
सङ्गे आसते बलब नाक आर;
शेषेर पथे कि सेर बल भय
एइ खाने एइ बेतेर बनेर धारे
डाहुक-डाका सन्ध्या-अन्धकारे
सबार सङ्गे-साङ्ग परिचय !
शेओला-दीघिर शीतल अतल नीरे
मायेर कोलटि पाइ येन भाइ फिरे' !

"अंधी बहू अपनी ननद के साथ नहाने जा रही थी। बहू ने कहा—पैर के नीचे कौन-सी मुलायम चीज़ पड़ी ? ऐ ननद ! जरा धीरे चलो

न !—अच्छा ! पैर के नीचे मौलसिरी के फूल झरे पड़े हैं न ? इसीसे न रात के समय जब दरवाज़े पर मैं बैठती हूँ तब सुगंध से मत्त पवन के बहने के समय आकाश-पाताल को कितनी ही बातें मुझे सूझती हैं !

जेठ के आने में कितनी देर है, भई ! अच्छा, क्या आमों में लाली आई ? नहीं तो ? अभी बहुत देरी है। सो कैसे ! कोयल की कूक सुने कितने दिन बीते ! फिर इतनी देरी कैसे ? हवा को बंद हुए कितने दिन हुए बसंती !

पोखर सूख चला न ! नई सीढ़ियाँ निकल आईं। पैर भी फिसलते हैं। आशंका होती है कि कहीं फिसल कर जल ही में न डूब जाऊँ ! यदि ऐसा ही हो तो बुरा क्या ? अंधी आँखों की लड़ाई ख़तम हो न ! सच कहती हूँ, अंधी के मर जाने से हो क्या क्षति ? बहन, तुम तो रहोगी ही। तुम लोगों के आगे भैय्या तुम्हारे रहेंगे ही। यदि आगामी आषाढ़ में ही फिर ब्याह करेंगे और ससुराल से घर आने का नाम न लेंगे, घर की राह न जानेंगे, तब न समझोगी कि भैय्या को विदेश कितना भाता है ? (अर्थात् नई बहू के आने पर भैय्या तुम्हारे विदेश में उतने दिन न बितायेंगे जितने आजकल बिताते हैं।) मैं अंधी तो हूँ। क्या कहा तुमने ? रात-दिन रोवोगी तुम ? हाय रे भाग्य ! बहन, कितने ही लोग तो विदेश जाते हैं। गर्मी के दिनों में कौन नहीं लौट आता ? गाँव के तो सभी लोग लौट आए। तुम्हारे भैय्या के सभी काम विचित्र होते हैं। और वे लौटेंगे ही किस उद्देश्य से ? मैं तो अंधी ही ठहरी !—अरी ओः। काँटा जो है यहाँ पर—! हाँ तो यदि नई बहू आ जाय तब तो तुम्हारे भैय्या को उसके पास लौटना पड़ेगा ही। ज़रा-सा पकड़ो तो, ननद ! पाँव फिसलने लगे—यदि गिर पड़ूँ तो फिर कौन रक्षा करता है ! यद्यपि मेरी आशा यह है कि वे घर आयें और दो दिन इस अभागिनी के निकट

रहें—वे मुझे प्यार करें या न करें ! उनके आने के बाद एक दिन
जीवन की शेष बिदाई लेकर इस तालाब के किनारे पहुँचूँगी। ओः
सुनो न! "आँख गई"—नामक चिड़िया तो चिल्लाते-चिल्लाते मर
ही चुकी। अच्छा, बहन, जिसकी आँखें सदा के लिये खो गईं, वह
क्या करे! वह रो भी तो नहीं सकती! रोने पर कुछ तो आराम
मिलता: कुछ तो शोक कम होता! जिसकी आँखें बंद हो आने पर हैं,
उसे तो कुछ भरोसा भी है, लेकिन जो अंधी हो चुकी, उसकी क्या बात!
"अरे! यों खींच क्यों रही हो, इतनी शीघ्रता किसलिये? घर ही
तो फिर जाऊँगी। जाकर बैठी रहूँगी—एक कोने में, चुपचाप, अकेली।
उससे तो कहीं अच्छा यह है कि कुछ देर तक तालाब के शीतल
जल में स्नान करते-करते दिल की दो-चार बातें—दुःख की बातें करूँ।
जल का स्पर्श माँ के स्पर्श की तरह ही है—मन को भुलाने वाला,
कुछ देर के लिये मन के सभी दुःखों को हरनेवाला।

अबकी बार जब वे स्वामी आयेंगे तो एक बार उनके शरीर को
स्पर्श कर, उनके चरणों पर अंधी आँखों को क्षण भर के लिये रखकर,
बँधी आँखों के आँसू को पलक पर ही रोककर, अपने अभागे जीवन की
आयु उन्हें देकर, मैं सदा के लिये, सब विपदाओं को अपने सर पर
लेती हुई—उनसे दूर, बिदा होकर, चली जाऊँगी। उसके बाद
उन्हें ज़रा सावधानी से देखना; कहीं इस अंधी के लिये उनके मन में
कष्ट न हो। उसके बाद—उसके बाद एक दिन, साँझ के समय,
चिड़ियाँ गाती रहेंगी, चारोंओर, अँधेरा रहेगा, सभों के साथ अन्तिम
परिचय के बाद इसी तालाब में डूबकर—मैं मर मिटूँगी और
बहन, आशीर्वाद करो कि इसके शीतल जल में अपनी माँ की गोद
का-सा सुख मुझे मिले।"

कामिनी राय

श्रीमती कामिनी राय का जन्म बाकरगञ्ज ज़िले के बासन्ती नामक ग्राम में १८७८ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम श्री चण्डीचरण सेन था। ये एक प्रसिद्ध ग्रंथकार थे। श्रीमती कामिनी राय का पाठारंभ चार वर्ष की अवस्था ही से हुआ। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद क्रमशः इन्होंने बेथून कालेज से एफ़० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ पास कीं। इसके कुछ दिन बाद ही ये बेथून कालेज में शिक्षयित्री नियुक्त हुईं। १८९४ में सिविलियन श्री केदारनाथ बनर्जी के साथ इनका विवाह हुआ।

इनके जीवन की सबसे करुण घटना हुई इनके पुत्र अशोक की मृत्यु। इस शोक से ये मर्म्माहत हो गई थीं। इसी शोक से प्रेरित होकर इन्होंने "अशोक संगीत" नामक काव्य-पुस्तक लिखी। यह पुस्तक अपने ढंग की अकेली है।

इनकी रचनाओं के नाम ये हैं:—

१—आलो ओ छाया—१८८९
२—निर्म्माल्य —१८९०
३—पौराणिकी—१९०४
४—गुञ्जन—१९०४
५—अशोक संगीत—१९१४

इनकी कविताओं के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

वर्षांत में

मने करे छिनु प्रिय, अमर आत्मार प्रीति
अक्षय माधुर्य्ये भरपूर,
मृत्यु-परिवर्तनशील जड़ जगतेर रीति
तारा हते रहे बहुदूर।

पृथिवीर शत कवि लक्ष लक्ष कवितायं
ये प्रेमेर गुण गाय कत,
से प्रेम शुकाये याय, नाहि जानिताम हाय
बसन्तेर फुलटिर मत ।
वर्ष शेषे बड़ दुःखे लभियाछि एइ ज्ञान
घुचियाछे अथवा गरब,
ताइ,अवनत-मुखे मुछे फेले अभिमान,
बसे आछि पदतले तव ।
आज यतटुकु पार ततटुकु दिओ स्नेह
ततटुकु आदर सुहाग,
कोन दिन दिया छिले सब धन मन देह,
समस्त प्राणेर अनुराग ।

"सोचा तो यह था कि अमर आत्मा का प्रेम अक्षय माधुर्य्य से भरा है। मरनेवाली और बदलनेवाली यह बाहरी दुनिया उसे छू नहीं सकती। दुनिया के लाखों कवियों ने अपनी कविताओं में जिस प्रेम का गुण-गान किया है, मुझे क्या मालूम था कि वह बसन्त के फूल के समान शीघ्र सूख जाता है। मेरा अभिमान अब दूर हो गया। वर्ष के अन्त में मुझे इससे नया ज्ञान मिला है। सिर झुकाकर मैं इसी लिये तुम्हारे पैरों-तले बैठी हूँ। आज जितना प्रेम दे सको, मुझे दे दो। एक वह दिन था, जब कि तुमने मुझे अपना सारा तन, मन, धन और अपने समस्त हृदय का अनुराग दे डाला था।"

(२)

चन्द्रापीड़ का जागरण

अंधकार मरणेर छाय
कतकाल प्रणयी घुमाय ?
चन्द्रापीड़ जाग एइ बार ।

बसन्तेर बला चले याय,
विहगेरा सान्ध्य गीत गाय,
प्रिया तव मुछे अश्रुधार ।

मास, वर्ष ह'ल अवसान
आशा-बाँधा भगन पराण
नयनेर करेछे शासन,

कोन दिन फेलि अश्रुजल,
करिबे ना प्रिय-अमङ्गल—
एइ तार आछिल ये पण ।

आजि फुल मलयज दिया,
शुभ्रदेहा, शुभ्रतर हिया,
पुजियाछे प्रणयेर देवे;

नवीभूत आशाराशि तार,
अश्रु माना शोनेनाको आर—
चन्द्रापीड़, मेल आँखि एबे !

चन्द्रापीड़, घुमाओना आर—
काणे प्राणे के कहिल तार,
आँखि मेलि चन्द्रापीड़ चाय ।

मृत्यु-मोह अइ भेङ्गे याय,
स्वप्न तार चेतने मिशाय,
चारि नेत्रे शुभ दरशन;

एक दृष्टे कादम्बरी चाय
निमेष फेलिते भय पाय—
"एतो स्वप्न—नहे जागरण ।"

नयन फिराते भय पाय
ए स्वपन पाछे भेङ्गे याय,
प्राण येन उठे उथलिया,
आँखि दुटि मुख चेये थाक्,
जीवन स्वपन हये याक्
अतीतेर वेदना भुलिया ।
"आधेक स्वपने, प्रिये,
काटिया गियाछे निशि,
मधुर आधेक आर
जागरणे आछे निशि;
आँधारे मुदिनु आँखि
आलोके मेलिनु ताय,
मरणेर अवसाने
जीवन जनम पाय ।"
जीवन !—जीवन, प्रिय, ?
नहे स्वपनेर मोहे ?
मरणेर कोन तीरे
अवतीर्ण आजि दोँहे ?

"हे चन्द्रापीड़ ! एक बार तो उठो । घनघोर अंधकार फैला हुआ है । अब और कितनी देर सोओगे ? चिड़ियाँ सन्ध्या-काल के गीत गा रही है । तुम्हारी प्रिया की आँखों से आँसू गिर रहे हैं । महीना और वर्ष बीत गया । प्राणों ने प्रतिज्ञा रख ली । तुम्हारे अमंगल के डर से अबतक आँखों को रोने से रोका । आज मलय-फूल के द्वारा सुन्दर देह और हृदय से प्रिया ने प्रियतम की अर्चना की । उसकी आशा में नई तरङ्गें आई हैं । अब उसे आँसू रोकना कठिन हो रहा है । अब मत सोओ । किसीने उसके कानों में यह कहा । उसने आँखें खोलीं ।

मृत्यु का मोह टूट गया। स्वप्न से चैतन्य की अवस्था हुई। उसने एक दृष्टि से कादम्बरी की ओर देखा। उसे भय हुआ कि यह स्वप्न है, जागरण नहीं।

उसे नेत्र हटाने में डर हुआ। अतीत के सारे कष्टों को भूलकर यह जीवन इसी तरह का स्वप्न हो जाय, आँखें मुँह पर गड़ी रहें। चन्द्रापीड़ ने कहा—हे प्रिये, आधी रात तो स्वप्न में बीती। अब आधी रात मीठी जागृति में मिली है। अंधेरे में सोया। अब प्रकाश में जागता हूँ। मृत्यु के अंत में अब जीवन और जन्म प्राप्त हुए। जीवन! प्यारा जीवन! स्नेह स्वप्न का मोह? आह! आज मृत्यु के किस तट पर इसकी अवतारणा हुई है।"

(२)

अशोक-संगीत

(१)

हे अनादि, हे अनन्त, हाराये संतान
विश्व हेरि मातृहीन। शिशु बुके धरि,
जननी कि स्वप्नावेशे निजे देय भरि
मातृस्नेहे महाविश्व? स्नेहसिक्त प्राण,
एकटि प्रदीप येन, एकटि से गान,
आपनि कि नय व्यक्त आलोकित करि
या थाके आँधारे लुप्त? ब्रह्माण्ड आवरि
ए कि चिताधूम तबे देखाय श्मशान?
निष्ठुर सौन्दर्य्य आज मुखे प्रकृतिर,
ममता-विहीन हास, उपहास तार,
द्विगुण व्यथाय भरे व्यथित हृदय,
शोकार्त्त धूलाय यबे ढाले अश्रु नीर
कोथाय बहिछे धारा समवेदनार,
ओहे विश्वरूप देव, ओहे सर्व्वमय?

"हे अनादि, हे अनन्त, पुत्र को खोकर आज मैं समूचे विश्व को मातृहीन समझ रही हूँ। शिशु को कलेजे पर रखकर, माँ होकर ही, नारी स्वप्न-सुख में निमग्न होकर समूचे संसार को मातृत्व-सुधा से भर देती है क्या? माँ का स्नेहमय हृदय तो दीप की नाईं, गीत की नाईं, अँधेरे को उज्वल कर स्वयं प्रकट है। फिर ब्रह्माण्ड भर में यह कैसा चिता-धूम दीख रहा है? वह मातृत्व के आलोक से नष्ट क्यों नहीं हो जाता? आज प्रकृति के चेहरे पर निष्ठुर सुन्दरता विराज रही है। प्रकृति की हँसी में आज ममता नहीं है। प्रकृति का उपहास मेरी व्यथा को दूनी कर रहा है। जब मेरे दुःख के आह से भरे आँसू धूलि में ढुलक पड़ते हैं, तो हे विश्वदेव सहानुभूति की धारा कहाँ बहती है?"

(२)

हेथा आमि काँदि बोले, सेथा तार प्राण
मोर तरे काँदे येन ठिक एइ मत,
ता नहे वासना मम। से येन सतत
थाके सुखे, लभे शक्ति, लभे नव ज्ञान;
सेथा तारे येन केह आमार समान
बासे भाल,—एक नहे, येन माता-शत
शतेक दक्षिण हस्त प्रसारि, अक्षत
राखे तारे, ताड़ाइया सर्व्व अकल्याण।
आमि एइ टुकु चाइ, से नूतन देशे
नूतन आनन्द ज्ञाने, दृढ़ समुज्ज्वल
तार सेइ चित्ते शुधु थाके मोर स्थान,
माझे माझे स्वप्ने मोरे देखा देय एसे,
तार बले हृदि मोर दिया याय बल,
'मा' बोले डाकिया याय जुड़ाइया कान।

"यहाँ मैं रो रही हूँ और वहाँ मेरे लिये ठीक ऐसे ही वह रोवे, मैं यह नहीं चाहती। मैं तो यह चाहती हूँ कि वह सदा सुखी रहे और शक्ति तथा ज्ञान लाभ करे। वहाँ भी मेरी ही तरह कोई उसे प्यार करे। सैकड़ों मातायें उसे मेरी तरह प्यार करें। अपने हाथ पसारकर उसे असंगल से बचायें। उस नये देश और नयी समृद्धि में भी उसके हृदय में मेरे लिये थोड़ा-सा स्थान रहे। वह स्वप्न में कभी-कभी मेरे यहाँ आ जाया करे और माँ कहकर मेरे कानों को तृप्त कर दे। बस, यही मेरी कामना है।"

(३)

तोमार देहेर साथे होलो भस्मीभूत
आमार अगण्य आशा। भेवेछिनु मने
आमार श्मसाने आसि तुमि सयतने
बिछाइबे पुष्पराशि; ओ रे प्रिय सुत,
भेबेछिनु अश्रु तप, भक्ति-रस-पूत,
अमर करिबे मोरे; तोमार जीवने
फुटिब सौरभे नव, मानव-श्रवणे
बाजिब नूतन सुरे, नव अर्थ युत।

आमार हृदय क्षेत्रे सुप्त बीज चय
तोमार हृदये उप्त, हबे अंकुरित,
आमाते रयेछे याहा ना थाकारि सम,
तोमाते उज्ज्वल हये वाड़ाये बिस्मय
सकलेर,—बिजलि से हइछे स्फुरित
यथा अनुकूल पात्र। हाय स्वप्न मम!

"हे पुत्र, तुम्हारे साथ ही मेरी अगणित आशाएँ राख में मिल गईं। मन में था कि तुम आकर मेरी चिता पर फूल रखोगे। संसार में मेरा नाम अमर करोगे, नये अर्थ और सुर के साथ मनुष्यों के कानों

में कविता की धारा बहाओगे। मेरे हृदय का बीज तुममें अंकुरित होगा। मुझमें जिस वस्तु का केवल अस्तित्वमात्र है वह तुम से उज्ज्वल होकर संसार को चकित कर देगी। अनुकूल तत्वों से जिस तरह बिजली उत्पन्न होती है, उसी तरह तुम में वह कवित्व-शक्ति प्रस्फुटित होगी। किन्तु हाय! अब मेरा वह स्वप्न कहाँ?"

(४)

एत येन बुझि नाइ—लये गेलो यबे
गृहच्छाया होते तोरे उत्तप्त श्मसाने—
आर फिरि बिना तुइ; आर ये ए काने
पशिबे ना स्वर तोर; दिया शेष होबे,
तव पदध्वनि-हीन सायाह्न नीरवे
घिरिबे तिमिरे गृह, सान्ध्य पूजा-गाने
कंठे कंठे मिलाइया नाहि दिबि प्राणे
आनन्द पुलक, थाकि यत दिन भवे।
डेकेछि प्रत्यूषे नित्य, "ओठ् रे अशोक",
प्रति काजे, "अशोक रे—ओ अशोक" ध्वनि
छिल मोर। श्रांत शिर उपाधाने राखि
डेकेछि, "अशोक आय,—कि पड़ार झोंक।
अनेक ये होलो रात!"—दिवस रजनी
केमने काटिबे एबे, तोमारे ना डाकि?

"जब घर से उठाकर लोग तुम्हें श्मसान में ले गये तो मुझे नहीं मालूम हुआ कि तुम्हारी यह विदाई अन्तिम है। मैं नहीं जानती थी कि अब तुम्हारे पैरों की आवाज़ के सुने बिना ही सन्ध्या होगी। पूजा-गान होगा, मेरे कण्ठ-स्वर में तुम्हारा कण्ठ-स्वर नहीं मिलेगा। आह! प्रति-दिन सवेरे उठकर 'अशोक, अशोक' कहकर तुम्हें पुकारती थी। थककर तकिये पर माथा रखकर कहती थी—"आओ बेटा अशोक, आओ!

पढ़ने की कितनी धुन तेरे सिर पर सवार हुई है ? आओ, अब बहुत रात हो गई।" हाय ! अब बिना तुम्हें पुकारे दिन-रात कैसे कटेगी ?"

(५)

आय रे प्रभाते निते मार आशीर्वाद,
प्राणाधिक, आज ये रे जन्मदिन तोर;
षोडश कलाय पूर्ण, सौन्दर्य कैशोर,
दाँड़ा आज पुत्र, मित्र। निशार बिषाद
मिशे याक् उषालोके। ये मातृत्व स्वाद
तुइ दिलि ए जोवने' सेइ रसे भोर
आमि भुलियाछि शोक। आय तुइ मोर
चिर जीवनेर पुत्र, अनन्त आह्लाद ।

"दिये केड़े निले" बले' करिनि कलह
विधातार सने आर। छिले ये क' दिन
सेइ क' दिनेर भाग्य तुलना-विहीन।
तुमि छिले, तुमि आछ, आमि अहरह
तोमारे पाइब पुत्र। सन्तान विरह
बड़इ कठिन व्यथा, बड़ से कठिन।

"पुत्र आज तुम्हारा जन्म-दिन है। आज माँ के आशीर्वाद के लिये आओ। अपनी सारी सुन्दरता और किशोर अवस्था के लिये माँ के सम्मुख आओ। इस प्रातःकाल में रात्रि के शोक का नाश हो। तुमने मुझे मातृत्व का जो आनन्द दिया है, मैं उसमें सारा दुःख भूल गई। तुमने देकर छीन लिया। यह कहकर मैं विधाता के साथ कलह नहीं करूँगी। तुम तब भी थे, अब भी हो, तुम चिरन्तन हो। फिर भी तुम आकर मेरे पुत्र की तरह जन्म लोगे।"

(६)

अतिथि से एसेछिलो, बेला द्विप्रहर,
स्नात देहे गेहे मोर करिल प्रवेश,
सुधा ते छिल ना मने कोथा तार देश;
कोन काजे एसेछिलो, क दिनेर तरे ।
आँखि तार चेये छिल एकांत निर्भरे
करि मोर स्नेह-भिक्षा, भुलि सर्ब्ब क्लेश
उठिया आसन दिनु, यतने अशेष
योगाइनु पानाहार या आछिल घरे ।
बाहिरेर रौद्र येन ज्योत्स्नारूप धरि
पशिल ताहारि साथे पातार कुटीरे,
वायु शुभ्र कुसुमेर गन्धे स्नान करि
एलोसे विमल मुख चुमिबारे धीरे ।
सुखावेशे से सुवासे घुमाइनि यबे,
कोथा याबे ना जानाये गेल से नीरबे ।

"ठीक दोपहर के समय नहा-धोकर वह अतिथि मेरे घर पर आया। मैं नहीं जानती थी, उसका घर कहाँ था। किस काम से, कितने दिनों के लिये वह यहाँ आया था। उसकी आँखें सिर्फ़ मेरे एकांत प्रेम की भीख माँग रहीं थीं। मैं ने उठकर उसे आसन दिया। भोजन-पान की तैयारी की। बाहर का रौद्र मानो ज्योत्स्ना की शीतलता लिये मेरी झोंपड़ी में आ गया! शुद्ध हवा और फूल की गंध से नहाकर वह मेरा मुख चूमने के लिए धीरे-धीरे आया; वह कुछ भी पता दिये बिना नीरवता में गया। पर जब मैं सुख के आवेश में सुवास से शिथिल होकर सो गयी, तो वह बिना कुछ कहे-सुने न जानें कहाँ चला गया!"

कालिदास राय

बर्द्वान जिले में करवो नाम का एक सुप्रसिद्ध ग्राम है। प्राचीन युग में इसी ग्राम के बहुतेरे कवियों ने बँगला-साहित्य के भाण्डार को पूरा किया था। यह ग्राम अब भी कवियों और साहित्यिकों की जन्म-भूमि है। इसी ग्राम में कालिदास राय का जन्म जुलाई १८८६ ईसवी में हुआ था।

कालिदास राय वैद्य-कुल के प्रदीप हैं। इनके पिता किसी ज़मींदार के यहाँ काम करते थे। पितामह एक नीलगर-फ़ैक्टरी के दीवान थे। इनके पूर्वज कवि हो गये हैं। इन कवियों में सर्व-प्रसिद्ध वैष्णव कवि लोचन थे। लोचन ने श्रीचैतन्य की आत्म-कथा लिखी है। कालिदास जी स्वयं वैष्णव और श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं।

आप कलकत्ता युनिवर्सिटी के बी० ए० हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित हैं। सुलेखक हैं। बँगला की सभी सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में इनके लेख छपते रहते हैं, कविताओं की तो कोई बात ही नहीं है। कुछ दिन हुये, रवीन्द्रनाथ ने इनकी कविताओं पर यह अभिमत प्रकट किया था:—

"तुम्हारी कविता बङ्गाल की मिट्टी की तरह ही स्निग्ध और श्यामल है। तुम्हारी कविताओं के पढ़ने से बंगाल के किसी शीतल छायामय प्रांगण में माधवी-कुञ्ज की बातें याद आती हैं।"

कालिदास राय बहुत दिनों तक ज़िला २४ परगने के एक स्कूल में हेडमास्टर रहे। बाद को साहित्यिक कार्यों के आधिक्य से इन्होंने नौकरी छोड़ दी और अब स्वतन्त्र रूप से शिक्षा-प्रदान और साहित्यिक कार्य में निरत रहते हैं। आप कलकत्ता युनिवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा के और ढाका युनिवर्सिटी की बी० ए० तथा एम-ए० परीक्षाओं के परीक्षक हैं। आपने ये पुस्तकें लिखी हैं—

१—पर्ण-पुट (दो भागों में)

२—वल्लरी
३—ऋतु-मंगल
४—ब्रज-वेणु
५—लाजाञ्जलि
६—चित्र गीतगोविंद

इनकी कविताओं के कुछ नमूने यहाँ दिए जाते हैं:—

मुग्ध आवाहन

ओ गो महुयाबनेर साकी,
अधर-शुक्ति भरि' आन' सुधा, बकुल पराग माखि'।
गण्ड-पियाला ढले शोणिमाय,
द्राक्षासुराय भरि आनो ताय,
आङुरेर पानि काँखे आन' छानि कनक कलसे ढाकि'
ओ गो महुयाबनेर साकी!
मुरछि चरणे पड़ुक हृदय,
पिये पिये आजि मोहावेशमय,
नेये नेये तव रूप-सरोवरे डुबे याक दुटि आँखि,
ओ गो, महुयाबनेर साकी।
ओ गो स्वपन-देशेर परी,—
एस रञ्जित इन्द्रधनुर मालिका हस्ते धरि'।
तारार कुसुम छड़ाते छड़ाते,
छाया पथ बेये एसगो धराते
सोणार प्रदीपे जोनाकि—फिनकि पड़े याक झरि' झरि,
ओ गो स्वपन-देशेर परी!
प्रजापति-रचा दुइटि चेपनी
ज्योछनार स्रोते छुटे ये आपनि,

से दुटि पाथाय ढाकिया आमाय, संज्ञा लह गो हरि',
ओ गो स्वपन देशेर परी !

"ए महुए के बन के साकी, अपने ओष्ठ रूपी सीप में भरकर बकुल के पराग से मिला हुआ अमृत लाओ। अपने गालों के लाल रंग के प्याले में लाल द्राचारस लाओ। सोने की कलसी में अंगूर का पानी ढककर काखों के नीचे दबाकर ले आओ। उस मदिरा को पीकर बेहोश हृदय तुम्हारे पैरों पर गिर जाय। तुम्हारे सौन्दर्य्य-सरोवर में नहाते ही मेरी दोनों आँखें उसमें डूब जायँ। ए स्वप्न देश की परी, हाथ में इन्द्र-धनुष की माला लेकर फूलों के समान ताराओं को बिखेरती हुई आकाश-पथ से पृथ्वी पर चली आओ। तुम्हारे सोने के दिये से जुगनुओं की चिनगारियाँ झड़-झड़कर गिरें। ब्रह्मा ने दो पतवारें बनाई हैं। वे आप से आप ज्योत्स्ना की धारा में बहती हैं। हे स्वप्न देश की परी, उन्हीं दोनों पंखों में ढककर मुझे चैतन्य-हीन बना दो।"

मरण

आमि तपनेर मत चाहि गो मरण
उजलिया सन्ध्यारागे हासिते हासिते,
होक् ना से स्वल्प केन धरार जीवन,
होक् ना से दिन दिन याइते आसिते।
चाहिना मरण आमि चन्द्रमार मत,
पक्ष धरि' तिले क्षयेर यातना
होक् ना जीवन दीर्घ ह'त पारे यत'
चारि पाशे तारादल करुक अर्च्चना।

"मैं सूर्य के समान सन्ध्या के सुहावने रंग में हँसता हुआ मृत्यु की कामना करता हूँ। मेरा जीवन कितना भी अल्पकालीन क्यों न हो,

इसके विपरीत जीवन-काल बड़ा होने और इर्द-गिर्द में अनुगामियों की भीड़ रहने पर भी मैं चन्द्रमा के समान तिल-तिल घटकर मरना नहीं चाहता। अर्थात् मेरा अन्त शक्ति और तेज से सराबोर होना चाहिये।"

वृन्दाबन में अन्धकार

(१)

नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अंधकार;
चले ना चल मन्दानिल बहिया फुलगंधभार
ज्वले ना गृहे संध्यादीप
फुटे ना वने कुंद-नीप
छुटे ना कल-कंठ सुधा पापियापिक चंदनार
नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अंधकार

(२)

छोंय ना तृण गोठेर धेनु
ब्रजेर बने बाजे ना वेणु
करे ना श्याम राधिका लये शारिका शुक द्वन्द आर
सजल ढल आयत आँखि
पियाल फुल पराग साखि'
लेहन करे हरिणी आजि चरण सुधा स्यन्द कार ?
नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अन्धकार।

(३)

शिखीरा आर मेलिया पाखा
करेना आलो तमाल शाखा,
कमल कलि फुटे ना, अलि लुटे ना मकरन्द आर।
याय ना चुरि नवनी क्षीर
बरषे ताय नयने नीर

करे ना दधि मन्थ गोपी नाचायें चारु चन्द्रहार
नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अन्धकार ।

(४)

सलिल केलि फेनिल जले,
तटिनी आर नाहिक चले,
पाटनी काँदि तरणी बाँधि करेछे खेयाबँध तार ।
नूपुर हार हारानो छले
बधूरा साँजे यमुना जले
करे ना देरी आजि के हेरि हासिटि श्याम चन्द्रमार
नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अंधकार

(५)

बातासे श्वसि बेतसबन
हुताशे मरे हताश मन
रचे ना एस झुलन दोले मिलन प्रेमानन्द हार
गोधूलि धूसर केशे
सखारा शोक विवश वेशे
एसेछे भुले कुसुम तुले, कोथा से धनबन्दनार
नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अंधकार

(६)

गोपांगना चेतना-हीना
मलिनानना दैन्य-क्षीणा
आँखिर जले बाड़ाय शोकबन्या भानुनन्दनार ।
चिरकुमुदि दुलिछे सुदि'
थेमेछे गीत कंठरुधि'
गोकुल मृत-पिण्ड होलो चले ना हृतस्पन्द आर ।
नन्दपुर चन्द्र बिना वृन्दाबन अंधकार ।

"१—कृष्णचन्द्र के द्वारिका चले जाने से आज सारे वृन्दावन में अन्धकार-सा छा गया है। आज वहाँ फूलों की सुगन्ध से लदी हुई मन्द-मन्द शीतल हवा नहीं बहती, घरों में दीपक नहीं जलते, कुन्द की कली नहीं खिली, कोयल नहीं कूकती।

२—गौएँ घास नहीं छूतीं, बन में बंशी नहीं सुनाई पड़ती। श्याम को लेकर शुक-सारिकायें आपस में द्वंद्व नहीं करतीं। छलकती हुई आँखों से हरिणी अब किसका चरण-रस पिये?

३—तमाल वृक्ष में मोर पंख मिलाकर अब प्रकाश नहीं करते। कमल नहीं खिलते। ग्वालिनों का दही नहीं चुराया गया। गोपियाँ थिरक-थिरककर चन्द्र-हार नचाकर दधि-मन्थन नहीं करतीं।

४—फेन से उमड़कर नदी नहीं बहती। नौकायें स्थिर हैं। घर की बहुएँ पैंजनी खो जाने के बहाने संध्या-समय यमुना के किनारे देर नहीं लगातीं।

५—वेत के बन में अब झूला नहीं सजाया जाता।

६—गोपियाँ धूलि-धूसर केश में शोक-विह्वल हो उन्हें खोज रही हैं। उनके सुन्दर कण्ठ से आनन्द-गीत नहीं सुनाई पड़ता। आज सारा गोकुल मानो जीवन-हीन होकर मिट्टी का लोंदा हो गया है।"

बंग-वधू

आजि बँधु तोमादेर शुभ नव बासरेर राति
वत्सर चारिटि परे पुनः ज्वले उत्सवेर बाति
से येन अनेक दिन, यबे दुँहु कैशोर यौवन
मिलिल प्रियार अंगे, गेले तारे तेयागि यखन।
तार पर हते निति द्विखंडित मृणालेर प्राय
अवलम्बि' तन्तुटुकु प्राण-रक्षा आशाय आशाय
माझखाने कत गिरि मरु हृद नदी व्यवधान,
विराट अज्ञेय सिन्धु भरियाछे रहस्ये पराण।

बर्षार दुर्य्योग राते चमकेछे चपलार सने
येन एइ उर्म्मिलार प्राणकान्त गियाछे कानने।
निशिदिन कत नदी सन्तरेछे पियासी अन्तर
निरन्तर पार होलो एका कत विजन प्रान्तर।
उड़िल कल्पना तार बारबार तोमार उद्देशे
अश्रु सिन्धुनीरे पड़ि क्लान्त पत्त निमज्जिल शेषे।
येचेछे कल्याण तवे, देवताय नित्य संध्या प्राते
पूजा पुष्पे दिन गणि' शुभ्र शंख विमंडित हाते।
नित्य गृह-कर्म्म माझे नाना छले उन्मन चंचला
तोमारि बरण डाला साजायेछे तोमारि कमला।
हे प्राज्ञ, हे सहृदय, आजि अज्ञा बङ्ग बालिकाय
हेरिते हइबे श्रान्त कृपानेत्रे स्नेहेर छायाय।
क्षमिते हइबे तार त्रुटिमय प्रिय विनोदन,
भाषाय भूषाय भावे भङ्गिमाय दीन आयोजन।
क्षमो तार लज्जा-कुंठ, सज्जाहीन, दीन उपचार,
मृण्मय भाजने धूप, क्षीण दीप, बन फुलहार।
कुड़ाय लइते हबे भूमि हते, दिते गिये पाय
पुलक प्रकम्पे अर्घ्य कर हते यदि पड़े' याय।

"भाई, आज चार वर्ष के बाद तुम लोगों को पुनः उत्सव करने का अवसर प्राप्त हुआ है। अपनी स्त्री को छोड़े बहुत दिन हुए। उस समय उसने किशोरावस्था से युवावस्था में पैर रखा था। इसके बाद टूटे हुए कमल के नाल की तरह प्राण-रक्षा की आशा में वह जीती रही। बहू की कल्पना रास्ते के जंगल, पहाड़, तराई, नदी, घाटी, मरुस्थल और समुद्र को पारकर पति के समीप पहुँच गई। दुस्सह वियोग में उसके नेत्रों से आँसू की धारा उमड़ पड़ती थी; परन्तु वह दिन-रात देवता से पति की मंगल-कामना करती थी। गृह-कार्य्य में व्यस्त रहने पर भी वह कभी-

कभी किसी न किसी बहाने पति के लिये ब्याह की डाली सजाती। सहृदय व्यक्ति को बंगाल की नयी बहू को कृपा और स्नेह से देखना चाहिये। उसमें सजावट नहीं, चमक-दमक नहीं। उसमें लज्जा है, दीनता है, विनय है। यदि अपनी स्वाभाविक लज्जा से वह अपनी भेंट धरती पर गिरा दे तो भी उसके मनोभाव का ख़याल कर उसे उठा लेना होगा।"

कृष्णधन दे

कृष्णधन दे का जन्म १८९८ ई० में बर्दवान ज़िले के आभापुर नामक समृद्ध ग्राम में हुआ था। इस समय इनकी अवस्था ३४ वर्ष की है। इनके पिता का नाम है कविराज प्रसन्नकुमार दे और वे कलकत्ते में डाक्टरी करते हैं। जब ये बारह वर्ष के थे तभी इनकी माता का देहान्त हो गया।

इनकी शिक्षा कलकत्ते में हुई। इन्होंने १९१५ में इन्ट्रेन्स की, १९१७ में इन्टरमीजियेट की और १९१९ में बी० ए० की परीक्षा रिपन कॉलेज से पास की। फिर १९२० में इन्होंने आयुर्वेदीय परीक्षायें दीं। आयुर्वेद का अध्ययन इन्होंने एन्ट्रेन्स पास करने पर ही आरम्भ कर दिया था। आयुर्वेदीय डिप्लोमे प्राप्त कर लेने पर इन्होंने अंग्रेजी में एम० ए० की तैयारी की और १९२२ में उसमें भी उत्तीर्णता प्राप्त कर ली।

जब ये ग्यारह वर्ष के थे तभी से ये कविता करने लगे। परन्तु पहले पहल इनकी कविता रिपन कॉलेज मैगज़ीन में प्रकाशित हुई। कॉलेज के अध्यक्ष स्वर्गीय श्रीयुक्त रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी तथा अन्यान्य अध्यापकों के प्रोत्साहन से ये अपने लेख अन्यान्य पत्रों में भी प्रकाशित होने को भेजने लगे।

१९३० में इनकी कुछ कवितायें "प्रवासी" कार्य्यालय के द्वारा 'व्यथार पराग' के नाम से प्रकाशित हुईं। १९२४ में इन्होंने अपने पिता के सहकारी बनकर आयुर्वेद की प्रैक्टिस आरम्भ कर दी और आज भी वही कर रहे हैं। इन्होंने छोटी कहानियाँ लिखना भी आरम्भ किया, उनमें से कितनी ही कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। शीघ्र ही ये कहानियाँ संग्रहरूप में 'कदमफूल' के नाम से रञ्जन प्रकाशनालय कलकत्ता के द्वारा प्रकाशित का जायेंगी। 'दरदी' नामक इनको एक काव्य पुस्तक भो निकलने वाली है।

इनकी कविताओं के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं:—

स्वामी के नाम किसी देहाती बहू का पत्र

(१)

बाटेर पथे बेउड़ बाँशेर झाड़े
हलुदे पाखी—ऐ ये कि तार नाम,
केवल आमाय कइते कथा बोले,
डाकार तादेर नाइको ये विराम;
कोकिलटा हाय सेपेइ गेल बुझि
एकघेये सुर गाइछे दिने राते,
बउ-हारा सेइ काँदछे पापियाहा
'चोख गेल' हाओ जुटे छे तार साथे;
तुमिइ शुधु एले ना आज घरे
फागुन दिने मन ये केमन करे!

(२)

बन तुलसीर गन्ध-छापा वाटे
किसेर व्यथाय चोख ये जले भरे,
विकाल-वेलाय जल के एसे हेथा
निठुर ये हाय! तोमाय मने पड़े;

दिनेर चोखे आसछे नेमे घुम् ।
रंगीन रोदे बाँशेर पाता काँपे ।
बातास येन जिरिये निते चाय
आमार पासे बेसि सिंड़िर धापे;
तुमिइ शुधु एले ना आज घरे,
फागुन दिने मन ये केमन करे !

(३)

एइ ये आकाश कतइ रंगे छाया
तोमार चोखे देय ना धरा हाँ गो ?
कोन प्रबासे एकला घरे शुये
आमार मतो साराटा रात जागो ?
सेथाय कि हाय ! कनक चाँपार बासे
घुम-हारानो बातास बेड़ाय घुरे ?
सेथाय कि हाय ! ज्योत्सना-भरा पथे
रातेर परी जागाय नूपुर-सुरे ?
तुमिइ शुधु एले ना आज घरे,
फागुन दिने मन ये केमन करे !

(४)

निशीथ-राते काँपाय मेठो हावा
कञ्चि घेरा नूतन बेड़ा टिरे
चम्‌के उठे उठान—पाने चाइ,
हयत तुमि हठात् एले फिरे;
तोमार देश शुक्‌नो बकुल माला
नित्यि राते बक्षे धरि चेपे
पथिकजनेर पायेर ध्वनि शुने
बुकटा येन आशाय ओठे कैंपे;

तुमिइ शुधु एले ना आज घरे,
फागुन दिने मन ये केमन करे।

१—"घाट के रास्ते बाँस के झुरमुट में पीली चिड़िया—उसका क्या नाम है?—केवल 'मुझे' कुछ कहने के लिये कहती है। उसकी पुकार में विराम नहीं है। कोयल तो हाय! पागल ही हो गई है। दिन-रात एक ही सुर से गाती है। वहाँ पपीहा स्त्री के विरह से रो रहा है! रोने में एक दूसरी चिड़िया भी उसका योग दे रही है। केवल तुम्हीं आज घर न आये। आज फागुन के दिन मन न जाने कैसा कर रहा है।

२—बन-तुलसी के गन्ध से छाये हुये घाट पर न जाने किस व्यथा से आँखें जल से भर आती हैं। शाम को यहाँ जल लेने आती हूँ तो रोज़ तुम्हारी याद आ जाती है। दिन में झपकी तक नहीं आती। रङ्गीन धूप में बाँस की पत्तियाँ हिलती हैं। हवा मानो मेरे पास सीढ़ी के निकट बैठकर सुस्ता लेना चाहती है। केवल तुम्हीं आज घर न आये। आज फागुन के दिन मन न जाने कैसा कर रहा है!

३—यह अनेक रङ्गों से छाया हुआ आकाश क्या तुम्हारी दृष्टि पर नहीं पड़ता है? किस प्रवास में अकेली कोठरी में सोकर मेरी नाईं सारी रात जागते हो? हाय! क्या वहाँ सुनहले चम्पे के गन्ध में निद्रा-विहीन हवा घूमती फिरती है? हाय! क्या वहाँ चाँदनी से भरे पथ पर रात की परियाँ नूपुर के स्वर से (लोगों को) जगाती फिरती हैं? केवल तुम्हीं आज घर न आये। आज फागुन के दिन मन न जाने कैसा कर रहा है!

४—आधी रात को घिरी नई नाव को हवा कँपा देती है। मैं मैदान की ओर चौंककर ताकने लगती हूँ, शायद तुम अचानक लौट आये। तुम्हारी दी हुई सूखी बकुल-माला रोज़ रात को छाती पर दबा रखती हूँ। पथिकों की पद-ध्वनि सुनकर हृदय जैसे आशा से काँप उठता है।

केवल तुम्हीं आज घर न आये। आज फागुन के दिन मन न जाने कैसा कर रहा है !"

अपनी सखी के नाम वन्ध्या नारी का पत्र

मंजरि, तोर खोकाके आज निये
सारादा दिन लागल बड़ भालो
जड़िये आमाय हात दुखानि दिये
आँधार बुके ज्वालल किसेर आलो !
छोट्ट मुखेर छोट्ट हासिटुक्
कोन् पुलके पूर्ण करे बुक
कोमल देहेर मधुर परश टुक्
आज के आमार जीवन जुड़ालो !
से दिन देखि मुखुर्य्येदेर नीला
छोट्ट काँथाय नाम लिखेछे "मिनि"
छोट्ट मोजा बुनछे चारुशीला
छोट्ट जुतोय फूल तुलेछे विनि;
तादेर खोका दुष्टु नाकि बड़ो
मायेर काछे खाबे दु'यार चड़-ओ
दस्यिपना करबे सारा दिन-इ !
पूजार समय पड़ले ढाके काठि
छुटबे पाड़ार "नीटन", "बिनु", "बाणो"
छोट्ट पायेर शब्दे काँपे माटि
हास्ये भरे शरत् आकाश खानि !
दूर बनानीर फूलेर हावा भासे !
कोन् चकोरीर अन्ध आँखिर कोने
चाँदेर आलो व्यथार स्वपन बोने

कोन् चातकीर पियास पागल मने
मेघेर आशा बिफल हये आसे !

"सखि मंजरि, तुम्हारे बच्चे के साथ रहने के कारण आज समूचा दिन मुझे खूब अच्छा लगा। अपने हाथों से मुझे आलिङ्गनकर उसने मेरे अँधेरे हृदय में न मालूम कौन-सा दीपक जलाया। नन्हें मुँह की नन्ही हँसी न जाने हृदय को किस आनन्द से भर देता है ! कोमल देह के मधुर स्पर्श से आज मेरा जीवन धन्य हुआ। उस दिन क्या देखती हूँ कि मुकुर्जो के यहाँ की लड़की नीला छोटे कथरे पर लिख चुकी है "मिनि"। चारुशीला छोटे मोजे बुन रही है। बिनि छोटे जूतों पर फूल काढ़ रहा है। उन लोगों का बच्चा शायद बड़ा दुष्ट है। माँ उसे थप्पड़ भी लगा देती है। सारा दिन बदमाशी जो करता फिरता है। दुर्गा-पूजा के समय ढोल बजते ही मुहल्ले भर के लड़के—नोतन, बिनु, बाणी—दौड़ते हैं। इनके छोटे पावों के भार से पृथ्वी काँपती है और शरदाकाश इनके हास्य से खिल उठता है। सुदूर स्थित बन से आती हुई फूलों के गन्ध से मत्त हवा बहती है। किस चकोरी की अंधी आँखों में चन्द्रमा की किरणें व्यथामय स्वप्नों का जाल बुनता रहता है ? किन तृषातुर चातकी के मन में वर्षा की आशा विह्वल हो आती है ?"

रजनीगन्धा नामक फूल की व्यथा

तुमि एलेन पुले माला शुकाये गेलो
ओइ गगन कोणे चाँद निभिया एलो
राँगा मेघेर फाँके उषा आबिर माखे
शत बिहग डाके "सुख निशा फिरालो !"

(नोट—रजनीगन्धा (गुलशब्बो ?) नामक फूल रात ही में खिलता है और भोर होते-होते बिल्कुल विलीन हो जाता है।)

सखा ! एकटि राति सखा ! एकटि राति
हाय ऐकेला जागि' शुधु प्रहर गाँथि
बुके तृषार ज्वाला झरे फूलेर माला
ओइ तारकाबाला सब निभाय बाति !

सखा ! गोधूलि-आलो या'र जीवन आने,
हाय ! ऊषार आलो तार मरण हाने ?
आजि निशार शेषे छलि' मोहन बेशे
कोन् निठुर एसे बिंधे बिषेर बाणे

शुधु स्वप्न ए कि बोलो जीवन साथी ?
बोलो, यायनि चलि, मम मिलन-राति ?
बोलो, आकाश घिरे' एलो गोधूलि फिरे'
ओ तो पूरब तीरे नहे ऊषार भाति !

"तुम अब आये ? हाय ! माला तो सूख गई ! आकाश के एक कोने में चन्द्रमा भी (भोर होने से) अस्त हो चुका। रंगीन मेघों के उस पार ऊषा देवी अबीर लगा रही हैं और सैकड़ों पक्षियाँ गा रही हैं—"सुख की रात तो बीत चुकी !"

मेरे सखा ! रात को जागती हुई मैं केवल मुहूर्त्त गिनती रही (सोचती थी कि अब आये, तब आये)। कलेजे में प्यास की जलन रहती है, फूलों की माला फीकी हो जाती है। इतने में तारे भी अपनी दीपमालिका बुझाकर निष्प्रभ हो जाते थे।

हाय ! गोधूलि की रोशनी जिसे जिलाती है, ऊषा काल की रोशनी उसे मार डालती है। रात्रि का अन्त होते ही आज यह कौन निष्ठुर आकर मुझे अपने मोहन-वेष से लुभाकर विषाक्त तीर से मर्माहत कर रहा है ?

ऐ मेरे जीवन के साथी ! मैं सपना तो नहीं देख रही हूँ। एक बार कह दो—"मिलन-रात्रि अब भी गत नहीं हुई। कह दो कि

गोधूलि का धुंधला प्रकाश आकाश को घेर रहा है। कह दो कि पूरब की ओर उषा का प्रकाश नहीं—नहीं है।"

प्रियंवदा देवी

प्रियंवदा देवी का जन्म १८७२ में हुआ। "वनलता" की लेखिका श्रीमती प्रसन्नमयी देवी इनकी माँ थीं। नदिया ज़िला में कृष्णनगर नामक एक ग्राम है। इनका बचपन इसी ग्राम में व्यतीत हुआ। ग्राम के स्कूल से परीक्षा पास कर इन्होंने छात्र-वृत्ति प्राप्त की। फिर दस वर्ष की अवस्था में ये कलकत्ते चली आईं। १८८२ में इन्होंने इन्ट्रेंस परीक्षा पास की। इस बार भी वृत्ति मिली। फिर १८९० में एफ़० ए० और १८९२ में बी० ए० परीक्षाएँ पास कीं। बी० ए० परीक्षा में संस्कृत भाषा और साहित्य में असाधारण योग्यता प्रदर्शित करने के लिए इन्हें रौप्य पदक मिला।

बी० ए० पास करने पर इनका विवाह स्वर्गीय रायबहादुर तारा-दास बैनर्जी के साथ हुआ। विवाह के बाद ही ये अपने स्वामी के पास रायपुर (सी० पी०) चली गईं। इनके स्वामी रायपुर के प्रधान वकील थे।

१८९५ में इनके स्वामी की मृत्यु होगई। इस दुःखद घटना के ग्यारह वर्ष बाद इनके जीवन का आशा-प्रदीप बुझ गया। इनके एक-मात्र पुत्र भी अकाल ही काल-कवलित हो गये। इससे इनके जीवन की रही-सही शान्ति भी जाती रही।

आजकल की प्रायः सभी प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में इनकी कवि-ताएँ छपा करती हैं। स्त्री-कवियों के बीच इनका आसन ऊँचा है।

"रेणु" नामक ग्रंथ इन्होंने ही लिखा है। इस ग्रन्थ की ख़ूबी है, इसकी सरलता। यह एक व्यथित चित्त के गंभीर भावों का सरल, लेकिन सुंदर प्रकाश है।

यहाँ इनकी कविताओं के कुछ नमूने दिए जाते हैं। पहली दो कविताएँ इन्होंने ख़ास कर इस ग्रंथ के लिए लिख भेजी हैं।

स्वदेश

जनमेर देश, पितृभूमि मम
मोर पराणेर धन,
आमार धेयाने, आमार नयाने
तुमि चिर अतुलन।
तव गिरि नदी, कान्तार जलधि,
प्रान्तर दिगन्त लीन,
रात्रि त्रियामा, तनु तन्वी श्यामा
एइ हेमन्तेर दिन,
तोमारि श्यामल बुकेर आँचल
सुनील ओड़ना खानि,
शीत बसन्ते बादल अन्ते
मन मोर लय टानि।
कुहेलि निचोल, धानेर हिल्लोल
सोनालिर ढेउ खेला
बन पथ छाया गोधूलिर माया
गोठेर शेषेर बेला।
मोर स्वपनेर, जीवन पथेर
साधना आधार क्षेत्र

अनुरागी-मन स्वपन मगन
जोछनाय भरा नेत्र
हे मोर स्वदेश तव दुःख वेश
हियाय जागाय व्यथा—
विदेशी चरणे जीवन मरणे
याचनार कातरता।
तव माठे घाटे, पल्लीर बाटे
सुषमा कोथाय आज?
भेंगे पड़े याय, बनानी छायाय
भाँगा कुटीरेर लाज
बन्या आसिया याय ये भासिया
धन जन आर प्राण
भिक्षार झुलि, काँदनेर बुलि
राखिते पारे ना मान।
काज कि बा करि? आपना सम्बरि
एमन विदाय बेला,
या करेछि निजे, कत करि नि ये
हल सब मिछे खेला।
दुःखेर तोमार के नामाये भार,
किनारा कि ह'ते पारे,
भाविया आकुल पाइने कूल
भावनार पर पारे—
सेइ अनुध्याने, से अनुसन्धाने
कत करि तोना पाड़ा
ए भावना सम हबे कि मंत्र सम
प्राणे कारो दिबे साड़ा?

"ऐ मेरी पितृभूमि, मेरी जन्म-भूमि ! ऐ मेरे प्राणों के धन, तुम मेरी आखों में अतुल हो, तुम मेरे विचार में अतुल हो। तुम्हारे नदी, पर्वत, बन, समुद्र, दिग-दिगन्त में व्याप्त प्रान्तर, ग्रीष्मकाल की छोटी रातें, हेमन्त के दिन, तुम्हारे श्यामल वक्षस्थल का अंचल, नीलाकाश, शीतकाल, वसन्त और वर्षान्त में मेरे मन को मोह लेते हैं। धानों के ऊपर सुनहले ढेप, वनों के पथ पर छाया, गोधूलि के समय का मोह, गो-स्थान की शेष-प्रहरी—ये ही सब मेरे जीवन की साधना के आधार हैं। मेरी आँखें ज्योत्स्नापूर्ण हैं। मेरा मन प्रणयी है, स्वप्न-विभोर है।

ऐ मेरी मातृभूमि, तुम्हारा दुःखपूर्ण वेश मेरे हृदय को पीड़ा पहुँचाता है। तुम्हारी कातर यातना विदेशियों के चरणों के समीप पीड़ा पहुँचाती है। आज तुम्हारे पथ, मैदान, घाटों में सुषमा कहाँ है? दीन कुटीर की लज्जा वन की छाया में और भी दारुण दीखती है। आज बाढ़ आती है और धन-जन तथा प्राण हर ले जाती है। भिक्षा करने पर, रोने पर भी, मान नहीं रहता। मैं अभी क्या करूँ? यह तो मेरी विदाई का समय है। आज केवल मैं अपने को समेट रही हूँ। जो किया, जो नहीं किया—सभी तो झूठा खेल होगया। तुम्हारे दुःख का बोझा कौन उतारेगा? यही सोचकर मैं चिन्ता के समुद्र में डूब रही हूँ। किनारा दिखाई ही नहीं पड़ता। सोचती हूँ कि कैसे तुम्हारी विपत्ति का उद्धार होगा? क्या मेरा यह अनुसंधान किसी के हृदय में प्रतिध्वनि जगायेगा?"

आशातीत

तोमाय पारिना धरिते पारिना धरिते
मनेते मिशाये आपना करिते
ओरे आकाशेर आलो
तोमाय पारिना धरिते पारिना धरिते
यतइ बासि ना भालो।

तोमाय पारि ना बाँधिते पारि ना बाँधिते
नित्य नवीन छन्दे गाँथिते
ओरे मोर भालोबासा
तोमाय पारिना बाँधिते भावे भाषा दिते
तेमन नाइक भाषा।

"ऐ आकाश के आलोक तुम्हें कितना ही प्यार क्यों न करूँ ? पकड़ नहीं सकती, तुम्हें पकड़ नहीं सकती हूँ। तुम्हें मन में बैठाकर अपना नहीं सकती, अपना नहीं सकती हूँ। मेरे हृदय के प्रणय, तुम्हें बाँध नहीं सकती, बाँध नहीं सकती हूँ और न तुम्हें नित्य नए छन्दों ही में गूँथ सकती हूँ। ऐ मेरे हृदय के प्रणय, तुम्हें भाषा में व्यक्त कर सकूँ, ऐसी भाषा कहाँ ?"

साधना

वक्षे तव वक्ष दिये शुये आछि आमि
हे धरित्री जीवधात्री, नित्य दिनयामि
मातृहृदयेर मोर व्याकुल स्पन्दन
प्रवासी सन्तान लागि नियत क्रन्दन
तारि लुप्त स्पर्श तरे, करि दाओ लय
विपुल वक्षेर तव महा शब्दमय
अनन्त स्पन्दन माझे, शिखाओ आमाय
से पुण्य रहस्य-मन्त्र यार महिमाय
प्रत्येक निमेषे सहि' वियोग-वेदन
लक्ष कोटि सन्तानेर, प्रशान्त वदन
तबु फुटातेछ फुल ज्वालिछ आलोक
उजलिया रात्रि-दिन द्युलोक भूलोक।

"ऐ मेरी धरित्री, छाती में छाती लगाकर सो रही हूँ। परदेशी सन्तान के लिये, रात-दिन मेरे व्याकुल मातृ-हृदय का स्पन्दन, उसके खोए स्पर्श के लिये मेरा बराबर रोना, इन सभों को अपने विशाल वक्षस्थल के शब्दमय स्पन्दन के बीच विलुप्त करो। मुझे वह मन्त्र सिखा दो जिसकी महिमा से हर घड़ी हज़ारों सन्तानों की वियोग-वेदना सहकर भी तुम प्रसन्न-चित्त हो, फूल खिलाती हो, रोशनी करती हो और रात तथा दिन को, इस लोक और उस लोक को जगमगा देती हो।

चाँद

तोमार रूपेर ज्योति खेला करे पराणे आमार,
ओगो चाँद, एत काछे उजल एमन !
तोमार ओ रूप मोरे शिशु करे दियेछे आवार,
काँदिया बाड़ाइ हात, धरिबारे मन ॥
कचि मेये आमि येन दु-हात बाड़ाये,
तोमारे बाँधिते चाइ बुकेते जड़ाये ॥
आज राते कत पाखी गान गेये जागे बारे बारे,
तोमार आलोते आँका कण्ठे मणि-हार ॥
मुखे मोर कथा नाइ चले गेछि शब्देर ओपारे,
अवाक् बन्दना मोर आजि उपहार ॥
वनानी मुखर ह'ल कोकिलेर स्तवे,
आमार अन्तरे प्रेम जागिछे नीरवे ॥

"हे चन्द्रमा ! तुम्हारे रूप की ज्योति मेरे प्राणों से खेल रही है। तुम इतने निकट हो ! तुम इतने उज्ज्वल हो ! तुम्हारी इस रूप-राशि ने मुझे फिर भी शिशु बना डाला। रोकर तुम्हें पकड़ने को हाथ फैलाती हूँ। मानो नन्ही-सी बालिका— मैं—दोनों हाथ पसारकर तुम्हें कलेजे लगाकर बाँधना चाहती हूँ। आज की रात अनेकों

पत्तियाँ रात भर जागती रही हैं। वे गाती हैं। उनके गान तुम्हारी ज्योत्सना के गले में कण्ठ-हार की तरह जड़ित हैं। आज मेरे मुख में वाणी नहीं है। मैं शब्दों के उस पार चली गई हूँ। उसी से आज मेरी भेंट केवल निर्वाक् वन्दना होगी। वन में कोयल कुहुक उठी। मेरे हृदय में प्रेम जागृत हुआ।"

दिलीपकुमार राय

दिलीपकुमार राय का जन्म बंगाल के एक प्रतिष्ठित कुल में, कृष्णनगर नामक स्थान में, १८९८ ई० में हुआ था। ये बंगाल के अमर कवि और नाट्यकार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के एकलौते पुत्र हैं। इनके पितामह दीवान कार्तिकेयचन्द्र राय अपने समय के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। कार्तिकेयचन्द्र की सच्चरित्रता, उर्दू एवं फ़ारसी की विद्वत्ता और शैली बंगाल में प्रख्यात थी। स्वर्गीय प्रोफ़ेसर ललितकुमार बनर्जी ने कार्तिकेय चन्द्र की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है।

बचपन से ही इनको संगीत से प्रेम था। इनके पिता द्विजेन्द्रलाल राय ने इनको एक सुयोग्य गायक के पास संगीत-शिक्षा के लिये रख दिया। ये बराबर कहा करते थे कि दिलीप का स्वभाव अपने पितामह से बहुत मिलता-जुलता है।

विद्यार्थी-जीवन ही में इनकी साधु-संन्यासियों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। अपने चाचा निर्मलेन्दु लाहिड़ी के साथ ये बहुधा बेलूड़ मठ के रखाल महाराज का दर्शन करने के लिये जाया करते थे।

ये कलकत्ता विश्व-विद्यालय के एक सुयोग्य रत्न हैं।

ये प्रथम-श्रेणी में ससम्मान बी० एस-सी० पास कर पढ़ने के लिये इंगलैंड गये। पहले इनकी इच्छा आई० सी० एस०

परीक्षा में सम्मिलित होने को थी, लेकिन ऐसा नहीं कर सके। कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय से गणित-शास्त्र और गान-विद्या में पारङ्गत होकर देश लौट आये।

अपने प्रवास-काल में इन्होंने इँगलैंड में आर्य-संगीत के प्रचार के लिये बहुत प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से इन्होंने योरप के प्रधान-प्रधान देशों में भ्रमण किया। योरप के प्रसिद्ध विद्वान्, बार्ट्रेन्ड रसेल, रोमन रोलां, इन्सटेन जैसे व्यक्तियों से इनकी मित्रता हुई।

हिन्दुस्तान लौटने पर इन्होंने आर्य-संगीत का प्रचार करना अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य बनाया और इसमें जीवन-शक्ति लाने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न किया। बंगाल में संगीत-विद्या में इन्होंने युगान्तर कर दिया। बंगाली संगीत में इन्होंने बड़ी सरलता से ठुमरी, ग़ज़ल, कौवाली आदि रागों का समावेश किया और अपने देशवासियों का आनन्द बढ़ाया। श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक बार कहा था कि इनके पहले बंगाल में संगीत को ऐसा लोकप्रिय किसी ने नहीं बनाया था।

आर्य-संगीत में पारंगत होने के लिये इन्होंने असीम कष्ट सहे हैं। जिस प्रकार धार्मिक पुरुष अनेक कष्टों को झेलकर अपने इष्टदेव की मूर्ति का दर्शन करने के लिये जाते हैं, उसी प्रकार ये बड़े-बड़े गायकों का दर्शन करने के लिये जाते थे। अब्दुल करीम, स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, स्वर्गीय राधिकाप्रसाद गोस्वामी, वामाचरण बन्द्योपाध्याय, चन्दन चौबे, महा सारखण्डे और रतनशंकर आदि सभी इनकी संगीत-प्रियता और संगीत-प्रतिभा से आकृष्ट हुये थे। एक बार लखनऊ संगीत-परिषद् के ये जज नियुक्त हुये थे। इनकी इस यात्रा का वर्णन 'आमार दिन पञ्जिका' में किया गया है। यह ग्रन्थ बँगला-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है।

जब इन्होंने दूसरी बार योरप की यात्रा के लिये प्रस्थान किया तो इनको विदाई देने के लिये प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक शरत्चन्द्र की अध्यक्षता में एक बड़ी सभा हुई था। इसमें कवीन्द्र रवीन्द्र भी उपस्थित थे। यह सभा इनकी लोकप्रियता जाहिर करती थी। इन्होंने योरप में जो ख्याति प्राप्त की उसका पता फुसफ मिलर लिखित पुस्तक से मालूम हो सकती है।

इनको प्रतिभा केवल गान-विद्या तक ही सीमित नहीं है। ये उच्चकोटि के उपन्यास-लेखक भी हैं। 'मनेर परश', 'दुधारा' इनके प्रधान उपन्यास हैं। शरत्चन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इन दोनों उपन्यासों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इनकी कवितायें भी अच्छी होती हैं। जब से ये पाण्डीचेरी में रहने लगे हैं, इनको काव्य-प्रतिभा परिपक्व हो गयी है। दूसरी दूसरी भाषाओं की कविताओं का अनुवाद करने में ये बड़े दक्ष हैं। इनका अनुवाद मूल कविताओं की तरह सरस, मधुर और ओज-पूर्ण होता है। श्री अरबिन्द घोष इनको कविताओं से बहुत प्रसन्न हुए थे। शरत् बाबू और रवि बाबू ने भी इनकी कविताओं की बहुत बड़ाई को है।

इनके गान और कविताओं में परमानन्द का स्फुरण है, अनन्त-यात्रा का निर्देश है, नित्य का अन्वेषण है।

इनके गुणों का यथोचित रूप से निरूपण करना अभी सम्भव नहीं है। लेकिन इसमें तो सन्देह नहीं है कि जिसने संसार की मोह-माया से विरक्त होकर जीवन भर के लिये योग धारण किया है, वह सचमुच में प्रतिभाशाली कलाविद् के सिवाय और कुछ है।

यहाँ इनकी कविताओं के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

पलातका

पाश दिये के पाहाड़ थेके
झाँपिये एलोचुले
दीप्तिमयी दौड़े गेल च'ले ?

सान्द्र - उछल कम्प कमल
कार गो आभास दुले
उठ्ल येन मर्त्य आँखि भ'ले ?
कपोल दुटि वारेके फुटि'
त्रस्त, गोलापरागे
राङ्ल चकित मञ्जु व्रीड़ा भाय,
पवन सम चरण कम
फेलेइ पुरोभागे —
पिछनपाने त्वरित् फिरे चाय, —
तारपरे तेइ कइ — किछु नेइ !
लाजुक चिन्ता हेन
धर्ते येतेइ पुड़िये स'रे याय,
अमर्त्येरि मण्डलेरि
एकटि ज्योति येन
घोमय खुलेइ मुहूर्त्ते मिलाय ।

"पहाड़ से निकलकर, मेरे बगल होकर कोई दामिमयी वायु-विक्षिप्त अलकों से ढकी दौड़ती चली गई ? सान्द्र, गतिशील, कम्पित कमल को नाईं जैसे एक आभास मर्त्य-नेत्रों को चमत्कृत करता खिल उठा ! मानो चकित मञ्जु व्रीड़ा ने हठात् खिलकर दोनों कपोलों को त्रस्त गुलाब के राग में रञ्जित कर दिया ! पवन की नाईं कम्पित चरणों को आगे ही को ओर फेंकती हुई पीछे की ओर ताक लेता है । उसके बाद फिर कहीं कुछ नहीं ! जैसे कोई सुकुमार चिन्ता पकड़ने जाते ही बच कर भाग जाती — जैसे दिव्य-मण्डल की एक ज्योति अवगुण्ठन न हटाते ही मुहूर्त्त-मात्र में मिट जाता है ।"

दूरे ओ काछे
सखि, दूर अबाध कल्पनाते
सान्ध्य वाते

तोमार आँखिर दृष्टि अधीर
एकताराते बाजे;
तुमि रइते यदि काछे आमार
अस्त-आँधार
उठ्त भाति बिश्बे, साथी
पेताम हियार माझे;
तुमि आज दूरे—ताइ तोमार छाया
बिछाय माया
मोर बिरहेर बिसर्जनेर
दिगन्ते—बिधुर!
यदि रइते काछे—तोमार नयन
करत बयन
अस्त गगन-माझे हिरण
नवोदयेर सुर।
तुमि ये दिन प्रिय पाशे छिले
मन्दानिले
ताराय नभे सरित्-स्तबे
आसत् आवेश छेये;—
शुधु आजके तोमार अदर्शने
मनेर बने
बसन्तवाय श्वसि' लुटाय
तोमाय' चेये चेये!
तुमि रइले पाशे निखिल माझे
प्रभात-साँझे
कतइ ना सुर बाजत मधुर
दुलत धरा प्रेमे;

तुमि आज के पाशे नेइ बलि' हाय
ऐ मुरछाय
कान्त उछल आलोर कमल,
दोलदोला याय थेमे।
तोमाय पेताम येदिन हात बाड़ाले
ताले ताले
बनस्थली फुलाञ्जलि
ढालत मुगे भ'रे,
आजि नेइक बलि' काछे तुमि
वनभूमि
गाहे ना जाय बय न मलय
मुग्ध कलस्वरे।
ना ना के बले?—ऐ सबुजशाखे
माठेर डाके
कुञ्जवाँशिर हास्यराशिर
आसछे भेसे रोल,
तारि मर्म्मे तोमार सौरभ बाय
ये ढेउ जागाय
सन्निकटे स्मृतिर तटे
छाय तारि हिल्लोल।

"सखि, कल्पना में, दूर प्रवास के सान्ध्य वायु में, तुम्हारी आँखों की अधीर दृष्टि एकतारा में बज उठती है। यदि तुम मेरे पास रहती हो, अस्त अन्धकार आलोकित हो जाता है, हृदय साथी पाता है। आज तुम दूर हो, इसी कारण मेरे विरह और विसर्जन के दिगन्त में तुम्हारी छाया एक माया फैला रहा है। विधुर! यदि तुम पास रहती, तुम्हारी आँखें अस्त आकाश के बीच सुनहले नवोदय का सुर बुनती होतीं। प्रिये,

तुम जिस दिन पास थी, मन्द वायु में, ताराओं में, आकाश में और सरिताओं के स्तव में आवेश छा आता था। केवल तुम्हारे न देखने के कारण मन-बन में बसन्त-वायु निवःश्वास फेंकता हुआ तुम्हें ढूँढ़-ढूँढ़ लोट रहता है। जब तुम पास रहती हो, निखिल में, प्रभात और सन्ध्या में कितने ही मधुर सुर बजते हैं, धरा प्रेम से हिला करती है। हाय! तुम आज पास नहीं हो, इसी कारण यह सुन्दर, कम्पित आलोक का कमल मूर्च्छित हो रहा है। इसका हिलना बन्द होगया। यदि हाथ बढ़ा तुम्हें पाता, बनस्थली ताल-ताल में मुट्ठी-मुट्ठी पुष्पाञ्जलि ढालती। आज तुम पास नहीं हो, इसी कारण बन-भूमि जय-गान नहीं करती, मुग्ध कल स्वर में मलय समीर नहीं बहता। नहीं, नहीं कौन कहता है? इस हरे डाल में, मैदान के पुकार से कुञ्ज के बाँसों की हँसी का तरंग बहता आ रहा है; उनके मर्म में तुम्हारा सौरभ-वायु जो तरङ्ग जगाता है, निकट में स्मृति-तट पर उसका हिल्लोल छा रहा है।"

श्रीराधा

आजो शून्य ए देहमन्दिरे केह गाहेनि तो सेइ बन्दन!
मोर आशा बीथिकाय एलो ना तो हाय, से अतिथि चितनन्दन!
रहे प्रति तनु-अणु बन्ध्या,
निति अवेलाय नामे सन्ध्या,—
कोन् दूर-विस्मृत नूपुर निभृत बाजे लो उदासी-रञ्जन?
ताहे पञ्जर-तले की तृषा उथले अश्रु-पाथार-मन्थन!
श्वसि' इति उति चाइ तारे तो ना पाइ—याहार मिलन वञ्चित
मोर मर्म्म-अतले निर्जने ज्वले प्रार्थन-दीप शङ्कित!
तारि इङ्गित-द्युति भावि' याय
करि वरण—पलके आविलाय!
हय सोणामुठि धूलामुठि प्राय—बिना मोर चिरवाञ्छित!
खुँजि कोथा से—कलिका ज्वाले प्रेमशिखा—ये परागे व्रज गन्धित।

आँखर

केन इति उति चाइ तारे तो ना पाइ ?
पाइ ना लो सखि पाइ ना
यदि आछे हृदे मणि पाइ ना ?
केन चाहिले अमनि पाइ ना ?
यदि चित्ते सजनि, आछे नील मणि से चरणध्वनि पाइ ना
शुनिते पाइ ना ?
तार बाँशि-आलो बाजे अन्तरमाझे धरिते धाइले पाइना
केन शुनिते चाहिले पाइ ना ?
ना ना ओइ बुझि आइ—गाजे बाँशि सइ—विरहे याहार यन्त्रणा
मोर बिथारे पराणे जागरे धेयाने—देय ओ की काणे मन्त्रणा ?
ओ की घरछाड़ा रागे झङ्कृत···
छायामञ्जीर शिञ्जित ?

मोर बन्दी स्वपन काटे बन्धन काँपे अभिसार-उन्मना !
यबे— "कूल तेयागिया आय आय प्रिया"—गाय मुरलिया मूर्च्छना !
याय धीरे धीरे आँधा केटे—ए की ! बाधा-शृङ्खलओ हय किङ्किणी !
कोन् अचिन पुलके निखिले झलके—पथे धाय राजनन्दिनी !
वाँशि आरो काछे उठे बाजिया···
धरा नीले नीले याय प्लाविया !
ओके श्यामल मोहन !-थमके चरण-डाके : "आय लीलासङ्गिनी"!
आलि लभिल कि कूल वरिया बिपुल मुक्तिरे चिरवन्दिनी ?
यत चिन्ता, साधन, हृदय-राधन, चेतने काँपने स्पन्दे गो !
यत उच्छास उच्छलचञ्चल-चञ्चल—दीप्त तोमारि छन्दे गो !
प्रति देहकणा, लहुविन्दु—.
शुधु तोमारि—हे दानसिन्धु !

तुमि हरष वेदन जीवन मरण याहा दिते से—आनन्दे गो—
मोर लुण्ठित-भूमि चित्त कुसुमि' उठिबे अमृत-गन्धे गो !

"आज इस शून्य देह-मन्दिर में वह वन्दना तो कोई नहीं गाता ! हाय, मेरी आशा-वीथिका पर वह चित्त-नन्दन अतिथि तो न आया ! सारा अङ्ग अनुर्व्वर है। असमय ही में सन्ध्या उतर आती है—दूर में कौन-सा विस्मृत निभृत उदासी-रञ्जन नूपुर बज उठा ? उससे पञ्जर-तल में अश्रु-मन्थन कौन-सी तृषा उथल पड़ती ! निःश्वास फेंककर इधर-उधर देखती हूँ, उसे तो पाती ही नहीं—जिसके मिलन से वञ्चित मेरे गंभीर मर्म्म में अकेले प्रार्थना-दीप जला करता है। सोचती हूँ, जाकर उसकी इङ्गित-द्युति को वरण कर लूँ—पर वह पल में विलीन हो जाती है। मेरे चिर-वांछित के बिना मुट्ठी-मुट्ठी सोना धूलि के समान है। ढूँढ़ती हूँ, कहाँ वह कली अपनी प्रेम-शिखा जलाती है, जिसके पराग से व्रज सुगन्धिमय है !

क्यों इधर-उधर ताकती हूँ, उसे तो पाती ही नहीं ? सखी, नहीं पाती हूँ, नहीं पाती हूँ। यदि हृदय में मणि है तो पाती क्यों नहीं, ढूँढ़ने पर पाती क्यों नहीं ? सजनि, यदि चित्त में नीलमणि है, तो उन चरणों की ध्वनि क्यों नहीं सुन पाती हूँ ? उसकी बाँसुरी अन्तःकरण में बजती है—पकड़ने जाती, तो क्यों नहीं पाती ? सुनना चाहती तो क्यों न सुन पाती ? नहीं, नहीं, जान पड़ता है, वह बाँसुरी बज रही है—जिसके बिरह में मेरे व्यथित ध्यान में यन्त्रणा बजती है वह क्या कानों में मन्त्रणा दे रहा है ? वह क्या घर को छुड़ाने वाला राग झङ्कृत हुआ ? छाया-मञ्जीर शब्द कर उठा ? मेरा बन्दी स्वप्न बन्धन काटकर अभिसार के लिए आकुल हो काँप उठता है—जब मुरली गाती है, "कूल को छोड़कर आओ, प्रिये, आओ !"

धीरे-धीरे अन्धकार कट जाता है। यह क्या ! बाधा की शृङ्खला भी किङ्किणी हो जाती ! किस अपरिचित पुलक में निखिल झलक उठता है,

राजनन्दिनी पथ पर दौड़ जाती है। बाँसुरी और निकट में बज उठती है, धरा नीलिमा से प्लावित हो जाती है। वह क्या श्यामल मोहन!—पैर रुक जाते—पुकारते हैं, "आओ लीलाङ्गिनी!" क्या आज चिर-बन्दिनी मुक्ति को वरण कर किनारे आ लगी? जितनी चिन्ता, जितनी साधना, जितनी हृदय की आराधना है, सभी चेतना में काँप-काँपकर स्पन्दित हो उठती है। जितने उच्छ्वास और आवेश हैं, सभी तुम्हारे चञ्चल छन्दों में दीप्त हैं! हे दान-सिन्धु! देह का प्रत्येक कण, रक्त का प्रत्येक बिन्दु केवल तुम्हारा है! तुम हर्ष, वेदना, जीवन, मरण जो ही दोगे, सभी आनन्द का विषय होगा। मेरी लुण्ठित चित्त-भूमि अमृत-गंध से कुसुमित हो उठेगी।"

काज़ी नज़रुलइसलाम

काज़ी नज़रुलइसलाम का जन्म सन् १८९६ में पूर्व बंगाल के किसी ग्राम में हुआ था। ये एक संभ्रान्त मुसलमान-कुल के हैं।

इनका जीवन बड़ा ही कवित्वपूर्ण रहा है। संभव है, इसीलिये ये अपने जीवन की बातें न किसीसे बताते हैं और न किसीको लिखने ही देते हैं।

गत महायुद्ध में ये हवलदार होकर मेसोपोटामिया गए थे। वहाँ इन्होंने युद्ध का कार्य बड़ी सफलता से संपादित किया था।

देश को लौटकर आने पर ये पक्के स्वदेशी होगए। आजकल खद्दर पहनते हैं। कांग्रेस का काम करते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में दो-तीन बार सज़ा भी भुगत आये।

ये बड़े उत्साही हैं। इन्होंने कविताएँ लिखी हैं, नाटक लिखे हैं। कीर्त्तन के गान लिखे हैं, कथाएँ कही हैं, गान किया है। लोगों को हँसाया है, रुलाया है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है।

इनकी कविताओं में एक बड़ी विशेषता है। ये "हिल्लोल" छन्द का उपयोग करते हैं।

यहाँ इनकी कविताओं के कुछ नमूने दिए जाते हैं—

सिन्धु

हे क्षुधित बन्धु मोर, तृषित जलधि !
एत जल झुके तव, तबु नाहि तृषार अवधि।
एत नदी उपनदी तव पदे करे आत्मदान,
बुभुक्षु ! तबु कि तव भरिल ना प्राण ?
दुरन्त गो, महाबाहु
ओगो राहु
तिन भाग ग्रासियाछे—एक भाग बाकी !
सुरा नाइ—पात्र हाते काँपितेछे साकी !
हे दुर्गम ! खोलो खोलो खोलो द्वार !
सारि सारि गिरि दरी दाँड़ाये दुयारे करे प्रतीक्षा तोमार !
शस्य श्यामा बसुमती फूले फले भरिया अञ्जलि
करिछे बन्दना तव, बलि !
तुमि आछ निया निज दुरन्त कल्लोल
आपनाते आपनि विभोल !
पशे ना श्रवणे तव धरणीर शत दुःख गीत;
देखितेछे वर्त्तमान, देखेछे अतीत,
देखिबे सुदूर भविष्यत्—
मृत्युञ्जयी द्रष्टा, ऋषि, उदासीनवत !

ओठे भाङे तव बुके तरङ्गेर मत
जन्म मृत्यु दुःख सुख, भूमानन्दे हेरिछ सतत !

हे पवित्र ! आजि ओ धरा सुन्दर धरा आजि ओ अम्लान
सद्यफोटा पुष्पसम तोमाते करिया निति स्नान !
जगतेर यत पाप ग्लानि
हे दरदी, निःशेषे मुछिया लय तव स्नेह-पानि !
धरा तव आदरणी मेये
ताहारे देखिते तुमि आस मेघ बेये !

हेसे ओठे तृणे शस्ये दुलाली तोमार
कालो चोख बेये झरे हिमकण आनन्दाश्रु भार !
जलधारा हये नाम, दाओ कत रङ्गीन यौतुक,
भाङ गड़ दोला दाओ,—
कन्यारे लइया तव अनन्त कौतुक !
हे विराट नाइ तव क्षय,
नित्य नव नव दाने क्षयेर करेछ तुमि जय !
हे सुन्दर ! जल-बाहु दिया
धरणीर कटितट आछ आँकड़िया
इन्द्रनीलकान्तमणि मेखलार सम,
मेदिनीर नितम्ब—दोलार साथ दोल अनुपम !
बन्धु, तव अनन्त यौवन
तरङ्गे फेनाये ओठे सुरार-मतन !

कत मत्स्य—कुमारीरा नित्य तोमा याचे
कत जल-देवीदेर शुष्क माला पड़े तव चरणेर काछे,
चेये नाहि देख, उदासीन !
कार येन स्वप्ने तुमि मत्त निशिदिन !

मन्थन मन्दार दिया दस्यु सुरासुर
मथिया लुण्ठिया गेछे तव रत्न-पुर,
हरियाछे उच्चैःश्रवा, तव लक्ष्मी, तव शशी प्रिया,
तारा सब आछे आज सुखे स्वर्ग गिया !
करेछे लुण्ठन
तोमार अमृत-सुधा—तोमार जीवन !
सब गेछे, आछे शुधु क्रन्दन कल्लोल,
आछे ज्वाला, आछे स्मृति, व्यथा उतरोल !
ऊर्द्ध्वे शून्य—निम्ने शून्य, शून्य चारि धार,
मध्ये काँदे वारिधार, सीमाहीन रिक्त हाहाकार !
हे महान् ! हे चिर-बिरही !
हे सिन्धु, हे बन्धु मोर, हे मोर बिद्रोही,
सुन्दर आमार !
नमस्कार !
नमस्कार लह !
तुमि काँद,—आमि काँदि, काँदे मोर प्रिया अहरह !
हे दुस्तर ! आछे तव पार, आछे कूल,
ए अनन्त बिरहेर नाहि पार नाहि कूल, शुधु स्वप्न भुल !
मागिब बिदाये यबे, नाहि रव आर,
तव कल्लोलेर माझे बाजे येन क्रन्दन आमार ।
वृथाइ खूँजिबे यबे प्रिया
उत्तरिओ बन्धु ओगो सिन्धु मोर, तुमि गरजिया !
तुमि शून्य, आमि शून्य, शून्य चारिधार,
मध्ये काँदि बारिधार, सीमाहीन रिक्त हाहाकार !

"ऐ मेरे भूखे-प्यासे मित्र, समुद्र, तुम्हारे हृदय में इतना अगाध जल है तो भी तुम्हारी प्यास नहीं मिटती ? इतनी बड़ी और छोटी नदियाँ

आकर तुम्हारे चरणों में आत्म-समर्पण करती हैं तो भी तुम्हारी भूख नहीं मिटती ? हे महाबाहु, दुर्दान्त राहु, तीन भाग तो तुमने पहले ही हड़प लिये हैं, सिर्फ़ एक भाग तो बाक़ी है। अब साकी के पास मदिरा नहीं है, केवल उसके हाथ में प्याला काँप रहा है। हे दुर्गम ! द्वार खोलो, द्वार खोलो। सभी गिरि-कन्दरायें पंक्तिबद्ध होकर बाहर खड़ी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं। सारी शस्य-श्यामला पृथ्वी तुम्हारी अभ्यर्थना के लिये फूलों और फलों से अञ्जलि भरकर बाहर खड़ी है ; किन्तु तुम तो अपनी कल्लोलध्वनि के साथ अपनी मस्ती में भूले हुये हो। क्या तुम्हारे कानों में पृथ्वी का दुःख प्रवेश नहीं करता ? तुमने अतीत को देखा है, तुम वर्तमान को देख रहे हो और भविष्यत् को भी देखोगे। हे अविनाशी ऋषि ! क्या तुम उदासीन भाव से संसार के सुख-दुःख का निरीक्षण करते हो ? जन्म और मृत्यु सुख और दुःख तुम्हारे हृदय में तरंग की तरह उठते और नष्ट होते हैं ?

"हे पवित्र, तुरन्त के खिले हुये फूल के समान तुममें स्नान कर पृथ्वी आज भी शुद्ध और सुन्दर है। हे सहानुभूतिशील, अपने प्रेम-जल से संसार की ग्लानि हरण करो। पृथ्वी तुम्हारी दुलारी लड़की है। उसे ही देखने के लिये तुम मेघ का रूप धारण करके आते हो। तुम्हारी दुलारी हरी घास से मानो हँसती है। ऊपर से तुम जल की धारा क्यों बरसाते हो, मानो तुम्हारी काली आँखों से आनन्द के आँसू बहते हैं। अपनी दुलारी के कौतुक के लिये तुम्हारा अनन्त भंडार है। उसके लिये तुम तरह-तरह के खेल करते हो। नित्य नयी-नयी वस्तुओं को बनाते और बिगाड़ते हो ! हे सुन्दर, जल-बाहु के द्वारा मानो तुमने पृथ्वी की कमर बाँध ली है। नीलकान्तमणि से युक्त कमरबन्द की तरह तुम पृथ्वी के हिंडोल के साथ झूमते हो। भाई, तुम्हारा यौवन अक्षय है। कितनी मत्स्य-कुमारियाँ तुम्हारी प्रेम-मदिरा माँगती हैं। कितनी जल-देवियाँ

तुम्हारे गले में मालायें डालती हैं, किन्तु तुम किस स्वप्न में दिन-रात पागल रहते हो ?

"देवता और दैत्यों ने मथकर तुम्हारे सारे रत्न लूट लिये, तुम्हारा जीवन-अमृत भी अपहरण कर लिया। सारी सम्पत्ति तो लुट गई, आज बचा है, सिर्फ़ तुम्हारा रोना, तुम्हारी ज्वाला, स्मृति और व्यथा। ऊपर नीचे चारोंओर शून्य है; केवल बीच में जल-धारा हाहाकार कर रही है। हे महान्, हे विरही, हमारा नमस्कार स्वीकार करो। आओ, हम तुम दोनों मिलकर रोयें। तुम्हारा किनारा है, मगर इस विरह का किनारा नहीं। तुम्हारी कल्लोल-ध्वनि में मेरा बिदाई के समय का रोना एक सुर में मिल जाता है।

"जब मैं प्रिया को खोज में इधर-उधर भटकता फिरूँगा तब हे भाई समुद्र, तुम अपनी गरजना से मुझे पार उतार देना। हम दोनों शून्य जीव एक साथ मिलकर हाहाकार करेंगे।"

तरुण

आमि झंझा, आमि घूर्णि
आमि पथ सन्मुखे याहा पाइ याइ चूर्णि'।
आमि नृत्य-पागल छन्द,
आमि आपनार ताले नेचे याइ आमि मुक्त जीवनानन्द
आमि हाम्बीर, आमि छायानट, आमि हिन्दोल
आमि चल चञ्चल ठमकि' छमकि'
पथे येते येते चकिते चमकि
फिंदिया दिइ तिन दोल्!
आमि चपला-चपल हिँन्दोल !
आमि ताइ करि भाइ यखन चाहे ए मन या

करि शत्तुर साथे गलागलि धरि मृत्युर पंजा
आमि उन्माद आमि झंझा !
आमि महामारी, आमि भीति धरित्रीर ।
आमि शासन-त्रासन, संहार आमि उष्ण चिर-अधीर ।
बल - वीर
आमि चिर-उन्नत शिर ।
आमि बन्धन-हारा कुमारीर वेणी, तन्वि-नयने वह्नि,
आमि षोड़शीर हृदि सरसिज प्रेम-उद्दाम, आमि धन्यि !
आमि उन्मन मन उदासीर,
आमि विधवार बुके क्रन्दन-श्वास, हा-हुताश आमि हुताशीर
आमि व्यथा पथवासी चिर-गृहहारा यत पथिकेर,
आमि अवमानितेर मरम-वेदना, विष-ज्वाला प्रिय-लाञ्छित बुके गति फेर
आमि अभिमानी चिर-क्षुब्ध हियार कातरता, व्यथा शुनिबिड़,
चित-चुम्बन-चोर-कम्पन आमि थर-थर-थर प्रथम परश कुमारीर !
आमि गोपन-प्रियार चकित चाहनी, छल-करे-देखा-अनुखन
आमि मृण्मय, आमि चिन्मय,
आमि अजर अमर अक्षय, आमि अव्यय !
आमि मानव दानव देवतार भय,
विश्वेर आमि चिर-दुर्ज्जय,
जगदीश्वर-ईश्वर आमि पुरुषोत्तम सत्य
आमि ताथिया ताथिया मथिया फिरि ए स्वर्ग पाताल मर्त्य !
आमि उन्माद आमि उन्माद !!
आमि चिनेछि आमारे, आजिके आमार खुलिया गियाछे सब बाँध !
आमि उत्ताल, आमि तुङ्ग, भयाल, महाकाल,
आमि विवसन, आज धरातल नभः छेयेछे आमारि जटाजाल !
आमि धन्य ! आमि धन्य !!

महा विद्रोही रण-क्लान्त
आमि सेइ दिन हब शान्त !

यबे उत्पीड़ितेर क्रन्दन-रोल आकाशे बातासे ध्वनिबे ना,
अत्याचारीर खड्ग कृपाण भीम रण-भूमे रणिबे ना,

विद्रोही रण-क्लान्त
आमि सेइ दिन हब शान्त !

आमि विद्रोही भृगु, भगवान बुके एँके दिइ पद-चिन्ह,
आमि स्रष्टा-सूदन, शोक-ताप-हाना खेयाली बिधिर बक्ष-करिब
भिन्न !

आमि विद्रोही भृगु, भगवान-बुके एँके दोवो पद-चिन्ह !
आमि खेयाली बिधिर वक्ष करिब भिन्न !!
आमि चिर-विद्रोही वीर—
आमि विश्व छाड़ाये उठियाछि एका चिर-उन्नत शिर !!

"मैं आँधी हूँ, बवंडर हूँ। मेरे रास्ते में जो कुछ पड़ता है उसे मैं चूरचूर कर देता हूँ। मैं बेतहाशा नाचने को स्वच्छंद हूँ। मैं मुक्त जीवनानंद की ताल पर नाचता हूँ। मैं हम्मीर हूँ, छायानट हूँ। मैं चंचल भाव से चलता हूँ। बिजली के समान चंचल हिंडोला हूँ। मेरे जी में जो कुछ आता है वही करता हूँ। कभी शत्रु के साथ गाली-गलौज करता हूँ, कभी लड़ाई करता हूँ। मैं महामारी हूँ। मैं पृथ्वी की त्रास हूँ। मेरा सिर कभी नीचे नहीं झुकता। मैं कुमारिका की खुली हुई वेणी हूँ। स्त्री की आँख की आग हूँ। षोड़शी के हृदय-कमल का उद्दाम प्रेम हूँ। मैं उदासी का उन्मन चित्त, विधवा का रोदन, अग्निज्वाला, पथिक की व्यथा, अपमानित की मर्म्मवेदना, अभि-मानी के चिर-क्षुब्ध हृदय की कातरता, कुमारिका के प्रथम स्पर्श का मनोहारी कंपन, घर की बहू का छल कर पति की ओर देखने का प्रयास

हूँ। मैं मिट्टी का बना हुआ क्षणस्थायी हूँ, चिरस्थायी परमात्मा का अंश हूँ। मैं अजर, अमर और अक्षय हूँ। मैं अव्यय हूँ। मैं मनुष्य, देव और दैत्यों का भय, संसार में अजेय, मर्य्यादा पुरुषोत्तम ईश्वर हूँ। मैं पृथ्वी आकाश और पाताल में विचरता हूँ। आज मैंने अपने को पहचाना है। मैं उत्ताल, भयंकर महाकाल हूँ। मैं वस्त्र-हीन हूँ। मेरी जटा पृथ्वी से आकाश तक फैली हुई है। मैं धन्य हूँ। मैं विद्रोही हूँ। मुझे युद्ध की प्यास है। मैं तभी शान्त हो सकूँगा जब संसार से पीड़ितों की पीड़ा और अत्याचारी के अत्याचार का अंत हो जायगा। मैं विद्रोही भृगु हूँ। काल्पनिक ईश्वर के वन्दन-स्थल पर लात मारकर उसे चूर-चूर कर दूँगा। मैं चिर-विद्रोही हूँ। संसार को छोड़कर मैंने आज अपना सिर ऊँचा किया है।

बरषाय

आदर गरगर
बादर दरदर
ए तनु डरडर
        काँपिछे खरखर

नयन ढलढल
काजोल-कालो जल
        झरे लो झरझर॥

व्याकुल बनराजि   श्वसिछे क्षणे क्षणे,
सजनी मनआजि   गुमरे मने मने।

बिदरे हिया मम
विदेशे प्रियतम
ए-जनु पाखी सम
        बरिषा-जर जर॥

सुरभि केया-फुले
ए हृदि बेयाकुल
काँदिछे दुले दुले
बनानी मर मर ॥

नदीर कलकल
दामिनी जल जल
झाउ एर झलमल
कामिनी टलमल ।

आजि लो बने बने
शुधानु जने जने
काँदिल बायु सने
तटिनी तरतर ॥

आदुरी मादुरी लो
एमन बादरि लो
कह लो कह देखि
डूबिया मरिब कि ?

एकाकी एलोकेशे
काँदिब भालोबेसे ?
मरिब लेखा शेषे
सजनी सर सर ।।

"वर्षा का समय है । बादल उमड़ रहे हैं । डर के मारे शरीर काँपता है । नेत्र आँसू से ढलढल कर रहे हैं । काजल के जैसा काला जल गिर रहा है । वन-लतायें हिल-डोल रही हैं । रमणियों का चित्त उमड़ रहा है । पतिदेव विदेश में हैं । मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है । फूल खिल रहे हैं । बन के वृक्षों से जल टपक रहा है । नदी की कलकल, झाऊ की झलमल, बिजली की दमक, नारी की चंचलता और हवा के झोंके से नदी का रुदन-स्वर सुनाई पड़ रहा है । विरहिणी स्त्री अपनी सखी से पूछती है—हे सखि, ऐसा मानस ऋतु है, बादल आकाश में छा गये हैं । अब मुझसे नहीं

रहा जाता, क्या नदी में डूबकर मर जाऊँ? ऐ सखि, पतिदेव के विरह में अकेली पागल की तरह रोऊँ? तू हट जा, मैं चुपचाप प्राण दे दूँगी।

(१)

शिव-स्तुति

आजानु लम्बित जटा   कपाले रुधिर-फोटा
रुधिरेर अर्धचन्द्र भाले ।
खुले फेले बाघाम्बर   परिलेन रक्ताम्बर
रुद्राक्षेर माला परे गले ॥
करे छिल डम्बुर   आर शिङ्गा सुमधुर
से सकल परित्याग करे ।
छलिते प्रियार मन   छद्मबेशे पञ्चानन
सव्य हस्ते सुखे शूल धरे ॥
कक्षदेशे भिक्षाकुलि   हाते विभूतिर गुलि
स्फटिकेर जपमाला ।
एइ रूप करे वेश   विश्वनाथ अवशेष ॥
उत्तरिला यथा गिरिबाला ॥
देखेन प्रस्तर-कन्या   शिव बिना हए दैन्या
कष्ट करे करेन साधन ।
भवानीर भाव देखे   भव कहिछेन डेके
परिहास करि एतक्षण ॥
शुन ओहे सुन्दरि   केन सस शिर करि
चक्षु मुँदे भाव कोन् जने ।
कि दुःख ता निशाकाले   चतुर्दिके अग्निज्वाले
तप जप कर कि कारणे ॥

कमल हइते अमल तब बदन कोमल
रूप देखे मोहय मुनि ।
कोन् दुःखे हये दुःखी कष्ट कर शशिमुखि
विशेषे वलह ताहा शुनि ॥
किवा जाति कोथा धाम किवा तव हय नाम
काहारे नन्दिनी तुमि धनी ।
ना करिह प्रतारणा सत्य बल सुलोचना
तुमि हओ काहार रमणी
शुनिया कहेन गौरी आमि नाम धरि गौरि
पिता मोर नाम हिमालय ।
शुन शुन हे गोसाञि सत्य बलि तव ठाञि
अद्यावधि विभा नाञि हय ॥
शुने कहेन त्रिपुरारि आहा आहा मरि मरि
कि कथा कहिले विनोदिनि ।
बुझियाछि हे रूपसी विभा विना वनवासी
हइयाछ हए अभिमानी ॥
छि छि तव बाप माय केमने निश्चिन्त रय
विभा नाहि देय कि कारणे ।
बले कए बाप माए विभा कर त्वराए
एभाव बुचाह एक्षणे ॥
सन्न्यासीर कथा शुने ईषत् हास्य वदने
कात्यायनी करेन उत्तर ।
शुन हे जटिल वर पात्र बले भाल वर
पूजा करि देव महेश्वर ॥
आमार मनेर आश अन्यते नाञि पियास
त्रिभुवने आछे यत जन ।

अनुग्रह करि मोरि शिव यदि विभा करे
तबे विभा करिब एखन ।।
से पद मने भावि ए शिवलिङ्ग निर्म्माइए
सदा करि शिवेर साधन ।
शिव बिने अन्य जने ना देखि ना जानि मने
काली नाम करि ए रचण ।।

"आजानुलम्बित जटा है, कपाल में रक्त-बिन्दु, है, रक्त ही का अर्द्धचन्द्र ललाट पर है। उन्होंने बाघाम्बर खोलकर रक्ताम्बर धारण किया। गले में रुद्राक्ष की माला, डमरू और सिंगा सब परित्याग-कर प्रिया का मन जानने के लिए, वेश बदलकर, हाथ में त्रिशूल ले और बगल में भिक्षा की झोली लटकाये दूसरे हाथ में विभूति की गोली और स्फटिक की जय-माला ले, जहाँ पार्वती थीं, वहीं विश्वनाथ पहुँचे। उन्होंने देखा कि हिमाचल की कन्या शिव के बिना दीन हो कष्ट-पूर्वक तप कर रही हैं। भवानी के भाव को जानकर शिवने उपहास करके कहा—अयि सुन्दरी, सुनो। मस्तक झुकाकर और आँख मूँदकर किसकी चिन्ता कर रही हो। तुम्हें क्या दुख है जो इस रात्रिकाल में चारोंओर अग्नि प्रज्वलित-कर तुम तप कर रही हो? कमल से भी अधिक पवित्र और सुकुमार तुम्हारा शरीर है। रूप से तो मुनिजन मोहित हो जाते हैं। किस दुख से अयि चन्द्रमुखी, इतना कष्ट सहती हो। कहो, किस जाति की हो? कहाँ घर है? क्या तुम्हारा नाम है? अयि सुन्दरी! तुम किसकी लड़की हो? मुझसे झूठ मत बोलना। सत्य कहो। अयि सुन्दर आँखों वाली! तुम किसकी स्त्री हो? ये बातें सुन पार्वती ने कहा—मेरा नाम गौरी है। हिमाचल मेरे पिता हैं। हे गुसाईं, मैं सत्य कहती हूँ, सुनें, मेरा विवाह अब तक नहीं हुआ। शिव ने कहा—हाय! हाय! क्या कहती हो सुन्दरी! अब मैंने समझा, विवाह न

होने के कारण तुम अभिमानिनी हो, वनवासिनी हुई हो । छिः ! छिः ! तुम्हारे माँ-बाप कैसे हैं, जो तुम्हारा विवाह नहीं कर देते ? मैं उनसे कहूँगा—वे जल्द ही तुम्हारा विवाह करा देंगे । अभी यह सब जप-तप छोड़ो । संन्यासी की बात सुनो । कात्यायनी ने ज़रा बिहँसकर कहा—ऐ संन्यासी, सुनो । मैं तप के बल से महेश्वर को वर रूप में प्राप्त करूँगी । त्रिभुवन में उनके सिवा मेरे मन की पिपासा किसी दूसरे से नहीं मिट सकती । हाँ, यदि दयाकर शिव मेरा पाणिग्रहण करें तो विवाह करूँगी, अन्यथा नहीं । उन्हीं के चरणों में ध्यानकर, उनकी मूर्त्ति स्थापितकर उनकी उपासना करती हूँ । शिव के अतिरिक्त न दूसरे पुरुष को देखती हूँ और न मन में दूसरे का ध्यान ही करती हूँ ।"

(२)

उमार कुन्तल मेघेर माला ।
ए बूड़ार जटा तमार शला ॥
सिन्दुरेर विन्दु उमार भाले ।
बुड़ार कपाले अनल ज्वाले ॥
चन्दन-चर्च्चित उमार काय ।
आइ आइ छाइ बूड़ार गाय ॥
उमार वसने विचित्र काय ।
दिगम्बरबर ए कि गो लाज ॥
रतने शोभित गिरीन्द्रबाला ।
बरेर गले ये हाड़ेर माला ॥
ताड़ तोड़ बाला उमार गाय ।
बुड़ार वपुते फणी फोंफाय ॥
नील उत्पल उमार आखि ।
उड़र फुल सम इहार देखि ॥

आहा मरि उमा सोणार लता।
बाउलेर करे दिल विधाता॥
चकोर सुखेते याहा ना पाय।
सेइ सुधा विधि काकेते खायाय॥
एइ रूप कहे रमणीगण।
शुनिए हासेन शिव तखन॥
पागलेर वेश शङ्करे हेरे।
रमणीर नयने सलिल झरे॥
कालीर चरण करे स्मरण।
द्विज कालिदास करिल रचन॥

"उमा की कुन्तल-राशि (केश) मेघ-माला-सदृश है और इस बूढ़े के जटा तो ताँबे के सुए हैं। उमा के ललाट में सिन्दूर-विन्दु है और बूढ़े (शिव, रुद्रवेश में) के कपाल पर तो आग जलती है। चन्दन-चर्चित उमा के अंग हैं और बूढ़ा अपने शरीर में तो राख मले है। उमा के वस्त्र कितने सुन्दर हैं; पर निर्लज्ज बूढ़ा दिगम्बर है। उमा के गले में रत्न-माल शोभित है और वर के गले में हाड़ की माला। उमा के अंग अलंकार से भरे हैं और बुड्ढे के शरीर में साँप फुफकारता है। उमा की आँखें नील-कमल के समान हैं और जवाकुसुम के समान उसकी लाल-लाल आँखें हैं। हाय उमा, क्या विधाता ने तुझे एक पागल के लिए ही बनाया था। उफ़, जिस सुधा को चकोर नहीं पाता, उसे कौआ पीता है। स्त्रियाँ इसी प्रकार आपस में बातचीत करती हैं। सुन-सुनकर भगवान् शंकर हँसते हैं। शंकर का पागल का-सा वेश देखकर रमणियों के नेत्रों से अश्रु झरने लगे। कालीजी के चरण कमलों का ध्यानकर द्विज कालिदास ने यह रचना की है।"

द्विज कालिदास

(३)

मनसादेवी की कृपा से बेहुला का नेता नाम की धोबिन के घाट पर आना

पेत्रा रामा उपदेश　　　　दूर गेल दुःख क्लेश
तिन धारा चच्चे तिन बार ।
मिष्ट लवण जल　　　　दुइ धारा सुशीतल
आर धारा लागे येन खार ॥
पाइया खारासीर नीर　　　　मान्दास चालान धीर
अनाहारे अङ्ग टलबल ।
मुखे ना निःसरे बाणी　　　　क्षीण हैल तनु खानि
विषहरी जानिल सकल ॥
बेहुलार नाइ सुख　　　　मनसा भावेन दुःख
दासी बाछा आहा मरि मरि ।
पति जीयाबार आशे　　　　छय मास जले भासे
धन्य धन्य बेहुला सुन्दरी ॥
अन्तरीक्षे देवी थाकि　　　　हनूके आनिल डाकि
शुन बीर श्रीरामेर दास ।
बड़ दुःख बेहुलार　　　　देखिते ना पारि आर
टेन्या आन कलार मान्दास ।
अविलम्बे हनू बीर　　　　लम्फे लम्फे धीरे धीर
राखे लञा धरणीर काछे ।
तबे हनू कपिबर　　　　गेलेन आपनार घर
मान्दास बान्धिया झाड गाछे ॥
माथाय सोणार पाट　　　　नेता एल्ये सेइ घाट
काचिबारे देवतार बसन ।

दुइ पुत्र सङ्गे धाय　　　　　　श्री कविवल्लभ गाय
बेहुला ना करे निरीक्षण ॥

"उपदेश पाकर बेहुला के दुःख दूर होगये। उसने तीनों धाराओं को देखा। मिष्ट और लवण धारायें अति प्रिय प्रतीत हुईं; किन्तु तीसरी धारा खारी थी। खारा जल पा, मञ्जूषे की गति कम होगयी। बेहुला के अंग, निराहार रहने के कारण टलमल करने लगे। मुँह से बात नहीं निकलती थी। शरीर सूखने लगा था। विषहरी ने बेहुला के कष्ट को जान पाया। मनसा मनही मन कहने लगी, हमारी दासी को सुख नहीं है। पति को जिलाने के लिए बेचारी छः मास से जल में बह रही है। उन्होंने हनुमान् को बुलाकर मञ्जूषे को खींच लाने को कहा। तुरन्त हनुमान ने वैसा ही किया। वे मञ्जूषे को झाऊ वृक्ष में बाँधकर घर चले गये।

मस्तक पर स्वर्ण-पाट ले नेतुला (नेता) देवताओं के वस्त्र धोने वहीं आती थी। उसके साथ उसके दोनों पुत्र थे। बेहुला कुछ भी नहीं देखती थी।"

नेता बले शुन रामा पद छाड़ मोर।
कह देखि मोरे यत परिचय तोर ॥
राक्षसी मानुषी तुमि किछुइ ना जानि।
शुनिञा सुन्दरी रामा हय अभिमानि ॥
कार बधू कोथा धाम कार बट नारी।
किबा नाम बटे कह काहार झियारी ॥
जातिहीन रजकिनी किबा आमि जानि।
कार बोले भुल्या धर मोर पद खानि ॥
सविनये बले किछु बेहुला नाचनी।
अशेष पापेर पापी आमि अभागिनी ॥

शुन बलि साथ सदागर जन्मदाता ।
बेहुला अभागिनी नाम अमलावती माता ॥
चम्पक नगरे मोर आछ ए श्वशुर ।
मनसा-सहित बाद बड़इ प्रचुर ॥
बासर घरे शुय्या छिलाम मङ्गल-सूता हाते ।
अकस्मात् स्वामी मोर मैल सर्पाघाते ॥
श्वशुर निष्ठुर गालि सहिते नारिल ।
मृत पति कोले करि मान्दासे भासिल ॥

"नेतुला कहने लगी—"आर्य लक्ष्मी, मेरे पैर छोड़ दो ! मुझे अपना परिचय दो । तुम राक्षसी हो या मानवी, मैं कुछ भी नहीं जानती । कहाँ तुम्हारा घर है ? तुम किसकी पतोहू हो ? कौन तुम्हारे पति हैं ? क्या तुम्हारा नाम है ? किसकी बेटी हो ? मैं तो धोबिन हूँ—"किसके भ्रम से तू मेरे पैर पकड़ती हो ?" विहुला ने नम्रता-पूर्वक कहा—"मैं अत्यन्त पापिनी एवं अभागिनी हूँ । साथ सौदागर मेरे पिता हैं, बिहुला मेरा नाम है, और अमलावती मेरी माँ हैं । चम्पक नगर में मेरे श्वसुर हैं । मनसा के साथ उनका बड़ा विवाद है । मैं कोहबर में अपने स्वामी के साथ सोई हुई थी । हाथ में मेरे मंगल विवाह के कंगन थे । अकस्मात् सर्प-दंशन से स्वामी मर गये । मैं निष्ठुर श्वसुर की गाली नहीं सह सकी और मृत स्वामी को लेकर मञ्जूषे में बह चली ।"

बेहुला बलेन ओगो तुमि मोर मासी ।
तोमार उद्देशे छय मासे जले भासि ॥
पाइलाम तोमार स्थान कि बलिब आर ।
विषम सङ्कटे तुमि करिबे उद्धार ॥
बलिते बलिते रामा हइल मूर्च्छित ।
दु लोचने बहे जल बड़ विपरीत ॥

रचिल रसिक द्विज बल शिव शिव ।
दारा पुत्र लक्ष्मी वृद्धि हय चिरञ्जीव ॥
बेहुलार लोचने देखिया शोक-जल ।
नेतानी धोबानी बले हइया बिकल ॥
पद छाड़ शुन रामा बिलम्ब ना सय ।
त्वराय याइते चाइ देवता आलय ॥
आजिकार दिन तुमि थाक एइखाने ।
वस्त्र दिते याब आमि देवतार स्थाने ॥
बासि बस्त्र काचिबारे आसिब प्रभाते ।
कालि तबे याइबे आमार तबे साथे ॥
बेहुला बलेन मासि मोर प्राण फाटे ।
बासि बस्त्र आन मासि काचि लज्जा पाटे ॥
हासिया बलेन तबे शुनलो सुन्दरि ।
एइ वस्त्र काचिबारे कार बापे पारि ॥
बेहुला बलेन मासि शुन मोर बाणी ।
देवतार बसन काचिते आमि जानि ॥
नेताइ कापड़ काचे साबानेर बोले ।
बेहुला कापड़ काचे शुधु गङ्गाजले ॥
सकल कापड़ तबे शुकाय्या बान्धय ।
कुङ्कुम चन्दन गन्ध कापड़ेते कय ॥
रजकिनी बले रामा कर अवगति ।
कोथा लज्जा राखियाछ निज प्राणपति ॥
वेण्यानी बिनये बले बिशेष प्रकारे ।
मान्दास सहित मड़ा राखियाछि घाटे ॥
बहुत विनति करि धोबानीर पाय ।
मृत पति मान्दासेते आनिबारे याय ॥

"अजी ! तुम हमारी मौसी हो ! तुम्हारे ही लिये में छः महीने से जल में फँसी हूँ। अब मैंने तुम्हारी शरण पायी है, इस विषम दुख से तुम्हीं मेरा उद्धार करोगी ! कहते-कहते विहुला मूर्च्छित होगयी और उसके दोनों नेत्रों से आँसू टपकने लगे। बिहुला की आँखों में शोकाश्रु देखकर नेतुला बिकल हो बोली—"आर्य लक्ष्मी बेटी सुनो ! पैर छोड़ो ! मैं तुरंत देवालय (स्वर्ग) जाऊँगी, आज भर तुम यहीं रहो। मैं कपड़ा देने के लिए देवताओं के यहाँ जाऊँगी। सुबह को मैं बचे हुए कपड़े धोने को यहाँ आऊँगी, और तुम्हें साथ ले चलूँगी !" बिहुला बोली—मौसी मेरा हृदय फटता है। बासी कपड़े ले आओ, उन्हें आज ही धो लें। नेता हँसकर बोली—और कपड़े धोने की मुझमें शक्ति नहीं। बिहुला ने कहा—मौसी मैं भी देवताओं के कपड़े धोना जानती हूँ।

नेतुला साबुन के फेन की सहायता से अर्थात् साबुन से कपड़े धोती; किन्तु बेहुला केवल गंगा-जल ही से कपड़े साफ़ करती। सब कपड़े सुखाकर बाँधे गये। फिर वे कुंकुम और चंदन से सुबासित किये गये। इतना हो जाने पर नेतुला ने पूछा—रामा, अपने प्राणपति को कहाँ रखा है ? विनयपूर्वक बेहुला ने उसे बतलाया कि उसने मंजूषा सहित अपने प्रियतम को किनारे पर रखा है। बहुत प्रकार से अनुनय विनयकर बेहुला मंजूषे से अपने मृत पति को लाने चली।

द्विज रसिक

(४)

सीता दाँड़ाय्या अग्निर विद्यमान।
करि करपुटाञ्जलि हेठ माथे मैथिली
अभिमाने सजल नयान।
कहेन अग्निर आगे सत्य आदि चारि युगे

धर्म्माधर्म्म तोमार गोचर ।
काय वाक्य मोर मने निद्रा स्वप्न जागरणे
छाड़िया प्राणेर रघुबर ॥
रघुनाथ गुणमणि इहा बइ नहि जानि
आदि अन्त कथार प्रसंग ।
तिल मात्र थाके पाप वुचाबे मनेर ताप
प्रवेशे दहिबे मोर अङ्ग ॥
एत बलि ठाकुरानी कहिया बिनय-बाणी
प्रवेशिला कुण्डेर अनले ।
सीतार अंग परशने जीवन सफल माने
येन जननी बालके निल कोले ॥
तप्त काञ्चन जनु जिनिञा सीतार तनु
तताऽधिक हइल उज्ज्वल ।
अग्निकुण्ड माझे रय तिलमात्र नाञि भय
येन जलेर भितर शैंवाल ॥
बानरगण चमकित केह नहे स्थिरचित
सभामने लागिल त्रास ।
अग्नि कि करिले क्षय द्विज मधुकण्ठे कय
बन्दिया पण्डित कृत्तिवास ॥

"सीता अग्नि के निकट जा खड़ी हुईं। हाथ जोड़, नतमस्तक हो, अश्रु भरे नेत्रों से अग्नि-देव से कहने लगीं—"तुम चारों युग में धर्म्माधर्म्म जानते हो। काय, मन और बचन से, निद्रा, स्वप्न तथा जागरण में, प्राणनाथ गुणों की खानि राम के सिवा और कभी किसी को नहीं जानती। यदि तिल-मात्र भी पाप हो, तो मेरे मन की व्यथा को मिटा देना, तुममें प्रवेश करने पर सारा शरीर जला देना।" यह कहकर देवी ने अग्निकुण्ड में प्रवेश किया। सीता

के स्पर्श से अग्नि-देव ने अपने को धन्य माना और माता की तरह उन्हें गोद में ले लिया।

सीता का शरीर तप्त स्वर्ण की तरह आग में और भी उज्ज्वल हो गया। जल के भीतर शैवाल की तरह बिल्कुल निर्भय चित्त से वे अग्निकुण्ड में खड़ी थीं। बानरगण चकित थे। सभी निस्तब्ध थे। द्विज मधुकण्ठ पण्डित कृत्तिवास को वन्दना कर कहता है—"आग ने क्या कर दिया?"

(१)

धरिया माएर पाय रामचन्द्र कय ताय
पिता हैते माता गुरू बट।
वेद शास्त्र जान नीत तुमि सब हिताहित
कोन् मूढ़ बले तोमाय खाट॥
युवतीर पति गति पति गुरु मृत्युसाथी
गुरु-वाक्य लङ्घिबे केमने।
दूर कर यत ताप लङ्घिले हबेक पाप
अतएव यात्ये हलय बने॥
पति युवतीर त्राता जीवन-यौवन-कर्त्ता
मरिले मरिबे तार सने।
नाशिले ताहार कथा परकाले ठेक सेथा
निवेदिये तोमार चरणे॥
राज-कुले याते जन्म जानह सकल धर्म्म
बने यात्ये न कर अन्यथा।
चौद्दवत्सर याब कोनो कष्ट नाञि पाब
मने न भाबिह तुमि व्यथा॥

रामचन्द्र यत कय राणीर मने नाहि लय
पुत्रेर समान नाइ केहो ।
उथलिल शोक-सिन्धु म्लान हैल मुख इन्दु
लोचने राखिते नारे लोह ॥

द्विजमधुकण्ठ कय राणी स्थिरतर नय
बिनाशा बिनाशा राणी कान्दे ।
पुत्र याय बनबास राणी हैल नैराश
शोकावेशे बुक नाहि बान्धे ॥

"माँ के पैर पकड़कर राम ने कहा—"पिता से माता बड़ी हैं। तुम सब वेद-शास्त्र, हित और अहित जानती हो। कौन मूर्ख तुम्हें अल्प बुद्धि-वाली कहता है? स्त्री की गति पति है। गुरु और मृत्यु तक का साथी पति है। फिर तुम गुरु की बात कैसे लाँघ सकती हो? दुखी मत हो। आज्ञोल्लङ्घन से पाप होगा। अतएव बन जाना ही पड़ेगा। पति युवती का त्राता, जीवन और यौवन का विधाता है। मरने पर उसे उसके साथ मरना पड़ता है। तुम्हारे चरणों में निवेदन करता हूँ कि पति की बात न मानने से तुम्हारा परलोक बिगड़ेगा। राजकुल में तुम्हारा जन्म हुआ। तुम सब धर्म जानती हो। बन जाने के लिए मना मत करो। चौदह वर्षों के लिये जाऊँगा। कोई कष्ट न होगा। तुम दुःख मत लाना। रामचन्द्रजी ने बहुत समझाया; पर रानी शान्त न हुईं क्योंकि पुत्र से प्यारा और कोई नहीं होता। शोक-सिन्धु उमड़ पड़ा, मुख-चन्द्र म्लान हो गया। आँखों में आँसू डबडबा आये। द्विज मधु-कण्ठ कहता है—रानी शान्त न हुईं, फूट-फूटकर रोती रहीं। पुत्र के बन जाने से रानी निराश और शोकातुर होगईं।"

द्विज मधुकण्ठ

(६)

राइ कानु निकुञ्ज मन्दिर माझे ।
वसन्ते प्रेमरसे सुखे बिराजे ॥
मन्द-सन्द बहे हिम दक्षिण पवन ।
अशोक किंशुके रामा करे आलिङ्गन ॥
केतकी धातकी फुटे चम्पक काञ्चन ।
कुसुम परागे श्लथ हैल अलिगण ॥
लताय वेष्टित रामा देखिया अशोक ।
खुल्लना बलेन सइ बड़लोक ॥
सइ सइ बलि रामा कोले करे लता ।
स्वरूप बलिबा सइ तप कैले कोथा ॥
आसा हैते तोमार जनस देखि भाल ।
तोमार सोहागे सखी बन हैल आलो ॥
मयूर मयूरी डाके सुमधुर नाद ।
शुनिया खुल्लना रामा भावये विषाद ॥
एक फुले मधु पीये भ्रमर-दम्पति ।
सुमधुर गाय गीत रहे एकमति ॥
विनय करिया ताय बलेन खुल्लना ।
युड़िया उभय कर करेन मानना ॥
सेइ श्याम बन्धु बिनु बनवासी हनु
हृदये जागिछे सेइ श्यामरूप गुण
मधुमास पेये तरुगण विकशित
नूतने पल्लवे बन अति सुशोभित
काञ्चन पलाश फुल नाना जाति यूँथी
चम्पक नागेश्वर आर पुष्प नाना जाति
नाना जाति पुष्पे बने हइया विकशित
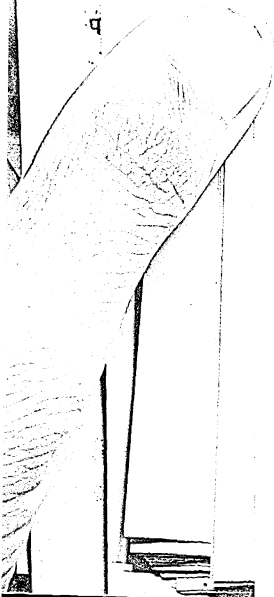
भ्रमर बुलये तथा हइया आनन्दित
सकल विरहिगण हइया नम्रवान्
मन्द मन्द मकरन्द सदा करे पान
मलय पवन बहे अति सुशीतले
नाना पुष्पे अलिगण मधुखाय्या बुले
देखि सखीगण सब करि अनुमाने
एक कथा कहि सखि यदि लय मने
हेन्न काले भृंग उठि अन्य बने गेल
अकस्मात् आसि तथा मेघ उपजिल
ताहा देखि मयूर मयूरी नृत्य करे
दुहे दुहा प्रेमे माति आपना पासरे
मयुरेर नृत्य देखि बले गोपीगणे
विरह बाढ़ल गोपीर कृष्ण पड़े मने
हा कृष्ण हा प्राणनाथ बड़ निदारुण
तोमार कारण मोरा फिरि बनेबन
आमरा अबला जाति ताहे बिरहिणी
तोमार विच्छेदे देहे ना रहे पराणी
मेघेर बरण देखि कान्दे गोपीगण
चक्षु मेलि ना देखिब कालिया – बरण ॥

"राधा और कृष्ण वसन्त काल में प्रेम-रस में विभोर हो निकुञ्ज के बीच विराजमान हैं। मन्द-मन्द शीतल दक्षिण पवन बह रहा है। अशोक एवं पलास के फूलों को नारी प्यार से सूँघती हैं। केतकी, धातकी, एवं स्वर्ण चम्पक खिले हैं। फूलों के पराग से भ्रमर गण मुग्ध होगये। अशोक को लताजड़ित देख खुल्लना बोली—"सखो! तुम भाग्य-शालिनी हो।" 'सखो,' 'सखी', कह उसने लता को गोद में उठा लिया। अयि सखी! कहो, तुमने इतना तप कहाँ किया? मुझसे तुम्हारा जन्म

अधिक सार्थक है। तुम्हारे सुहाग से वन प्रफुल्लित है। मयूर-मयूरी, मधुर रव से गाते हैं। सुनकर खुल्लना चिन्तित होगई। एक फूल पर भ्रमर-दम्पति बैठकर मधु-पान कर रहे थे। दोनों एकाग्र हो प्रेम-गान गाते थे। खुल्लना दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहने लगी—"उसी श्याम-बन्धु के लिए मैं वनवासिनी हुई हूँ। हृदय में वही रूप-गुण जाग्रत हैं। मधु-मास (चैत) पा सब वृक्ष खिल उठे हैं। नये-नये पत्तों से वन अत्यन्त शोभायमान है। काञ्चन, पलाश, नाना प्रकार की जूही, चम्पा, नागेश्वर, इत्यादि नाना प्रकार के फूल वन में खिले हैं। भौंरे वहाँ आनन्दित हो मँड़राते हैं। सब विरहीगण वहाँ नम्र भाव से मन्द-मन्द मकरन्द पान करते हैं। अत्यन्त सुशीतल मलय पवन बहता है। भौंरे पुष्पों पर मधु पान करते फिरते हैं। यह देख सखीगण बसन्त के प्रभाव से प्रभावित होती हैं। आपस में कुछ बातचीत भी करती हैं। इसी समय भौंरे उड़कर दूसरे वन को चले गये। अचानक बादल घिर आये। बादल देख मोर-मोरनी नाचने लगीं। दोनों एक दूसरे के प्रेम में विभोर हो अपने को भूल गये। मोर की नाच को देख गोपीगण बोलीं"—विरह-व्यथा बढ़ती जाती है। कृष्ण याद पड़ते हैं। हा कृष्ण! हा प्राणनाथ! तुम बड़े कठोर हो। तुम्हारे ही लिए हम सब बन-बन भटकती फिरती हैं। हम सब अबला हैं। इसीलिए विरहिणी हैं। तुम्हारे विरह से प्राण अब देह में नहीं रहेंगे। मेघ का रंग देख गोपीगण रोती हैं। आह! अब कालियादमन कृष्ण को आँख भर नहीं देखूँगी।"

(७)

राइ साजे बाँशी बाजे ना बाँधिल चुल
कि करिते किना करे सब हैल भुल
मुकुर आँचड़े राइ बाँधे केश भार
पाये बाँधे फुलेर माला ना करे विचार

करेते ते नूपुर परे, जंघे परे ताड़
गलाते किंकिणी परे कटितटे हार
चरणे काजल परे नयने आलता
हियार उपरे परे पंकराज-पाता
श्रवणे करये राइ बेशर साजना
नासार उपर करे बेणीर रचना
वंशीबदने कहे याइ बलिहारि
श्याम अनुरागेर बलाइ लये मरि

"वंशी बज रही है। उसकी ध्वनिसुनने में राधाजी इस कदर विभोर हैं कि वे अपना केश तक बाँधना भूल गईं। क्या करते, क्या कर डाला। सभी शृंगार उलटा हो गया है। कंघी से केश न झाड़कर, उसे आइने से झाड़ती हैं। पैर में फूलों की माला बाँधती हैं, कुछ भी नहीं सोचतीं। नूपुर पैरों में न पहन हाथों में पहनती हैं और बाजूबन्द जाँघ में। कमर की किङ्किणी गले में, और गले का हार कमर में। काजल आँखों में न लगाकर पैरों में लगाती हैं। महावर (रंग-विशेष) पैरों में न लगाकर आँखों में लगाती हैं। बाँहों में बांक न पहनकर, उसे हृदय से लगाती हैं! राधा कानों में बेसर सजाती हैं और बेणी पीठ की ओर न बाँध, आगे की ओर बाँधती हैं। वंशीवदन कहते हैं बलिहारी है, मैं तो श्याम के प्रेम की बलैया लेकर मरूँ।"

वंशी-वदन

(८)

मोहन विजन वने, दूरे गेल सखी गणे एकला रहिला धनी राइ
दुटी आखि छलछले, चरण कमल तले कानु आसि पड़ल लोटाइ
विनोदिनि जनम सफल भेल मोर!
तोमा हेन गुणनिधि पथे आनि दिल बिधि आजुक सुखेर नाहि ओर

रविर किरण पाइछे चाँदमुख घामियाछे मुखर मञ्जीर दुटी पाय !
हियार उपरे राखि जुड़ाब तापित आखि चन्दने-चर्च्चित करि गाय ॥
एतेक मिनती करि राइएर करे धरि मुछाइल पद पीत बासे ।
निर्ज्जने दोंहार सने मिलन निकुञ्जबने मनेमने हासे वंशीदासे ॥

"उस मोहक निर्ज्जन बन में जब सखियाँ दूर चली गईं और श्री राधाजी अकेली रह गईं तब श्रीकृष्ण अश्रुभरी आँखों से उनके चरणों में लोट गये । हे आनन्द-दायिनि ! आज मेरा जन्म सफल होगया । तुम्हारे समान गुण-शीला को विधाता ही ने ला दिया है । मेरे आज के सुख का अन्त नहीं है । सूर्य्य की किरणों से तुम्हारा चन्द्र-मुख कुम्हला गया है । मैं तुम्हारे पैरों को हृदय से लगा और तुम्हारे शरीर को चन्दन से चर्च्चित कर, अपनी तप्त आँखें शीतल करूँगा । इतनी विनती कर, राधा का हाथ पकड़, श्रीकृष्ण ने अपने पीताम्बर से उनका पैर पोंछा । वंशीदास इस प्रकार दोनों के एकान्त मिलन को देखकर मन ही मन प्रसन्न होते हैं ।"

(६)

बड़ि माइ कानुरे पराण पोड़े मोर ।
यमुना पुलिन-बने देखियाछि रखालसने खेलारसे हैया छिल भोर
वंशीबटेर तल छाया अति सुशीतल ताहाते याइते ना लय मन
रविर किरणे चान्द मुखखानि घामिया छिल भोके आखि अरुण
बरण
पीत धड़ा-अंचल घामे तितियाछिल धूलाय धूसर श्याम काया
मोर मने हेन लय यदि नहे लोक-भय आँचर झापिया करू छाया
कि करिब कोथाय जाब ए दुख कहारे कब
ना कहिले मनेर व्यथा रय

"अरी माँ ! कन्हैया मुझे रह-रहकर याद आता है । यमुना-तटवर्ती वन में मैंने उसे ग्वाल-बालों के साथ खेल में तन्मय देखा था । वंशी-वट के नीचे ठंढी छाया थी; पर वहाँ जाने को उसे ख़याल ही नहीं । सूर्य्य

की किरणों से चन्द्र-मुख पसीने से तर हो रहा था; आँखें लाल हो गई थीं, पीताम्बर धूप से गरम और श्याम शरीर धूल-धूसरित होगया था। मेरे मन में तो ऐसा होता है कि यदि लोक-लज्जा न होती तो मैं अपना अंचल फैलाकर छाया कर देती। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे यह दुःख कहूँ और कहे बिना भी तो मन की पीड़ा दूर नहीं होती !"

वंशीदास

(१०)

किरूप देखिनुँ मधुर मूरति पीरिति रसेर सार।
हेन लये मने ए तिन भुवने तुलना नाहिक आर॥
बड़ि विनोदिया चूड़ार टालनि कपाले चन्दन चाँद।
जिनि बिधुबर वदन सुन्दर भुवनमोहन फाँद॥
नव जलधर रसे ढरढर बरण चिकसा काला।
अंगरे भूषण रजत काञ्चन मणि-मुकुतार माला॥
योड़ा भुरु येन कामेर कामान केबा कैल निरमाण।
तरल नयने तरेछ चाहनि विषम कुसुम-बाण॥
सुन्दर अधरे मधुर मुरली हासिया कथाटी कय।
द्विज भीम कहे उरुप नागर देखिले पराण रय॥

"कैसा रूप देखा ? सुन्दर मूर्त्ति ! मानो प्रेम-रस का सार हो ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इन तीनों लोकों में उसकी उपमा का दूसरा नहीं है। केश-मुकुट की झुकावट और भाल में चन्दन-बिन्दु बड़े ही आनन्द-दायक हैं। चाँद से बढ़कर सुन्दर मुख मानो विश्व को मुग्ध करने के लिए है। उसका चिकना श्यामल अंग, मानो नये जल से छलछलाता हुआ बादल हो। शरीर में सोने-चाँदी के आभूषण हैं। मणि-मुक्ता की माला है। उसकी भौंहें, जो कामदेव के धनुष के समान हैं, किसने बनाई हैं ? रसभरी आँखों की तिरछी चितवन कुसुम-सर के समान

है। ललित अधरों से सुन्दर बाँसुरी लगी हुई है। हँस-हँसकर बात करता है। द्विज भीम कहते हैं कि नागर कृष्ण का सुन्दर रूप देखकर हृदय शान्त हो जाता है।"

द्विज भीम

(११)

मुरली-शिक्षा

बहु दिनेर साध आछे हरि।
बाजाइते मोहन-मुरली॥
तुमि लह मोर नील साड़ी।
तव पीत धड़ा देह परि॥
तुमि लह मोर गज मनि।
मोरे देह तोमार मालती॥
झापा खोपा लह खसाइया।
मोर देह चूड़ाटि बान्धिया॥
तुमि लह सिन्दूर कपाले।
तोमार चन्दन देह भाले॥
तुमि लह कङ्कण केयूरी।
तोर ताड़ बाला देह परि॥
तुमि लह मोर आभरण।
मोरे देह तोमारि भूषण॥
सुन मोर एइ निबेदन।
शुनि हरषित वृन्दावन॥

"हरि! बहुत दिनों से मोहन-मुरली बजाने की मेरी लालसा है। तुम मेरी नील-साड़ी लो और मुझे अपना पीताम्बर दे दो, मैं पहनूँ। तुम मेरी गज-मुक्तामाल लो, और अपनी मालती-माल मुझे दो। मेरे इस फैले हुए खोपे को तुम उतार लो और मुझे चूड़ा बाँध दो। सिन्दूर-विन्दु

अपने कपाल में लगा, मेरे मस्तक में चन्दन लगा दो। तुम मेरा कंकण पहन लो और मुझे अपना ताड़ और बाला पहना दो। मेरे गहने तुम ले लो और अपना आभूषण मुझे दे दो। हे हरि, मेरी यही विनती है, इसे ध्यान से सुनो ! वृन्दावनदास इसे सुनकर हर्षित होते हैं।"

वृन्दावनदास

(१२)

झर झर बरिषे सघन जलधार
दशदिश सबहूँ भेल आँधियार
ए सखि किये करब परकार
अब यनु वार ये हरि-अभिसार
अन्तरे श्याम चन्द्र परकाश
मनहि मनोभव लये निजपाश
कैछने संकेत बञ्चब कान
सुमरइ जर जर अथिर पराण
झलकइ दामिनी दहन समाज
झन् झन् शबद कुलिश झन् झान्
घर माह रहत रहइ ना पार
कि करब इ सब विधिनि बिथार
चढ़ब मनोरथ सारथि काम
तोरित मिलायब नागर ठाम
मन मझु साखी देत पुनुबार
कह कवि शेखर कर अभिसार

"घोर वर्षा हो रही है। दशों दिशाओं में अन्धकार है। अयि सखी, क्या उपाय करूँ (प्रकृति-विपरीत देख, सखी अभिसार छोड़ देने को कहती है; पर नायिका इसको स्वीकार नहीं करती, वह कहती है—) मुझे कृष्ण के पास अभिसार करने से मत रोको। हृदय तो कृष्णचन्द्र से

आलोकित है, अर्थात् हृदय में कृष्ण के प्रति मेरी आसक्ति अत्यन्त स्वच्छ है। मनोभव सारे मेरे साथ ही हैं (भूले नहीं हैं), श्याम के संकेत को क्योंकर भूल सकूंगी? स्मरण करने ही से तो मेरा प्राण व्याकुल हो उठता है! बिजली अग्नि के समान चमकती है। बज्र झन् झन् कठोर शब्द करता है। घर में भी तो मैं नहीं रह सकती! क्या करूंगी, इतने विघ्न फैले हैं, लेकिन हाँ, यद्यपि शारीरिक मिलाप नहीं हो सकता; पर मानसिक मिलाप तो हो सकता है। मेरी अभिलाषायें मेरे रथ का काम करेंगीं, काम मेरा सारथी होगा। बस, मैं तुरत नागर के पास पहुँच जाऊँगी। कविशेखर कहते हैं, मेरा मन कह रहा है, तुम फिर भी अभिसार करो।"

(१३)

गगने अब घन मेह दारुण सघन दामिनी झलकइ।
कुलिश-पातन शबद झन्‌झन् पवन खरतर वेगे चलइ॥
सजनि आजु दुरदिन भेल।
कन्त हमरि नितान्त अगुसरि संकेत कुञ्जहि गेल॥
तरल जलधर बरिखे झर झर गरजे घन घनघोर।
श्याम नागर एकते कैछने पन्थ हेरइ मोर॥
सुमरि मझु तनु अबश भेल जनि अथिर थर थर काँप।
इ मझु गुरुजन-नयन दारुण घोर तिमिरहिँ झाँप॥
तोरिन चल अब किये विचारह जीवन मझु अगुसार।
कवि शेखर बचने अभिसार किये से बिघिन विपार॥

"आकाश में घने मेघ छाये हैं, बिजली रह-रहकर ज़ोर से चमक उठती है, झन्‌झन् शब्द करके बज्र गिरते हैं, हवा बड़े ज़ोर से चल रही है। हे सखी! आज का दिन तो बड़ा भयावना हो रहा है। मेरे प्राण-बल्लभ बहुत पहले ही मुझे संकेत कर कुञ्ज में गये हैं! पानी वाले मेघ झर्‌झर् कर बरस रहे हैं—गरज रहे हैं। आह, नागर श्याम किस

प्रकार अकेले मेरी राह देखते होंगे ! स्मरण करते ही मेरे अंग थर-थर काँपने लगते हैं। मुझे तो इन गुरुजनों के तीक्ष्ण नयनों से अपने को बचाकर घोर अंधकार में टटोल-टटोलकर बेठिकाने जाना होगा। हे मन ! चलो, अब क्या बिचारते हो ? जीवन में अग्रसर होओ। कवि शेखर कहते हैं, अभिसार करो, ये सब विघ्न कुछ नहीं हैं।"

(१४)

चिरणी करे धरि केश वेश करि सींथाये देइ सिन्दूर
नाना बेश करि बसन परायइ पाय धरि पराये नूपूर
सइ पियागुण कहने ना याय !
दरिद्र येन तिलेक ना छाड़इ रभसे रजनी गोड़ाय
से मोर श्रम-जल आचरे मोछइ देइ बसनक बाय
चुबुक करे धरि सघने निरखइ मुखभरि ताम्बूल खाऊयाय
वृन्दाबन भरि रसेर बादर दिन रजनी नाहि जान
कृपण-धन-सम तिलेक ना छोड़इ कविशेखर परमाण

"हाथ में कंघी ले, केशों को सजाकर, माँग में सिंदूर दे देते। कपड़े बदल-बदलकर, साज बना, मुझे पहनाते। पैर पकड़कर पायजेब पहनाते। सखी, प्रियतम के गुण कहे नहीं जा सकते। दरिद्र जिस प्रकार धन को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार रात में मुझसे पलभर के लिए अलग नहीं होते। जब मैं पसीने से तरबतर हो जाती हूँ तब वे अपने कपड़े के छोर से मेरा पसीना पोंछकर फिर कपड़े से पंखा करते हैं। वे मेरा चिबुक पकड़कर मुझे बहुत देर तक एकटक देखते रहते हैं। वृन्दावन में सदा रस का बादल छाया रहता है। रात और दिन कब हुआ, कुछ पता नहीं चलता। कविशेखर कहते हैं, कृपण जिस प्रकार धन नहीं छोड़ता, उसी प्रकार मुझे वे पलभर के लिए भी नहीं छोड़ते।"

(१५)

सइ पीरिति पिया से जाने
ये देखि ये शुनि चिते अनुमानि निछनि दिये पराणे
मो यदि सिनान आगिला घाटे पिछला घाटे से नाय
मोर अंगेर जल परश लागिया बाहु पसारिया रय
वसने बसन लागिबे लागिया एकइ रजके देय
मोर नामेर आध आखर पाइले हरिष हइया लेय
छायाय छायाय लागिबे लागिया फिरये कतेक पाके
आमार अङ्गेर बातास ये दिगे से मुख से दिगे पाके
मानेर आकुति बेकत करिते कतन संधान जाने
पादेर सेवक रायशेखर किछु बुझे अनुमाने

"प्रियतम उसी प्रेम को जानता है, जिसे देख, सुन और हृदय में अनुभवकर प्राण निछावर किया जाता है। यदि मैं सामनेवाले घाट पर स्नान करूँ तो वह पीछेवाले घाट पर स्नान करता है। मेरे शरीर से लगा हुआ जल स्पर्श करने के लिए वह बाँह फैलाये रहता है। कपड़े से कपड़े लगेंगे, यह जानकर एक ही धोबी को कपड़े देता है। मेरे नाम के आधा अक्षर (रा, या धा) को पाते ही बड़े हर्ष से कहा करता है। जिससे उसकी छाया और मेरी छाया टकराये, यह सोचकर वह मेरे पीछे-पीछे कितने ही चक्कर लगाया करता है। मेरे शरीर की हवा जिधर जाती है वह उधर ही मुँह किये रहता है। अपने हृदय की व्याकुलता कम करने के लिये वह कितना उपाय करता है। पद-सेवक रायशेखर अनुमान कर कुछ-कुछ समझते हैं।"

रायशेखर

मुसलमान पदकर्तागण

(१६)

बनमाली श्याम तोमार मुरली जग प्राण ॥ ध्रु० ॥
शुनि मुरलीर ध्वनि भ्रम याय देवमुनि ।
त्रिभुवन हय जरजर
कुलवती यत नारि, गृहवास दिल छाड़ि
शुनिया दारुण वंशी स्वर
जाति धर्म्म कुल नीति, तेजि बन्धु सब पति
नित्य शुने मुरलीर गीत
वंशी हेन शक्ति धरे तनु राखि प्राणीहरे
वंशी मूले जगतेर चित
ये' शोने तोमार वंशी से बड़ देवेर अंशी
प्रचारि कहिते वसि भय
गृहवास किवा साध वंशी मोर प्राणनाथ
गुरु पदे अलिराजा कय

"हे बनमाली श्याम, तुम्हारी मुरली जगत का प्राण है । मुरली की ध्वनि सुनकर देव, मुनि सब अपने को भूल जाते हैं । तीनों लोक व्याकुल हो उठता है । जितनी कुलवती स्त्रियाँ थीं, सबने इस घोर वंशी-नाद को सुन, घर में रहना छोड़ दिया है । वे जाति-धर्म, कुल-नीति, भाई, पति इत्यादि सबको छोड़कर प्रतिदिन मुरली की गीत सुनती हैं । वंशी में तो ऐसी शक्ति है कि वह शरीर को ज्यों का त्यों छोड़कर प्राण हो निकाल लेती है । वंशी में ही संसार का मन वसता है । जो तुम्हारी वंशी सुनता है, निश्चय ही उसमें देव अंश अधिक है । अधिक कहने में डर लगता है । वंशी मेरा प्राणनाथ है । मुझे घर में रहना कठिन होगया है । अलिराजा गुरु-भक्ति के हेतु वर्णन करते हैं ।"

अलिराजा

(१७)

बाँशी बाजान जानो ना ।
असमय बाजाओ बाँशी पराण माने ना ॥
यखन आमि बैसा थाकि गुरुजनार काछे ।
तुमि नाम धइरा बाजाओ बाँशी आर आमि मइरि लाजे ॥
ओपार हइँते बाजाओ बाँशि एपार हइते शुनि ।
आर अभागिया नारी हाम हे सातार नाहि जानि ॥
ये भाड़ेर बाँशेर बाँशी से भाड़ेर लागे पाँओ ।
जड़े मूले उपाड़िया यमुनाय भासाओ ॥
चाँद क़ाजि बले बाँशी शुन भुरे मरि ।
जीमु ना जोमु ना आमि ना देखिले हरि ॥

"तुम बाँसुरी बजाना नहीं जानते ! मौके वे मौके हर घड़ी बजाते रहते हो। बाँसुरी सुनकर मेरा जी उकताने लगता है। जब मैं गुरुजनों के पास बैठी रहती हूँ, तो तुम मेरा नाम लेकर बाँसुरी बजाते हो। उस समय मैं तो लाज के मारे अधमरी-सी हो जाती हूँ। तुम यमुना के उस पार से बजाते और मैं इसी पार से सुनती हूँ। ऐसी अभागी हूँ कि तैरना भी नहीं जानती। जिस भाड़ के बाँस की यह बाँसुरी बनी है, उसे जड़-मूल से उखाड़कर यमुना में भँसा दो। चाँद काजि (कवि) कहता है कि बाँसुरो सुनकर तो मैं बेसुध-सा हो रहा हूँ। हरिदर्शन के बिना मैं नहीं जी सकता, नहीं जी सकता।"

चाँद काजि

(१८)

गोष्ठ-लीला

धेनु संगे गोठे रंगे
खेलत राम सुन्दर श्याम
पाँचनि काँचनि वेत्र वेणु

मुरली आलापि गानरि
प्रियदाम, श्रीदाम सुदाय मेलि
तरणितनया तीरे केलि
धवलि श्याङ्गलि ग्राउबि ग्राउबि
झुकरि चलन कानरि
बयस किशोर मोहन भाँति
बदन इन्दु जलद काँति
चारु—चन्द्रि मुक्ताहार
वदने मदन भानरि
अगम निगम वेद-सार
लीला चे करन गोठ विहार
नासीर ममुद करत आश
चरणे शरण दानरि

"गौत्रों के साथ आनन्द में मग्न, सुन्दर श्याम मैदान में खेलते हैं। सुन्दर कछनी काछे बाँस की बाँसुरी में ग्रालाप कर रहे हैं। प्रियदाम, श्रीदास, सुदाम आदि सखाओं के साथ यमुना-तीर पर खेल रहे हैं। "धौली आ आ ! सौंरी आ आ !" कह, श्याम गौत्रों को बुलाते हुए ठुमुक-ठुमुककर चलते हैं। सुन्दर, मोहक किशोर वयस है, मेघवर्ण मुखचंद है। सुन्दर मूँगे का हार पहने हुए हैं। मुखमण्डल में तो मदन-सूर्य की आभा है। अगम निगम वेदों के सार के ही अनुकूल लीला करते हैं। नसीर ममुद चरणों में आश्रय पाने के प्रार्थी हैं।"

नसीर ममुद

(१९)

एक दिन हबे यदि अवश्य मरण
केन एत आशा तबे एत द्वन्द कि कारण ॥

एइ ये मार्जित देह, यारे एत कर स्नेह,
धूलि-सार हबे तार मस्तक चरण ॥
यत्ने तृणकाष्ठ खान, रहे युग परिमाण,
किन्तु यत्ने देह-नाश ना हय वारण ॥
अतएव आदि अन्त, आपनार सदा चिन्त,
दया कर जीवे लव सत्येर शरण ॥

"जब एक दिन मृत्यु अवश्य होगी, तब इतनी आशा क्यों ? इतना द्वन्द्व किस कारण ? यही सुन्दर और स्वस्थ शरीर, जिसे इतना प्यार करते हो, सर से लेकर पैर तक सब धूल में मिल जायगा। तृण और काष्ठ हिफ़ाजत से बहुत दिन तक रखे जा सकते हैं; किन्तु यत्न से भी देह का नाश नहीं रुक सकता। अतएव सदा अपना आदि-अन्त सोचो, जीवों पर दया करो, और सत्य की शरण लो।"

कत आर सुखे मुख देखिब दर्पणे।
ए मुखेर परिणाम वारेक ना भाव मने ॥
श्याम केश श्वेत हबे, क्रमे सब दन्त याबे,
पलित कपोल कण्ठ हबे किछु दिने ॥
लोल चर्म्म कदाकार, कफ कास दुर्निबार,
हस्त-पद-शिरः-कम्प भ्रान्ति क्षणे क्षणे ॥
अतएव त्यज गर्व्व, अनित्य मानिबे सर्व्व,
दया जीवे नम्रभावे भावो सत्य निरञ्जने ॥

"आइने में कितने सुख से मुख देखते हो; इस मुख का परिणाम एक बार तो मन ही मन सोचो। काले बाल सफ़ेद होंगे। धीरे-धीरे दाँत सब गिर जायँगे और कुछ दिन में कण्ठ और कपोल पलित हो जायँगे। समस्त शरीर ढीला-ढाला और विकृत हो जायगा। कफ और खाँसी तङ्ग करेगी। हाथ और सर काँपने लगेंगे। स्मरण-शक्ति जाती रहेगी। अत-

एवं गर्व छोड़ो और सब कुछ अनित्य समझकर तुम जीवों पर दया करो। नम्र भाव से सत्य निरञ्जन को भजो।"

(२०)

मन यारे नाहि पाय नयने केमने पावे।
ये अतीत-गुणत्रय, इन्द्रिय-विषय नय,
रूपेर प्रसङ्ग ताय केमने संभवे॥
इच्छामात्रे करे ये विश्वेर प्रकाश,
इच्छामात्रे राखे इच्छामात्रे करे नाश,
सेइ सत्य सेइ मित्र नितान्त जानिबे।

"जिसे मन नहीं पा सकता, उसे आँखें कैसे पायेंगी। जो तीनों गुणों से अतीत है, इन्द्रियों का विषय नहीं है, उसमें रूप का प्रसङ्ग कैसे सम्भव है? जिसने इच्छामात्र से विश्व में प्रकाश किया, जो उसकी रक्षा और विनाश करता है, केवल उसीको सत्य और अपना मित्र समझो।"

राजा राममोहनराय

(२१)

खेमटा

प्रयोजन आर नाइक फूले।
तोरे हेरे अङ्ग ज्वले।
माने माने या मालिनी।
अपमान हबि शेषकाले॥
शिवपूजा सांग होलो।
एखन कि तोर घूम भाँगिलो॥
रङ्ग भङ्ग जानिस् भालो।
एक रकमे चिरकाल काटालो॥

"अब फूल की ज़रूरत नहीं। तुम्हें देखकर गुस्सा आता है। ऐ मालिन! अच्छा है, अभी यहाँ से हट जा। नहीं तो फिर अपमानित

होना पड़ेगा। क्या जब शिव-पूजा समाप्त हुई, तब तुम्हारी नींद टूटी? रङ्ग में भङ्ग करना अच्छा जानती हो। सदा एक ही तरह तुमने अपने दिन बिताये।"

(२२)

कव्वाली

दुष्टहासि मिष्टभाषी अविश्वासी नारी।
सोहागेर सामग्री बटे विच्छेदेर काटारी॥
नारीर चक्र बुझा भार, व्यक्त आछे त्रिसंसार।
नारीर पदतले पड़े आछेन त्रिपुरारी—
मान भाँगिलेन भगवान् नारीर पाय धरि॥
नारीर जन्ये कीचक म'ल, रावण निर्वंश ह'ल,
आमि कि बुझिब बोला नारीर छल-चातुरी॥

"दुष्ट हँसीवाली और मधुर-भाषिनी स्त्री अविश्वासिनी होती है॥ सोहाग की सामग्री होते हुए भी वह विच्छेद की कटारी है। तीनों लोक में विदित है कि स्त्री का चक्र समझना कठिन है। त्रिपुरारी स्त्री के पैरों पड़े हैं। स्त्री का पैर पकड़ कर भगवान् ने उसको मनाया है। स्त्री के लिये ही कीचक मरा और रावण का सत्यानाश होगया। भला बताओ, मैं कैसे स्त्रियों के छल-कपट को समझ सकूँगा।"

(२३)

आड़ा

मान त्यज ओ मानिनि, यामिनी होलो आगत।
अनुगत जन-प्रति बंचना करिबे कत॥
चेये देख विनोदिनि, अस्तगत दिनमणि,
सुधांशु आसि आपनि, गगनेते समुदित।
आरो देख चन्द्राननि, चाँदे मत्त चकोरिणी,
ताते कोकिलेर ध्वनि,
शुनिये हइ प्राणे हत॥

"हे मानिनी, रात्रि हुई, अब तो मान छोड़ो। मैं तुम्हारा अनुगत हूँ, भक्त हूँ। मेरे साथ इतनी चालाकी क्यों? हे विनोदिनि! देखो, सूर्यास्त होगया। चन्द्रमा आकाश में निकल आया। हे चन्द्रमुखी! यह भी देखो कि चन्द्रमा को देखकर चकोरी प्रेम विभोर है। कोकिल का कलरव सुनकर प्राण आहत हो रहा है।"

(२४)

खेमटा

एमन साध्य आछे कार।
सागर छेंचे मणिक एने हाते देय तोमार॥
अजागरेर निद्रा येमन,
तोमार तेमनि पणापण,
अपार नदी सांतारे येन हते चाव पार

"ऐसा पराक्रमशाली पुरुष कौन है, जो समुद्र उलीचकर मणि-रत्नों को तुम्हारे लिये ला दे? अजगर की निद्रा जैसा ही तुम्हारा प्रण है और असीम नदी में तैरकर पार होना चाहते हो।"

गोपालउड़े (उड़ीसावासी)

हिन्दू-मुसलमान

(२५)

एक बापेर दुइ बेटा ताजा मरा केह नाय
सकलेरि एक रक्त एक घरे आश्रय॥
एक मायेर दुग्ध खेये एक दरियाय याय
कारो गाये शालेर कोर्त्ता, कारो गाये छिट्।

दुइ भाइरे देखते फिट्।

केवल जबानिते छोटो बड़ो-बाबा-बाचाल चेना याय।
केवो बोले दुर्गा-हरि, केवो बोले बिशमोल्ला आखेरि,

पानि खेते याय एक दरियाय ।
माला पैते एकजन धरे, केह बा सुन्नत कोरे
तबे भाइ-भाइते मारा मारि करे'
याच्छिस् केन सब गोल्लाय

"एक पिता के दो पुत्र हैं । दोनों समान हैं । सब का रक्त एक है, एक ही घर में रहते हैं, एक ही माँ का दूध पीते हैं एक ही नदी में स्नान करते हैं । कोई कीमती रेशम, तो कोई मामूली कपड़े का कुर्त्ता पहनता है । दोनों भाई देखने में सुन्दर हैं । केवल जवानी में ही छोटा-बड़ा गूंगा और वाचाल पहचाना जाता है । कोई दुर्गा, कोई हरि और कोई बिस्मिल्ला कहता है; पर सब एक ही नदी का पानी पीते हैं । एक माला धारण करता है, तो दूसरा सुन्नत करता है । फिर भाई, आपस में लड़-झगड़कर बरबाद क्यों हो रहे हो ?"

पागला कानाइ

विविध प्राचीन अज्ञात

(२६)

बन्धु तोमाय करबो राजा बसे तरुतले ।
चोखेर जले धुये या मुछाब आँचले ।
बनफुलेर माला गेंथे देबो तोर गले ॥
सिंहासने बसाइते, दिब एइ हृदय पेते ।
पीरिति परम मधु दिब तोरे खेते;
विच्छेदेर बेंधे एने फेलबो पायेर तले ।
मालंच आर पुष्प एसे फुटबे केवार डाले ।

"भाई, तुम्हें वृक्ष के नीचे बैठाकर राजा बनाऊँगा । पैर आँसुओं से धोकर अञ्चल से पोछूँगा । बन-पुष्पों की माला गूँथकर तुम्हारे गले में

पहनाऊँगा। सिंहासन के बदले हृदय का आसन बिछा दूँगा। विच्छेद को बाँध कर पैरों के नीचे डाल दूँगा। अर्थात् विच्छेद तुम्हारा दास बन जायगा और सूखी डाली में मालती तथा अन्यान्य प्रकार के फूल खिलेंगे।"

(२७)

आमाय पागल कैरा
गेलारे प्राणनाथ,
आमाय अनाथ कैरा गेला।
कोन् ना जेलेर माछ खेये रे
तारे ना दिछिलाम कड़ि।
सेइ ना पाये हइलाम आमि
अल्प बयसे राँड़ि॥
कार येन भरा चेतेरे
आमि दियाछिलाम हात।
सेइ पापेते छेड़े बुझि
गेल प्राणनाथ॥
कार येन माथार सिन्दूर
दिछिलाम मुछिये।
सेइ ना पाये प्राणनाथ
गियाछे दाड़िये।

"प्राणनाथ मुझे पागल बना गये, अनाथ बना गये। किस केवट की मछली लेकर मैं ने दाम नहीं दिया था, जिस पाप से मैं छोटी अवस्था में विधवा होगई? किसके भरे खेत में मैं ने हाथ डाला था, जिस पाप से प्राणनाथ चले गये? किसकी माँग का सिन्दूर मैं ने मिटाया था, जिस पाप के कारण प्राणनाथ मुझे छोड़ गये?"

(२८)

हेथाय मनेर विरागे अलि
तोर्थ वासे याय चलि
नाना फूलेर सङ्गे देखा बने ।
चलिल पद्मिनोर स्वामी
येन शुकदेब गोस्वामी
डाकिले कथा कन ना कारु सुने ॥
एक दिन एक स्थले
भृङ्गे देखि शिमुले बोले
ओहे भृङ्ग विरहिनी आमि ।
अलि किछु बलि दुःखे
यदि आमाय कर रक्षे
कुलेर पक्षे बल्लालसेन तुमि
पिता माता शत्रु हये
विशिष्ट बर देखे बिये
ना दिये फेलेछे भीये जले ।

"यहां मनके विराग से भौंरा बन में नाना फूलों के साथ मिलते हुए तोर्थवास को जाता है । पद्मिनो का पति चला । गोस्वामी शुकदेवजी की तरह बुलाने पर भो नहीं बोलता । एक दिन एक स्थान पर भौंरे को देखकर शेफालिका ने कहा—"हे भौंरे, मैं विरहिणी हूँ । मैं अपनी दुख-गाथा तुमसे कहना चाहती हूँ । यदि तुम मुझे कष्ट से बचाओ तो मेरे कुल के प्रति बल्लालसेन हो । पिता-माता मेरे दुश्मन हैं; क्योंकि उन्होंने मेरे लिये अच्छा वर नहीं ढूँढ़ा ।"

दाशरथि राय

काके बलिब हाय हाय
कागे ठुकरे मारे धाय
मनस्तापे सदा अङ्ग ज्वले ।
बलब कारे शुनबे केटा
अभिमाने शिउरें काँटा
कम्प ज्वरे एकज्वरी हलो ।
सुजन विना सुधा खण्ड
भूले हयेछे लण्ड भण्ड
भेबे भेबे पेटे जन्माय तुलो ॥
भूतेर बेगार खेटे खेटे
शेष कालेते मरि फेटे
मुख देखानो भार हयेछे लाजे ॥
भेबे भेबे ओहे भृङ्ग
असार होयेछे अङ्ग
पड़िये रयेछि वोनेर माझे ।

"हाय ! मैं किससे कहूँ, शरीर में कौए ठोकर लगाते हैं और मनस्ताप से शरीर सदा जला करता है। किससे कहूँ, कौन सुनेगा ? अभिमान से शरीर काँपता है और बुखार चढ़ आया। सज्जन पुरुष नहीं हैं, इसलिये सुधा-पात्र लुढ़का दिया गया है। बस, इसी चिन्ता में कलेजा सूख रहा है। दूसरों की बेगार करते-करते जी उकता रहा है। लाज से मुँह भी दिखा नहीं सकती। हे भौंरे, सोचते-सोचते शरीर क्षीण होगया और बन में पड़ा हूँ।" दाशरथि राय

(२६)

शैत सन्ध्या

वनाय पुञ्जित मेघ आजि एइ सन्ध्या-अन्धकारे
मत्त वायु गृहहारा केँदे केँदे आसे मम द्वारे

आघाति' फिरिया याय । वने वने पाताय पाताय
वाजाये आकुल बीणा मर्म्मरिया हृदय मातायं
आकुल वेदना भरे । आकाशेर पाने आँखि मेलि'
देखि शुधु कृष्णमेघ स्तरे स्तरे उठेछे उछलि,'
मुमूषु विवर्ण दिवा शेष रक्त-कनक-किरणे
प्रान्तदेश उजलिया तुलियाछे पाण्डुर वरणे ।
दले दले झरापाता पथे पथे उड़े' चले आजि
वसन्ते हेमन्त आसि आपनार अश्रु-भरा साजि
वहिवारे चाहे येन । आजि एइ सन्ध्यार आँधारे
दूर शैलपाने चाहि हृदय आलोड़ि' वारे वारे
कत दूर स्मृतिसाध, कत अर्द्ध-विस्मृत स्वपन
अलस निदाघ दिने तन्द्राभरा गन्धेर मतन—
लागिछे नयने मम ! एइ मम आकुल हृदय
देहेर बाँधने बाँधा, चाहे सदा करिवारे जय
निखिल भुवनखानि । यतदूर देखि मेलि आँखि,
हृदय छड़ाये येते चाहे । पथे पथे थाकि' थाकि'
येइ गृहहारा झञ्झा चले याय निरुद्देश पाने
साध जागे तारि साथे चले याइ लक्ष्यहारा प्राणे
भुवनेर सीमा छाड़ि ।' तारि मत पथे पथे याइ
भविष्यत् चिन्ताहारा आपनारे भुवने छड़ाइ !
आजि एइ अन्धकारे वसि' वसि' हृदये आमार
आरो कत दिवास्वप्न—कत साध आसे वारे वार
गुञ्जरिया मुदु सुरे । वसे' आछि कुसुमेर माझे,
फुटेछे गोलापबाला आपनार अपरूप साजे,
सुधागन्ध छड़ाइया हृदयेर अति काछे आसि
धरेछे तुलिया तार हासिखान येन भालवासि' !

गन्ध तार चित्ते मम रचितेछे एकि स्वप्न-माया
दितेछे ढालिया प्राणे कत गान, कत आलो छाया !
मने हय तार सने फुल ह'ये फुटे रइ बने
तारि मत ढेले दिइ बसन्तेर दक्षिण पवने
शोभा-गन्ध मधुराशि । तारि मत भ्रमरेर काछे
ढालि दिव आपनारे, चित्ते मम आसि यबे याचे
आमार हृदय-मधु । कुसुम-हृदये राखि ताइ
केशे, शिरे सारा देहे ताइ आजि कुसुम छड़ाइ ।
यदि तार परशने हिया मम विकशिया उठे,—
यदितार यादुस्पर्शे आमार बन्धन-पाश टुटे !
साध जागे अलि हये याइ तार हृदयेर माझे ।
हृदय भरिया शुनि तार प्राणे येइ सुर बाजे
गन्धे भरा दिवानिशि ! दलगुलि पड़े तार झ'रे
कठिन भूतले यबे, साध जागे आमार अन्तरे
तारि मत झ'रे याइ, आपनारे करें दिइ शेष
गन्ध-माधुरीर माझे हये याइ चिर-निरुद्देश ।

"आज इस सन्ध्या के अन्धकार में आसमान बादलों से छा गया है । गृहहीन उन्मत्त वायु रोता हुआ मेरे द्वार में टक्कर लगाकर लौट जाता, बनों में, पत्तों में आकुल वीणा बजाकर गुनगुनाता हुआ वायु हृदय को हिलाता और आकुल वेदना भर देता है । आँखें उठाकर देखती हूँ तो आकाश केवल काले बादलों से छा गया है । सुनहली लाल अन्तिम किरणों से मुमूर्ष और विवर्ण दिवस ने प्रान्तदेश को पाण्डुवर्ण से उज्ज्वल कर दिया है । जमान पर पड़े हुए सूखे पत्ते उड़ रहे हैं, मानो बसन्त में ही हेमन्त प्रकृति को रुला रहा है । आज इस साँझ के अन्ध-

कार में, दूर शैल की ओर ताकती हूँ तो बार-बार हृदय को अलोड़ित कर इन आलसी गर्मी के दिनों में तन्द्रापूर्ण गन्ध की तरह कितनी दूर की स्मृतियाँ, इच्छाएँ और कितने अर्ध-विस्मृत स्वप्न मेरी आँखों में आते हैं। यह मेरा आकुल हृदय, देह के बन्धन में बँधा है; सर्वदा अनन्त विश्व को जय करना चाहता है। जहाँ तक आँखों की पहुँच है हृदय भी उतना ही विस्तृत होना चाहता है। रास्ते में रुकता हुआ झञ्झावायु को गृह-हीन होकर निरुद्देश की ओर जाते देखकर इच्छा होती है, पृथ्वी की सीमा छोड़ उसी के साथ लक्ष्य-हीन होकर मैं भी चल दूँ। उसी की तरह मैं भी रास्ते में चलूँ और भविष्यत् की चिन्ता से मुक्त हो अपने को पृथ्वी पर बिखरा दूँ। आज इस अन्धकार में मेरे हृदय में और भी कितने दिवा-स्वप्न आते हैं, कितनी अभिलाषायें बार-बार मृदु-स्वर में गूंज उठती हैं। फूलों के बीच बैठा हूँ, गुलाब-बाला अपने अप-रूप साज में खिली हुई है। हृदय के बहुत समीप आकर सुगन्ध बिख-राती हुई, मानो प्यार से हँस रही है। उसका सौरभ मेरे चित्त में यह कैसी स्वप्न-माया रच रहा है; मेरे प्राणों में कितने गाने कितनी ज्योति और कितनी शीतलता पहुँचाता है। हृदय चाहता है, उसी के साथ खिल-कर बन में फूल बनकर रहूँ; उसीकी तरह बसन्त ऋतु की दक्षिणी वायु में अपना सौरभ बिखरा दूँ। जब भौंरा मेरे पास मधुदान के लिए आये तब मैं भी उसे फूल की तरह मधुदान करूँ, कुसुम-हृदय में उसे बन्द कर रखूँ; इसीलिए आज समस्त शरीर फूलों से ढक रही हूँ। शायद उसके स्पर्श से हृदय विकसित हो और उसके जादू के स्पर्श से मेरा बन्धन-पाश टूट जावे। इच्छा होती है, भ्रमर बनकर उसके हृदय में प्रवेश करूँ। जो सुमधुर सुर बजा करता है उसे जी भर कर सुनूँ। उसकी पपड़ियाँ सूखकर पृथ्वी को जब अपनी कड़ी शय्या बना लें तब मैं भी अपना परिणाम वैसा ही चाहता हूँ। अपने को सौरभ-माधुरी में विलीन कर दूँ-चिरकाल के लिए लापता हो जाऊँ।"

हुमायुन कबीर

(३०)

विरहिणी

रौद्रदीप्त दिगन्तेर मेघच्छबि आँका सीमाशेषे
प्रान्तर अधरे येथा आकाशेर ओष्ठ हासि मेशे
निबिड़ आग्रह भरे। ओरि पाने चेये चेये आज
भावि मने कत की ये। शिथिल उदास मर्म्म माझ
अन्यमना चिन्ताराशि भेसे चले छन्दो-बन्धहीन,
शरत् मेघेर सम शीर्ण शुभ्र। आजि अमलिन
सुन्दर शीतेर रौद्रे सुमिष्ट माधुर्य्य सुधारस
झरिया पड़िछे येन। चित्ते लागे विरह परश
वेदना भारावनत, कार लागि नाहि ताहा जानि,
काँदिछे मर्म्मेर तारे भाषाहारा अकथित बाणी।
अकारण घन दुःखे ओष्ठाधर ओठे कँपे कँपे
श्रावण मेघेर सम वेदना नामिछे प्राण व्येपे।
जीवन दुयारे आसि ये अतिथि अतीत प्रभाते
अश्रु परिम्लान मुखे फिरेछे हताशे शून्यहाते
से दुःखकातर दिठि से मुखेर मौन व्यथा रेखा
आमार निर्ज्जन क्षणे निःसंग मनेर पटे लेखा।
विह्वल ए प्राणे आज बारे बारे जेगे ओठे ताइ
तारि आँखि, स्मृति यार निःशेषे मुछिते चाइ।

"सूर्य की किरणों से उद्भासित दिगन्त की मेघाङ्कित शेष सीमा पर जहाँ निविड़ आग्रहपूर्ण हँसते हुये आकाश के होंठ प्रान्तर के अधर से मिलते हैं, उस ओर देखकर आज मन में क्या-क्या सोच रही हूँ। शिथिल उदास मन में शरत्कालीन मेघ की तरह शीर्ण और शुभ्र उदासीनता, चिन्तायें धूप में बेरोक-टोक बहती चली जा रही हैं। आज

अम्लान सुन्दर शीत के रौद्र में माधुर्य्य का सुधा रस मानो टपक रहा है। वेदनायुक्त चित्त में विरह का स्पर्श मालूम होता है। किसके लिये, यह नहीं जानती। उसकी भाषाहीन अकथित वाणी हृदय में रो रही है। अकारण आसन्न दुःख से अधर काँप उठते हैं। श्रावण के मेघ की तरह वेदना हृदय में छा रही है। अतीत के प्रभात में जीवन के द्वार पर जो अतिथि रोता हुआ, हताश, खाली हाथ घूमा करता था, उसकी दीन चितवन, उसके मुख की मौन व्यथा की रेखायें मेरे शून्य मन के ऊपर एकान्त क्षणों में अङ्कित हो जाती हैं और आज इन विह्वल प्राणों में बार-बार उसकी वही आँखे जाग उठती हैं, जिसकी स्मृति बिल्कुल मिटा देना चाहती हूँ।"

(३१)

झरणार गान

पाहाड़, ओगो पाहाड़, तोमार बुकेर नीड़े,
वृथाइ तुमि चाइछो मोरे राखते घिरे!
वाइरे ये जन बेरियेछे से फिरबे नाक'
अचल तुमि पथ-चला-सुख पाओनिक'—ताइ दाँड़िए थाक,
सृष्टि करा'र आनन्द की विपुलतरा
ऊषार माटि शष्ये भरा।

अरण्य गो अरण्य हाय डाकूछो मोरे
लक्ष शाखा'र व्याकुल बाहु प्रसार क'रे
विधुर तोमार छाया आमार पड़छे बुके
मर्म्मरिया दीन मिनति गुञ्जरिछ अबोल मुखे;—
थामार समय नेइक' आमार;—तोमार देहे
सबुज क'रे गेलाम स्नेहे।

उपल ओगो उपल तोमार शिकल डोरे
मिछाइ् सखा बाँधते प्रयास क'रछो मोरे !
अचल ह'ते जन्मि' चलि अगाध पाने
सुनील आकाश नील सागरेर स्वपन देछे जागिये प्राणे,
'रं छुटाये फुल फुटाये च'लछि छुटे—
मत्त-गानेर नृत्ये लुटे ।
तटभूमि लो तटभूमि तोर प्रयास-राशि,
चित्ते आमार आरश्रो जागाय उछल-हासि,
बाँधते चाहिस् उभय-बाहु'र व्याकुल बेड़े,
तोर बाँधने पड़ते धरा एलाम गिरिधर कि छेड़े ?
विपुल भाँङन कखन कखन ताइतो आनि,—
बुझिये दिते एक टुखानि ।
कुसुम-लता क्षेत-तरु-बन पाथर-माटि,
डाक्छे—"नदि ! थाम् गो दिव पुलक बाँटि !
चला'र नेशाय मातल ये-जन हाय गो तारे,
एइ धरणीर अचल यारा तारा कि केउ बाँधते पारे ?
बन्धुरा सब ! क'र्त्ते हबे आमाय क्षमा—
धन्यवादइ रइल जमा !
आकाश आमाय आभास देछे समुद्र रूप,
बातास देछे पौंछे अतल-वार्त्ता अनुप ।
गान गेये ऐ डाक्छे विहग--"आयलो त्वरा
रत्नाकरे आपना-सँपे उन्मिला ! हओ स्वयम्वरा,—"
ढेउगुलि मोर भावछे—'सागर कखन पाब ?
याबइ ओगो याबइ याब ।"

"हे पर्वत, अपने हृदय-नीड़ में तुम व्यर्थ मुझे घेर रखना चाहते हो । जो आदमी बाहर चल पड़ा हो, फिर नहीं लौट सकता । हे अचल,

तुमने रास्ता चलने का सुख पाया ही नहीं। इसीलिये तुम खड़े रहते हो। सृष्टि करने का आनन्द कैसा विपुल है, जैसे तृणों से भरी हुई उषा की भूमि। हे अरण्य! तुम असंख्य शाखाओं की व्याकुल बाँह फैलाकर मुझे बुला रहे हो। तुम्हारी विधुर छाया मेरे हृदय पर पड़ती है, नीरव मुख द्वारा अत्यन्त दीनता के साथ अपनी प्रार्थना चुपचाप कह रहे हो। अब मैं नहीं ठहर सकता। स्नेह से तुम्हारा शरीर सब्ज कर दिया। हे उपल! अपने में तुम मुझे बाँध रखने का व्यर्थ प्रयास करते हो। अचल से उत्पन्न हो अगाध की ओर चल रहा हूँ। सुनील आकाश प्राणों में नील सागर का स्वप्न जगा देता है। तबीयत मस्त कर देने वालों के नृत्य में विभोर होकर रंग बिखराता और फूलों को खिलाता हुआ मैं आगे बढ़ रहा हूँ। हे तटभूमि! तुम्हारा सारा प्रयास मेरे चित्त को और भी हँसा देता है। दोनों व्याकुल बाहों को फैलाकर मुझे बाँधना चाहती हो। तेरे स्नेह में फँसकर पर्वत छोड़कर यहाँ आया हूँ तुझे समझाने के लिये ही कभी-कभी तुझे तोड़-फोड़ डालता हूँ। कुसुम, लता, खेत, वन, पत्थर, मिट्टी सभी पुकारते हैं, "नदी! ठहरो तो, हमसे भी कुछ आनन्द कर लो।" जो अपने कर्त्तव्य-पथ में तेजी से बढ़ रहा है, उसकी गति कौन रोक सकता है? भाइयो, मुझे क्षमा करो, मेरे पास धन्यवाद के सिवा कुछ भी नहीं है। आकाश मुझे समुद्र प्रतीत होता है, वायु अतल की अनुपम वार्त्ता पहुँचाती है, सुन्दर गाने गाकर विहग पुकार रहे हैं। "आओ, शीघ्रता करो, रत्नाकर को अपने को सौंप दो और स्वयंबरा हो जाओ। मेरे तरङ्ग सोचते हैं, "सागर कब मिलेगा? मैं जाऊँगा, ज़रूर जाऊँगा, रुक नहीं सकता।"

राधारानीदत्त

(३२)

समर्पण

यखन तोमाय पाइनि आमार घरे,
आमि छिलाम डुब दिये मोर स्वपन-सरोवरे !
घुमेर गाढ़ चुमोर माझे रात्रि आमार फुरिये येत, राणी,
शिशिर-धोओया आसत प्रभातखानि,
हास्य-नत तरुण दिवार प्रथम प्रणाम सम—
शान्त शीतल स्निग्ध अनुपम !
निराला मोर गृहेर द्वारे नीरवे कर हानि'
ऊपार आलो बिलिये येत रङोन लिपिखानि ।
हिरण-वरण अरुण-किरण-लेखा
आमार द्वारे छड़िये आबीर—राङासरम-रेखा—
निःसाड़े तार चरण फेले—मुखेर परे नुये
पालिये येत घुमन्त मोर चोख दुटिके छुँये !
सकाल-वेलार चपल वातास निबिये प्रदीपटीरे
अङ्गे आमार फुलेर परश बुलिये येत धीरे !
भोरेर आलोय भैरवीते उठत बेजे सुर,
आमार हृदय-पुर
उतल ह'त नूतन प्राणेर पुलक लेगे निति—
विश्वे येन बिलिये दिते व्याकुल बुकेर प्रीति !
जीवने तार सबार तरेइ उठत जेगे माया !
पथेर बाँके हठात् कोनो ज्योतिर्म्मयीर छाया
पड़त यदि तरुण मनेर अमल-धवल-पटे !
छन्द-गीतेर आनन्दमय मधुर छायानटे
जागिये दित जीवन-वीणाय राग-रागिणी तार—
मर्म्म माझे मुखर मीड़ेर मूर्च्छना झङ्कार !
किशोर कबिर तूलिर लिखन-पाते—

কাব্য কলার আলপনা আর রঙীন কল্পনাতে
কাটত অধেক রাত!
স্বপন রচি' আপন-মনে আপনি হত মাত্!
এমনি ক'রেই নিরুদ্দেশে কাটছিল তার দিন;
যৌবনের ও জোয়ার ক্রমে হচ্ছে যখন ক্ষীণ,
হঠাৎ তুমি বধূর বেশে উদয় হ'লে বালা,
দুলিয়ে দিলে কণ্ঠে যে তার প্রিয়ার বরণমালা,
বাঁধলে মিলন-ডোরে,
মুক্ত ছিল যে পাখী তার সুখের স্বপন-ঘোরে
পড়ল সে আজ ধরা।
ওগো স্বয়ম্বরা!
তোমার সোহাগ-শৃঙ্খলে আজ বন্দী যে তার মন,
তাই ত অনুক্ষণ—
লুটিয়ে আছে তোমার পায়ে—নিত্য অনুগত;
নিচ্ছে মেনে নির্ব্বিচারে ক্রীতদাসের মতো'
তোমার শাসন-দণ্ড বিধির অখণ্ড সব ধারা!
তোমায় পেয়ে চিত্ত যে তার মত্ত আত্মহারা—
সব গিয়েছে ভুলে।
লুকিয়েছে তার অসীম আকাশ তোমার কালো চুলে,
নিখিল ভুবন মিলিয়ে গেছে রাঙা চরণ-মূলে!
আজ কে সে আর চায় না কিছুই—চায় না কারো মুখে,
তোমার মাঝেই তলিয়ে আছে নিবিড় অতল সুখে!
তোমার সাথেই মিলেছে তার জীবন ইতিহাস;
ওঁ প্রাণের আশ!
আজ কে তার প্রতিক্ষণের পরিচালক তুমি,
সর্ব্বহারার হৃদয় জুড়ে তোমার রাজ্যভূমি!

सब किछु तार भार
तोमार हातेइ त्याग करे सइ मानले से आज हार;
बिलिये दिले आपनाके से तोमार अधिकारे,
युगे-युगे जन्मे-जन्मे कालाकालेर पारे !

"जब तू मेरे घर में नहीं थी तब मैं स्वप्न-सरोवर में गोते लगा रहा था। हे रानी ! निद्रादेवी के गहरे चुम्बनों से मेरी रात बीतती थी। हँसते हुए तरुण दिवस के शान्त, शीतल, अनुपम और प्रथम प्रणाम की तरह शिशिर से धुला हुआ प्रभात मेरे द्वार पर आता था। ऊषा का प्रकाश मेरे निर्जन द्वार पर धीरे-धीरे रङ्गीन अक्षर लिख जाता। सूर्य की सुनहली किरणें द्वार में अबीर की छींटें मारती हुईं सलज्ज भाव से मेरे मुखपर झुक जातीं और ऊँघते हुए नेत्रों को चूमकर लौट जातीं। प्रातःकाल का चंचल वायु चिराग बुझाकर मेरे अंगों में फूलों का परस दे जाता। सुबह के बजते हुए भैरवी सुर से हृदय भर जाता, नये प्राणों का स्पर्श पाकर संसार भर में व्याकुल हृदय की प्रीति बिखरा देने के लिए मन उतावला हो जाता। नवीन-पथ में विचरते हुए यदि उसके विशुद्ध तरुण मन-पट में किसी ज्योतिमयी की छाया पड़ती तो सब के लिए माया में मन बँध जाता। आनन्ददायी मधुर छायानट के छन्द और गीतों में उसकी जीवनरूपी वीणा बज उठती और अन्तस्तल में तेज झंकार होने लगती। काव्यकला की आलोचना और रंग-विरंगी कल्पनाओं के लिखने में किशोर कवि की आधी रात बीत जाती। वह मन ही मन स्वप्नों की रचनाकर आनन्द विभोर होता।

इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक जब वह अपने दिन बिता रहा था और उसकी यौवन की बाढ़ धीरे-धीरे हट चली थी, हे सखि ! तब तुम ने बधू बनकर उसके गले में जयमाला डाल दी और मिलन रूपी रस्सी में बाँध लिया। जो बिहंग अपने सुख-स्वप्न में मस्त और स्वतंत्र था, वह आज बन्द कर दिया गया। अयि स्वयम्बरा ! आज उसका

मन तुम्हारे प्रणय-शृङ्खल में बँधा है । इसी से तो वह सदा तुम्हारे चरणों के पास तुम्हारा अनुगत भृत्य बना रहता है । दास की तरह चुपचाप तुम्हारा शासन-विधान मान लेता है । तुम्हें पाकर आनन्द से अपने को और सब कुछ भूल गया है । उसका असीम आकाश तुम्हारे काले बालों में छिपा है और अनन्त संसार तुम्हारे रंगे चरणों में मिल गया है । आज वह और कुछ और किसी को भी नहीं चाहता । तुम से ही उसे असीम सुख मिलता है । उसके जीवन का इतिहास तुम्हारे साथ मिल गया है; उसके प्राण की आशायें पूरी हो गई हैं । आज उसके प्रतिक्षण के परिचालक तुम्हीं हो । आज उसके शून्य हृदय में तुम्हारा ही आधिपत्य है । अपना सारा भार तुम पर छोड़-कर उसने आज हार मान ली है । अपने को तुम्हारे अधिकार में उसने विलीन कर दिया है—युगों, अनन्तकाल और उस पार तक के लिए ।"

नरेन्द्रदेव

(३३)

मृत्युरे के मने राखे ?
मृत्यु से तो मुछे याय ।
ये तारा जागिया थाके तारे लये जीवनेर खेला
भुवनेर मेला ।
ये तारा हारालो द्युति, ये पाखी भुलिया गेलो गान,
ये शाखे शुखालो पाता
ए भुवने कोथा तार स्थान ?
निखिलेर ओष्ठपुटे ओष्ठ राखि करिछे ये पान,
हे कवि आजि के तार—
तार तरे रचो शुधु गान ।
रचो गान यौवनेर !
ये प्रेमेर चिह्न नाइ लाज रक्त कोमल कपोले

कम्पमान हृद्पिण्डे दुर्निवार रुधिरेर दोले
तार तरे अकारण शोक।

"मृत्यु को कौन स्मरण रखता है? मृत्यु! वह तो मिट जाती है। जो तारे जगे रहते हैं, उन्हीं को लेकर जीवन का खेल और संसार का मेला होता है। जिस तारे की ज्योति खोगई, जिस पक्षी को गाने भूल गये और जिन डालियों के पत्ते सूख गये, उनका इस पृथ्वी पर कहाँ स्थान है? विश्व के होठों में अधर मिलाकर जो पान कर रहा है, हे कवि! आज केवल उसी के गीतों की रचना करो। यौवन के गाने रचो। लज्जा से लाल कोमल कपोलों में और काँपते हुये हृदय में जहाँ अनवरत रक्त का संचार हो रहा है, प्रेम का चिह्न नहीं है। उसके लिए नाहक चिन्ता करते हो।"

बारबार छेड़े तार जीर्णता-निर्म्मोक
जीवनेर यात्रा हेरि महाकाश व्येपे,
ताराय ताराय ताइ जयध्वनि उठे कँपे, कँपे।
मृत्यु-शोक-स्तब्ध गृहद्वारे
आसे बारेबारे
समारोहे शिशुर उत्सव,
वेदनार अन्धकार विदारिया प्रतिदिन देखा देय प्रदीप्त गौरव
निर्ल्लज्ज शिशुर हासि,
कबरेर मृत्तिकाय अवहेलि अश्रद्धाय
तृणे जागे प्राण अविनाशी।
ओरे म्रियमाण कवि, उटे बोस् शोक-शय्या तोल्
बन्धुर विरह-व्यथा भोल्
कान पेते शोन् ब'से जीवनेर उन्मत्त कल्लोल—
आकाश बातास माहि उतरोल आजि उतरोल!

"बार-बार उसकी जीर्णता का केंचुल छोड़ जब महाकाश की ओर जीवन की यात्रा करता हूँ तो तारों में उसकी जयध्वनि काँप उठती है। मृत्यु और शोक से स्तब्ध गृह-द्वार पर बच्चे पैदा होने का आनन्द समारोह के साथ मनाया जाता है। प्रतिदिन वेदना का अन्धकार विदीर्ण कर निर्लज्ज बच्चे की हँसी खिल पड़ती है। श्मशान-भूमि में अश्रद्धा की उपेक्षाकर तृणों में अविनाशी प्राण का संचार दिखाई पड़ता है। हे म्रियमाण कवि! उठो। शोक मत करो। बन्धु की विरह-व्यथा भूल जाओ। ध्यान से जीवन का उन्मत्त कल्लोल सुनो। आज आकाश और पवन मस्त हो रहा है।"

(३४)

रवीन्द्रनाथ

तोमार कविता गुलि पड़े आछे शय्यार दुपाशे
पड़ितेछि नाक।
भावितेछि स्निग्ध मने एगुलिके कोन वर्ण दिये
केन तुमि आँक!
तोमार पृथिवी बन्धु,—रात्रि तव भय नाहि जाने
रौद्रे नाहि ताप।
स्फटिकाय पेले शुधु शक्तिर महिमा; वज्रे तव
नाइ अभिशाप!
साँग करि फिरे आसि दिवसेर निर्लज्ज संग्राम,
पड़ि तव लेखा।
सुमधुर स्वप्न गुलि शुभ्र बच्चे नामे चारि धारे
मेघे अश्रु लेखा।
तोमार कविता बन्धु, जीवनेर आतप्त ललाटे
बुलाय अँगुलि।
आकाश ये नील बन्धु, धरणार मन्थनेर विषे
से कथाओ भूलि।

पृथिवीर यत अश्रु,-तुमि तार लयेछ ये स्वाद,
जान ग्लानि तार।
विधातार कार्पण्येर, ताइ बुझि दिते चाहे शोध
ममता तोमार।
मोहेर अंजन ताइ पराइते चाव, हे व्याकुल
अमृत सन्धानी !
नमस्कार के करिबे; हृदयेर एत काछे आछ
लव हातखानि।

"तुम्हारी कविता सेज के इधर-उधर बिखरी पड़ी है। मैं इन्हें पढ़ नहीं रहा हूँ, स्निग्ध मन से केवल सोच रहा हूँ—किस विचित्र वर्ण में, और क्यों, तुम इन सब कविताओं को लिखते हो ! पृथ्वी तुम्हारी सखी है। तुम्हारी रात्रि में भय नहीं और न तुम्हारे धूप में गर्मी। झंझावात से तुमने केवल शक्ति पाई है; तुम्हारे बज्र में अभिशाप नहीं है। दिन के काम शेषकर जब लौटता हूँ तो तुम्हारी रचनाएँ पढ़ता हूँ। फिर तो चारोंओर स्वप्न उछल पड़ते हैं और आँसू की रेखाएँ मिटा देते हैं। मित्रवर ! तुम्हारी कविता मेरा जीवन के ताप से तप्त ललाट अपनी शीतल अँगुलियों से स्पर्श करती है। तुम्हारी कविता पढ़ने से भूल जाता हूँ कि धरा के मन्थन से निकले हुए विष से ही आकाश नीला हो गया है—भूल जाता हूँ कि आकाश सुंदर नहीं, असुंदर है। पृथ्वी की सभी व्यथाओं का तुमने स्वाद चखा है। तुम इन व्यथाओं की ग्लानि को जानते हो। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि तुम्हारी ममतापूर्ण कविता विधाता की कृपणता का उत्तर और बदला है ! हे अमृत के ढूँढ़नेवाले, हे व्याकुल कवि, तभी तो तुम सबों को मोह का काजल पहना देना चाहते हो। इतने निकट हो तुम हृदय के कि कौन तुम्हें नमस्कार करेगा ? लो, हाथ पकड़ो।"

प्रेमेन्द्र मित्र

(३५)

सनेह

केमने पाशरि तारे यारे देखि नाइ
आजो लभि नाइ यार लाज परशन
नयनेर अधरेर संकोच मिलन—
स्वप्न-बातायन पथे एसे फिरे याइ ।
आमार दुवार पाशे देखिबारे पाइ
चिह्न रेखे गेछे तार अलक्त चरण,
अलकेर गन्ध बहे गृह-समीरण,
बाहिरे गुँजन शुनि पिछु फिरे चाइ ।
याहारे देखिनि कभु—ताहारि जयंति
प्रति परमाणु मोर गाहिबारे चाय
रचि' तार ध्याने फोटा कल्पना-मूरति ।
विस्मृति कामना माझे आपना विकाय—
कोन् जनमेर एइ अतृप्त निरति
तारि' परे—यारे आजो देखिना क हाय !

"जिसे देखा ही नहीं, जिसका सलज्ज स्पर्श आज भी नहीं पाया, उसे कैसे भूलूँ । आँखों और अधरों का मिलन जो स्वप्न-वातायन में आकर लौट जाता है, नहीं हुआ—महावर से भरे हुए उसके चरणों के लाल चिह्न मेरे द्वार पर दिखाई पड़ते हैं। गृह-समीर अलकों का गन्ध उड़ाकर बाहर गूँजता है, जिसे सुनकर मैं घूमकर देखता हूँ । जिसे कभी नहीं देखा ध्यान से उसकी कल्पित मूर्त्ति बनाता और उसी के गीत मेरे परमाणु गाया करते हैं। कामना में विस्मृति स्वयं विलीन हो जाती है,जिसे हमने आज तक नहीं देखा, उस पर यह किस जन्म की अतृप्त निरति है ।"

कांतिचन्द्र घोष

(३६)

कवि

समस्त संसार माझे अनेक घूरेछि आमि
खुँजे खुँजे आपनार जन,
लेखेछि केँदेछि कत समस्त हृदय दिये
पाइ यदि तबु कारो मन,
केउ यदि हासिमुखे चाहे मोर मुख पाने,
बल दुटो स्नेहमय कथा,
दुदण्डेर तरे यदि एकबिन्दु भालबास
दूर क'रे देय ए शून्यता।
एत लोक, एत जन, एत प्रेम भालबासा,
केह मोर, केह मोर केह नाइ!
शत कोटि ग्रहमय विपुल विश्वेर माझे
कोन हृदे नाहि मोर ठाँइ!
अनन्त आकाश तले, बिशाल विश्वेर कोणे,
आज तबे बाँधिब रे घर,
आपनि करिब आमि जगत्-सृजन मोर,
काँदिब ना चाहिया अपर!
एइ मधु रविकरे एइ मुक्त समीरणे,
लये एइ महा विश्व शोभा!
आपन जगत् मोर रचिब ए बसि बसि
साजाइब मोर मन लोभा!
हृदयेर भाङ्गि भाङ्गि करिब निरमान
मधुमयी कविता-ललना,
शुभ परिणय-डोरे बाँधिया आमार साथे
आवास रचिब दुइ जना।

शत शत लोकजने भ'रे याबे गृह मोर
जगतेर आसिबे सकले ।
सकले आपन मोर स्नेहेर साधेर धन
प्रेमे मन धीरे याते ग'ले !
थाक् तबे अन्य काछे साधा काँदा भिक्षामागा,
—प्रेमहीन जगतेर छबि—
निजेर जगत् आमि रचना करिब निजे,
कि अभाव मोर—आमि कबि !

"संसार भर में मैं अपने कहलानेवालों को ढूँढ़ता फिरा । हृदय से मैंने ढूँढ़ा—क्रन्दन किया—फिर भी कहाँ किसी का मन मिलता है ? यदि कोई हँसते हुए मेरी ओर ताके, दो स्नेह की बात कहे, कुछ क्षण के लिये भी यदि कुछ प्यार करे तो यह शून्यता दूर कर दे । इतने लोग हैं, इतना प्यार है, पर मेरा कोई नहीं, कोई नहीं । विश्व के बीच असंख्य ग्रह-उपग्रह हैं, पर मेरे लिए किसी हृदय में स्थान नहीं । अनन्त आकाश के नीचे, विशाल विश्व के कोने में अब मैं अपना घर बसाऊँगा, स्वयं अपने संसार की सृष्टि करूँगा, दूसरे को देखकर न रोऊँगा । इस मधुर रविकिरणों में, इस मुक्त समीर में, इस महा-विश्व की शोभा को लेकर, मैं बैठे-बैठे अपने संसार की सृष्टि करूँगा, मनोरम साज-सज्जा से सजाऊँगा । हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर कविता-ललना की सृष्टि करूँगा । दोनों शुभ परिणाम के तागे में बँधकर अपना घर बसा देंगे और दुनिया के सैकड़ों प्राणी मेरे घर में आयेंगे जिससे मेरा घर भर जायगा । सभी मेरे स्नेह-पात्र हैं और मैं सभी के प्रेम में मग्न रहूँगा । अतएव दूसरों से रो-रोकर भीख माँगना छोड़ दूँ; क्योंकि संसार की शोभा प्रेम-हीन है । मैं अपने संसार को स्वयं रचना करूँगा । मुझे क्या अभाव है ! मैं कवि हूँ ।"

हिरण्मयी देवी

(३७)

प्रेम-पत्र

विस्तीर्ण वेदना दिया आवरिया राखियाछे दूर नीलाम्बरे,
बिन्दु बिन्दु अश्रुसम लच लच नचत्रेर अचय अचरे
लिखियाछे सदोज्ज्वल कि उदार विराट सुन्दर लिपिखानि,
बहुशत बसन्तेर बासनार वाणी !
येन कत रात्रि जागि ध्यानमग्न मौन अनिद्राय
ए बृहत् शून्यताहे भरियाछ विपुल व्यथाय;
येन तव काछे चाओ का'रे
तार दूर-देशिनी प्रियारे
पत्र लेख, ओगो कवि, स्नेहाच्छन्न आर्द्र अन्धकार।
ताइ बुझि आकाशेते प्रसारिया राखियाछ असीम काकुति
एकखानि दरिद्र मिनति !
रजनीगन्धार गन्धे पाठाइले अतृप्तिर विह्वल कामना,
चाँदेर चोखेर जले चामेलीते करियाछ स्वपन रचना;
आशीर्वाद पाठायेछ प्रसारित प्रसन्न प्रभाते,
गन्धहीन किंशुकेरे साजायेछ राङा व्यर्थताते;
विषण्ण सायान्ह तले सुकोमल म्लान
आँकियाछ साश्रुनेत्रे स्तब्ध अभिमान !
उग्रगन्धा गर्विनी करवीते, प्रगल्भा चम्पाय,
जागायेछ यौवन-चटुल-चल विलोल तृष्णाय;
गोलापे प्रलाप तव, आकन्दे आवेशे
बात्याते पाठाले नित्य असह्य आश्लेष;
उदासीन चैत्रेर वातास
निये एल तव दीर्घश्वास !

रोमाञ्चित तृणे तृणे बिछायेछ श्यामल पुलक,
निशिर शिशिरे तुमि ढालियेछ नयन-उदक;
प्रत्याशारे राखियाछ ग्रीष्म-तपस्याय,
दोहेर सुषमा तव उद्घाटिले पूर्ण चन्द्रमाय;
केयाफूले पाठाले यन्त्रणा,
यूथिकाय कुशल-प्रार्थना !
आमि येन तव दूर-विदेशिनी उदासिनी बधू
वासना-विषण्ण चित्त कम्प्रकुञ्ज विरह वेपथु,—
ज्वलियाछि चित्ततले दुःखदीपशिखा
पड़िवारे तव प्रेम प्रसन्न लिपिका ।
किन्तु प्रिय, महाराज, आदिकवि, ओगो अगोचर,
ए प्रकाण्ड पत्रिकार आमि क्षुद्र, कि दिब उत्तर,
ताइ नित्य नेत्रे बहे व्यथार निर्झर
छटा नाइ, छन्द नाइ, तबु तुलि' लइनु तुलिका,
अश्रु दिया लिखे याइ एकखानि निष्फल लिपिका
उत्तरे तोमार
स्तोत्र वेदनार
ताइ छवि, ताइ काव्य, ताइ सुर, गान,
पत्रेर उत्तर दिये याब भगवान ।

"विशाल वेदना से उसने दूर नीलाम्बर को आवृत्त कर रखा । अश्रु-बिन्दुओं की तरह असंख्य ताराओं के अमर अक्षरों से क्या ही विराट, सुन्दर और ज्वलन्त लिपि में सैकड़ों वसन्त-वासनाओं का उद्गार लिखा गया है । मानो अनेक रात्रियाँ ध्यान में तल्लीन होकर इस बृहत् शून्यता को विपुल व्यथा से भर रखे हों । हे कवि ! मानो तुम अपने पास किसी की दूर-देशिनी प्रिया को देखते ही स्नेहाच्छन्न

आर्द्र अन्धकार में पत्र लिखते हो। इसीलिये, समझता हूँ, आकाश में एक असीम इच्छा, एक दरिद्र आग्रह फैला रखे हो। रजनी-गन्धा के सौरभ द्वारा तुमने अतृप्ति की विह्वल कामना भेजी है। चाँद के अश्रुओं से चमेली में तुमने स्वप्न की रचना की है। विस्तृत प्रसन्न प्रभात में तुमने आशीर्वाद भेजा है। गन्ध-हीन पलाश के फूलों को रँगकर व्यर्थ सौन्दर्य दान किया है। विषण्ण सायाह्न के नीचे तुमने सुकोमल म्लान अश्रुपूर्ण नेत्रों के स्तब्ध अभिमान को अङ्कित किया है। गर्विता करवी में उग्रगन्ध, चम्पा में प्रगल्भता, चपल यौवन में विलोल तृष्णा, गुलाब के फूल में प्रबल प्रताप, मदार में आवेश, आँधी में असह्य आलेप भर दिया है और उदासीन चैत्र की वायु तुम्हारी दीर्घश्वास लाती है। रोमाञ्चित तृणों में तुमने श्यामल पुलक बिछाया है। रात के ओस में तुमने आँखों का जल डाला है। ग्रीष्म की तपस्या में तुमने प्रत्याशा स्थापित की है। पूर्ण चन्द्र में तुमने द्रोह की सुषमा उद्घाटित की है। केवड़े के फूल में तुमने यन्त्रणा और यूथिका में कुशल प्रार्थना भेजी है। मैं तुम्हारी दूर-देशिनी और उदासिनी वधू हूँ। मैंने वासना एवं विरह-कम्पन के कारण काँपते हुए हृदय से तुम्हारी प्रेम-पत्रिका पढ़ने के लिये अपने अन्तःस्तल में दुःख की शिखा जलाई है। किन्तु, प्यारे! हे आदि कवि! अगोचर! मैं क्षुद्र हूँ। इस दीर्घ पत्र का क्या उत्तर दूँ? इसी कारण नित्य नेत्रों से व्यथा का निर्झर बहता है। न छटा है और न छन्द। फिर भी मैंने तूलिका उठाई है। तुम्हारे पत्र के उत्तर में अपने एक तुच्छ पत्र में आँसुओं से वेदना के स्तोत्र लिख जाऊँ। भगवन्, मैं पत्र का उत्तर दे जाऊँगी। वेदना की स्तुति ही कवि होगी, काव्य होगा, सुर होगा और गाने होंगे।

अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त

(३८)

कवि-वरण

दिगन्तेर प्रान्तखानि उद्भासिया आलोर उल्लासे
सेदिन जागिले कविवर,
सेदिन पाषाण-कारा चूर्ण करि' अदम्य उच्छ्वासे
वहेछिल अमृत-निर्झर।
निशार ललाटे तुमि ज्योतिर्म्मयी ऊषार आशीष
आनन्द-तरङ्ग ताइ तोमा घिरि नाचे अहर्निश,
वेदनार अश्रु वाष्प मिलाइल शून्य स्वप्न प्राय
तोमार प्रभाय।
सेदिन शिशिर-स्नात स्निग्धश्याम तृणेर पल्लवे
जेगेछिल सुख-शिहरण,
गगनेर पाण्डुवक्षे अनवद्य अपूर्व गौरवे
लेगेछिल दीप्तिर स्पन्दन।
कमल-कलिर शोभा-सौरभेर शुभ्र निवेदन
पेलव पल्लव-दले नीड़ बाँधि छिल सङ्गोपन,
तोमार सुन्दर हासि भालोवेसे जागालो ताहारे
अर्घ्येर सम्भारे।
सुरेर बन्धने तुमि विनन्दित करेछिले, कवि,
शिशिरेर करुण-क्रन्दन,
धरणीर वर्णमाल्ये एँकेछिले नन्दनेर छवि
कुसुमेर मुक्ति-जागरण।
धरित्रीर चित्रलेखा छन्दे गाँथि राखिले यतने,
मदिर मन्थर करि समीरण प्रणय-गुञ्जने,
मानवेर सुख-दुःख, हृदयेर निभृत अर्च्चना
करिले वन्दना

निबिड़ आँधार-माझे आलोकेर क्षीण रेखा-सम
तोमार सरल सत्य बाणी,
आनन्देर मुक्तिपथ निर्देशिल शुभ्र अनुपम
येन स्वच्छ छायापथखानि ।
से पथ चलिया गेछे अश्रुमाखा सन्ध्यातारा-पाने
दिनान्तेर लाजनम्र गोधूलिर सायार सन्धाने,
विश्व खुँजे पेल पथ, घुचि' गेल सकल संशय,
जय, तव जय !
तिमिर कुहेलि ह'ते सत्यदीप करिले उद्धार,
अनावृत प्रदीप्त, उज्ज्वल,
विश्व-मानवेर तरे शाश्वत तोमार उपहार
प्रेमेर अञ्जलि सुनिर्म्मल ।
उपेक्षि' सागर गिरि दुरूह वर्णेर व्यवधान,
विस्मरि' सहस्र व्यथा, परस्पर-नित्य-असम्मान,
महाजीवनेर कूले दाँड़ाइबे महान् मानव,
विश्वेर बान्धव ।
हे साधक ! एइ तव हृदयेर निबिड़ वेदना,
एरि लागि' साधना तोमार,
रक्तेर प्रणय-सूत्रे विश्व भरि हइबे आपना ।
स्नेहेर अमृते सबाकार ।
हे कवि ! भारते ताइ विश्व जगतेर आमन्त्रण,
विश्व-भारतीर बुके सत्येर परम उद्बोधन,
सत्येर सन्धानी यत एक हबे प्रेमेर सभाय
प्रसन्न प्रभाय !
दीन भक्त तरुणेर नवीन आशार चिह्न-माखा
अर्घ्य-पुष्प तोमार चरणे

गोपन पूजार व्यथा-चन्दनेर रक्त-रेखा-आँका—
निवेदन करिनु प्रतने।
हानो बज्र, इन्दुवर, डेके आनो रसेर श्रावण,
अनागत मानवेर तृष्णा अमृत चिरन्तन,
अनागत क्रन्दनेर उत्स तुमि चिर-सान्त्वनार—
लह नमस्कार।

"कविवर, दिगन्त के प्रान्त को आलोक के उल्लास से उद्भासित कर जिस दिन तुम जगे थे, उस दिन अदम्य उच्छ्वास से पाषाण के करागार को चूर्ण करता हुआ अमृत-निर्झर बह चला था। निशा के ललाट पर तुम ज्योतिर्मयी ऊषा के आशीष थे, इसी कारण आनन्द की तरङ्गें दिन-रात तुम्हें घेर कर नाचा करती थीं। तुम्हारी प्रभा में वेदना का अश्रुवाष्प शून्य स्वप्न की नाईं मिल गया। उस दिन ओस से नहाये हुए स्निग्ध-श्यामल तृण-पल्लव में सुख का कम्पन हुआ था। गगन के पाण्डु वक्ष पर अनवद्य अपूर्व गौरव के साथ दीप्ति का स्पन्दन हुआ था। कमल की कलियों की शोभा और सौरभ का शुभ्र निवेदन कोमल पल्लव-दल पर नीड़ बाँधकर चुपचाप पड़ा था। तुम्हारी सुन्दर हँसी ने प्यारकर उसके अर्घ्य-सम्भार को जगाया था। हे कवि! तुमने शिशिर के करुण-क्रन्दन सुर के बन्धन में विनिन्दित किया था, पृथ्वी की वर्णमाल्य में नन्दन बन की छवि, कुसुमों को मुक्ति और जागृति अङ्कित की थी, धरित्र की चित्रलेखा को छन्दों में अच्छी तरह गूँथ रक्खा और प्रणय-गुंजन में वायु को मतवाली बना दिया थी। मानव-जीवन की, सुख-दुख और हृदय की निभृत अर्चना की वन्दना की थी।

घने अन्धकार में आलोक की क्षीण-रेखा की तरह तुम्हारी सरल स्वच्छ छायापथ बनकर सत्य वाणी ने शुभ्र अनुपम आनन्द का मुक्तिपथ दिखलाया। वह रास्ता दिवावसान के समय लज्जावनत गोधूलि की माया को ढूँढ़ती हुई टिम-टिमाते हुए संध्या तारा की ओर चला गया है,

दुनिया को रास्ता मिल गया, उसकी सब शंकाएँ दूर हो गईं। हे कवि तुम्हारी जय हो। विधि के कुहरा से तुमने अनावृत जलता हुआ दीप्तिमान सत्य का चिराग़ उद्धार किया है। विश्वमानव के लिए तुम्हारा यह उपहार शाश्वत है, तुम्हारी प्रेमांजलि सुनिर्मल है। विश्वबन्धु महान् मानव सागर और पर्वत की उपेक्षा कर, दुरूह वर्णों के व्यवधान, हज़ारों व्यथाओं को भूलकर और परस्पर के नित्य असम्मान को न देखकर महाजीवन के किनारे खड़ा होगा। हे साधक! यही तुम्हारे हृदय की तीव्र वेदना है। इसीलिये तुम्हारी साधना है। रक्त के प्रणय-सूत्र में दुनिया को अपनी बनाना और सबों का स्नेह-अमृत प्राप्त करना चाहते हो। इसीलिए भारत में विश्व-जगत् का आमन्त्रण है, विश्व-भारती के हृदय में सत्यका परम उद्बोधन है। सत्य को ढूँढ़ने वाले सभी प्रेम की सभा में, प्रसन्न प्रभा में, एकत्र होंगे। शुभ पूजा के लिए आशा से सने हुए अर्घ्य-पुष्पों को व्यथा चन्दन की रक्त-रेखाओं से सुवासित कर यह दीन नवीन भक्त तुम्हारे चरणों में पुष्पाञ्जलि प्रदान कर रहा है। हे इन्द्रदेव, वज्र मारकर इसके रस का झरना बहा दो। तुम अनागत मनुष्यों की चिरन्तन तृष्णा के अमृत हो, अनागत रुदन के चिर शान्तिदाता प्रवाह हो। तुम्हें नमस्कार है।"

बुद्धदेव बसु

(२६)

ना फुराते दिवार स्वपन
सन्ध्यार मलिन हासि ज्वले,
ना फुराते आँधारेर कथा
रजनी काँदिया याय चले।
ना फुराते शब्देर प्राण
प्रतिध्वनि विलापये दूरे,

(४७०)

ना फुराते कालेर चुम्बन
मुहूर्त्ते शिशुटि याय मरे
ना फुराते उत्सवेर क्षण
समाप्ति टि घनाइया आसे;
बाजे येथा आनन्द बाँशरी
क्षणेते विषाद तथा पशे।
यौवनटि ना फुराते जागे
वार्द्धक्येर जीर्ण आयोजन,
आँखि हते घुम ना टुटिते
स्वपन छायाय समापन

"दिन का स्वप्न समाप्त होने के पहले ही सन्ध्या की मलिन हँसी चमक उठी। अन्धकार की कहानी समाप्त भी न हो पाई कि रात रोती हुई जा रही है। आवाज़ के प्राण निकलने के पहले ही प्रतिध्वनि दूर खड़ी होकर रोने लगी। काल का चुम्बन समाप्त भी न हुआ और मुहूर्त-शिशु मर गया। उत्सव की घड़ी शेष न होते ही समाप्ति आ पहुँची। जहाँ आनन्द की बाँसुरी बजती, वहाँ क्षण ही में विषाद आ जाता है। युवावस्था का अन्त होने से पहले ही वार्द्धक्य का जीर्ण आयोजन होने लगता है। आँखों से नींद टूटती भी नहीं कि स्वप्न-छाया मिट जाती है।

लज्जावती वसु

(४०)

अग्निदूत

फागुन-दुपुरे आगुन ज्वलिछे
खाँ खाँ करे चारिदिक्
झाँ झाँ रोद्दुर शुन्य छादेर' परे—

सृजन करिछे दग्ध मरुर
मरीचिका येन ठिक;
श्मशान-नगरी झिमाय तन्द्राभरे।
अर्गल-आँटा सब वातायने,
पाण्डुर नीलाकाश,
झाँके झाँके चिल उड़िछे किसेर लोभे;
कपोत-कपोती आलिसार कोणे
फेलिछे क्लान्त श्वास,
का का करे काक येन कि मनःक्षोभे।
पतितपत्र देवदारुशाखे
झलसिछे किशलय,
नारिकेल-तरु एलायेछे पातागुलि;
चड़ाइ खुँजिछे शून्य खोपेते
सुनिभृत आश्रय;—
तप्त उठाने फेरे ना काकलि तुलि'।
घूर्णी हाओयाय शुष्क पत्र
घुरिया घुरिया उड़े,
धूलि-कुण्डली कभु वा धरिछे फणा,
बातास काँदिछे अति दूरे कोथा
चापा कान्नार सुरे
फागुन आगुने येन से क्षुब्धमना।
नीलिमा धूसर पाण्डु, सबुज,
दिवसे गभीर राति,
रौद्र रचिछे विजन निशीथ-मोह,
कारेरा जागिछे आर्त्तकण्ठे
ज्वालाये दिनेर बाति,

तन्द्रालुस दिवसेर समारोह ।

पसरा नामाये पसारी घुमाय—

छाया-करा दाओयाखानि

उलङ्ग शिशु मेझेते उपुड़ ह'ये

निद्रिता मार परश लभिछे

बुकेर वसन टानि,

आँखिपाता तार टेने धरे संशये ।

कोनो विरहिणी वातायन-फाँके

चाहिया दूरेर पाने

देखे चारिदिके खाँ खाँ मरु सुविजन,

शून्यता शुधु शून्यता आने

चिन्ताविहीन प्राणे

अजाना कारणे भरे ओठे आँखि-कोण ।

काबुलि एकटि लाठि हाते तार

बसेछे गलिर कोणे—

शून्यमनेते गुनियाछे ठाँइ-काल,

पाहाड़ी देशेर बाहारी सखी रे

पड़े बुझि ता'र मने,

सुद आर टाका मने हय जञ्जाल ।

धूलि उड़े शुधु रहिया रहिया

पथिकविहीन पथे

घुमाय कुकुर विरलपत्रछाय,

रौद्र-दग्ध अन्ध भिखारी

पथे वसि' कोनोमते

प्रार्थनामुखे अति क्षीण वाहिराय ।

गरीबेर वधू एकेला बसिया
सेलाइ करिछे किछु
अथवा वासन माजिछे शान्तमने ।
आपिसे केराणी लिखितेछे खाता
माथाटि करिया नीचु —
हताशे निशास फेलिया क्षणे क्षणे ।
बाहिरे ताकाये देखे लाखे लाल
कृष्णचूड़ार शाखा,
नागकेशरेर गन्ध भासिया आसे,
यक्षपुरीर काज कोलाहल
क्षणेक पड़िते ढाका
भावे अदृष्ट दरिद्र परिहासे ।
झाँ झाँ चारिदिक्, नगरेर वायु
उष्ण रौद्र-तापे
कि येन मोहेर स्वपन सनेते आने,
फागुन-दिवसे विरही यक्ष
निष्ठुर कार शापे
आगुन पाठाल प्रेयसीर सन्धाने ।

"फागुन की दुपहरी में चारोंओर खाँ खाँ करके आग जल रही है। शून्य छत के ऊपर झाँ-झाँ करती हुई धूप मानो ठीक दग्ध मरुस्थल की मरीचिका की सृष्टि कर रही है। तन्द्रा-भरी श्मशान नगरी ऊँघ रही है। सभी खिड़कियाँ बन्द हैं। नीलाकाश पाण्डु वर्ण है। चीलें न जाने किस लोभ से झुण्ड-की-झुण्ड उड़ रही हैं। आलिसा के कोने पर कपोत और कपोती क्लान्त हो श्वास निक्षेप कर रही हैं, काँव-काँव करते हुए कौवे न जाने किस क्षोभ से उड़ रहे हैं। पतझड़ के बाद देवदारु के वृक्षों में नये पत्ते निकले हैं। नारियल के वृक्ष पत्ते हिला रहे हैं। पक्षी शून्य कोटरों

में एकान्त और सुरक्षित आश्रय ढूँढ़ते हैं, मैदान में कलरव करते हुए नहीं घूमते। हवा में सूखे पत्ते घूम-घूमकर उड़ रहे हैं। कभी बड़ी तेज़ी से बवंडर आते हैं, कभी दबी हुई आवाज़ से हवा रोने लगती है, जैसे फागुन की आग से विमर्ष हो गई हो। वह धूप-धूसर-पाण्डु नीलिमा की, दिन में ही गहरी रात की, विजन निशीथ मोह की रचना करती है। तन्द्रालुप्त दिन के समागम में कौए दिन की बत्ती जलाते हुए आर्द्रकण्ठ से चिल्ला रहे हैं। टोकरी रखकर पंसारी चौपाल में ऊँघ रहा है। फ़र्श पर पेट के बल सोया हुआ बच्चा अपनी माँ के स्पर्श का अनुभव कर रहा है। छाती पर का कपड़ा हटाकर संशय से बच्चा माँ की आँखों की पलकों को खींचता है। कोई विरहिणी खिड़की के सींखों से चारों ओर साँय-साँय करते हुए दूर विजन मरुस्थल की ओर ताकती है। चिन्ताहीन प्राणों में शून्यता का दृश्य और भी शून्यता भर देता है, किसी अज्ञात कारण से आँखें भर उठती हैं। हाथ में एक लाठी लेकर एक काबुली गली के कोने पर बैठा है, अन्यमनस्क होने के कारण स्थान भूल गया है। वह पहाड़ी देश की सुन्दरी सखी को याद कर रहा है, सूद और रुपये बला से मालूम होते हैं। पथिक-विहीन पथ पर धूलि रह-रहकर उड़ती है। विरल पत्तों की छाया में कुत्ते सो रहे हैं। रौद्र-दग्ध अन्धा भिखारी रास्ते में बैठकर क्षीण स्वर से प्रार्थना कर रहा है। ग़रीब बहुएँ अकेली शान्त चित्त से सी रही हैं या बर्तन मल रही हैं। ऑफिस में क्लर्क सिर झुकाकर बही-खाता लिख रहा है और क्षण-क्षण में दीर्घ श्वास लेता है। बाहर कृष्णचूड़ा की लाल शाखाओं की ओर ताकता है। नागकेशर का सौरभ आ रहा है। यन्त्रपुरी के काम-धन्धों का कोलाहल क्षण में शान्त हो जाता और दरिद्र अपने भाग्य को कोसने लगता है। साँय-साँय करती हुई नगर की हवा उष्ण रौद्र के ताप से मन में एक मोह का स्वप्न लाती है। फागुन के दिन में किसके अभिशाप से विरही यक्ष ने अपनी प्रिया को ढूँढ़ने के लिये अग्नि-दूत भेजा है।" सजनीकान्त दास

(४१)

काराय शरत्

आज तोमादेर चारि पाशे   सबुज माठेर घासे घासे
शरत् रविर सोनार आलो झरिछे,
आज प्रभाते एतक्षणे   रोद पड़ेछे काशेर बने,
शिउलितला सरस फुले भरिछे,
मेघला दिनेर ओड़ना फेलि   चाइछे भुवन नयन मेलि,
राङामाटि रङीन् आलोय बाँचिलो.
आमार शुधु चोखेर काछे   आज्‌के कंटा पाँचिल आछे,
सोनार आलोय भरेछे सेइ पाँचिलओ ।
आश्विने एइ नूतन रोदे   मातलो ये मन कोन् आमोदे
कोन् प्राणे आज उठल ये गान गाहिरे !
केमन करे बुझाइ प्राते   पेलाम दु'हात आङ्गिनाते
माठ भरे' या पाओनि तुमि बाहिरे !
आज्‌के आमार सकल दिके   घिरेछे एइ धरणीके
श्याओला-धरा पाँचिल यत पुराणो;
केउ-बा कालो केउ-बा मेटे   लम्बा बा केउ केउ बा बेंटे,
ताइ देखे आज याय ना नयन घुरानो !
एइ पाँचिले एमनि भावे   कतइ गेछे कतइ यावे
सरत्रवि सोनार तुलि बुलाये,
दूरेर स्वपन पाखाय माखि   बसूल हेथाय कतइ पाखी
बसूवे कतइ बन्दी-हृदय भूलाये,
एइ पाँचिले कतइ रेखाय   बादलबारिर हातेर लेखाय
कतइ छबि कतइ आछे रचना,
क्वचित् कभु हेथा होथा   बुझेछिलाम तादेर कथा,
तादेर प्रसाद—तादेर प्राणेर याचना ।

आज्‌के तादेर प्रलापराशि बन्दे आमार दुकूल आसि
दस्युसम सहसा द्वार भाङिया;
आज पूजा चाय सबाइ येन ! शेओला ज्वले पाता हेन,
राङा इट उठ्‌ल ड्डिगुण राङिया।
एइ उठाने, ए-जेलखानाय देखछि आलो दिव्यि मानाय
दुदिन आगे ए कथा कइ भाबिनि !
सकल दीनेर दैन्य नाशि शरत्‌ एल मधुर हासि,
सोनार बान आज एल भुवन प्लाबिनी !
इटेर परे इट के गेंथे मानुष राखे पिञ्जरेते
एमनि करेइ मानुष के भाइ शुकाये;
हठात्‌ आवार सेइ काराते शरत्‌ तारे एमनि प्राते
देय निखिलेर रङीन्‌ चिठि लुकाये !
सहसा सेइ शुभक्षणे सब किछु हय मधुर मने
एकटुते हय अनेकखानि देखा से;
कठिन से हय कोमल बड़, पुराणो हय नूतनतर,
रङिये ओठे सकल फिके फ्याकासे।
आश्विने सेइ दिन एसेछे, —आलोर नदीर कूल भेसेछे,
आज तबे आर आमार किसेर भावना !
निखिले रङ छड़िये याबे, तोमरा कि तार सबटा पाबे,
हेथाय आमि एकटुओ कि पाबो ना ?
बाइरे आलो दुष्टु छेले माठे माठे बेड़ाय खेले,—
धरार नयन भरे स्वपन आवेशे।
हेथाय आलो लक्ष्मीमेये करुण चोखे रय ये चेये,
याय कि पारा थाकते भालो ना वेसे ?

"आज तुम लोगों के चारोंओर हरे मैदान की घास में शरद्‌-सूर्य की सुनहली किरणें खिल रही हैं। आज प्रभात में अब तक कास

के बन में धूप फैल चुकी होगी। शेफालिका के नीचे की भूमि सरस फूलों से भर गई होगी। बरसात की चादर फेंककर पृथ्वी आँख खोलकर देख रही है। रँगी हुई मिट्टी और भी रंगीन हो गई है। आज मेरी आँखों के सामने केवल कुछ दिवालें बची थीं किन्तु वे भी सोने के प्रकाश से भरी हैं। आश्विन के इस नवीन धूप में मन आनन्द से भर गया। आज इस शून्य हृत्तन्त्री कौन-सा सुर बज रहा है जिसे अलाप रहा हूँ। कैसे समझाऊँ, दो हाथ के आँगन में जो कुछ पाया तुमने बाहर सारे मैदान में भी न पाया। आज मेरे चारोंओर पृथ्वी की पुरानी दीवाल ने घेर रखा है। कोई काला है, कोई धूसर है, कोई लम्बा है, कोई नाटा है। उसे देख आज आँखें हटाई नहीं जातीं। इस दीवाल में इस प्रकार अपनी सुनहली किरणें फैलाकर कितने शरद्—सूर्य गये, कितने जायँगे। पङ्खों में कितने ही दूर के स्वप्न अंकितकर यहाँ कितने ही पक्षी बैठे होंगे। कितने ही बन्दी हृदय को भुलाकर बैठेंगे। इस दीवाल में बादल के जल की लिखी हुई कितनी ही रेखाओं में कितनी छवि, कितनी रचनायें अंकित होगईं हैं। कहीं-कहीं इधर-उधर उनकी बातों को उनके प्रसाद और उनके प्राणों की याचना को समझा था। आज सहसा दस्यु की नाईं द्वार तोड़ उनकी प्रलाप राशि मेरे हृदय में आ घुसी। आज जैसे सभी चाहते हैं पूजा! जङ्ग जलकर पन्ना होगई। रँगी ईंट दूनी रंगीन हो गई। इस मैदान में, इस जेलखाने में, मैंने आलोक देखा। दो दिन पूर्व तो ऐसा कभी सोचा भी न था। सभी दिनों के दैन्य को नाश कर आज शरत् आया है, मधुर हँसी के साथ। आज भुवन को डुबाने वाली सोने की बाढ़ आई है। भाई, इसी प्रकार ईंट पर ईंट सब मनुष्य मनुष्य को सुखा रखता है। सहसा उसके उस कारागार में शरत् किसी प्रभात को आकर निखिल की रंगीन चिट्ठी छिपाकर दे जाता है। हठात उस शुभ क्षण में सब कुछ मधुर हो जाता है। थोड़े में बहुत देखना हो जाता है।

कठिन हो जाता है, अत्यन्त कोमल; पुराना हो जाता है, नया; और सारा फीकापन हो जाता है, रंगीन। आश्विन में वह दिन आया है। आलोक की नदी का किनारा टूट गया है। आज फिर मुझे कौन-सी चिन्ता है। निखिल में रंग बिखर जावेगा। क्या सब तुम्हीं लोग पाओगे, मैं कुछ न पाऊँगा? बाहर का आलोक दुष्ट बालक के ऐसा है। वह मैदान-मैदान में खेलते फिरता है। पृथ्वी की आँखें स्वप्न के आवेश से भर जाती हैं। यहाँ आलोक लक्ष्मी बालिका की नाईं करुण आँखों से ताकता है—उसे प्यार किये बिना कहीं रहा जाता है?"

प्रभातमोहन वन्द्योपाध्याय

(४२)

रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन माँ पाहि नित्यम्

हे बन्धु, है सुकठिन! जानि—सत्य जानि,
तबु नाहि मानि—
नाना भावे नाना काजे नित्य अवमानि'
तोमार स्नेहेर स्मृति,
अनिर्वाण अनाविल तव चिरप्रीति
चिरदिन।
तबु जानि आश्रय विहीन
आमार अशान्त चित
नहे तिरपित,
तोमाहीन भुवनेर ऐश्वर्य्येर माझे,
ऐश्वर्य्येर बिभूति ये सुविपुल लाजे
भस्मे परिणत ह'ये याय,
रिक्त श्मशानेर सम प्राण शुधु करे हाय हाय।
तुच्छ सुखे प्रलोभने ताइ

केबलि बाजे गो बुके 'नाइ नाइ नाइ'—
नाइ—ताहे नाइ सेइ प्रेमेर परश,
सञ्जीवनी से अमृतरस—
ये आमारे मृत्युमाझे नित्य लबे अमृतेर पथे
ज्योतिर्म्मय आलोकेर रथे
चिरदिन।
कोथा ताहा शून्य-सुखे—रिक्त प्राणहीन।
ओगो रुद्र, एरा शुधु जाने
टानिते बिमूढ़जने तृप्तिहीन चिरतृषापाने।
नानाछले देवतार छद्मरूप धरि,'
बासनार सुधा आने रसनार पियालाय भरि'।
तारपर ?
तारपर शुधु तृषा तीव्र तृषा, चित्त जरजर,
अन्धमूढ़ सर्व्बनाश पाने
सुधु छुटे धेये चला—पिपासार टाने
शान्तिहीन, अर्थहीन विरामबिहीन।
सुधु ज्वाला, सुधु जीर्णतृषा
नाहि दिशा
शुधु मृत्यु क्षुधातुर—बिभीषिका कङ्काल श्रीहीन
एरा कि जानिबे चिरकल्याण निरता
चिरशान्तिसुधामयी छायास्निग्ध प्रेमेर वारता !
ये प्रेम आमारि लागि,'
अनिमेषे जागि,'
आदिहीन सृजनेर पार हते युगयुगान्तरे
अभिसारे चलेछिल; एकाग्र अन्तरे
अपरूप साधनाय—मुग्ध आत्महारा,

सृष्टिर अमृतधारा,—
अरूपेर विचित्र विकाश—रूपे, रसे,
वर्णे, प्राणे, आनन्द-परशे,
बेदने, स्पन्दने,
अरूपेर स्वर्ग ह'ते अपरूप सृष्टिर नन्दने,—
सत्येर अस्तित्व ह'ते मूर्त्त सत्यरूपे;—
तारि माझे चुपे
आमारि लागिया तार परम साधना
युगयुगान्तेर आराधना
शुधु मोरे, शुधु मोरे चाहि' ।
हाय, एरा कोथा पथे पावे सेइ प्रेम ? से अमृत नाहि
बिलास-मदिर-मत्त-रसे
ज्वालामयी कामनार कलुष परशे ।
ओरे रे अशान्त चित्त मोर
अशान्ति तोर
जेगे थाक् चिरदिन अन्तरे बाहिरे;
येन कोनो दिन तोरे नाहि राखे घिरे
रङ्गिन नेशार घोर
निसाड़ चेतनाहीन मायासर्प सर्वनाश-डोर ।
तीव्र ज्वालामयी तोर ए अशान्ति कशा
जाग्रत मङ्गलरूपे घुचावे सकल भ्रान्ति—सकल दुर्दशा
एइ से अमृत तोर, एइ तोर परशरतन
पले पले नित्यमृत्यु, अशेष पतन—
सब ह'ते बाँचाइबे तोरे—
'इष्ट-रक्षा' ए अशान्ति । यदि आँखिलोरे
निशिदिन करे तोर चेतना सञ्चार

मर्म्मघाती वेदनाय—सेइ पुरस्कार ।
सेइ शुभ आशीर्वाद तव,
सेइ तोर देवतार प्रेम अभिनव ।
हे रुद्र आमार
एइ ये अशान्ति मोर, एइ तो तोमार अभिसार
मलिन बासना पाने चित्त मोर यबे छुटे याय
दुर्द्दम दुर्व्वार दुराशाय,
तखनि कखन तुमि मनेर गोपन पथ दिया
अशान्तिर छद्मरूपे अधिकार कर मोर हिया ।
तारपर निभे याय आलोक-उत्सव,
आनन्देर मत्त कलरव
हाहारबे प्राणे आसि बाजे;
उत्सव आनन्दमाझे सर्व्व तुच्छ काजे
प्राण करे हाय हाय रहि रहि चित्त शुधु दहे,
विक्षत अन्तर भेदि अविश्राम शोणिताश्रु बहे ।

"हे बन्धु, हे अविनश्वर, जानता हूँ—ठीक जानता हूँ, फिर भी नहीं मानता—तुम्हारे स्नेह की स्मृति अमिट है। नाना प्रकार के भावों में, कार्यों में प्रतिदिन तुम्हारी गाढ़ी चिर-दिन की प्रीति फिर भी पाता हूँ। आश्रय-विहीन मेरा अशान्त चित्त तृप्त नहीं होता। तुम्हारे विना भुवन के ऐश्वर्य के बीच में, ऐश्वर्य की वह अगाध विभूति लज्जित होकर भस्म में परिणत हो जाती है। रिक्त श्मशान की तरह हृदय केवल हाहाकार कर उठता है। इसीलिये तुच्छ सुख और प्रलोभन में केवल 'नहीं, नहीं, नहीं' की आवाज़ हृदय में गूँज रही है। नहीं, वह उसके प्रेम का स्पर्श, वह संजीवनी और अमृत-रस जो मृत्यु के समय भी मुझे ज्योतिर्मय आलोकित रथ पर चढ़ाकर अमृत-पथ की ओर ले जाता है, नहीं है। प्राणहीन और शून्य सुख में यह आनन्द कहाँ है!

हे रुद्र, यह तो केवल मूर्खों की अतृप्त पिपासा को और जाग्रत करना जानता है। नाना प्रकार का छल कर, देवता का बनावटी भेष बनाकर वह रसना के प्याले में वासना रूपी सुधा भरभर कर लाता है। फिर क्या? फिर केवल प्यास, तीखी प्यास और जरजर चित्त, अन्ध-मूढ़ सर्वनाश की ओर शीघ्रतापूर्वक बढ़ता चला जाता है। पिपासा भी बढ़ती जाती है—वह प्यास शान्तिहीन, अर्थहीन और विराम-विहीन है। केवल ज्वाला और तीखी प्यास। कहीं शान्ति नहीं, चारों ओर भूखी मौत की विभीषिका है—कंकाल और श्रीहीन। हाय, यह कहाँ पायेगा वह प्रेम? भला, विलास में, मदिरा के मादक रस में, ज्वाला-मयी कामना के कलुषित स्पर्श में वह अमृत कहाँ?"

जीवनमय चौधरी

(४३)

एक आसामी गीत का अनुवाद

ये दिके नयन तुलि हेरि चित्रवत्
श्यामा धरणीर स्नेह उठेछे उच्छ्वासि।
सुनील पर्व्वत श्रृङ्गे; तरङ्गित पथ
गेछे दूरे; म्लान रवि; देखा देय आसि
बन्य कृष्णसार सम सन्ध्यार आँधार
कोन् गुप्त गुहा ह'ते मेलि त्रस्त आँखि;
पश्चिम पर्व्वत-चूड़ा धीरे ह'ये पार
महुया-पाण्डुर चाँद स्वप्न देय आँकि॥

जा'ने जानि कि आनन्दे फुल हय फल;
द्वितीयार क्षीण शशी पलके पलके
धेये चले पूर्णिमाय; विश्वेर अतल
रहस्य भेदिया तुमि केमने ए चोखे

धरा दिले ! के बलिबे केमने आबार
सकलेरे छेड़े ह'ले एकान्त आमार !

"जिसी ओर आँख दौड़ाता हूँ, देखता हूँ कि चित्रवत श्यामा धरणी का प्यार उच्छ्वसित हो उठा है। सुनील पर्वत पर दूर तक तरङ्गित पथ चला गया है। सूर्य म्लान-प्राय है। किसी गुप्त गुहा से त्रस्त आँखें डालते हुये बन्य-मृग की नाईं साँझ का अन्धकार दीख पड़ता है। धीरे-धीरे पश्चिम पर्वत की चूड़ा पारकर महुया के समान पाण्डु चन्द्रमा स्वप्न अङ्कित कर देता है। जानता हूँ, जानता हूँ किस आनन्द से फूल फल बन जाता है; द्वितोया का क्षीण चन्द्रमा पलक-पलक में पूर्णिमा की ओर दौड़ा चलता है। विश्व के अस्त रहस्य को भेदकर तुम कैसे इन आँखों में पड़ गये हो ? कौन कैसे कहेगा कि सब से अलग होकर मैं एकान्त हूँ।"

(४४)

उत्तरी ध्रुव की पुकार

आबार मोरे डाक दियेछे तुषार मेरु उत्तरे,
से रव शुने बिपद् गुने केमन करे रइ घरे !
छादेर बाधा आलगा ह'ल, डाक्छे रुाँबू इंगिते—
मेरुर पाने मरार हाने; रवइ पड़े कोन् डरे।
हिमेर बाये सरण-शादा दिइछि आमार पाल तुले,
जाहाज गुलोडाक्छे आमाय रिक्त शाखार मास्तुले,
जलेर झापट् लागछे आमार निदाघ-दागा पँजरे।
ताइ त काँदे पराण आमार—घाटेर बाँधन देय खुले।
कि बले आज रहव पड़े बिषुब-रेखार अन्दरे—
रुद्र निदाघ ज्वालाय येथा तपेर आगुन मन्तरे ?
व्यर्थ हबे मेरुर से गान, व्यर्थ हबे जय-गाथा—
मृत्यु पेथा हाजार रूपे जमाट्-गले सन्तरे।

"उत्तर मेरु ने फिर मुझे पुकारा है, उस शब्द को सुन विपद् का विचार कर घर में कैसे रहूँ ? छत की बाधा उठी, इङ्गित से तंबू बुला रहा है मेरु की ओर, मृत्यु के प्रति । किस प्रकार पड़ा रहूँ ? हिम की वायु में मेरा पाल खोल दिया । जहाज़ मुझे रिक्त शाखा के मस्तूल की ओर बुला रहा है । निदाव-दग्ध मज्जर में जल की थपकी लगती है, इसी से तो मेरा हृदय रोता है—घाट का बन्धन खोल देता है । आज विषुवत-रेखा के भीतर किस आशा से पड़ा रहूँ ? जहाँ अन्त:करण में रुद्र निदाव तप की आग जलाया करता है, क्या मेरु का गान व्यर्थ होगा ? क्या वह जय-गाथा, जहाँ जमे जल में हज़ार रूप से मृत्यु तैर रही है, व्यर्थ होगी ?

दिगन्तेर धार टुकुतेइ नितेज रवि याय देखा,
हाजार तारार द्विगुण आलो तुषार परे हय लेखा,
स्थिर चपला मेरु प्रभा ज्वालाय रँगेर फुलझुरी—
कार येन ए शव-साधना चलछे दिवा-रात एका !
आबार डाके शोन् गो तोरा, शोन् गो तोरा कान पेते;
आमाय घिरे राखिस मिछे, मेरुर मुखे दिरु पेते;
तरीर काछि तीरेर काछे चाच्छे एबार मुक्ति गो—
प्रलय-श्वासे पाल दोले रे उठछे तरीर हाल मेते !
एबार आमाय डाक दियेछे तुषार-मेरु उत्तरे—
चक्षे ये देश हयनि देखा – काँदछे पराण तार तरे ।
श्यामल धरार कोमल वाहु लागछे ना आर मोर भालो ।
मेरुर पाने भासब एवार मरण-शादा पाल करे ।

"दिगन्त के धार पर निस्तेज सूर्य दीख पड़ता है । हज़ारों तारों से दुगुना आलोक तुषार पर दीख पड़ता है । स्थिर चपला को नाईं मेरु-प्रभा फुलझड़ी जलाती है । दिन-रात यह एकान्त साधना किसकी चलती रहती है ? और पुकारता है, सुनो, सुनो; तुम लोग कान देकर सुनो । मुझे निरर्थक घेर रखते हो । मेरु की ओर जाने दो । किनारे के

समीप नाव पर मुक्ति ताक रही है, पाल प्रलय-श्वास से फूल उठता है—तरी का हाल मत्त हो जाता है। फिर उत्तर मेरु ने मुझे पुकारा है। जिस देश को आँखों ने देखा, हृदय उसी के लिए रो रहा है। और मुझे श्यामधरा के कोमल बाहु अच्छे नहीं लगते। अब मरण-श्वेत पाल फैलाकर मेरु की ओर बह जाऊँगा।"

प्रमथनाथ विशी

(४५)

पहेली

भासे चाँद नील गगने
नाचे डाल समीरणे।
लालिमा ऊपार भाले-
चषे क्षेत चाषा हाले॥
कोले मार शिशु हासे
माते बन फूलेर बासे।
हलमल नदीर जले
नेये दाँड़ बेये चले॥
माठेते खेलार मेला
सोनालि साँजेर बेला।
गोधूलिर छाया घिरे
धेनु पाल घरे फिरे॥
बरषे बादल-धारा
निर्झरि पागल पारा।
कमलेर बुके मधु
उतला भोमरा बंधु॥
कोकिलेर कुहुताने

कि कथा जागे प्राणे ?
जोछनार आँधार आलो
के कारे बासे भालो ?
यतनेर बासा बाँधा
दुदिनेर हासा काँदा
जीवने मरणेते
के दिलो मात्रला गेंथे ?
प्रणयी प्रेमेर गाने
खुँजे पथ काहार पाने ?
धरारे करे' सरा
के करे भाँगा-गड़ा ?
केन हय व्यथार खनि ?
पराणेर परश मणि ?
झिनुकेर भेंगे मरम
केन हय मोतिर जनम ?
मरणेर पर पारे
पेते प्राण चाहे कारे ?
विरहेर व्यथा केन
मिलनेर सोपान हेन ?
धरा कय तारार साथे
कि कथा निशीथ राते ?

"नील गगन में चाँद तैरता है। हवा में डालें नाचती हैं। उषा के भाल में लालिमा है। कृषक हल से खेत जोतता है। माँ की गोद में बच्चा हँसता है। फूल के गन्ध से बन सुबासमय हो रहा है। टलमल नदी के जल में दाँड़ खेते हुये मल्लाह चल रहा है। सुनहले साँझ के समय मैदान में खेल का मेला लग जाता है। गोधूलि की छाया से

घिरे गाँव को गायें लौट रही हैं। बादल की धारा बरस रही है। निर्झर पागल-सा होगया है। कोयल के कुहुकने के साथ प्राण में कौन-सी कहानी जग उठती है? ज्योत्स्ना का अन्धकारमय आलोक किसको प्यार करता है? यत्न में गृहस्थी बाँधना, दो दिन की हँसी और रोदन से, जीवन और मरण से किसने माला गूँथ दी है? सारी पृथ्वी कौन तोड़ता-जोड़ता है? व्यथा की खान में प्राण की स्पर्शमणि क्यों होती है? सीप के मर्म्म को भेदकर मोती का जन्म क्यों होता है? प्राण मरण के उस पार किसे पाना चाहता है? विरह की व्यथा मिलन की सीढ़ी क्यों होती है? निशीथ रात में धरा ताराओं से कौन-सी कहानी कहती है?"

गुरुसदय दत्त
(I. C. S.)

(४६)

अधरे अधर

एमन चाँदिनी निशि पुलक कम्पित दिशि
एमनि बिजन उपबने;
मुखेते चाँदेर आलो दाओ आँखि तारा कालो
चेयेछिल नयने नयने।
कुञ्चित अलक चुल ईषत् दोदुल दुल
अञ्चले बकुल फुलराश,
आधो गाँथा मालाखानि हातेर बाधा ना मानि
लुटाइछे चरणेर पाश।
तुलिया कुसुम हार सँपिलाम करे तार
अनन्त खुलिल आँखि परे,
मुहूर्त्ते बन्धन चूर्ण अपूर्ण हइल पूर्ण
स्पर्श होल अधरे अधरे!

(४८८)

"ऐसी चाँदनी रात में, पुलक-कम्पित दिशाओं में, ऐसे विजन उपवन में अधर पर अधर रखा था। मुख में चाँद की चमक थी। उसकी दोनों काली आँखें मेरी आँखों पर गड़ी थीं। उसके अलक कुञ्चित थे। अञ्चल में बकुल की पुष्प-राशि कुछ-कुछ हिल रही थी। आधी गुँथी माला, हाथों की बाधा न मानकर, चरणों के समीप लोट रही थी। मैंने कुसुम-हार उठा उसके हाथों में डाल दिया। आखों के सम्मुख अनन्त खुल गया। मुहूर्त्त में बन्धन चूर्ण होगया. अपूर्ण पूर्ण होगया, अधर अधर का स्पर्श हुआ।"

स्वर्णकुमारी देवी

(४७)

सन्ध्या बेला काल

आँधार तखन आपन मने पात्तेछिल जाल,
आमादेर ओय शुकनो माठेर पाछे
एकटा बड़ो कृष्णचूड़ार गाछे
हालिखेला रँगिन फुले फुले—
डाल गुलि तार दखिन—हावाय उठते छिलो दुले।

सेइ खाने ते खेलते छिलो एकटि छोटो मेये—
कहिनु तारे डेके—
कोथाय थाक? एइ माठेते आसछ कबे थेके?
छोट्टो मेये छोट्टो कथा, अनेक किछु कइल चुपे-चुपे
सरल मनेर सरल छवि फुटल रूपे रूपे।

हठात् होलो मने
एमनि करे एमनि सँगोपने
आमादेर एइ जीवन खानि करे
कत प्राणेर परश चिन्ह पड़े,

कत रकम हय ये देखा-शोना
याय ना ता त' गोना,
कारु, स्मृति लुकिये थाके मनेर कूले कूले
कारु कथा माइ ये आबार भुले ।

"साँझ का समय ! उस समय अन्धकार अपने मन से जाल डाल रहा था । हम लोगों के उस सूखे मैदान के पीछे एक बड़े कृष्णचूड़ा के वृक्ष पर, होली खेले हुए रँगे फूलों फूलों पर, उसके डाल दक्षिण वायु में हिल उठते थे ।

उसी स्थान पर एक छोटी लड़की खेल रही थी । उसको पुकारकर पूछा—"कहाँ रहती हो ? इस मैदान में कब से आती है?" छोटी बच्ची धीरे-धीरे कितनी ही बातें कह गई । रूप-रूप में सरल मन की सरल छवि फूट उठी ।"

एमन मधुमय
एइ-ये परिचय—
एकि शुधु आधेक चिते क्रमे क्रमे भोला ?
प्रीतिर दोले एकटु खानि दोला—
इहार माझे स्थायी किछुइ रयना कि गो बाकी ?
एमन किछु सत्य थाके ना कि
ये हि मोदेर प्राणेर माझे नित्य हये रय—
नूतन माझे पुरातनेइ बारे बारे वटाय परिचय ?

"हठात् मन में आया, इसीप्रकार सङ्गोपन में जीवनभर कितने प्राणों का स्पर्श-चिह्न पड़ता है ! कितने प्रकार से देखते-सुनते हैं, यह तो गिन नहीं सकते ! किसी की स्मृति मन के कूल-कूल में छिप रहती है, और किसीकी बात ही भूल जाते हैं ।

"ऐसा यह मधुमय परिचय—यह क्या केवल अर्ध-परिचय का क्रमशः भूलना है? प्रीति के दोले में बस एक बार का झूलना—इसके भीतर क्या कुछ स्थायी बच नहीं रहता? ऐसा कोई सत्य नहीं है जो हमारे प्राण में नित्य बनकर ठहर सके—नूतन में बार-बार पुरातन का परिचय घटावे।

मैत्रेयीदेवी

(४८)

नौका-पथे

(१)

माझि—भिड़ायो ना चलुक तरी
नदीर माझे।
तरी—ए घाटेओ बाँधब ना को
आज के साँझे।
ओइ घाटे ओइ बकुल गाछे
जल येथा छुँयेइ आछे,
एखना ओइ ये घाटे ते
पल्ली-बालार काँकण बाजे।
तरी सेथा बाँध्ब ना को आज्के साँझे।

(२)

डुबे छे रवि नील गगने
यदिइ आँधार हये एसे,
तबु नदीर माझे माझे
तरी मोदेर चलुक भेसे।
एइ गाँयेर भाइ नामइ शुने,
प्राणटा एमन करे केने,

घुमपाड़ानो कोन् वेदना,
जेगे उठे हृदय माझे;
तरी-हेता बाँधब ना को आज्के साँजे।

(३)

मौन साँजेर म्लान माधुरी,
कतइ व्यथा आन्छे डेके,
आमेर साँजेर दोपटि छोट,
विषाद-छवि छिच्छे एँके।

एकटि गृह होताय कि ना
छिल आमार बड़इ चिना
छविटि यार आजओ आमार
हृदय-कोणे सदाइ बाजे
तरी हेथा बाँधब ना को आज्के साँजे।

(४)

एइ नदीरइ एइ घाटेते
एमनि साँजे आमार प्रिया,
येत छोट कलसीखानि
कोमल ताहार बक्षे निया,
सोहाग जल उथले उठि
बक्षे ताहार पड़त लुटि
पथेर माझे आसाय देखे
घोमटा दिते हर्षे लाजे,
तरी हेथा बाँधब ना को आज्के साँजे।

(५)

ओइ घाटे ओइ गाछेर पाशे,
तटिनीर ओइ श्यामल कूले,

दियेछि सेइ स्वर्णलताय
आपन हाते चिताय तुले।
आजके ओ सेइ चितार परे
शिथिल बकुल पड़छे झरे
आजओ मधुर मुखखानि तार
देय ये बाधा सकल काजे,
तरी हेता बाँधब नाको आज के साँजे।

१—"ऐ नाविक नाव मत लगाना, नदी में चलने दो। आज साँझ को नाव इस घाट में नहीं बाँधूँगा। उस घाट पर जहाँ पानी छू-छूकर रहा है, उस घाट पर जहाँ अभी ग्राम बाला का कङ्कण बज रहा है, उस बकुल वृत्त में आज साँझ को नाव न लगाऊँगा।

२—सूर्य्य नीलाकाश में डूब गया। यदि अन्धकार भी हो जाय तो भी हम लोगों की नाव आज नदी ही में तैरती चले। भाई, इस ग्राम का नाम ही सुनकर प्राण ऐसा क्यों कर रहा है; हृदय में कौन सुलानेवाली वेदना जाग उठती है। आज साँझ को यहाँ नाव न बाँधूँगा।

३—मौन साँझ की म्लान माधुरी कितनी ही व्यथा बुला लाती है; ग्राम का क्षुद्र सान्ध्य प्रदीप विषाद की छवि अङ्कित कर देता है। वहाँ एक घर मेरा बड़ा परिचित था, जिसकी छवि आज भी मेरे हृदय-कोण में बज उठती है। आज साँझ को वहाँ नाव न बाँधूँगा।

४—इसी नदी के इसी घाट पर इसी तरह के साँझ को मेरी प्रिया अपने कोमल वक्ष पर छोटी कलसी को लेकर जाया करती थी। सौभाग्य-युक्त जल उछल उठता और उसके वक्ष पर लुट पड़ता था। वह पथ पर मुझे देख हर्ष और लाज से अवगुण्ठन डाल लेती थी। आज साँझ को नाव वहाँ न बाँधूँगा।

२—उस घाट पर, उस गाछ के नीचे, तटिनी के उस श्यामल कूल पर, उस स्वर्ण-लता पर अपने हाथों चिता रच डाली है। आज उस चिता पर शिथिल बकुल झड़ पड़ता है। आज भी उसका मधुर मुख सभी कामों में बाधा दिया करता है। आज साँझ को वहाँ नाव न लगाऊँगा।

(४६) कुमुदरञ्जन मल्लिक

एक ये शेफालि आछे, हेरि यार हास
यौवन निकुञ्जे मोर चिर मधु-मास !
दाँड़ाय चटुल दासी
शेफालिर तले आसि—
आँखे चक्षे देवहासि ! आँकि सेइ छवि—
दीन-दुःखी बाङ्गलार कवि।

आमेर य कूले कूले, ग्रामेर अश्वत्थ मूले
यतदिन बहिबे जान्हवी,
खोकारे लइया बुके,
प्रियारे आलिङ्गि सुखे
बुक पूरि, रञ्जिब ए छवि—
छुद्र आमि बाङ्गलार-कवि।

तोमरा सकले गेले, आमारे एकेला फेले,
स्वदेशेर माया भुले ! अरण्य अटवी
एखनो ए देश नय !
—एखनो जान्हवी वय !
शरते चाँदनि हासे ! आँकि सेइ छवि
दीन-दुःखी बाङ्गलार कवि।

"एक जो शेफालि है, जिसकी हँसी को देख मेरे यौवन-निकुंज में चिर बसन्त आज्ञाकारी दास हो रहता है। उसके नयनों में हास्य हूँगा। दीन-दुःखी बँगाल का कवि मैं वही चित्र अङ्कित करता हूँ। गाँव के घरि-

धार प्राण के अस्वत्थ मूल में जितने दिनों तक गंगा बहेगी, मैं शिशु को गोद में ले प्रिया को आनन्दपूर्वक आलिंगन करूँ—मैं इसी दृश्य को पूर्ण हृदय से अंकित करूँगा। मैं बंगाल का एक क्षुद्र कवि हूँ।

तुम सब मुझे अकेली छोड़ स्वदेश की ममता भूल जंगल में चले गये। अभी भी तो देश नया है—अभी भी जान्हवी बह रही है, हँसती हुई शरद-चाँदनी में मैं दीन-दुःखी बंगाल का कवि उसी छबि को बनाता हूँ।"

(५०)

श्यामाङ्गी वर्षा सुन्दरी

मुक्तमेघ बातायने बसि,
एलोकेशी के ऐ रूपसी?
जलयन्त्र घुराये घुराये,
जलराशि दितेछे छड़ाये!
रिम् झिम् रिम् झिम् करि
सारादिन, सारारात्रि, बारिराशि पड़िछे झर्झरि।
चमकिल विद्युत सहसा!
ए आलोके बुझियाछि, ए नारीरे चिनियाछि:
ए ये सतत-सरसा,
भुवनमोहिनी धनी रूपसी बरषा।
श्यामाङ्गी बरषा आजि, विह्वला मोहिनी साजि,
एलाये दियेछे तार मसीवर्ण कालो कालो चुल;
श्रीकण्ठे प'रेछे बाला, अपराजितार माला,
दुकर्णे दोदुल दोले नीलवर्ण झुमकार फुल!
नीलाम्बरी साड़ी खानि परि,
अपूर्व माल्लार राग ध'रे छे सुन्दरी!

त्रिपाठीजी के अन्य काव्य-ग्रन्थ

पथिक

पथिक एक खण्ड-काव्य है। पाँच सर्गों में समाप्त हुआ है। महात्मा गाँधी, माननीय मालवीयजी, बाबू भगवानदास आदि नेताओं ने इस पुस्तक को पढ़ा है और इसकी बड़ी ही प्रशंसा की है। यह काव्य प्रत्येक युवक को पढ़ना चाहिये। इसकी कथा पढ़कर कौन ऐसा सहृदय है, जो रो न उठे। प्राकृतिक सौन्दर्य का ऐसा सुन्दर वर्णन हिन्दी के किसी काव्य में नहीं मिलेगा। देश की दशा, कर्तव्यपालन की दृढ़ता, आत्मबल की महिमा और आत्म-त्याग की कथा बड़े ही मार्मिक शब्दों में वर्णित है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, मूल्य आठ आने।

मिलन

पथिक और मिलन दोनों दो सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। यह खण्ड-काव्य भी पाँच सर्गों में समाप्त हुआ है। इसकी लोकप्रियता का ज्वलन्त प्रमाण यह है कि थोड़े ही दिनों में इसके आठ संस्करण होगये। यह सौभाग्य हिन्दी के बहुत ही कम नवीन काव्य-ग्रन्थों को प्राप्त हुआ है। छपाई-सफ़ाई श्रेष्ठ, दाम आठ आने।

स्वप्न

यह खण्ड-काव्य भूस्वर्ग काश्मीर में लिखा गया है। जिन्होंने मिलन और पथिक पढ़ा है, वे इस काव्य को अवश्य पढ़ें। इसमें प्रकृति-वर्णन के साथ शृङ्गार, विरह, प्रेम और देशभक्ति का अनुपम मिश्रण है।

छपाई-सफ़ाई उत्तम। मूल्य आठ आने।

मा[illegible]

सम्पादक—श्रीगोपाल नेवटिया

इसमें पंडित रामनरेश त्रिपाठीजी की फुटकर चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। सम्पादक ने प्रारम्भ में एक सारगर्भित भूमिका लिखी है। जिनको खड़ी बोली की कविता से अनुराग हो, वे इसे अवश्य पढ़ें। छपाई बहुत ही उत्तम है। मूल्य आठ आने।

हिन्दुस्तानी कोष

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इस कोष में संस्कृत, अपभ्रंश, अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अँग्रेज़ी, व्रजभाषा, बँगला, मराठी तथा गुजराती के वे सब शब्द जमा किये गये हैं जो हिन्दी और उर्दू ज़बान में आम तौर से प्रचलित हैं। प्रत्येक शब्द का वही अर्थ दिया गया है, जो रोज़ इस्तेमाल में आ रहा है। इस एक कोष से हिन्दी-उर्दू दोनों ज़बानों का काम चल सकता है। यह कोष विद्यार्थियों, अध्यापकों और भिन्न प्रान्तवालों के बड़े ही काम का है। मूल्य तीन रुपये के लगभग होगा। पहले से ग्राहक होनेवालों से चौथाई मूल्य कम लिया जायगा। शीघ्र ग्राहकों में नाम लिखाइये।
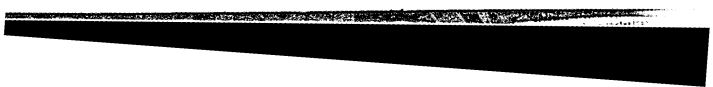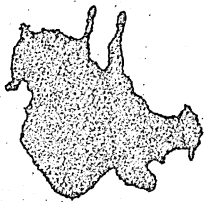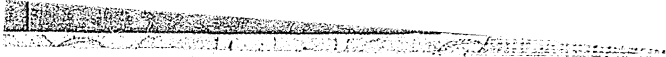
स्रस्त केशराशि हते बेलफुल चौदिके झरिछे;
कालोरूप फाटिया पड़िछे !
याइ बलिहारि !
के देखेछे कवे भवे हेन बरनारी ?

"इस मेघराशि रूप वातायन में तुम भींगे केशवाली कौन सुन्दरी हो ! जलयन्त्र को चला-चला क्यों पानी छिड़कती हो ? सारे रात-दिन रिम्झिम् रिम्झिम् झर-झरकर पानी पड़ता है। हाँ, यहीं तो अचानक बिजली चमकी। हाँ ! इस आलोक में मैं तो इसे समझ गया, पहचान गया। यह तो चिर-रसमयी संसार-मोहिनी वर्षा सुन्दरी है। यह श्यामांगी वर्षा आज विह्वला हो मोहिनी बनी हुई है। अपने काजल के समान काले-काले केश लटका दिये हैं। गले में बाला पड़ी है। अपराजिता की माला है। दोनों कानों में नीलवर्ण झुमका फूल झूलते हैं। नीली साड़ी पहने अपूर्व मल्लार राग अलाप रही है। इस अस्तव्यस्त केश-राशि से चारोंओर बेल-फूल झड़ रहा है। काला रूप फट पड़ा है ! बलिहारी है ! किसने ऐसी सुन्दरी देखी है।"

(५१)

(१)

कवि कहे तुमि मोर कल्पनार परी,
नयन आलोके करि स्वपन-रचन
शिल्पी कहे—बासनार तीरे बशि' गड़ि',
ओ प्रतिभा, भेंगे भेंगे हृदय आपन;
ज्ञानी कहे—पुरुष तो आछे पदे पड़ि',
प्रकृतिर खेला हेरि सारा त्रिभुवन;
कर्मी कहे—तोमा लागि' हे मोर सुन्दरि,
करि लक्ष्य भेद, भाँगि हर-शरासन;

प्रेमिक कहिछे—आजो बाँशरीर स्वरे
चित्र-यमुनार कहे ओइ नाम वाजे;
भक्त कहे—सृष्टि-नाभि-पद्मेर उपरे
ओ रूपेर रस मूर्त्ति नियत विराजे;
गृही आमि, ओगो नारि, चिरदिन तरे
आह्वामि तोमारे शुधु मोर गृहमाझे।

"कवि कहता है, "तुम मेरी कल्पना की परी हो, अपने नयन के आलोक में स्वप्न की रचना करता हूँ।" शिल्पी कहता है, "वासना के तीर पर बैठ मैं अपने हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर वह प्रतिमा गढ़ता हूँ।" ज्ञानी कहता है—"पुरुष तो पैरों पर पड़ा है। सारे त्रिलोक में प्रकृति का खेल देखता हूँ।" कर्म्मी कहता है, "हे सुन्दरी! तुम्हारे लिये लक्ष्य-भेद करता हूँ, शिव का चाप भङ्ग करता हूँ।" प्रेमी कहता है, "आज भी बाँसुरी के स्वर में हृदय यमुना के तीर पर वही नाम बज उठता है।" भक्त कहता है, "सृष्टि के नाभिपद्म के ऊपर उस रूप की रसमूर्त्ति सर्वदा विराजती रहती है।" ओ नारी, मैं गृही चिरकाल से तुम्हें केवल अपने घर बुला रहा हूँ।"

(२)

मोर तरे, हे अपर्णा, हे तापसी प्रिया,
वल्कले शोभिले अंग त्यजि आभरण;
मोर साथे महारासे रहिले मगन—
अश्रु ओ कलंक शुधु जीवने मागिया;
सहिले ऋषिर शाप आमारि लागिया;
कण्ठे दिले लता-फाँसि वरिया मरण;
आनिले सौरणी—देहे सावित्रीर मन;
अच्छोदेर तीरे ध्याने रहिले जागिया,

स्वयंबरे कतबार कण्ठे माला दिले;
रणक्षेत्रे रथ-रश्मि हाते तुले निले;
कतबार अपमान सहि' सभातले
मोर पाप मुछे दिले नयनेर जले;
आमार चिताय पुड़ि' जन्म जन्मान्तरे
हे प्राक्तनी, साथे साथे आछ चिरतरे ।

"हे अपर्णे, हे तापसि प्रिये, मेरे कारण तुमने आभरण त्याग बल्कल से अपने शरीर को भूषित किया । जीवन में केवल आँसू और कलङ्क माँगकर मेरे साथ में मग्न रही । मेरे कारण ऋषि के शाप सहे । मृत्यु को वरण कर कण्ठ में लता की फाँसी लगा ली । अप्सरा के शरीर में तुम सावित्री का मन लाई । अच्छाद के तोर पर ध्यान में जगी रही । कितनी बार स्वयंवर में मेरे कण्ठ में माला पहना दी । रणक्षेत्र में कितनी ही बार रथ का रास पकड़ा । कितनी बार सभा में अपमान सह आँखों के जल से मेरे पाप पोंछ डाले । हे प्राक्तनी मेरी चिता में जलकर जन्म-जन्मान्तर मेरे साथ रही ।"

सुशीलकुमार दे

(४२)

दो सनेह

(१)

ए जीवन ले ये आमि कि करिब, प्रभु ?
इच्छा करे, दिये याइ कालेर भाण्डारे;
एर छाया बेंचे थाक इतिहासे तबु
तृप्ति कोथा ? चिरप्राण भविष्यत् तारे
स्थान देबे एक कोने याहार माझारे
से न शुधु प्राणहीन वर्णमाला छाबा

वर्णहीन शुष्क श्वेत पाता । आमि ता'रे
बलिब ना बेंचे थाका, अमरत्व पावा
प्रतिक्षणे भरे दाव यदि उच्छ्वसित
आनन्द-वेदना-मेशा प्रेमेर अमृते,
प्रतिक्षणे भरे दाव यदि लोना यत
अतीन्द्रिय सौन्दर्य्येर रूपे गन्धे गीते,
मुहूर्त्ते करिया याक देह; मुहूर्तेइ
उ'बे याक् स्मृति । तबु मृत्यु मोर नेइ

"प्रभो ! इस जीवन को लेकर मैं क्या करूँगा ? इच्छा होती है, इसे काल के भण्डार में दे जाऊँ । इतिहास में इसकी छाया बची रहे । तो भी तृप्ति कहाँ ? चिर-प्राण भविष्यत् उसे एक कोने में स्थान न देगा, जिसमें वह केवल एक प्राणहीन वर्णमाला से आच्छन्न वर्णहीन, सूखे, श्वेत पत्र बनकर वर्त्तमान रहेगा । मैं उसे "जीवित रहना, अमरता पाना" न कहूँगा । यदि तुम प्रत्येक क्षण को उच्छ्वसित आनन्द-वेदना-मिश्रित प्रेम के अमृत से भर दो, यदि प्रत्येक क्षण को लालायित अतीन्द्रिय सौन्दर्य्य के रूप, गन्ध और गीत से भर दो, तब यद्यपि शरीर क्षण में ही छूट जाय, मुहूर्त्त ही में स्मृति डूब जाय, तथापि मेरी मृत्यु नहीं है ।"

(२)

आमि चले गेले-ओ तो थाकिबे संसार
पाखीरा गाहिबे गान आगेकार मतो ।
फूल फोटा, फूल झरा, नित्य लीला यत
स्तव रबे अनाहत प्रकृति मातार ।
शुधु आमि याम चले । आमारि मतन
कत आसिबे तरुण । तरुणीर मुखे
चाहि झंझा बहे याबे ताह दिरो बुके ।

ताहादेर पदध्वनि करेछि श्रवण,
ताहादेर प्रेम स्वप्न पेयेछि अंतरे।
हे तरुण, हे तरुणी, तोमरा यखन
ए पन्थेर एइखाने फेलिबे चरण
पूर्वगामी पथिकेर स्मरो क्षण तरे
एइ स्मरा फूले तार रेखे गेछे स्मृति;
पथेर वातासे तार मिशे आछे गाति।

"मेरे चले जाने पर भी तो संसार रहेगा। पक्षी पूर्ववत् गान गायेंगे। फूलों का खिलना, फूलों का झड़ना, प्रकृति माता की सारी लीलायें अनाहत (अक्षुण्ण) रहेंगी। केवल मैं चला जाऊँगा। मेरे समान कितने तरुण आवेंगे। उनके हृदय में भी तरुणी का मुख देखकर तूफ़ान उठेगा। मैंने उनकी पदध्वनि सुनी है, हृदय में उनके प्रेम के स्वप्न को भी देखा है। हे तरुण! हे तरुणी! तुममें जो इस पथ के इस स्थान पर पैर रक्खो, क्षण भर पूर्वगामी पथिक का स्मरण करना। उन्होंने अपनी स्मृति इन झड़े हुए फूलों में छोड़ रखी है। उनके गान पथ के वायु में मिले हुए हैं।"

अन्नदाशङ्कर राय (I. C. S.)

(५२)

कवि

कार कथा!—काहारि से मरमेर अवरुद्ध गान,
शुनिब प्रान्तर तीरे बसि?
कोन् आलो, रजनी-रूपसी
आमार अंचल मेलि सच किया करिछे सन्धान?
कार से निःशब्द रूप, प्राण भरि हेरिबे धणी?

नाहि गानि कि से मोह !—हेरि दूरे नीलकान्तमणि
अन्धकार-अजगर शिरे ।
सिन्धुर फेनिल कालो बीरे,
बिजली झलकि उठे मर्म्मान्त शिहरे-पदध्वनि,
शुनि शुधु—सेया कोन् मायविनी अमरी परीर
कल्पना-विहगी बुझि शिहरिछे आकाश-शरीर
बन्धहीन डानार झापटे ।
छाया म्लान सुदूर पर्वते,
निर्झर किङ्किणी बाजे ! उदासीन दक्षिण समीर,
फिरिछे माधवी-बने; दूर बाजे बधूर मञ्जीर !

"प्रान्त के तीर पर बैठ किसकी कहानी, किसके अन्त हृदय का अवरुद्ध गान सुनूँगा ? रूपसी रजनी चकित हो मेरे अञ्चल में मिलकर किस आलोक की खोज करती है ? पृथ्वी किसके उस निःशब्द रूप को ताक रही है ? वह कौन-सा मोह है, नहीं जानता ! अंधकार रूपी अजगर के मस्तक पर दूर में नीलकान्तमणि देखता हूँ । समुद्र के फेनिल काले जल में बिजली चमक उठती है, देखकर हृदय सिहर जाता है । केवल किसी स्वर्गीय मायाविनी अप्सरा की पदध्वनि सुनता हूँ । आकाश-शरीर कल्पना-विहगी मुक्त डैनों की फड़फड़ाहट के साथ सिहरती जान पड़ती है । छायाम्लान दूर पर्वत पर झरने की किङ्किणी बजती है । दक्षिण-वायु उदासीन की नाईं माधवी वन में फिर रहा है और दूर में बज रहा है, बहू का मंजीर ।

सुबलचन्द्र मुखोपाध्याय

(५४)

[मरणासन्न अवस्था में कर्ण अर्जुन को कह रहा है]

सहसा कुन्तीरे हेरि नतमुखी, मुखे माखा व्यथा,

स्नेहशीला धीरे-धीरे जानाइला से बज्रबारता
आमि कर्ण पुत्र ताँर—निमेषे टुटिल अँधकार।
चित्ते मोर एक साथे बेजे गेल हर्ष, हाहाकार!
दुर्जय जयेर वह्नि म्लान ह'ल, निवे निवे याय,
ए नव विचित्र सुखे, जननीर स्नेहेर वात्याय;
दुर्द्दम वासना मोर अरिन्दम प्रतिज्ञा दुर्व्वार
मंत्रबध्य सर्प-सम व्यर्थ रोषे फाले अविनिधार।
पुत्र हये मातृ त्यक्त, वीर ह'ये सुनिर्म्मल ख्याति
लभिनिक, चित्त-आशा चित्ते लय, गर्व्व-आत्मघाती।
आमि एुन धूमकेतु प्रयोजनहीन अलो लये।
आकाशेर व्यर्थ सृष्टि—तपने चन्द्रते यब वहे
अजस्र आलोर स्रोत ताराय ताराय तुमि भाई,
वीर वहे वंशगर्व्वी, शुभ्र-ख्याति, कोनो ग्लानि नाइ।

जयी तुमि, तृप्त तुमि, वीरत्वेर देखाले व्यंजना,
आमि येनु अनादर, अभिशाप, व्यर्थता गंजना!
हीनता, दीनता, लज्जा उच्च शिर करियाछे नत;
ज्येष्ठ बहे श्रेष्ठ नइ, कीर्त्ति नाइ बलिवार मत
कर्ण नाम मुछे याक् खेद नाइ; शुधु अनुरोध,
तुमि मने रेखो मोर ए काँछना, अपमान बोध
शत्रु नय, द्वन्दी नय, भ्राता हले मने दिओ ठाँइ;
धरणीते या हल ना स्वर्गे हवे; रव भाई भाई
आर नय, वड़ व्यथा, याइ भाइ सेगे याय बुक
पार्थ भाई आशीर्व्वाद करि तुमि लभ चिर सुख

"सहसा कुन्ती को देखता हूँ—नतमुखी, व्यथा-म्लान-वदना, स्नेह-शीला ने धीरे-धीरे बज्र सम्वाद जना दिया कि मैं कर्ण उसी का पुत्र हूँ! क्षणभर में अन्धकार फट गया! मेरे हृदय में एक साथ हर्ष और हाहा-

कार बज उठा ! दुर्जय विजय की आग म्लान होगई। इस नये विचित्र सुख में, जननी के स्नेह की आँधी में वह आग बुझ-बुझ जाती है। मेरी दुर्दम वासना, दुर्धर अरिन्दम प्रतिज्ञा, मन्त्रबद्ध सर्प की नाईं व्यर्थ अनिवार रोष में फूल रही थी। मातृत्यक्त पुत्र होकर, बीर बन सुनिर्मल ख्याति पाई। हाय, आत्मघाती अभिमान, चित्त का आशा चित्त में ही लीन होगई ! जब सूर्य, चन्द्रमा और तारों में आलोक की अजस्र धारा बहती, उस समय आकाश की व्यर्थ सृष्टि, निष्प्रयोजन आलोक लेकर आते हुए धूमकेतु की नाईं मैं आया था। तुम तो भाई वीर, वंशगर्व्वी और शुभ्र ख्याति हो।

तुमको तो कोई ग्लानि नहीं है। तुम जयी हो,तृप्त हो। तुमने वीरता दिखलाई। मैंने पाया अनादर, अभिशाप, व्यर्थता और ग्लानि। मेरे ऊँचे मस्तक को हीनता, दीनता और लज्जा ने नीचा कर रखा है। ज्येष्ठ तो हूँ, पर श्रेष्ठ नहीं हूँ। कहने को कीर्त्ति भी नहीं है। मुझे खेद नहीं, कर्ण नाम मिट जाय। केवल यही अनुरोध करता हूँ कि तुम मेरा यह लांछन और अपमान मन में रखना। हृदय में स्थान देना शत्रु समझकर नहीं, द्वन्द्वी समझकर नहीं, भाई समझकर। पृथ्वी पर जो न हुआ, स्वर्ग में होगा; हम दोनों भाई भाई होंगे। और नहीं, बड़ी पीड़ा है; चलता हूँ भाई, हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। भाई पार्थ, आशीर्वाद करता हूँ, सदा सुखी रहो।"

प्यारीमोहन सेनगुप्त

(९९)

सङ्गीत

धरणीर मर्म्मे मर्म्मे रसेर ये गोपन सञ्चय
सञ्चारे पल्लवे पत्रे, नाहि अन्त, नाहि तार च्चय !
कुसुमे कुसुमे ताइ केंदे मरे सुरभिर श्वास,
अन्तरेर रसरूप गन्धे ताइ करिछे प्रकाश !

हृदय-अरण्य माझे पथहारा शुधु घुरे मरे
वासना कामना कत-ताइ, वेदनाय आँखि झरे'
महानन्दे हृदयेर भरा गाङे दुइ कुल छापि'
नाना वाणि, नाना वर्णे तरङ्गिया उठितेछे काँपि
कत काव्य कत छन्दे से आनन्द धरिछे मूरति,
कन्दिरे मन्दिरे ताइ बन्दनाय ध्वनिछे आरति
कथा कत ह'ल बला सृजनेर सेइ आदि ह'ते
तबु येन मने हय बला ना'हि ह'ल कोन मते
क्षणे क्षणे ताइ सुरे अर्थहीन वेदनाय भरि
सेइ कथा बलि-याहा बला नाहि ह'ल युगधरि ।

"वसुमती के अन्तस्तल में इसका जो गुप्त खजाना है वही पल्लव में—पत्तों में संचारित होता है । उसका न अन्त है, न उसका नाश ही है । वही सुगन्ध की साँस फूल-फूल में रो रही है । हृदय का रसरूप उसे सौरभ के रूप में प्रकाशित करता है । हृदयरुपी जङ्गल में पथ-भूला बटोही चक्कर लगा अस्थिहीन हो जाता है—वहाँ बासना रामनाम सम्बन्धी कितनी व्यथायें हैं, आँखें इसी लिए रोती हैं । दोनों किनारे भरे हुए हृदय-गंग में, कितनी प्रकार को तरंगे आनन्द से उठती हैं, वही आनन्द कितने काव्य, कितने छन्द में मूर्तिमान है । उसी की बन्दना में वे काव्य और छन्द मन्दिरों में गाये जाते हैं ।—सृष्टि के आरम्भ से ही कितनी बातें उसके विषय में कही गयी हैं—तौभी यह कैसे हुआ, मन में नहीं आता । इसलिए क्षण-क्षण उसे ही अपने अर्थ-हीन सुर में वेदना भर गाना-वही जो अबतक युगों से नहीं कहा गया ।"

दीनेन्द्रनाथ ठाकुर

(५६)

विधवार आरसी

विधवार आर्सिखानि पड़े आछे एक पाशे; —
काति-झुल माखियां शरीरे ।
मने पये घोर व्यथा, चुपे चुपे कहे कथा,
मनोदुःखे गुमरे गुमरे;—
"सधवा आछिल यवे, ए मुख नेहारि मोर
कतइ से पाइत गो सुख;
आमार ए सरसीते फुटित गो अरबिन्द,
तार सेह टुकटुके मुख ।
गियाछे सोहाग जाना,—बेझा गेछे भालवासा,
ए धराय केह कारो नय;
छ'मास चलिये गेल, एकबारो नाहि एल;
देह मोर कालि-झुलमय ।
भुल—भुल !—'सखो' नय, से मोर 'सतीन' हय,—
सब कथा बुझियाछि आमि;
यामिनी हयेछे भोर, भेङेछे स्वपन-घोर,
एकदिने दु'सतीने हारायेछि स्वामी !"

"एक स्थान पर विधवा की आरसी पड़ी हुई है—शरीर में कालिख और झोल लपेटी हुई है । मन में घोर व्यथा पाकर मन के दुःख से गुमर गुमर कर चुप-चुप बातें कर रही है—"जब सधवा थी, मेरे इस मुख को देख कितना सुख वह पाती थी ! मेरी इस सरसी में उसका वह मुख कमल जैसा फूटता था । प्यार का जानना चला गया, प्रेम बुझ गया है, इस पृथ्वी पर किसीका कोई नहीं है । छः महीने बीत गये, वह एक बार भी नहीं आई, मेरा शरीर कालिख और झोल से भर गया है । भूल

थी, भूल थी ! मैं समझ गई, वह मेरी सखी नहीं सौत थी। रात बीती, स्वप्न भङ्ग हुआ, हम दोनों ही सौतों ने एक दिनपति खो दिया।"

देवेन्द्रनाथ सेन

(५७)

पूर्व स्मृति

आज के सखि, पड़चे मने सेइ अतीतेर सन्ध्यावेला,
बसले यखन काछटि घेँसे कठिन ह'त गल्प वला,
नीलाम्बरीर आँचल निये खेलत वायु लीलार छले,
मन-भोलानो मन्त्रे तोमार मनटि कखन पड़त गेले,
आकाश भ'रे उठत तारा, फुटत हासि चाँदेर मुखे,
हातेर भितर हातटि धरा, कतइ कथा मनेर सुखे !
सन्ध्या-तारा अवाक ह'ये मुखेर परे थाकत चेये,
फुलेर मत मनटि तोमार आमार प्राणे रइत छेये !
लेखापड़ार पुँथिर मतन पड़ेछिले आमार ए मन,
सृष्टिहारा दृष्टि तोमार स्पर्श तोमार अमूल रतन,
स्वप्नपुरीर कल्पलोके उड़िये दितेम भातेर पाखा,
विश्व छिल सबुज तखन, आकाश छिल सोणाय आँका !
माझ खाने ते उठल ये झड़ घूर्णी-वातास माथाय घिरे,
तलिये दिले कोन् अतले मानस-सरेर पद्मिनीरे !
रङ्गभूमिर दृश्य परे नामल कालेर यवनिका
घूर्णी-वायुर आघात पेये निभल मनेर दीप्त शिखा !
अतीत एखन शुधुइ अतीत नाइ से मनेर उद्दीपना—
बुकेर तलि नूपुर तोमार शोणित-स्रोते याय ये चेना !
मिथ्या सखि, जागानो आज अतीते दिनेर अतीत कथा,
हयत ताते पावे ना सुख हयत मने पावे व्यथा !

(६०६)

"सखी, आज उस अतीत की सन्ध्या याद पड़ती है जब निकट में बैठकर कहानी कहने में गला कठिन हो जाता था। लीला के छल से वायु नीलाम्बरी का अञ्चल लेकर खेल करता है। तुम्हारे मन भुलाने वाले मन्त्र से मन गल पड़ता है। आकाश के भरते हुए तारे उगते हैं, चाँद के मुँह में हँसी फूटती है, मन के सुख में हाथ में हाथ डालना आदि कितनी ही बातें याद पड़तीं हैं। सन्ध्यातारा अवाक् मेरे मुख की ओर ताकते रह जाता है, तुम्हारा मन फूल जैसा मेरे मन को आच्छन्न कर रखता है। तुमने लिखने-पढ़ने की किताबों को नाईं मेरे मन को पढ़ा था। तुम्हारी दृष्टि की सृष्टि को लोप करने वाला, तुम्हारा स्पर्श का अमूल्य रत्न। स्वप्न-पुरी के कल्पलोक में मैं उड़ा देती थी भाव के पङ्ख। संसार उस समय हरा था, और आकाश स्वर्ण से अङ्कित। बीच से जो झड़ उठा घूर्णीहवा में माथा घेरकर, उसने मानसरोवर की पद्मिनी को किस अतल में डुबा दिया। रङ्गभूमि के दृश्य पर काल का पर्दा गिरा, मन की दीप्त-शिखा घूर्णी वायु के आघात से बुझ गई। अब अतीत केवल अतीत है, वह उद्दीपन अब नहीं रहा! हृदय के तल में रक्त की धारा में तुम्हारा नूपुर अभी भी जान पड़ता है। सखि! अब अतीत की भूली बातें जगाना व्यर्थ है। उससे शायद सुख न मिलेगा, दुख ही मिलेगी।"

इन्दिरा देवी

(५८)

द्विप्रहरे

सुदूर स्मृति जागाय आजि
    भाँटेर फुलेर गन्ध भिटे—
लाजुक मेके उठूल नेये
    चुलेर गोछा छड़िये पिठे—
नीलाम्बरीर तिमिर टुटे'

रंटि तोमार उठ्ल फुटे,—
कामिनीवन फुटिये गेल
सजल तोमार रूपेर छिटे।
काणेर पिठे तिलटि तोमार
एड़ायनि एइ मुग्ध चोख—
दीघिर घाटे ओइ ये आँका
दीप्त तोमार अलक्तक।
नारिकेलेर कुञ्ज-शिरे
पद्म-फोटा दीघिर नीरे,
भाँजटि खुले, छड़िये प'ल
परीर पाखार स्वर्णालोक।
तोमाय सखि देखेछिलाम
सरम-राङ्गा मधुर मुख—
अन्तरात्मा उठ्ल केँपे
कण्टकिया उठ्ल बुक।
मौमाछिदेर गुञ्जरणे
जाग्ल श्यामा कुञ्जबने—
कालो मेघेर रौप्य-पाड़
जरिर मतन रौद्रटुक्।
स्वप्न सम तार काहिनी—
आजके प्रिये द्विप्रहरे
सोना-आतार सोणार गाये

रबिर किरण पिछले पड़े;
दूर्वा-श्यामल निम्बतल,
दीप्त नभो नीलोज्ज्वल,
ढेउयेर माथाय माणिक भङ्गे
गाङ्गेर बुके स्तरे स्तरे ।

"सुदूर आज भाँटे के फूल के मधुर गन्ध की स्मृति जगाता है । सलज्जा युवती पीठ पर बालों का गुच्छा फैलाती नहाकर बाहर निकली । नीलाम्बरी के तिमिर को भङ्ग कर तुम्हारा रङ्ग फूट उठा । तुम्हारे सजल रूप के छींटे से कामिनी का वन खिल गया था । कान के पीछे तुम्हारा तिल इन मुग्ध आँखों से नहीं छिपा । तालाब के घाट पर वह तुम्हारा अङ्कित अलक्तक भी न छिपी । नारियल के कुञ्ज-शिखर पर, पद्म-विकसित सरोवर के जल में परी के पङ्खों का स्वप्नालोक खुल पड़ा था । सखि ! ने तुम्हें देखा था—तुम्हारा मुँह लज्जा से लाल था । अन्तरात्मा काँप उठी । हृदय कण्टकित हो उठा । मधुमक्खियों के गुञ्जन में कुञ्ज वन में श्यामा जाग उठी । काले मेघ चाँदी के पाड़ में, धूप ज़री के समान थी । प्रिये, आज दोपहर को उसकी कहानी स्वप्न के समान जाल पड़ती हैं । नोन प्रात के सुनहले शरीर पर सूर्य्य की किरणें बिखर पड़ी हैं । नीम के नीचे की भूमि दूब से हरी है । आकाश नीलोज्ज्वल है । गङ्गा के वक्ष पर स्तर स्तर तरङ्गों के माथे पर माणिक फूट रहे हैं ।"

करुणानिदान बन्द्योपाध्याय
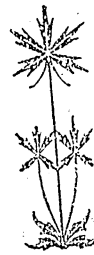
हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

से प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकें

कविता-कौमुदी

पहला भाग—हिन्दी

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इस पुस्तक में चन्दबरदायी, विद्यापति ठाकुर, कबीरसाहब, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, सूरदास, मलिकमुहम्मद जायसी, नरोत्तमदास, मीराबाई, हितहरिवंश, नरहरि, हरिदास, नन्ददास, टोडरमल, बीरबल, तुलसीदास, बलभद्र मिश्र, दादूदयाल, गङ्ग, हरिनाथ, रहीम, केशवदास, पृथ्वीराज और चम्पादे, उसमान, मलूकदास, प्रवीणराय, मुबारक, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति मिश्र, जसवंतसिंह, बनवारी, गोपालचन्द्र, बेनी, सुखदेव मिश्र, सबलसिंह चौहान, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख़, लाल, गुरु गोविन्दसिंह, घनआनन्द, देव, श्रीपति, वृन्द, बैताल, उदयनाथ (कवीन्द्र), नेवाज, रसलीन, घाघ, दास, रसनिधि, नागरीदास बनीठनीजी, चरनदास, तोष, रघुनाथ, गुमान मिश्र, दूलह, गिरिधर कविराय, सूदन, शीतल, ब्रजबासीदास, सहजोबाई, दयाबाई, ठाकुर, बोधा, पद्माकर, लल्लूजीलाल, जयसिंह, रामसहाय दास, ग्वाल, दीनदयाल गिरि, रणधीरसिंह, विश्वनाथसिंह, राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय, पजनेस, शिवसिंह सेंगर, रघुराजसिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरिधरदास, लछिराम, गोविन्द गिल्लाभाई के जीवन-चरित्रों और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। प्रारम्भ में हिन्दी का एक हज़ार वर्षों

का इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। अन्त में प्रेम, हास्य, शृङ्गार
और नीति के बड़े ही मनोरंजक घनाक्षरी, सवैया, कवित्त, दोहे, पहेलियाँ,
खेती की कहावतें और अन्योक्तियाँ संगृहीत हैं। यह पुस्तक शिक्षित
मनुष्य के हाथ, हृदय और वाणी का शृङ्गार है। बढ़िया काग़ज़, उत्तम
छपाई और स्वर्णाक्षरों से अंकित रङ्गीन कपड़े की मनोहर जिल्द से
सुसज्जित यह पुस्तक सुन्दर हाथों में सर्वथा स्थान पाने योग्य है। दाम २)

कविता-कौमुदी

दूसरा भाग—हिन्दी

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें नीचे लिखे कवियों की जीवनियाँ और उनकी चुनी हुई कवि-
ताओं का संग्रह है—

हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, विनायकराव, प्रतापनारायण मिश्र,
विजयानन्द त्रिपाठी, अम्बिकादत्तव्यास, लाला सीताराम, नाथूराम शंकर
शर्मा, जगन्नाथप्रसाद "भानु", श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, शिवसम्पत्ति,
महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, राधाकृष्णदास, बाल-
मुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास
"रत्नाकर", राय देवीप्रसाद 'पूर्ण", कन्हैयालाल पोद्दार, रामचरित उपा-
ध्याय, सैयद अमीर अली "मीर", जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद
गुरु, मिश्रबन्धु, गिरिधर शर्मा, रामदास गौड़, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद
शुक्ल "सनेही", रूपनारायण पांडेय, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण, मन्नन
द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पांडेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी,
शिवाधार पांडेय, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशङ्कर प्रसाद, गोपालशरणसिंह,
बदरीनाथ भट्ट, सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर, वियोगी हरि, गोविन्ददास,
सूर्यकान्त त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त, और सुभद्राकुमारी चौहान।

प्रारम्भ में खड़ीबोली की कविता का बड़ा मनोरंजक इतिहास और अंत में "कौमुदी-कुञ्ज" नाम से फुटकर कविताओं का बड़ा अनूठा संग्रह है। इसका तीसरा संस्करण बड़ी सज-धज से निकला है। बढ़िया, सफ़ेद चिकना काग़ज़, अच्छी छपाई, कपड़े की सुन्दर और मज़बूत जिल्द और दाम सिर्फ़ तीन रुपये।

कविता-कौमुदी

तीसरा भाग—संस्कृत

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें निम्नलिखित संस्कृत-कवियों की जीवनियाँ और उनकी चमत्कार-पूर्ण कविताएँ संगृहीत हैं—

अकालजलद, अप्पय दीक्षित, अभिनव गुप्ताचार, अमरुक, अमित-गति, अमोघ वर्ष, अश्वघोष, आनन्दवर्धन, कल्हण, कविपुत्र, कविराज, कालिदास, कुमारदास, कृष्ण मिश्र, क्षेमेन्द्र, गोवर्धनाचार्य, चन्दक, चाणक्य, जगद्धर, जगन्नाथ पण्डितराज, जयदेव, जोनराज, त्रिविक्रम भट्ट, दामोदर गुप्त, दण्डी, धनञ्जय, पाजक, पद्मगुप्त, प्रकाशवर्ष, पाणिनि, बाण, विकटनितम्बा, बिल्हण, भट्टभल्लट, भवभूति, भर्तृहरि, भारवि, भामट, भिक्षाटन, भोज, भास, मङ्खक, मयूर, माघ, मातङ्ग दिवाकर, मातृगुप्त, मुरारि, मोरिका, रत्नाकर, राजशेखर, लीलाशुक, वररुचि, वाल्मीकि, वासुदेव, विज्जका, विद्यारण्य, व्यासदेव, शिवस्वामी, शीला भट्टारिका, श्रीहर्ष, सुबन्धु, हर्षदेव आदि।

प्रारम्भ में संस्कृत-साहित्य का इतिहास है। अन्त में कौमुदी-कुञ्ज में संस्कृत के रस, ऋतु, पहेली, नायिका-भेद, निन्दा-प्रशंसा विषयक मनोहर श्लोकों का बड़ा ललित और आनन्दवर्धक संग्रह है। पुस्तक सुन्दर सजिल्द, छपाई-सफ़ाई बढ़िया। दाम तीन रुपये। इसका संशोधित नया संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

कविता-कौमुदी

चौथा भाग—उर्दू

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी-अक्षरों में उर्दू के वली, आबरू, मज़मून, नाजी, यकरङ्ग, हातिम, आरज़ू, फ़ुग़ाँ, मज़हर, सौदा, मीर, दर्द, सोज़, जुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नज़ीर, नासिख, आतिश, ज़ौक़, ग़ालिब, रिन्द, मोमिन, अनीस, दबीर, नसीम, अमीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर, चकबस्त और इक़बाल आदि मशहूर शायरों की, दिल को हुलसानेवाली, तबीयत को फड़कानेवाली, कलेजे में गुदगुदी पैदा करनेवाली, आशिक़-माशूक़ के चोचलों से चुहचुहाती हुई, महावरों की मौज में चुलबुलाती हुई, बारीक विचारों की मिठास से दिमाग़ को मस्त करनेवाली, निहायत शोख़, बातों ही से हँसाने और रुलानेवाली उर्दू-ग़ज़लों और तीर की तरह चुभनेवाले शेरों का अनोखा संग्रह है। इसमें उर्दू भाषा का निहायत दिलचस्प इतिहास भी है।

कौमुदी-कुञ्ज में निहायत मज़ेदार शेरों और ग़ज़लों का संग्रह है।

छपाई-सफ़ाई मनोहर; काग़ज़ बढ़िया; कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द; दाम केवल तीन रुपये।

कविता-कौमुदी

पाँचवाँ भाग—ग्राम-गीत

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें निम्नलिखित विषय हैं—

ग्रामगीतों का परिचय, सोहर, जनेऊ के गीत, विवाह के गीत, जाँत के गीत, सावन के गीत, निरवाही और हिंडोले के गीत, कोल्हू के गीत, मेले के गीत, बारहमासा।

प्रारम्भ में विस्तृत भूमिका है, जिसमें लेखक की गीत-यात्रा का बड़ा ही मज़ेदार वर्णन है। भूमिका के बाद गीतों का परिचय है, जो बड़ी विद्वत्ता से लिखा गया है।

बढ़िया ऐंटिक क़ाग़ज़ पर सुन्दर छपी हुई, मनोहर, सजिल्द पुस्तक का मूल्य तीन रुपये।

कविता-कौमुदी

छठाँ भाग—ग्राम-गीत

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इस भाग में निम्नलिखित विषय हैं—

आल्हा, चनैनी, हीर-राँझा, ढोल-मारू, नयकवा आदि बड़े-बड़े गीत की संक्षिप्त कथाएँ और नमूने, घाघ और भड्डरी की उक्तियाँ, खेती की कहावतें, पहेलियाँ, लोकोक्तियाँ, नीति के पद्य, काश्मीरी गीत, पंजाबी गीत, मारवाड़ी गीत, भीलों के गीत, गुजराती गीत, मराठी गीत, मलयाली गीत, तामिल गीत, तेलगू गीत, उड़िया गीत, बँगला गीत, आसामी गीत, मैथिल गीत, नेपाली गीत, पहाड़ी गीत, अलमोड़ा और गढ़वाल के गीत।

कौमुदी-कुञ्ज में बिरहे, कहरवा, पचरा, लावनी, होली, रसिया, चैती, खेमटा, पूरबी, दादरा, दोहे, सोरठे, सवैया, कवित्त, छन्द, भजन इत्यादि।

छपाई-सफ़ाई बहुत उम्दा; काग़ज़ बढ़िया, जिल्द सुन्दर; दाम ३) । पुस्तक छपनेवाली है।

कविता-कौमुदी

सातवाँ भाग—बँगला

लेखक—प्रो० कृपानाथ मिश्र, एम० ए०

इसमें प्रारंभ में बँगला-साहित्य का प्रारंभ से लेकर आजतक का इतिहास दिया गया है। फिर निम्नलिखित कवियों के परिचय और उनकी चुनी हुई कविताएँ दी गई हैं—

डाक, खना, रामाइ पंडित, नारायणदेव, विजयगुप्त केतकीदास क्षेमानन्द, कविकङ्कण मुकुन्दराम, भवानीशङ्करदास, कृत्तिवास, घनश्यामदास, सञ्जय, काशीरामदास, नित्यानन्द, मालाधर बसु, चण्डीदास, विद्यापति, गोविन्ददास, ज्ञानदास, भारतचन्द्र, रामप्रसाद, माइकेल मधुसूदन दत्त, हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय, नवीनचन्द्र सेन, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, द्विजेन्द्रलाल राय, चित्तरञ्जनदास, रजनीकान्त सेन, सत्येन्द्रनाथ दत्त, अक्षयकुमार बड़ाल, मोहितलाल मजुमदार, यतीन्द्रमोहन बागची, कामिनी राय, कालिदास राय, कृष्णधन दे, प्रियम्बदा देवी, दिलीपकुमार राय, काज़ी नज़रुलइसलाम।

अंत में कौमुदी-कुञ्ज है। जिसमें ४१ कवियों के फुटकर कविताओं का संग्रह है। मूल कविताएँ देवनागरी अक्षरों में दी गई हैं और नीचे उनके हिन्दी-अनुवाद दिये गये हैं। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३)

———